श्रीकाशीवासीमहामहोपाध्याय-

निर्णयसिन्धु

भाषाटीकासहित

जिसमें

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास

कल्याण-मुम्बई.

टीकाकार–पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र.

स्वस्तिश्रीमन्महाराजाधिराज प्रबलप्रतापी गुणज्ञाननिधान न्यायपरायण धर्मधुरीण क्षत्रवंशावतंस लोकमान्य गुणिजनमण्डलीमण्डन सज्जनमनरञ्जन सनातनधर्मप्रतिपालक वीरेन्द्र-टीहरी गढवाल नरेश श्रीयुत श्री १०८.

श्रीमहाराजाकीर्तिशाहजू महोदय

G. C. S. I. के करकमलमें

यह "निर्णयसिन्धु" ग्रन्थ धर्मसम्बन्धसे सादर समर्पित है ।

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११ । १ । ०५

निवेदक—
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

भूमिका।

चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके आचार, विचार तथा सम्पूर्ण लोकव्यवहार, दाय-भाग, संस्कार, व्रतानुष्ठान, महीनोंके उत्सव, संक्रान्तिविधान, व्रतादिके निर्णय, दानादिका समय और फल, ग्रहणसमयके कृत्य, पापोंके प्रायश्चित्त, यह सब भिन्न २ स्थलोंमें धर्मशास्त्र और पुराणोंमें वर्णन किये हैं, एवं एक ही धर्मशास्त्र वा पुराणमें सब विषयकी पूर्ति नहीं पाई जाती, एकके साथ दूसरेकी अपेक्षा लगी रहतीहै, और कभी २ व्रत तथा उत्सवोंके निर्णयमें बडी झंझट पडती है इन अभावोंके दूर करनेके लिये महानुभावोंने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र तथा पुराणोंका सार संग्रह करके बडे २ निबन्धोंकी रचना की है, उनमें कृत्यकल्पतरु और हेमाद्रि आदि बडे २ निबन्ध हैं, परन्तु यह इतने बृहत् होगये हैं कि, न तो सर्वसाधारणको उनकी उपलब्धि ही होसक्ती है और न विना पूर्ण विद्वत्ताके उनको कोई समझ सकता है, उन निबन्धोंकी बृहदाकार देखकर ही प्रसिद्ध स्मृतिशास्त्रज्ञाता कमलाकरभट्टने इन बृहत् निबन्धों तथा धर्मशास्त्र, पुराणोंका सार संग्रह करके प्रयोजनीय समस्त विषयोंसे पूर्ण "निर्णयसिन्धु" नामक ग्रंथकी रचना की, इसमें इन पंडितवर्यका पांडित्य भी पूर्णरूपसे झलकता है परन्तु साधारण मनुष्योंको इसका अर्थभी सुलभ नहीं है, इन्होंने जहाँ तहाँ अपने ग्रन्थमें गौडमन्तव्योंका खण्डन कियाहै इससे विदित होता है कि, यह गौडनिबन्धोंके सर्वथा सहमत न थे। अस्तु, तो भी यह ग्रन्थ धर्मनिवन्धोंमें बहुत उत्कृष्ट समझा जाता है, इसकी रचनाभी न्याय मीमांसासे गर्भित है, और कहीं कहीं इसकी पंक्तियें कठिनता लिये हुए हैं 'धर्मसिंधु' नामक एक वार्तिक संस्कृत ग्रंथ इसका टीकारूप समझा जाता है, परन्तु वहभी संस्कृतमें ही होनेके कारण सर्व साधारणको उपयोगी नहीं समझा जाता. इस कारण यह आवश्यकता हुई कि, सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंके प्रयोजनीय धर्मकर्मके साररूप इस ग्रंथका हिन्दी भाषामें सबके समझने योग्य टीकाका निर्माण किया जाय। यद्यपि यह कार्य दीर्घकालसाध्य और विशेष परिश्रमसापेक्ष था तो भी सर्व साधारणका उपकार विचार कर इसकी टीका करनेका परिश्रम कुछ विशेष न समझा और इसका सरल सुगम सबके समझने योग्य ऐसा अनुवाद लिखाहै कि, इसकी कठिन पंक्तिभी भली प्रकार सर्वसाधारणकी समझमें आसकैंगी, और कर्मकाण्डमें जो कहीं कहीं वैदिक मंत्रोंकी प्रतीकें इसके मूलमें थीं मैंने नोटमें वह पूरे मंत्र पतेसहित लिखदिये, और इसकी रचनाको अंकोंमें विभक्तकर अंक डालकर नीचे उसका तिलक लिखाहै, जिससे समझनेमें किसी प्रकार भी कठिनाई न पडे इस प्रकार इस ग्रंथका भाषानुवाद होनेसे हिन्दीभाषाके भंडारमें एक अनुपम ग्रंथकी वृद्धि हुई है।

यथामति इस ग्रंथके अलंकृत करनेकी चेष्टा कीगई है यदि कहीं कुछ भ्रमवश रहगया हो तो पाठकगण क्षमा करेंगे ।

इस प्रकार यह ग्रंथ सब स्वत्त्वसहित जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) यंत्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण करदिया गया है आशा है कि, महात्माजन इसके अवलोकनसे प्रसन्न होंगे ॥

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११ । १ । ०९

अनुगृहीत—
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

ग्रंथकारका परिचय ।

विख्यात स्मृतिसंग्रहकार कमलाकरभट्टजी रामकृष्णभट्टजीके पुत्र नारायणभट्टके पौत्र और दिनकर भट्टके सहोदर थे बहुतसे धर्मग्रंथ इनके निर्माण कियेहुए हैं अपने समयमें यह एक प्रधान स्मार्त थे, इनके बनाये हुए निम्न लिखित ग्रंथ प्रधान हैं— तत्त्वकमलाकर १, पूर्त्तकमलाकर २, तीर्थकमलाकर ३, संस्कारप्रयोग ४, संस्कारपद्धति ५, कार्तवीर्यार्जुनदीपदानप्रयोग ६, शान्तिरत्न ७, शूद्रधर्मतत्त्व ८, सहस्रचण्डयादिविधि ९, निर्णयसिन्धु १०, विवादताण्डव ११ इन ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि, यह सन् १५३४ ई० में विद्यमान थे ।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

इति ग्रहणनिर्णयः ।

इति प्रथमपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

अथ द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

तत्रादौ तिथिकृत्ये विवाहादौ च

चैत्रमासः ।

अथाश्विनमासः ।

इत्याश्विनमासः ।

अथ कार्तिकमासः

इति कार्तिकमासः।

अथ मार्गशीर्षमासः।

इति मार्गशीर्षमासः।

अथ पौषमासः।

इति द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

इति संस्कारप्रकरणम् ।

अथ क्षुद्रकालाः ।

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

इति तृतीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

अथोत्तरार्द्धानुक्रमणिका ।

श्राद्धप्रकरणम् ।

अथ श्राद्धानुकल्पः ।

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

इति तीर्थे श्राद्धविधिः ।

अथाशौचप्रकरणम् ।

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

५

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमणिका ।

निर्णयसिन्धोः विषयानुक्रमाणिका ।

इति निर्णयसिन्धोर्विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

ऋद्धिसिद्धीश्वराय नमः ।

अथ निर्णयसिन्धुः ।

भाषाटीकासमेतः ।

प्रथमः परिच्छेदः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । अविघ्नमस्तु ॥ कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंबिशाखिनं वन्दे ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतरलं जितगोकुलम् ॥ वर्हापीडं घनश्यामं

भाषाटीकाकारकृतमंगलाचरणम् ।

दोहा ।

सिद्धिसदन आनन्दघन, गणपति गिरा मनाय । निर्णयसिन्धुसुग्रन्थकी, भाषा लिखत वनाय ॥१॥
करुणानिधि सीतारमण, कौशिकसुखदातार । प्रेमसहित वन्दौं सदा, दशरथराजकुमार ॥ २ ॥
लक्ष्मीयुत सुरतरुतले, गोगण रंजनहार । वर्हापीड श्यामघन, वन्दौं वारहिंवार ॥ ३ ॥
शिवासहित शिवपदकमल, वन्दौं सब सुखदान । तीन काल चहुँ युगनम, भक्तन सुखप्रद जान ॥४॥
वेदधर्मरक्षाकरन, मायामनुजशरीर । पितामहशिवदयालुको, वन्दौं धर्मसुधीर ॥ ५ ॥
जिन चरणनकी वन्दना, सकल सुमंगलखान । मिश्रसुखानँद पितुचरण वन्दौं सब सुखदान ॥६॥
वसत रामगंगानिकट, नगर मुरादावाद । धर्मसेतु टीका रचत बुधज्वालापरसाद ॥ ७ ॥

दयाके एकही स्थान, सीतारूपी लतासे संयुक्त, विश्वामित्रके वंशरूपी, लताके आश्रित रामरूपी वृक्षको प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥ लक्ष्मीसे युक्त कल्पवृक्षके नीचे गौओंके वंशको प्रसन्न

महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥ वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥ पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥ यत्पादसंस्मृतिः सर्वमंगलप्रतिभूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णाख्याञ्छ्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥ सर्वकल्याणसंदोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ द्युनदीसोदरीमम्बामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥ बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥ हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ॥ श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णयमातनोति ॥ ७ ॥ सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमुष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥ ८ ॥ * अथ कालायनादिनिर्णयः * ॥ तत्र संक्षेपतः कालः षोढा—अब्दोऽयनमृतुर्मासः पक्षो दिवस इति ॥ तत्राब्दो माधवमते पञ्चधा—सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥ गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः ॥ स च ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ॥ हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्त्रिस्र एव विधा आह ॥ तत्र वक्ष्यमाणैः सावनादिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् ॥ मलमासे तु सति षष्टिदिनात्मक एको मास इति द्वादशमासत्वमविरुद्धम् ॥ तथा च व्यासः । 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः' इति ॥ तत्र चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः ॥ तदाह गार्ग्यः—"प्रभवो

करनेवाले मोरपुच्छका गुच्छा धारण करनेवाले धनकी समान श्याम (कृष्ण) की उपासना करते हैं ॥ २ ॥ वेदके अर्थ और धर्मकी रक्षाके निमित्त मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हरिरूप पितामह भट्टनारायणको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥ जिनके चरणारविन्दोंका स्मरण सम्पूर्ण मंगलोंका प्रतिनिधि है, उन रामकृष्णभट्ट श्रीपिताजीके चरणोंको प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥ जिनके दोनों चरणकमल सम्पूर्ण कल्याणके पात्रके आदिकारण हैं उन गंगाकी सगी भगिनी उमानाम अपनी माताके चरणोंको प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥ बिन्दुमाधवके चरणकमलोंके आश्रितशरीरवाले बडे भ्राता भट्ट दिवाकरकी उपासना करता हूं ॥ ६ ॥ हेमाद्रि और माधवके मतको भले प्रकार विचार तथा दूसरे ग्रन्थकारोंके मतको भले प्रकार विचारकर श्रीरामकृष्णका पुत्र मैं कमलाकरभट्ट समयपर बुद्धिके अनुसार निर्णयका विस्तार करता हूं ॥ ७ ॥ यद्यपि विद्वान् और उनके बनाये ग्रन्थभी बहुत हैं तौभी इसकी पण्डिताई कोई कोई ही जाननेको समर्थ हैं ॥ ८ ॥ निबन्धके अनुसार समय संक्षेपसे छः प्रकारका है । वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिन । माधवके मतसे वर्षके पांच भेद हैं । सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य । बृहस्पतिकी मध्यम अर्थात् एक राशि भोगनेसे बार्हस्पत्य वर्ष होता है, वह ज्योतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध है, और हेमाद्रिने पिछेके दोनोंके धर्मशास्त्रके उपयोगी न होनेसे तीनही प्रकारका माना है, सो आगे कहनेयोग्य सावनादि बारह महीनोंमें तिस २ का वर्ष होता है, और मलमास होनेसे साठ दिनका एक महीना होताहै इससे द्वादशमास कहनेमें विरोध नहीं है, यही व्यासजी कहते हैं कि ६० दिनका एक मलमास होताहै, उसमें चन्द्रवर्षके साठ भेद हैं यही गर्ग कहते हैं ॥ प्रभव १

विभवः शुक्रः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः। अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धातेश्वरस्तथा ॥ बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोऽथ वृषस्तथा । चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः । नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥ हेमलम्बो विलम्बोऽथ विकारी शार्वरी प्लवः । शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥ प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् । परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥ पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती । दुंदुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः " ॥ इति ॥ ६० ॥ यद्यपि ज्यौतिषे गुरोर्मध्यमराशिभोगेन प्रभवादीनां माघादौ प्रवृत्तिरुक्ता, तथापि प्रभवादीनां चान्द्रत्वमप्यस्ति ॥ 'चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे' इति माधवोक्तेः ॥ तेन चान्द्रः प्रभवादिश्चैत्रसिते प्रवर्तते, बार्हस्पत्यस्तु माघादौ ॥ तयोर्विनियोगो ज्योतिर्निबन्धे ब्रह्मसिद्धान्ते "व्यावहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु । योज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे ॥ " आर्ष्टिषेणः—"स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं सम्वत्सरं सदा । नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥" इति ॥ अयनं तु सौरर्तुत्रयात्मकम् । 'सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टमयनम्' इति दीपि-

---

विभव २ शुक्ल ३ प्रमोद ४ प्रजापति ५ अंगिरा ६ श्रीमुख ७ भाव ८ युवा ९ धाता १० ईश्वर ११ बहुधान्य १२ प्रमाथी १३ विक्रम १४ वृष १५ चित्रभानु १६ सुभानु १७ तारण १८ पार्थिव १९ व्यय २० सर्वजित् २१ सर्वधारी २२ विरोधी २३ विकृति २४ खर २५ नन्दन २६ विजय २७ जय २८ मन्मथ २९ दुमुर्ख ३० हेमलम्ब ३१ विलम्ब ३२ विकारी ३३ शार्वरी ३४ प्लव ३५ शुभकृत् ३६ शोभन ३७ क्रोधी ३८ विश्वावसु ३९ पराभव ४० प्लवंग ४१ कीलक ४२ सौम्य ४३ साधारण ४४ विरोधकृत् ४५ परिधावी ४६ प्रमाथी ४७ आनन्द ४८ राक्षस ४९ अनल ५० पिंगल ५१ कालयुक्त ५२ सिद्धार्थ ५३ रौद्र ५४ दुर्मति ५५ दुन्दुभि ५६ रुधिरोद्गारी ५७ रक्ताक्ष ५८ क्रोधन ५९ क्षय ६० ॥ यद्यपि ज्योतिःशास्त्रमें गुरुके मध्यमराशिके भोगसे प्रभवादिवर्षोंकी माघादिमें प्रवृति कहीहै तौभी प्रभवादिवर्षोंको चान्द्रत्वभी है, अर्थात् चन्द्रमासेभी मानेजाते हैं कारण कि माधवने यह कहाहै कि प्रभव आदि चान्द्रवर्षोंके पांचवें २ युगमें होतेहैं इससे चान्द्र प्रभव आदि वर्ष चैत्रके शुक्लपक्षसे प्रवृत्त होताहै, और बार्हस्पत्य तो प्रभव आदि माघकी आदिमें प्रवृत्त होताहै, उन दोनोंका विनियोग ज्योतिर्निबंधके ब्रह्मसिद्धान्तमें वर्णन कियाहै कि, व्यावहारिकसंज्ञावाला यह काल (चान्द्रवर्ष) स्मृति अर्थात् शास्त्रोक्त सर्व कर्मोंमें सदैव मानना चाहिये, बार्हस्पत्यवर्षको नर्मदासे उत्तर मानना चाहिये । आर्ष्टिषेण कहतेहैं--सर्वत्र कर्मादिमें चान्द्रवर्षकोही लेना चाहिये, अन्य नहीं. कारण कि, इसीकी वत्सर आदिमें प्रवृत्ति कहीहै, सूर्यकी तीन ऋतुओंको अयन कहतेहैं, यही इस प्रकारके वचनसे दीपिकाग्रन्थमें लिखाहै, उस अयनके दक्षिण और उत्तर दो भेद हैं,

क्तोक्तेः ॥ तत् द्विविधं दक्षिणमुत्तरं चेति ॥ कर्कसंक्रांतिर्दक्षिणायनं मकरोऽन्यम ॥ अनयोर्विनियोगमाह मदनरत्ने सत्यव्रतः–'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ। दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥' वैखानसः–'मातृभैरववाराहनरसिंह-त्रिविक्रमाः । महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥' वैशब्दोऽप्यर्थे न तु दक्षिणायन एवेति नियमः । पूर्ववचने दक्षिणायने निषिद्धाया देवप्रतिष्ठाया देव-विषये प्रतिप्रसवमात्रात् ॥ रत्नमालायाम् 'गृहप्रवेशस्त्रिदशप्रतिष्ठा विवाहचौल-व्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ॥' इति ॥ अस्यापवादः काशीखण्डे–'सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम । सदा महो-दयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम् ॥' इत्ययनम् ॥ ऋतुनिर्णयः । ऋतुर्मासद्व-यात्मा ॥ मलमासे तु मासद्वयात्मक एको मासस्तेन मासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम्। स द्वेधा–चान्द्रः सौरश्च । चैत्रारम्भो वसन्तादिश्चान्द्रः, मीनारम्भो मेषारम्भो वा सौरः । 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः इति बौधायनोक्तेः ॥ अनयोर्विनियोग-माह त्रिकाण्डमण्डनः–"श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु । तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥" स द्विविधोऽपि षोढा । वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः

कर्ककी संक्रान्तिमें दक्षिणायन और मकरकीमें उत्तरायण होताहै ॥ मदनरत्नग्रन्थमें सत्यव्रतने इन दोनोंका विनियोग कहाहै कि, देवताकी प्रतिष्ठा, बाग, बावडी आदिकी प्रतिष्ठा उत्तरायण-सूर्यमें करनी चाहिये । कारण कि, दक्षिणायनमें करनेवालेको उसका फल नहीं मिलताहै. वैखा-नसऋषि कहतेहैं कि, मातृ, भैरव, वराह, नारसिंह, त्रिविक्रम, महिषासुरघातिनी देवीकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमेंभी करदे । इस श्लोकमें (वै) शब्दका (अपि) अर्थ है दक्षिणायनमेंही करे यह नियम नहीं, कारण कि पहले वचनमें दक्षिणायनमें निषेध कीहुईभी देवप्रतिष्ठाका मातृ आदि देवविशेषोंमें इस वाक्यसे (निषेध) का निषेध है यही रत्नमालामें कहा है कि, गृहप्रवेश, देवताकी प्रतिष्ठा, विवाह, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म उत्तरायणमें करने चाहिये और गर्हित जो कर्म हैं वे दक्षिणायनमें करने । इसका भी अपवाद काशीखण्डमें लिखाहै कि, का-शीके रहनेवाले सत्पुरुषोंको सदाही कृतयुग, सदाही उत्तरायण और सदाही महोदय होताहै, आशय यह कि उनको दक्षिणायन भी उत्तरायणही है । इति अयनप्रकरणं समाप्तम् ॥ दो महीनेका ऋतु होताहै, मलमासमें तो दो महीनेका एक मास होताहै, इस कारण दो मासका ऋतु कहना विरुद्ध नहीं है । उस ऋतुके दो भेद हैं चान्द्र और सौर, चैत्रका आरंभ वसन्तकी आदि चान्द्रऋतु है, मीन वा मेषका आरम्भ सौरऋतु कहाताहै, कारण कि, बौधायन ऋषिने मीन और मेषकी वा मेष और वृषकी संक्रान्तिको वसन्तऋतु वर्णन किया है । इन दोनों ऋतु-ओंका विनियोग त्रिकाण्डमण्डनमें यह वर्णन किया है कि, सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्रकी कही क्रिया चान्द्रऋतुओंमें करनी चाहिये । यदि उनमें मुहूर्त न बने तो सौर ऋतुओंमें करनी चाहिये

शरद्धेमन्तः शिशिरः । इत्यृतुः ॥ मासश्चतुर्धा । सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इति ॥ त्रिंशद्दिनः सावनः । अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यवधिः सौरः ॥ यद्यपि हेमाद्रिमाधव-कालादर्शाद्यालोचनेन 'मेषसंक्रान्त्यां समाप्तामावास्यकत्वं चैत्रत्वम्' इति लक्षणाच्च मेषसंक्रान्तेश्चैत्रत्वं प्रतीयते, तथापि मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्या-त्तत्पूर्वभावित्वेन मीनस्यैव चैत्रत्वं युक्तम् । एवं मेषादयो वैशाखाद्याः । अतो मीनसंक्रान्त्यामधिगतपौर्णमासिकत्वम्, आद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः ॥ एवं वैशाखादयोऽपि मेषाद्या ज्ञेयाः ॥ संक्रान्तिनिर्णयः । सौरमासप्रसंगात्संक्रांतिनिर्णय उच्यते ॥ तत्र 'पूर्वतोपि परतोपि संक्रमात्पुण्यकाल-घटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः ॥ विशेषस्तूच्यते ॥ अत्र मामकाः संग्रहश्लोकाः—" प्रागूर्ध्वा दश पूर्वतः षडवनिस्तद्वत्पराः पूर्वतस्त्रिंशत्षोडश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश । पूर्वाः षोडश चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात्खवेदाः पुनः पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः ॥ " अस्यार्थः । मेषे प्रागूर्ध्वं च दश घटिकाः पुण्यकालः, वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वा दश, वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे चत्वारिंशत्पराः । इदं च हेमाद्रि-

---

यह ज्योतिषियोंका मत है, वह दो प्रकारका भी ऋतु छः प्रकारका है वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमंत और शिशिर । इति ऋतुप्रकरणम् ॥ मास चार प्रकारका है सावन, सौर, चान्द्र, नाक्षत्र । ३० दिनका सावन और सूर्यकी संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक सौरमास होता है । यद्यपि हेमाद्रि, माधव, कालादर्श आदि ग्रन्थोंके देखनेसे मेषसंक्रान्तिकी समाप्ति होनेपर अमावास्यान्त चैत्र होता है, इस लक्षणसे मेषकी संक्रान्तिही चैत्र प्रतीत होती है, तथापि जब मेषकी संक्रान्तिमें दो अमावस आजाँय तो वैशाखकी अधिकतासे और पूर्व होनेसे मीनकोही चैत्र मानना युक्तिसम्पन्न होसकताहै, इसी प्रकार मेष आदि संक्रान्तिसे वैशाख आदि जानने उचित है, इससे मीनकी संक्रान्तिके बीचमें जिसकी पूर्णमासी हो वह अथवा वर्षकी प्रथमकी तिथि, जिसके आदिमें हो वह चैत्र कहाता है, इन लक्षणोंसे मीनही सौर चैत्र है इसी प्रकार वैशाख आदिभी मेष आदि जानने ॥ अब सौरमासके प्रसंगसे संक्रान्तिनिर्णय लिखतेहैं, संक्रान्तिके प्रारम्भसे पहिले और पीछे सोलह घडी पुण्यकाल सामान्यरीतिसे सबने लिखाहै, विशेष भी कहतेहैं । इस विषयमें मेरे संग्रह किये हुए यह श्लोक हैं, कि मेषकी संक्रान्तिमें प्रथम और पीछे दश २ घडी पुण्यकाल है, वृषमें पहली सोलह और मिथुनमें पिछली सोलह, कर्कमें पहली तीस, सिंहमें पहली सोलह और कन्यामें पीछेकी सोलह घडी और तुलामें पहली और पिछली दश और वृश्चिकमें पहली सोलह और धनमें पिछली सोलह घडी, और मकरमें पिछली चालीस घडी तक पुण्यकाल है, यहभी

मतेनोक्तम् । माधवमते त्वत्र परा विंशतिः पुण्याः कुंभे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडशेति ॥ " याप्युत्तरा पुण्यतमा मयोक्ता सायं भवेत्सा यदि सापि पूर्वा । पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात् ॥ अर्वाङ्निशीथाद्यदि संक्रमः स्यात्पूर्वेह्नि पुण्यं परतः परेपि । आसन्नयामद्वयमेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥ कर्के झषेप्येवमिति ह्युवाच हेमाद्रिसूरिश्च तथापरार्कः । झषः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ॥ प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः ॥ " अत्र मूलवचनानि माधवापरार्कहेमाद्र्यादिषु द्रष्टव्यानि ॥ सर्वासु संक्रांतिषु दानविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्ड उक्तः ॥ मेषसंक्रान्तौ दानविशेषः—विश्वामित्रः—" मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम् । वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ वस्त्रान्नपानदानानि मिथुने विहितानि तु । घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेपि विशिष्यते ॥ ससुवर्णं छत्रदानं सिंहेपि विहितं सदा । कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च ॥ तुलाप्रवेशे तिलानां गोरसानामपीष्टदम् ॥ अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम ॥ अन्नकी वृश्चिकः । धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम् । झषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च ॥ कुम्भ-

---

हेमाद्रिके मतसे लिखाहै, माधवके मतमें तो पिछली बीस घडी पुण्यकाल है । जिस संक्रान्तिकी पिछली घडी पुण्यतम मैंने कहीहैं यदि वह संक्रान्ति संध्याके समय हो तो उतनीही पहली घडी पुण्यकाल जानना, और जिस संक्रांतिका पूर्व पुण्यकाल कहाहै वह यदि सूर्योदयके समय होय तो उतनीही घडी पिछली पुण्यकाल जानना । कारण कि, रात्रिमें पुण्यका निषेध है, यदि आधी रातसे पहिले संक्रान्ति होय तो पहले दिनके पिछले दो प्रहरमें और यदि आधी रातसे परे संक्रान्ति होय तो पिछले दिनके पहले दो प्रहरमें पुण्यकाल होताहै । कर्क और मीनकी संक्रान्तिमें भी इसी प्रकार जानना, यह वार्ता हेमाद्रिसूरि और अपरार्कने लिखीहै । यदि मीनकी संक्रान्ति प्रदोष वा आधी रातके समय होय तो पर दिनमें पुण्यकाल जानना, और कर्ककी संक्रान्ति सूर्योदय वा आधीरातके समय होय तो पूर्वदिनमें पुण्यकाल जानना, यह माधवाचार्य लिखतेहैं, इनमें मूलके वचन माधव, अपरार्क, हेमाद्रि आदिमें देखने योग्य हैं । सब संक्रान्तियोंमें दानविशेष हेमाद्रिग्रन्थके दानकाण्डमें लिखा है ॥ विश्वामित्र कहतेहैं कि, मेषकी संक्रान्तिमें मेषके दानका महान् फल है, इसी प्रकार वृषकी संक्रान्तिमें गौका दान और वस्त्र, अन्न, (पान) का दान मिथुनमें कहाहै, घीकी गऊका दान कर्कमें बहुत श्रेष्ठ है, सुवर्णसहित छत्रका दान सिंहमें उत्तम कहाहै, कन्याकी संक्रान्तिमें वस्त्र और घरका दान कहाहै, तुलाकी संक्रान्तिमें तिल और गोरसका दान मनोरथको देताहै, वृश्चिककी संक्रान्तिमें दीपकदानका बडा फल है और धनुकी संक्रान्तिमें वस्त्र और यानके दानका महान् फल है, मकरकी संक्रान्तिमें काष्ठ और अग्निके दानका महान् फल है, कुम्भकी-

प्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च । मीनप्रवेशे स्थानानां मालानामपि चोत्तमम् ॥ " इति ॥ अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः–'अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः । स्नात्वा यस्त्वर्च्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत् ॥ ' अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः–' अयने संक्रमे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । अहोरात्रोषितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ' अत्रोपवासः संक्रमदिने, दानादि तु पुण्यकालदिने इत्याचार्यचूडामणिः ॥ विधिलाघवात् पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः ॥ इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम् । 'आदित्येऽहनि सक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथा ॥' इति जैमनिवचनात् ॥ अत्र श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते ॥' अपरार्केपि विष्णुः–आदित्यसंक्रमणं, विषुवद्वयम्, विशेषेणायनद्वयम्, व्यतीपातः, जन्मर्क्षम्, अभ्युदयश्च । 'एतांस्तु श्राद्धकालान्वै काम्यानाह प्रजापतिः' इति ॥ द्वादशादिदिनैरर्वागयनांशप्रवृत्तावपि

संक्रान्तिमें गौ, जल और तृणके दानका बडा फल है, मीनकी संक्रान्तिमें खट्टा अन्न तथा मालाका महान् फल है ॥ हेमाद्रिग्रन्थमें आपस्तम्बने संक्रान्तिमें उपवास कहा है कि, दक्षिणायन उत्तरायण और विषुव (मेष तुला) संक्रान्तिमें जो मनुष्य तीन रात्रि उपवास स्नान करके सूर्यका पूजन करता है, वह सब कामनाओंके फलको प्राप्त होता है, और यदी सामर्थ्य न होय तो वृद्धवसिष्ट यह कहते हैं कि, दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें एक दिनरात व्रत और स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है, यह व्रत तो संक्रान्तिके दिन करना चाहिये, और दान आदि पुण्यकालके दिन करना । यह आचार्य चूडामणि कहते हैं, कि विधिके लाघवसे पुण्यकालके दिनहीं व्रत, स्नान दोनों करने चाहिये ॥ यह वार्त्ता उसी गृहस्थीके निमित्त है जिसके पुत्र न हो क्योंकि, जैमिनि ऋषिने यह कहा है कि, रविवारके दिन संक्रान्ति और सूर्य चन्द्रमाके ग्रहणमें पुत्रवाले गृहस्थीको व्रत नहीं करना चाहिये और संक्रान्तिके हेमाद्रिग्रन्थके विष्णुधर्ममें श्राद्ध करना भी कहा है कि, हे राजन् ! सूर्यकी संक्रान्तिमें श्राद्ध बहुत उत्तम है ॥ अपरार्कग्रन्थमें विष्णुने यह कहा है कि, सूर्यकी संक्राति विषुव और दोनों अयन जन्मका नक्षत्र और अभ्युदय इतने श्राद्धके समय प्रजापतिने काम्य कहे हैं, अर्थात् पुत्र आदिकी कामनावाला पुरुष इनमें श्राद्ध करै, जब बारह दिन पहले अयनांशकी प्रवृत्ति होती है, तब

१ अहोरात्र कहनेसे भूतकाल विविक्षित नहीं है, अमावास्या, द्वादशी, संक्रान्ति यह तिथि और भानु वार श्रेष्ठ है । इसमें स्नान जप होम देवताका पूजन उपवास दान करना परमपवित्र है यह सांवर्तक वाक्य है, वास्तवमें सांवर्तसंक्रान्तिके अधिकरण उपवासका विधान है ।

तथाच " अमावस्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः । एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च । अत्र स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम् ॥ "

-पुण्यं वक्तुमयनग्रहणम् । अन्यथा संक्रमेण सिद्धेरयनग्रहणं व्यर्थं स्यादित्यपरार्कः ॥ हेमाद्रावपि गालवः–"अयनांशकतुल्येन कालेनैव स्फुटं भवेत । मृगकर्कादिगे सूर्ये याम्योदगयने सति ॥ तदा संक्रान्तिकाले स्युरुक्ता विष्णुपदादयः ॥" इति ॥ अयनांशच्युतिरूपे संक्रांतिकालेपि विष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते । तेन तत्प्रयुक्तं पुण्यकालादि तत्रापि ज्ञेयमिति स एव व्याचख्यौ ॥ तत्र मेषायनं वृषायनमित्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ माधवीयेपि जाबालिः–" संक्रांतिषु यथा कालस्तदीयेप्ययने तथा । अयने विंशतिः पूर्वा मकरे विंशतिः परा ॥" इति ॥ मकरायने पूर्वाः विंशतिघटिकाः पुण्याः, मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः पुण्याः । अन्यत्रायने तत्संक्रान्तिवदित्यर्थः ॥ विष्णुपदादिनिर्णयः ॥ विष्णुपदादिस्वरूपं च दीपिकायामुक्तम्–' हर्यलिवृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्य यः संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयुक्षु षडशीत्याख्यं तुलामेषयोः । प्रोक्तं तद्विषुवं झषेऽप्ययनमुदक्कर्कटके दक्षिणम् ॥' इति ॥ हर्यलिर्विष्णुपदम्, नृयुक् मिथुनम् ॥ अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् ॥ तथा चापरार्के मात्स्ये–"अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । संक्रांतिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते" ॥इति॥ श्राद्धशूलपाणिस्तु

भी पुण्य कहनेके लिये अयन पढा है, नहीं तो संक्रान्तिके ग्रहणसेंही सिद्ध रहा, अयनका ग्रहण व्यर्थ होजाता, यह अपरार्क ग्रन्थमें कहा है । हेमाद्रि ग्रन्थमें भी गालवऋषिका यह वचन है कि जब अयनांशके तुल्य समयसे मकर और कर्कके सूर्यमें दक्षिणायन और उत्तरायण यह दोनों स्फुट होंय तब संक्रान्तिके समयमें विष्णुपद आदि नाम संक्रान्तिके कथन किये हैं, और उन्हीं गालवऋषिने यह व्याख्या की है कि, अयनांशके बीतनेपर जो संक्रान्तिका समय है उसमें उस संक्रान्तिका पुण्यकाल समझना, और यह काल मेषायन वृषायन इस प्रकार सब संक्रान्तियोंमें जानना चाहिये । और माधवीयग्रन्थमें भी जाबालि ऋषिने कथन किया है कि, संक्रान्तिमें जैसा पवित्र काल होता है, वैसाही उसके अयनमें होता है, मकरके अयनमें पहली बीस घडी और मकरकी संक्रांतिमें पीछली बीस घडी पुण्यकाल होता है ॥ और संक्रांतियोंके अयनमें तिस २ संक्रान्तियोंके तुल्य विष्णुपद आदि प्रवृत्त होते हैं ऐसा जानना, तिससे तिस २ संक्रान्तियोंका पुण्यसमय तिस २ अयनमें भी जानना । विष्णुपद आदि संक्रान्तियोंका स्वरूप दीपिकाग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है कि, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ इनकी संक्रांतिको विष्णुपद कहते हैं, कन्या, मीन, धनु, मिथुन इनकी संक्रांतिको षडशीत्यानन कहते हैं, तुला और मेषकी संक्रांतिको विषुव कहते हैं । मकरकी संक्रांतिको उत्तरायण और कर्कको संक्रान्तिको दक्षिणायन कहते हैं और संक्रांतिके दिन पिंडरहित श्राद्ध करना चाहिये । कारण कि, अपरार्कमें मत्स्यपुराणका यह वचन है कि, दोनों अयन और दोनों विषुव और सब संक्रांतियोंमें पिंडको त्यागकर श्राद्ध करना चाहिये और श्राद्धशूलपाणिका तो

अस्य निर्मूलत्वात्, समूलत्वेपि " ततःप्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु। त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि "॥ इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्प एव इत्याह॥ तन्न॥ अस्य पार्वणानुवादकत्वेन पिण्डाविधायकत्वात्। पिण्डो व्यक्तिः॥ अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वषट्कर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः। तथा चोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः॥ त्रिपिण्डशब्देनैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम्॥ मंगलकृत्येषु विशेषमाह ज्योतिर्निबन्धे नारदः- "त्याज्याः सूर्यस्य संक्रांतेः पूर्वतः परतस्तथा। विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश॥" इति। एतत् पुण्यकालोपलक्षणम्॥ 'भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः। इति ज्योतिःप्रकाशे वर्ज्येषु परिगणनात्॥ अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम्।" अह्नि संक्रमणे कृत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम्॥ पूर्णे चेदर्धरात्रे तु

यह कथन है कि, यह वचन अप्रमाण है और यदि यह वचन मूलसहित होय तो भी इस मत्स्यपुराणके मतसे इसके मानने और न माननेमें विकल्प हो सकता है। कारण कि, उससे लेकर संक्रांति और सूर्य चन्द्रके पर्वोंमें ३ पिंडका श्राद्ध करै, और मृत्युमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करै इस मत्स्यपुराणके कहनेसे ग्रहण और अग्रहणसे विकल्प आता है, सो ठीक नहीं कारण कि, यह वचन पार्वणश्राद्धका अनुवाद (कहेका कहना) है, पिण्डका विधायक नहीं है पिंड नाम यहां-पर व्यक्ति (प्रगटता) का है, यदि और अर्थ मानोगे तो पिंडका अनुवाद और पिंडकी विधि दोनों माननेसे उसका प्रकार दो प्रकार होगा, जैसे वषट् करनेवालेके प्रथम भक्षमें होता है अर्थात् जो यज्ञमें वषट् करै वह प्रथम भोजन करै, और अन्य ऋत्विज पीछेसे करैं इस प्रकार दोनोंके समूल होनेमें पिंडरहित पार्वण करना यह दोनों वचनोंका अर्थ है, त्रिपिंड शब्दसे एकोद्दिष्टका व्यावर्त्तन मात्र है; मंगलकृत्यमें विशेष कहा है सो ज्योतिर्निबंधमें नारदजीका वचन है सूर्यकी संक्रान्तिसे पहिले और पीछेकी सोलह २ घडी विवाहादि कार्योंमें छोडदेनी चाहिये। यह भी पुण्यकालका जतानेवाला है अर्थात् जिस संक्रान्तिका जितना पुण्य हो उतना ही त्यागदे कारण कि, सूर्यकी संक्रांतिके भोग कुलिक और अर्द्धयामको छोडदेना चाहिये, इस वाक्यसे ज्योतिःप्रकाशग्रन्थमें निषिद्धोंमें सर्व संक्रांतिके भोगको गिना है दाक्षिणायन और उत्तरायणकी पहिली संक्रांतिसे भिन्न दश संक्रांतियोंमें रात्रिके समय स्नान और श्राद्ध आदि करना न चाहिये, कारण कि, दिनमें संक्रांति होय तो सम्पूर्ण दिन पुण्य कहा है और रात्रिको संक्रांति होय तो आधा दिन स्नानदानमें पुण्यका होताहै। जो संक्रांति आधी रातसे प्रथम होय तो मध्याह्नसे ऊपर कर्म करै, आधीरातसे पीछे संक्रांति होय तो सूर्योदयसे दो प्रहरतक अगले दिन पुण्यकाल है, और जो पूर्ण आधी रातके समय संक्रांति होय तो मकर और कर्कको छोडकर

यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥" इति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या "रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम् । पूर्वस्मादन्यतो वापि प्रत्यासन्नस्य तत्फलम् ॥" इति वसिष्ठवचनाच्चार्थाद्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतेः ॥ यानि तु–"विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु । तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा ॥" इति ॥ "राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥" इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानि, तानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि॥ 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति तयोर्दिवानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः॥ वस्तुतस्तु प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेव प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेहनि' इत्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः अहःपुण्यत्वानुपपत्त्या कल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्यक्षरात्रिविधिना बाधात्सर्वसंक्रांतिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः ॥ स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इति युक्तः पन्थाः ॥ अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणे माघे च वक्ष्यते ॥ ज्योतिर्निबन्धे गर्गः–'यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं

दोनों दिनमें पुण्यकाल है, इस प्रकार इन वृद्धवसिष्ठादिके वचनोंसे दिनको ही पवित्र कहा है । यदि सूर्यकी संक्रांति रात्रिके समय होय तो समीपके पहले या पिछले दिनमें कर्म करै, इस वसिष्ठके वाक्यसे रात्रिमें स्नान आदिका निषेध विदित होता है ॥ और जो कि, विवाह यज्ञोपवीत संक्रान्ति प्रतिष्ठा यज्ञ जन्मग्रहण और यात्रा आदिमें स्नान दान करनेमें रात्रि शुभ है । राहुका दर्शन, संक्रान्ति, विवाह, मरण, वृद्धिकामनाके व्रत इनमें रात्रिके समय भी स्नान दान करै यह विष्णुगोभिलादि महर्षियोंके वचन हैं । ये दोनों वचन मकर और कर्कको संक्रांतिके विषयमें जानने चाहिये कारण कि, मकर और कर्कको त्यागकर दोनों दिन पुण्यकाल है, इस वाक्यसे मकर और कर्ककी संक्रांतिमें दिनमें कर्मानुष्ठान करना निषेध किया है, यह हेमाद्रि माधव आदि कथन करते हैं। यथार्थ तो यह है कि, पहले कहेहुए वचनमें मकर और कर्ककी संक्रांतिके विषय दोनों दिन पुण्यकाल करनेका निषेध है, इससे मकर और कर्कमें भी अगलेमें स्नान और दान करै, इस वचनसे दिनको पुण्य कहनेसे, और दिनके पुण्यत्वके विना रात्रमें निषेध नहीं हो सकता और जहां रात्रिमें पुण्यका विधान किया है उससे रात्रिमें पुण्यनिषेधकी बाधा होनेसे सब संक्रांतियोंमें रातमें कर्मानुष्ठान करनेका विकल्प है अर्थात् करै और न करै और वह विकल्प देशाचारसे माननेके योग्य है यही मार्ग उचित है । इन मकर और कर्ककी संक्रांतियोंमें जो विशेष कथन है, वह आगे माघ और श्रावणके निर्णयमें हम वर्णन करैंगे ॥ ज्योतिर्निबन्धग्रन्थमें गर्गऋषिने यह कथन किया है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें सूर्यकी संक्रांति हो उस महीनेमें उस मनुष्यके यहां वैर दुःख होकर धनका नाश होता है, उस मनुष्यको

भवेत्। तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः ॥ तगरसरोरुहपत्रैः रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः । स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम् ॥' हेमाद्रौ–'अह्नि चेद्रात्रियुग्मं स्याद्रात्रौ चेद्वासरद्वयम् । संक्रांतिः पक्षिणी ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥' यत्तु गौडाः–'संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे । सायंसंध्यां न कुर्वीत कुर्वंश्च पितृहा भवेत्॥' इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तेः सायं पुण्यकाले संध्यानिषेधमाहुः ॥ तन्निर्मूलम् ॥ अन्यच्च बहु वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते ॥ इति संक्रान्तिनिर्णयः ॥ चान्द्रमासनिर्णयः॥ पक्षयुगजश्चान्द्रो मासः ॥ स द्वेधा शुक्लादिरमान्तः कृष्णादिः पूर्णिमान्तश्चेति ॥ तथा च त्रिकाण्डमण्डनः–'चान्द्रोपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वेति च द्विधा ' इत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह–'कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वन्ति केचन । येपीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे ॥ ' इति ॥ विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते ॥ तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः कृष्णादिर्गौणः ॥ शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः। तदुक्तं दीपिकायाम्–'चान्द्रोऽब्दो मधुशुक्लगप्रतिपदारम्भः' इति ॥ न हि ये

उचित है कि, तगर, कमल, हलदी, सरसों, पठानीलोधको पकाकर जलमें स्नान करै तो जन्मनक्षत्रकी संक्रांति शुभदायक होती है । हेमाद्रिग्रन्थमें यह कहा है कि, यदि दिनमें दो रात्रि भोगैं और रात्रिमें दो दिन भोगैं तो वह संक्रांति दान, पढनेके कर्ममें पक्षिणी जाननी, अर्थात् एक रात्रि और अगला पिछला दो दिन उसका पुण्यकाल होता है, जो गौड यह कहते हैं कि, संक्रांति, पूर्णिमा, मावस, द्वादशी और श्राद्धके दिनमें सायंसन्ध्या न करनी, करनेसे पितृहत्यारा होता है यह कर्मोपदेशनीमें व्यासकी उक्ति है, सन्ध्यापुण्यकालमें जो संध्याका निषेध कहा है वह निर्मूल है, और भी बहुत कहते, पर विस्तारके भयसे नहीं कहते । इति संक्रांतिनिर्णयः ॥ दो पक्षोंका चान्द्रमास होता है, शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे वह दो प्रकारका है । अर्थात् शुक्लपक्षसे मावसतक और कृष्णपक्षसे पूर्णिमातक, यह त्रिकाण्डमण्डन कहते हैं कि, चन्द्रमा शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे दो प्रकारका है, यह कहकर देशाचारसे उसकी व्यवस्था कही है कि, कोई कृष्णपक्षादिमासको स्वीकार नहीं करते और जो स्वीकारभी करते हैं वे विन्ध्याचलके दक्षिणमें नहीं मानते, इस कथनसे विन्ध्याचलके दक्षिणमें कृष्णपक्षादि मासका निषेध करनेसे विन्ध्यके उत्तरमें दोनोंके माननेकी अनुज्ञा प्राप्त हुई । उनमेंभी शुक्लपक्षादि मास मुख्य और कृष्णादि गौण हैं । शास्त्रोंमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदा ही चंद्रसंवत्सरके आरंभमें कही है, सोई दीपिकामें कहा है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरंभवाला चान्द्र वर्ष है और जो कृष्णपक्षादि महीना मानते हैं, उनके

१ विषुवअयनके दिनमें संक्रमण होनेपर पूर्व पर रात्रियें वह दिन अध्यापन वा अध्ययनमें वर्जित है रात्रिकी संक्रान्तिमें पूर्व पर दिनकी वह रात्रियें त्याग देनी, इस प्रकार पक्षिणी संक्रान्ति है, बारह पहर तक अनध्याय यह तात्पर्य है ।

कृष्णादिं मन्यन्ते तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते ॥ अतः शुक्लादिर्मुख्यः, कृष्णादिना मलमासासंभवाच्च ॥ चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः ॥ सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते–'अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद्ब्राह्मणस्य तु । संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः ॥ ' अत्र ब्राह्मणादीनां यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ' इत्यादिवन्मास उक्तः तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्म्मसु दर्शान्त एवेति ॥ वृष्ट्याद्यर्थसोमरौद्रीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् । त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावनादीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः ॥ ज्योतिर्गर्गः–'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः । आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥ ' ऋष्यशृंगः–' विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते । पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके ॥ ' स्मृत्यन्तरे ' एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ ॥ ' ज्योतिर्गर्गः–' आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा । सावनेनैव कर्त्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना ॥ ' विष्णुधर्मे–' नक्षत्रसत्राण्ययनानि चेन्दोर्मासेन कुर्याद्भगणात्मकेन ' इति । ब्राह्मे 'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च । विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥ '

अथ मलमासक्षयमासनिर्णयः । अथ मलमासः । तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः

मतमें भी वर्षके आरंभका भेद नहीं है, इससे शुक्लादि मुख्य हैं । कृष्ण आदि माननेसे मलमास भी प्राप्त न हो सकैगा, चन्द्रमाके सम्पूर्ण नक्षत्रोंके भोगसे नाक्षत्रमास होता है ॥ हेमाद्रिके ब्रह्मसिद्धान्तमें सावनादि वर्षोंकी व्यवस्था वर्णन की है । ब्राह्मणका अमावास्यातक, क्षत्रिय और वैश्यका संक्रांति और पूर्णिमातक मास मानना । यहां ब्राह्मणादिका जिन कर्मविशेषमें वचनान्तरसे वसन्तऋतुमें ब्राह्मण अग्निस्थापन करे इत्यादि महीना कहा है । वहां अमावास्यातक महीना माननेका नियम है. न कि संपूर्ण कर्मोंमें मावसतक माननेका । कारण कि, वृष्टि आदिके निमित्त जैसे पशुकल्पका नियम है इसी भाँति विधिकी लाघवतासे और द्विजातियोंके सब कर्मोंमें मासविशेषके विधानसे सावनादि महीने शूद्र अनुलोमादिकोंके माननीय हैं, यह गुरुचरण कहते हैं । ज्योतिर्गर्गका कथन है कि, विवाहादिमें सौरमास यज्ञादिमें सावन और पिताके आब्दिक (क्षयाह) के दिन चान्द्रमास श्रेष्ठ है । शृंगऋषिका कथन है कि, विवाह, यज्ञोपवीत, यज्ञ इनमें सौर मास पार्वण अष्टकाश्राद्ध आदिकमें चान्द्रवर्ष मानने योग्य हैं और स्मृतिमें लिखा है कि, एकोद्दिष्ट विवाहादि और ऋणादिमें सौर और सावनमास मानने उचित हैं । ज्योतिर्गर्ग कहते हैं कि अवस्था दायविभाग प्रायश्चित्त क्रिया तथा शत्रुसेवा सावनमासमें करनी चाहिये । विष्णुधर्ममें लिखा है, नक्षत्रोंका यज्ञ और दोनों अयन यह दोनों २७ नक्षत्रोंके भोगरूप चान्द्र माससे करै । ब्राह्मपुराणमें लिखा है कि, तिथिके कार्यमें कृष्णपक्ष आदि और यज्ञोपवीतमें शुक्लपक्ष आदि और विवाह आदिमें सौर आदि मासको मानना चाहिये ॥ मलमासका निर्णय कहते हैं

सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः ॥ एकमात्रसंक्रान्तिराहित्यमसंक्रांतत्वेन संक्रांति-द्वयवत्त्वेन च भवतीति । मलमासो द्वेधा—अधिमासः क्षयमासश्चेति ॥ तदुक्तं काठकगृह्ये—'यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा । मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः ॥' इति ॥ सत्यव्रतोपि—"राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत दिवाकरः । नाधिमासो भवेदेष मलमासस्य केवलम् ॥" इति ॥ अधिकमासस्य कालनियममाह वसिष्ठः—'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा । घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः ॥' इति ॥ एतच्च सावनादिमानेन सम्भवार्थं, न तु नियमार्थम् ॥ अन्यथा षोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभंगापत्तेः । तेन न्यूनाधिककाले मलमासपातेपि न दोषः ॥ अत एवोक्तं माधवीये—'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' इति ॥ क्षयस्यापि ज्योतिःशास्त्रे—'असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्द्विसंक्रांतिमासः क्षयाख्यः कदाचित् । क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ॥' एकः क्षयात्पूर्वः, परतश्चैक इत्यधिमासद्वयं भवतीत्यर्थः । अत्र विशेषमाह जाबालिः—'मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत् । प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्थतोत्तरः ॥' इति ॥

कि, एक मात्र संक्रान्तिसे रहित जो शुक्लपक्ष आदि चान्द्रमास हैं, उसको मलमास कहते हैं, एक मात्र संक्रान्तिसे रहित वह होगा कि, जिसमें सर्वथा संक्रान्ति न हो, वा दो संक्रांति हों। उस मलमासके दो भेद हैं, एक अधिकमास दूसरा क्षयमास । यही वार्ता काठक-गृह्यने कही है कि, जिस महीनेमें संक्रांति न हो, वा दो संक्रांति हों वह तेरहवां मलमास जानना उचित है। सत्यव्रतभी कहतेहैं कि, जिस महीनेमें सूर्य दो संक्रांतिको भोगे वह केवल अधिकमासही नहीं होता है, मलमास होताहै । और अधिकमासके कालका नियम वसिष्ठजीने यह वर्णन किया है कि, बत्तीस महीने और सोलह दिन और चार घडीके बीतनेपर अधिक मास पडता है, यह बात भी सावन आदि मानसे सम्भवके निमित्त है, मानके निमित्त नहीं । अन्यथा सोलह दिन और बत्तीस मासके अनन्तर कृष्णपक्ष आनेके नियमसे मलमासको शुक्लपक्ष आदि माना है, वह दूर होजायगा। तिससे पूर्वोक्तसे अधिक व न्यूनमें मलमास आपडे तो कुछ दोष नहीं होगा, इसीसे माधवीयग्रन्थमें कहा है कि, तीसवें महीनेमें मलमास होता है ॥ ज्योतिश्शास्त्रमें क्षयमासका भी कथन है, कि जिस महीनेमें संक्रांति न होय वह अधिकमास और जिस मासमें दो संक्रांति यदि होजाँय वह क्षयमास होता है, और वह क्षयमास कार्त्तिक आदि तीन महीनोंमें होता है, औरमें नहीं । और जिस वर्षके मध्यमें क्षयमास होता है, उसमें दो अधिकमास होते हैं, एक क्षयसे पूर्व और एक पश्चात् होता है। और इसमें जाबालिऋषिने यह विशेष कथन किया है कि, जिस वर्षके मध्यमें दो महीनोंमें संक्रांति न हो उन दोनों मासोंमें पहिला प्राकृत और दूसरा अधिकमास

उत्तर एव कालाधिक्यं, न पूर्वस्मिन्नित्यर्थः ॥ यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते-' चैत्रादर्वाङ् नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत् ' इति ॥ तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तिद्वये पूर्वो नाधिकः, किं तु पर इत्यर्थः ॥ यच्च ज्योतिःसिद्धान्ते-' घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धन्विनि । मकरे वाथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते ॥ ' इति ॥ तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वम्, तुलाकन्यागते सूर्ये क्षयात् पूर्वं कालाधिक्यनिषेधार्थं, न त्वाधिकमात्रस्य । 'दशानां फाल्गुनादीनां प्रायो माघस्य च क्वचित् । नपुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः ॥ ' इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मविरोधात् मलमासेष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च ॥ ' मकरे वाथ कुम्भे वा ' इति दृष्टान्तार्थप्राप्त्यभावाच्च ॥ क्षयस्यागमनकाल उक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ-'गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः । गजाद्र्यग्निभूभिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च ॥ '' इति ॥ अब्धयश्चत्वारः, अद्रयः सप्त, नन्दाः नव, एषां प्रातिलोम्येन पाते ९७४ तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्वं जात इत्यर्थः । तिथयः पञ्चदश ईशा एकादश एवं १११५ मिते याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः । अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्याः १२ एकत्र १२५६, गजाः ८ अद्रयः ७ अग्नयः ३ भूः १ एकत्र १३७८, कुः १ वेदाः ४ इंदुः १ एकत्र १४१,

होताहै । और दूसरेमें ही अधिक समय होता है पहलेमें नहीं यह इसका अर्थ है, और जो ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, चैत्रसे पहिले अधिकमास नहीं होता और परे होता है इसका यह अर्थ कि, चैत्रसे पहिले दो मासोंमें संक्रांति न होय तो पहिला अधिकमास नहीं होता किन्तु दूसरा होता है । और जो ज्योतिस्सिद्धान्तमें कथन किया है कि तुला, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ राशियोंपर सूर्य होय तो अधिकमास नहीं होता, इन पूर्वोक्त दोनों वचनोंमें पहला वचन वृश्चिक आदि चार राशियोंमें मलमास होनेपर जानना चाहिये । और दूसरा वाक्य तुला और कन्याके सूर्यमें क्षयमाससे पहिले होनेवाले अधिकमासके अधिक कालकाही निषेध करता है, अधिकमासका नहीं कारण कि, फाल्गुन आदि दश और क्वचित् माघ यह ग्यारह महीने ही प्रायः संक्रांतिरहित होते हैं, यह शास्त्रका सिद्धान्त है । इस हेमाद्रिमें विष्णुधर्मके कहे वचनसे विरोध होगा, और मलमासमें अष्टका श्राद्धका निषेध भी संगत न होगा और पूर्व कहे मकर वा कुम्भमें अधिक मास नहीं होता, यह वचन दृष्टान्तके निमित्त है, निषेधके निमित्त नहीं, कारण कि इन दोनों संक्रांतियोंमें अधिकमासकी प्राप्तिही नहीं होती क्षयमासके आनेका समय सिद्धांतशिरोमणि ग्रंथमें इस प्रकार कहा है कि, अब्धि ४ अद्रि ७ नन्द ९ इतने (९७४) शाक वीतनेपर कोई क्षयमास बीतगया । और तिथि १५ ईश ११ इस (१११५) शाकेके वीतनेपर कोई क्षयमास होगा । और अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्य १२ इतने (१२५६) शाके वीतनेपर और गज ८ अद्रि ७ अग्नि ३ भू १ (१३७८) इतने शाके वीतनेपर कु १ वेद ४ इन्दु १ (१४१) इतने वर्ष

गावः ९ कुः १ एकत्र १९ एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः ॥ मलमासे कार्याकार्यनिर्णयः । अथ मलमासे कार्याकार्यं निरूप्यते ॥ तत्र जाबालिः—"नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्य्यान्मलिम्लुचे । तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन ॥" अयं च काम्यनिषेधो आरम्भसमाप्तिविषयः । "असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमतः । व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समापनम् ॥" इति तेनैवोक्तत्वात् ॥ असूर्या अधिकमासा इत्यर्थः । तत्र 'मण्डलं तपते रविः' इति वचनात् ॥ कारीर्यादेः काम्यस्य त्वारम्भसमाप्ती भवत एवेत्यादिरन्यत्र विस्तरः ॥ काठकगृह्येपि—'मलेऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्' इति ॥ तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि—'यन्नैमित्तिकमग्निनष्टयतुगताग्न्याधानमर्चासु वा संस्कारादिविलोपने सति पुनः प्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति ॥ गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव। तत्र कर्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे—"द्वादशाहं सपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः । सीमन्ते पुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च ॥ रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धव्रतानि

बीतनपर गो ९ कु १ (१९) इन वर्षोंके वीतनेपर कोई क्षयमास होगा ॥ अव मलमासमें करने और न करनेका विचार करतेहैं । जाबालिऋषि कहतेहैं कि मलमासमें नित्यकर्म (संध्या आदि) और नैमित्तिक (जातकर्म आदि) कर्म और श्राद्ध कर्मको करै और तिथि, नक्षत्र और वारमें कहे हुए काम्यकर्म फलकी इच्छासे कभी न करै, यह काम्यकर्मका निषेधभी उसी काम्यकर्मका है जिसके प्रारम्भ समाप्ति दोनों मलमासमेंही होजायँ, कारण कि, जो मास सूर्यरहित (मल) हैं, उनमें व्रत और यज्ञोंका आरम्भ और पूर्ति मुझे सम्मत नहीं है, यह उन्हीं जाबालिका वचन है कि, मलमासोंमें सूर्यका मण्डल तपताहै, कारीरी आदि यज्ञोंका तो प्रारम्भ और पूर्ति इनमें होजातीहै इसका विस्तार दूसरे ग्रन्थोंमें है, काठकगृह्य सूत्रमें यह कहाहै कि, मलमासमें अनन्य गति होनेसे उस नित्य नैमित्तिक कर्मको करै जो फिर हो सकै और वे नैमित्तिक कर्म दीपिकामें लिखेहैं कि, अग्निके नष्ट होनेपर अग्निका स्थापन और प्रथमसंस्कारके नाश होनेपर दूसरी वाद कहेहुए प्रतिष्ठा आदि नैमित्तिक कर्म मलमासमें भी करलेने, कारण कि, य तत्काल करने उचित हैं और जो सोम आदि फिर हो सकतेहैं वे छोडदेने, मलमासमें कर्म[१], ग्रहण, जातकर्म, सीमंत और पुंसवनसंस्कार इन चारोंमें करने योग्य श्राद्ध और दोनों सीमंत और पुंसवनसंस्कार रोगमें शान्ति और अलभ्य योगमें श्राद्ध व्रत और प्रायश्चित्तके निमित्त कर्म पहले

---

१ और जो कहते हैं मलमासके प्रवृत्त होनेसे पहले काम्यकर्म समाप्त न हुआ हो तो मलमासके आनेपर उसकी समाप्ति होजाती है इसमें सन्देह नहीं, यह सावनमासमें प्रवृत्त कृच्छ्रचान्द्रायणादिपर जानना यह माधव कहतेहैं जिसका अन्यमासके अनुष्ठानमें कालके अतिक्रमसे प्रायश्चित्तापत्ति हो, विहितकालके प्राप्त न होनेसे वा लोप हो ॥

लिम्लुचः । तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिंदुसंक्षये ॥" इति ॥ तत् काम्यदर्शश्राद्धविषयम् 'काम्यं नैव कदाचन' इति वचनात् ॥ दर्शे च काम्यं श्राद्धं "कन्यां कन्यावेदिनश्च" इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तम् । नित्यं तु मलेऽपि भवत्येव "दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम् । गोभूतिलहिरण्यानां मासेऽपि स्यान्मलिम्लुचे ॥" इति मात्स्योक्तेरिति हेमाद्र्यादयः ॥ दिवोदासीयेऽपि–"अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरिवारो बुधाष्टमी । नाधिमासे परित्याज्याः सीमन्तान्नाशने शिशोः ॥" इति ॥ अनिन्दुर्दर्शः ॥ 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न कार्यम्' इत्यपरार्कः 'अत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्' इत्युक्तेः ॥ 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः' इति शुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्तेर्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति प्राचीनगौडाः । शूलपाणिश्च संवत्सरप्रदीपेऽपि–"एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत् । दर्शश्राद्धं तदादौ स्यान्न परत्र मलिम्लुचे ॥" अत्रापि नित्यकाम्यभेदेन प्राग्व्यवस्था ॥ तत्र आब्दिकश्राद्धनिर्णयः । यद्यपि कालादर्शे–'सर्वं वार्षिकं मासद्वये कार्यम्' इत्युक्तम् । तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमतात् प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे, द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव कार्यम् । "असंक्रान्तेपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः । तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा ॥" इति हारीतोक्तेः ॥ "आ-

---

करै, ऐसा वाक्य है कि, अमावसके दिन काम्यश्राद्ध और कन्यागत श्राद्ध कन्यामें करै इत्यादि याज्ञवल्क्य महर्षिका कहा हुआ नित्यश्राद्ध तो मलमासमें भी होताहै । कारण कि, अमावस और प्रतिदिनका श्राद्ध और गौ, भूमि, तिल, सुवर्णका प्रतिदिन दान यह मलमासमें भी होते हैं, यह मत्स्यपुराणका वाक्य है तथा हेमाद्रि आदिका कथन है, दिवोदासीय ग्रन्थोंमेंभी लिखा है कि अमावस, पूर्णिमा, द्वादशी, बुधाष्टमी यह सब सीमंत और बालकके अन्नप्राशन मलमासमें भी न त्यागने चाहिये । अपरार्क तो यह कहते हैं कि, अमावास्याके दिन दोनों प्रकारका श्राद्ध (अपात्रिक और पात्रिक) न करै, कारण कि मलमासकी अमावसके दिन जो कहा है सो अगले मासमें करै, और जब साठ दिनका एक मास है, उसमें शुद्धमासके दिनभी शास्त्र चारितार्थ था, इससे अमावसका श्राद्ध, मलमासमें नहीं करना, यह प्राचीन गौड कहते हैं. शूलपाणि संवत्सरप्रदीपग्रन्थमें कहते हैं कि, सूर्यके एकराशिमें स्थित होनेपर यदि दो अमावस होजायँ तौ अमावसका श्राद्ध पहली अमावसको करना दूसरीको नहीं, और इसमें भी नित्य काम्यके भेदसे पूर्वके समानही व्यवस्था है, अर्थात् काम्यश्राद्ध न करै, नित्यका दोष नहीं लिखाहै ॥ यद्यपि कालादर्शग्रन्थमें सम्पूर्ण वार्षिकश्राद्ध दोनों मासमें करना, तोभी हेमाद्रि, माधव और अपरार्कके मतसे पहला आब्दिक श्राद्ध तेहरवें मलमासमें और द्वितीय वार्षिक आदि तो शुद्धमासममें करने चाहिये, कारण कि, हारीत ऋषिने यह कहाहै कि, संक्रान्ति रहित (मल) मासमें प्रथम

ब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥" इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च ॥ पुनराब्दिकं द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशे मासेऽतीते चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः ॥ यत्तु सत्यव्रतः–" वर्षेवर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । मलमासे न तत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥ " इति ॥ तद्द्वितीयादिवार्षिकविषयम् । 'आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे ' इति पूर्वोक्तवचनात् ॥ यत्र द्वादशं मासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिक एवाद्याब्दिकं कार्यम् । यत्र त्वधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्ध एव प्रथमाब्दिकं इति निष्कर्षः । तेन द्वितीयादिशुद्धमास एव पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदनपारिजाते चैवम् ॥ मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यम् । यथा पैठीनसिः–" मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मलमासेपि कर्त्तव्यं नान्येषां तु कथंचन ॥ " इति ॥ हेमाद्रौ व्यासोपि–"मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत् । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु ॥ " अत्राधिकमृतस्य न द्वितीयाद्यब्देपि सौरविधिः, द्वितीयादावन्याधिके वा पूर्वनियमविधिवैरूप्यात्, किंतु प्रथमाब्दिकस्य मले

वार्षिक, मासिक सपिंडीकरण श्राद्ध करने, और अन्यस्मृतिमें भी यह कहाँहै कि, पहले वार्षिकश्राद्धकों मलमासमें भी करलेना चाहिये । और जब चतुर्दश मास आजायँ तब द्वितीय वार्षिक आदि १४ मासके प्रथम दिनमें करै, जो सत्यव्रतने कथन किया है कि, माता पिताके मरनेके दिन वर्ष २ में जो श्राद्ध है वह व्याघ्रऋषिके वचनानुसार मलमासमें न करना चाहिये, यह कथन द्वितीय आदि वर्षविषयक है, कारण कि, प्रथम वार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी करना चाहिये । यह पूर्वोक्त वचन है, जिस प्राणीकी वर्षी शुद्धमासमें ही आजाय वहाँ तेरहवें अधिकमासमें ही प्रथम वार्षिक श्राद्ध करलेना, और जिसकी वर्षी अधिकमासके मध्यमें हो वहां उस मासको दूना करके शुद्ध चौदहवेंमें ही प्रथमवार्षिक श्राद्ध करना यह सिद्धान्त है । तिससे द्वितीय आदि शुद्धमासहीमें करना चाहिये और पृथ्वीचन्द्रोदय, दिवोदासीय, मदनपारिजातमें भी यही है कि, जो प्राणी मलमासमें ही मृतक हुए हों और वहीं मलमास उनके क्षयाहके दिन आनपडै, तौ उसका श्राद्ध मलमासमें ही करदे, यही पैठीनसिका वचन है, कि जो प्राणी मलमासमें मृतक हुए हों उनका प्रतिवार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी करदे, औरोंका किसी प्रकार न करै, हेमाद्रिमें व्यासका भी कथन है कि, मलमासमें मृतक हुओंका सौरमान कल्पना करै, उनके श्राद्ध पिण्डादिका वही दिन है । यहां अधिकमासमें मरेकी दूसरे वर्ष सौरविधि नहीं है, कारण कि, द्वितीयादिमें अन्य अधिक था पूर्व नियमकी विधि विरूप होनेसे । किन्तु पहले

र्नियमात् ॥ सत्यव्रतेन तद्भिन्नस्य सर्वस्याधिके प्रतिप्रसवमात्रे लाघवात् ॥ अतो न द्वितीयादौ सौरमासप्रसङ्गः । 'चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके । मासपक्षातिथिस्पष्टे' इत्यादि विरोधाच्च ॥ मासिकश्राद्धनिर्णयः । यत्तु वृद्धवसिष्ठः—" श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि । मासद्वयेपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति ॥ " यच्च व्यासः—" उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि, चोभयोः " इति तन्मासिकादिविषयम् ॥ ' यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपाक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च ॥" इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ तैर्थिकं तीर्थश्राद्धं, तच्च मासद्वयेपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टः । केचित्तु—" प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि ॥" इति मरीचिवचनात् ॥ "वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । मासद्वयेपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथा ॥ " इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः॥ तत्तुच्छम् ॥ प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम् । प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धम्, इति मरीचिवचसो मदनरत्नेन व्याख्यानात् ॥ गालवीयस्य च ' मासद्वयात्मके क्षयमासे ' इति माधवेन व्याख्यानात् ॥ यच्च कैश्चिदुक्तं प्रथमाब्दिकं मासद्वये कार्यम् । " आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । त्रयोदशे च संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् ॥ " इति यमोक्तेः, तदपि चिन्त्यम् । पुनराब्दिकं

वर्षका तो मलमें होनेसे नियम है । सत्यव्रतने उससे भिन्न सबके अधिकमासके प्रतिप्रसव होनेसे लाघव कहा है इससे द्वितीयादिमें सौरमासका प्रसंग नहीं है । आब्दिकमें चान्द्रमास इष्ट है । मास, पक्ष, तिथिके स्पष्टमें करै, इत्यादि वाक्योंसे विरोध होगा ॥ और जो वृद्धवसिष्टने यह कथन किया कि, यदि श्राद्धके दिन आनेपर अधिकमास होय तो दोनों मासोंमें श्राद्ध करै, इस प्रकार करनेसे मोहको प्राप्त नहीं होता, और जो व्यासने यह कहा है कि, दूसरे मासमें देवताओंके कर्म और दोनोंमें पितरोंके कार्य करने, यह पूर्वोक्त दोनों वचन मासिकश्राद्ध विषयके हैं कारण कि, स्मृतिचंद्रिकामें लिखा है कि, यज्ञ आदि मासिकश्राद्ध और कृष्णपक्षका श्राद्ध, मन्वादि तिथिका श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध इन सबको दोनों मासमें भी करै, और त्रिस्थलीसेतु ग्रन्थमें भट्टोंने भी यही कथन किया है । कोई तो यह कहते हैं कि, प्रतिमासका और प्रतिवर्षका श्राद्ध और मन्वादि और युगादि तिथिका श्राद्ध ये सब दोनों मासोंमें होते हैं, इस मरीचिके वचनसे और माता पिताके मरनेके दिन जो वर्ष २ में श्राद्ध है उसको व्याघ्रके वचनानुसार दोनों मासोंमें करै, इस गालवऋषिके वाक्यसे प्रतिवार्षिक श्राद्धको दोनों मासमें करना चाहिये वह उनका कहना निकृष्ट है कारण कि, प्रतिमास मरनेके दिन जो किया जाय वह मासिक और प्रतिवर्ष जो उक्त दिनमें किया जाय वह आब्दिक श्राद्ध होता है, यह मरीचिके वचनसे मदनरत्नने अर्थ लिखा है और गालवके वचनमें वे दो मास लिये हैं । मासद्वय २ रूप क्षयमास हो यह अर्थ माधवने लिखा है, जो किसीने यह कहा है कि, प्रथमवार्षिक श्राद्ध दोनों मासोंमें करना, जो प्रथम वर्षका श्राद्ध है उसको मलमासमें करले और तेरहवें मासमें फिर वार्षिक श्राद्ध करै, यह जो यमने कहा है, सो भी उचित नहीं कारण कि, पुनराब्दिक पदका

इति तीर्थे श्राद्धविधिः ।

अथाशौचप्रकरणम् ।

च्च महदादिकम्। अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरेक्षणम् ॥ देवारामतडागादि-प्रतिष्ठा मौञ्जिबन्धनम्। आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः ॥ राजाभि-षेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानि च अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम् ॥ स्नानं विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः। व्रतारम्भसमाप्ती च कर्म काम्यं च पाप्मनाम् ॥ प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत्। उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् ॥ अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां बलिरष्टकाः। ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ॥ दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वज्रिणः। पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम् ॥" इति ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि ॥ दिवो-दासीयेपि—"यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेव च। मलमासे न कुर्वीत व्याघ्रस्य वचनं यथा" इति ॥ क्षयमासेपि वर्ज्यावर्ज्ये। अयं निर्णयः क्षयमासेपि ज्ञेयः—"रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिः स्मृतः। स एव तु द्विसंक्रांते मलमासेप्युदी-रितः ॥" इति काठकगृह्योक्तेः ॥ क्षयमासमृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ—"तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेर्द्धे तथोत्तरः। मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥" आब्दिकवर्धापनेपि ज्ञेयम् ॥ भृगुगुर्वस्तादिवर्ज्यानि। यन्मलमासे

कर्म नित्य न हो, जिसका कोई निमित्त न होवे और महादान, अग्निका आधान, यज्ञ, अपूर्व-तीर्थयात्रा, अपूर्व देवताका दर्शन, देव, वापी वा सरोवरकी प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, संन्यास आदि आश्रमोंका स्वीकार, कामनाके निमित्त वृषोत्सर्ग, बालकको प्रथम घरसे बाहर निकालना, राजाका अभिषेक, प्रथम मुण्डन, व्रत, अन्नप्राशन, गृहोंका आरम्भ और प्रवेश, स्नान, विवाह, नामकरण, देवताका महोत्सव, व्रतका आरम्भ और पूर्ति, काम्यकर्म और पापोंका प्रायश्चित्त इनको मलमासमें न करै, उपाकर्म और उत्सर्ग, पवित्रियोंका ग्रहण, दमनका अर्पण और हेमंतऋतुका (उत्सव), सर्पोंकी बलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशानदेवताकी बलि, विष्णुशयन (कर-वट लेना.) दुर्गा, इन्द्रका स्थापन और उत्थान, इन्द्रकी ध्वजाका उठाना ये सब मल वा अधि-कमाससे न करै, इन सबके प्रमाणवचन हेमाद्रि और माधव आदिमें देखलेने। दिवोदासके ग्रन्थमें भी लिखा है, यात्रा, उत्सव, देवताको सौगन्ध और दिव्यकर्मको मलमासमें न करै, यह व्याघ्रने कहा है ॥ यही निर्णय क्षयमासमें भी जानना कारण कि, काठकगृह्यने कथन किया है कि, सूर्यकी संक्रांतिके सहित मासमें जो त्यागने और करने योग्य कर्मोंकी विधि कही है वही विधि दो संक्रा-न्तिवाले मासमें कही है। जो प्राणी क्षयमासमें मृतक हुए हैं उनके प्रतिवार्षिक श्राद्धमें हेमाद्रिमें यह अधिक कहा है कि, जो तिथिके पूर्वार्द्धमें मरा हो उसका पूर्व और जो उत्तरार्धमें मरा हो उसका उत्तरमास क्षयमासके दोनों मासोंमें जानना और वर्षगांठमें भी वार्षिकके समान जानना ॥

वर्ज्यमुक्तं तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम् । तदाह बृहस्पतिः—"बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ।" इति ॥ "अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत् ॥ आवृत्तनीर्थे दोषाभावमात्रम्, न तु फलम्, इति वाचस्पतिमिश्राः । तन्न । असति बाधके फलहेत्वाक्षतेः ॥ लल्लोपि—"नीचस्थे वक्रसंस्थेप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥" इति ॥ दीक्षा यागदीक्षा आगमदीक्षा च ॥ तथा—"उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्राश्च वधूप्रवेशः । तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात् ॥" दिवोदासीये—"गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्टे शुक्रे मलिम्लुचे । गृहकर्म व्रतं यात्रां मनसापि न चिन्तयेत् ॥" अस्यापवादस्तत्रैव ब्राह्मे—"मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ । कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम् ॥" सिंहगुरौ गोदावरीस्नानम् । तथा—"आद्यासौ गौतमी गंगा द्वितीया जाह्नवी स्मृता । सर्वतीर्थफलं स्नानाद्गौतम्यां सिंहगे गुरौ ॥" संहिताप्रदीपे—"स्यान्मतरार्द्ध गुरुशुक्रयोश्च बाल-

---

जो मलमासमें वर्जना कहा है वह शुक्र और गुरुके अस्त आदिमें भी समझना, सोई बृहस्पतिने कहा है, कि शुक्र वा बृहस्पतिके बालक वृद्ध और अस्त होनेपर मलमासके समान इन कर्मोंको और सब देवदर्शनको त्यागदे, और शुक्रअस्तमें अनादिदेवताओंको देखकर मनुष्य पवित्र होजाते हैं, और मलमासमें भी उस तीर्थकी यात्रा पहिले करी की हो उसमें कुछ दोष नहीं और न कुछ फल है, यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है सो सत्य नहीं, कारण कि, जब कुछ बाधक नहीं तो फल किस कारणसे न होगा ? यहां लल्लने भी कहा है कि, यदि बृहस्पति नीचका हो, वक्री हो, अतिचारी हो बालक वृद्ध वा अस्त हो और सिंहराशिका हो तो संन्यास, देवयात्रा, व्रतके नियमकी विधि, कर्णवेध, यज्ञ और वेदकी दीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह, वास्तु (घर) और देवताओंकी प्रतिष्ठा, इतने कर्म सज्जनमनुष्य त्यागदें, और बाग लगाना, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, यात्रा, वधूप्रवेश, तालाब, कूप, देवताकी प्रतिष्ठा यह कर्म सिंहके बृहस्पतिमें न करें, दिवोदासीयग्रन्थमें लिखा है कि, घरका प्रारंभ आदि कर्म, यज्ञोपवीत, यात्रा इतने कर्मोंकी चिन्ता गुर्वादित्ययोगमें, सिंहके गुरुमें, शुक्रके अस्तमें, मलमासमें, मनसे भी न करें, इसका अपवाद भी उसी ग्रन्थमें इस ब्राह्मपुराणके वचनसे लिखा है कि, मुंडन, उपवास इन दोनोंको सिंहके गुरुमें गौतमीनदीके तीरपर और कन्याके गुरुमें कृष्णानदीके तटके रहनेवाले न करें ॥ और वह गौतमी आदिकी गंगा है और दूसरी गंगा जाह्नवी है, इससे सिंहराशिके गुरुमें गौतमीके स्नानसे सब तीर्थोंका फल होता है । और संहिताप्रदीप ग्रन्थमें लिखा है कि, गुरु

त्वमह्नां दशकं च वार्धम् । वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ ॥" वसिष्ठः– "अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादिकार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥" ग्रहाणां बाल्यादिलक्षणम् । बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—"रविणा संत्तिरन्येषां ग्रहाणामत उच्यते । ततोऽर्वाग्वार्धकं प्रोक्तमूर्ध्वं बाल्यं प्रकीर्तितम् ॥" इति ॥ बाल्यादिपरिमाणं च वृत्तशते–"बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शुचिरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥" पश्चिमत उदये दश दिनानि बालः अस्ते पञ्चदिनानि वृद्धः । पूर्वतो दिनत्रयं बालः पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः । जीवो गुरुः ॥ अन्यत्र त्वन्यथोक्तम् । "प्राक्पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः । विपरीतं तु वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि ॥" इति ॥ एषां च पक्षाणां व्यवस्थामाह मिहिरः–"बहवो दर्शिताः काला ये बाल्ये वार्धकेपि वा । ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा देशभेदादुतापदि ॥" इति ॥ देशभेदश्च मदनरत्ने गार्ग्यः–"शुक्रो गुरुः प्राक्च पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् । वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे

और शुक्र सात दिन बालक और दश दिन वृद्ध होते हैं और ये दोनों वृद्ध तो अशुभ होते हैं और बालक इस कारण शुभ होते हैं कि, आगे बढनेवाले हैं, वसिष्ठने कहा है कि, यदि बृहस्पति अतिचारी हो जाय तो उस दिनसे अट्ठाईस २८ दिन व्रत और विवाह आदि कार्योंको त्याग दे ॥ ग्रहोंके बाल्य आदिका लक्षण ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, सूर्यके संग अन्य ग्रहोंका अस्त कहा है, उस अस्तमें प्रथम वृद्ध और उदयसे पीछे बाल्य और वृत्तशतमें बाल्य आदिका प्रमाण लिखा है, कि यदि शुक्र पश्चिममें उदय होय तो दस दिन बालक और अस्त होय तो पांच दिन वृद्ध होता है, और पूर्वके उदयमें तीन दिन बालक और अस्तमें पक्षभर वृद्ध होता है और बृहस्पतिको भी इसी प्रकार बालक और बूढा जानना, और कोई २ तो इन दोनोंको पक्षभर बालक और दशदिन वृद्ध और सात दिन बूढा कहते हैं, और अन्य ग्रन्थोंमें तो इस प्रकार अन्यथा कहा है कि, पूर्व और पश्चिममें उदय हुआ शुक्र वा गुरु क्रमसे पांच और सात दिन बालक और इससे विपरीत बूढा होता है, इन सब पूर्वोक्त पक्षोंकी व्यवस्था वराहमिहिर आचार्यने इस प्रकार कही है, कि जो बहुतसे काल बालक और वृद्धके दिखाये हैं उनमें अधिक काल ग्रहण करने और शेष देशभेदसे वा आपत्कालमें मानने योग्य है ॥ और वह देशभेद मदनरत्नमें गर्गके वचनानुसार कथन किया है कि, शुक्र और गुरु पूर्व वा पश्चिममें विंध्याचलके प्रान्तमें दश दिन और उज्जयनके प्रान्तमें सात दिन, और वंगदेशमें छः दिन, हूणदेशमें पांच दिन, और शेषके देशोंमें तीन दिन बालक होता है,

-त्र देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥ " इति ॥ अस्तादेरपवादः काशीखण्डे-"न ग्रहा-स्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये । " त्रिस्थलीसेतौ वायवीये-"गोदावर्यां गयायां च श्रीशैल ग्रहणद्वये । सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ " ग्रहणद्वये तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः ॥ तदाह त्रिस्थलीसेतौ लल्लः-"उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यषष्ठ्याम् । सुरासुरेज्यास्तमयेपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः "॥ 'न मूढदोषो न च रात्रिदोषो न चाधिमासो न मृतिर्न सूतिः' एवमप्युत्तरार्धं पठंति ॥ इत्यलं बहुना ॥ मलमासे व्रतनिर्णयः ॥ मलमासे च व्रतविशेष उक्तो हेमाद्रौ पाद्मे-"अधिमासे तु संप्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च । त्रयस्त्रिंशदपूपानि दातव्यानि दिनेदिने ॥ साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासे नृपोत्तम । अधिमासे तु संप्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः॥ उद्दिश्यापूपदानेन पृथ्वीदानफलं लभेत् । त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च ॥ सघृतं सहिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः॥ अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु । नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक ॥ व्रतेनानेन पुत्रांश्च संपदं चाभिवर्धय । यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम् ॥ शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु । कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिका-

---

और अस्त आदिका निषेध भी काशीखण्डमें कहा है कि, काशीमें ग्रहोंके उदय अस्तका दोष नहीं है, त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें वायुपुराणका यह वचन कथन किया है कि गोदावरी, गंगा, श्रीशैलपर्वत, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें दान आदि, इनमें सुरगुरु बृहस्पति और असुरगुरु शुक्रके अस्त आदिका दोष नहीं है, ग्रहणसे चन्द्र सूर्यके दोनों ग्रहण लेने और उनके निमित्त कुरुक्षेत्र यात्रा दानादि करनी, यही त्रिस्थलीसेतुमें लल्ल कहते हैं कि, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, अर्द्धोदयमें और कपिलाषष्ठी और संक्रांति इनमें गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर भी तीर्थयात्राकी विधि उत्तम है, न मूढदोष, न रात्रिदोष, न अधिकमास, न मरण, न जीवन, इसका दोष नहीं । इस उत्तरार्धको पढते हैं, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं ॥ यहां हेमाद्रि ग्रन्थमें मलमासमें व्रतविशेष पद्मपुराणके वचनसे कथन किया है कि, जब मलमास प्राप्त होय तब तेतीस देवताओंके (निमित्त) गुड घीके ३३ मालपुवे प्रतिदिन देने, और हे राजन् ! मलमासमें घी और गुडसे मिले तेतीस मालपुओंको देवताओंके निमित्त देनेसे पृथ्वीदानका फल होता है ३३ मालपुए कांसीके पात्रमें रखकर घी और सोनेसहित ब्राह्मणको दे और ऐसा कहे कि, विष्णुरूपी सूर्य अपूप अन्न देनेसे मेरे पापोंको दूर करो, हे जगत्के कारण नारायण सूर्यरूप ! इस व्रतसे मेरे पुत्र और सम्पदाओंको वर्धित करो, जिनके हाथमें गदा और चक्र है, गरुड जिनका वाहन है, जिनके हाथमें शंख है वह विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो, कला और काष्ठा, निमेष घटी आदि रूपसे जो सर्व प्राणियोंको वंचित करते हैं, उन

दिना ॥ यो वश्वयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः । कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्व द्विजो हरिः ॥ पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम । मलानां च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर । मंत्रेणानेन यो दद्यात्रयस्त्रिंशदपूपकान् ॥ प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥ " इति निर्णयसिन्धौ मलमासनिर्णयः ॥ तत्र पक्षतिथिवेधनिर्णयौ । पक्षनिर्णयस्तु– 'दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते ' इति माधवेनोक्तः ॥ अथ तिथिनिर्णयः । तत्र तिथिर्द्वेधा–शुद्धा विद्धा च ॥ दिने तिथ्यन्तरसंबन्धरहिता शुद्धा ! तद्रहिता विद्धा ॥ तत्र शुद्धायामसन्देहाद्विद्धा निर्णीयते ॥ तत्र सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठीनसिः–" पक्षद्वयेपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् । त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योयं विधिः स्मृतः ॥ " इति ॥ हेमाद्रिमदनरत्नादौ द्विमुहूर्तोप्युक्तः " उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ । द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च सा तिथिर्हव्यकव्ययोः ॥ " इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ द्विमुहूर्तत्वं चानुकल्पः–' द्विमुहूर्तापि कर्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी ' इति दक्षेणापिशब्दोक्तेः ॥ अयं वेधः प्रातरेव ॥ सायं तु त्रिमुहूर्तो वेध एव–"यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः । सा तिथिस्त-

---

कालरूप विष्णुको नमस्कार है, और यह देश कुरुक्षेत्रके तुल्य और काल पर्वके तुल्य है और यह ब्राह्मण हरि है, हे पुरुषोत्तम ! पृथ्वी संमान इस दानको ग्रहण करो, और हे सूर्य ! मलोंकी शुद्धि और पापोंके नाश और पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धिके निमित्त तुमको यह दान देता हूं, इस मंत्रको पढकर जो तेतीस पुए देता है वह बहुत धन और पुत्र पौत्र आदि सम्पत्तिओंको प्राप्त होता है ॥ (इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां मलमासक्षयमासनिर्णयः) पक्षका निर्णय तो माधव यह कहते हैं कि, देवकर्ममें शुक्लपक्ष और पितृकर्ममें कृष्णपक्ष मुख्य होता है, अब तिथिका निर्णय कहते हैं कि, तिथिके दो भेद हैं शुद्धा और विद्धा, वेधसे रहित शुद्धा और वेधसहितको विद्धा कहते हैं, उन दोनोंमें शुद्धामें तो सर्वथा सन्देह नहीं है इससे विद्धाका निर्णय वर्णन करते हैं–माधवीय ग्रन्थमें पैठीनसिने सामान्यरीतिसे वेध कहा है कि, दोनों पक्षोंमें सब तिथि अपनेसे पहली और पिछली तिथिको तीन मुहूर्त (६ घटी) से बींधती है, यह सामान्य विधि मानी है, और हेमाद्रि मदनरत्न आदिमें तो दो मुहूर्त भी कहे हैं कि, सूर्यके उदयसे दो मुहूर्ततक तिथिमें देवकर्म और अस्तसे तीन मुहूर्ततक तिथि होय तो पितृकर्म और शेष दिन हव्य कव्यमें उत्तम हैं, यह विष्णुधर्ममें लिखा है और ये दो मुहूर्त भी हैं, कारण कि, दक्ष ऋषिके (अपि) शब्दसे अधिक मुहूर्त भी कथन किये हैं कि, जो तिथि बढनेवाली हो उसके दो मुहूर्तमें भी कर्मको करै, और यह वेध प्रातःकालमेंही जानना चाहिये ॥ सन्ध्याको तो तीन मुहूर्तका वेध होता है, जिस तिथिको प्राप्त

द्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्॥" इति स्कान्दोक्तेः ॥ दीपिकापि-' त्रिमुहूर्त्तगा तु सकला सायं ' इति ॥ यानि तु-' व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत् । उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके ॥ ' इत्यादीनि स्कान्दादिवचनानि, तानि वैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्या त्रिमुहूर्तप्रशंसापराणि ॥ तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे-' नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा । भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥ ' इति ॥ अयं चोपवासातिरिक्तविषय इति वक्ष्यते ॥ इति वेधः ॥ तत्र सर्वा तिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनी सैव ग्राह्या । 'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥ ' इति विष्णुधर्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यान्निर्णयः । तस्य पूर्वाबाधेनोपपत्तेः । कर्मकालस्य प्रधानांगत्वाच्च । युग्मवाक्यं तु निगमः-"युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥ प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ " इति ॥ अत्र रन्ध्रान्ताः शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथिवा-

---

होकर सूर्य अस्त हो जाय, तीन मुहूर्तभी वह तिथि उस दिन हो तो स्कन्दपुराणके मतसे उस दिन वही तिथि जाननी । दीपिकाग्रन्थमें भी लिखा है कि, जो सायंकाल तीन मुहूर्त-तक हो वह सम्पूर्ण तिथि जाननी और व्रत, उपवास, स्नान आदिमें वह तिथि लेनी, जो उदयके समय एक घडीभी हो, और पितृकर्ममें इससे विपरीत लेनी, इत्यादि स्कंदपुराणादिके वचन हैं, वे वचन वैश्वानराधिकरण न्यायके अनुसार अवयवकी स्तुतिसे तीन मुहूर्तकेही बोधक हैं ॥ स्कंदपुराणमें वेधका भेद तिथिविशेषोंमें कहा है कि, नागसप्तमी ७ बारह घडीसे और दशमी और पंचमी दश नाडियोंसे, और चतुर्दशी अठारह घडीसे अग्रिमतिथियोंको बींधकर दुष्ट करती हैं, यह वेधव्यवस्था व्रतसे भिन्न कार्योंमें जानना, यह आगे कहेंगे ॥ इति वेधः ॥ जो तिथि कर्मके समयतक जिस दिन रहै वही लेनी, कारण कि, विष्णुधर्ममें यह कथन किया है कि, जिस कर्मका जितना समय हो उस: कालभर व्यापिनी (रहनेवाली) तिथिमें कर्मोंको करै. वढना और घटना कारण नहीं है, यदि वह तिथि दो दिन हो वा एक किसी समयमें होय तो युग्म वाक्यसे निर्णय करै. वह निर्णय पहली तिथिके बाधसे होगा वा कर्मके समयकी प्रधानतासे जानना, द्वितीया-तृतीया-चतुर्थी-पंचमी-षष्ठी-सप्तमी-अष्टमी-नवमी इन ९ तिथियोंके, इस प्रकार सात युग्मकी द्वितीयासहित तृतीया और तृतीयासहित द्वितीया आदि और एकादशीसे युक्त द्वादशी और चतुर्दशीसे युक्त पूर्णिमा और प्रतिपदासे युक्त अमावस-इन तिथियोंका युग्मयोग महाफलको देताहै । और उलटा होय तो महादोष है, और पूर्व किये पुण्यको नष्ट करता है । यह रंध्रान्तशब्द द्वितीयासे नवमी तितिथतकके वाचक हैं, रुद्र

चकाः । रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयायुता सा च द्वितीयायुतेति सप्त युग्मानीत्यर्थः ॥ इदं च शुक्लपक्षे अमाप्रतिपद्युग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति केचित् ॥ तत्त्वं त्वमावास्याप्रतिपद्युग्मात् कृष्णपक्षलिङ्गात् पक्षद्वयपरमिदम् । तत्तद्विशेषवाक्यैः कृष्णे तिथिविशेषेऽपोद्यत इति ॥ दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये— 'संपूर्णे दशमी कार्या मिश्रिता पूर्वयाथवा' इति संपूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता—"त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशीसहिता मुने" इति ॥ कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः "प्रतिपत्सद्वितीया स्याद्द्वितीया प्रतिपद्युता । चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा ॥ पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद । कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् । दशमी च प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम ॥ षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी । एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः ॥" इति ॥ यत्तु व्याघ्रः—"खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् । खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी ॥" इति ॥ खर्वः साम्यम्, दर्पो वृद्धिः तयोः परा । हिंसा क्षयस्तत्र पूर्वेत्यर्थः ॥ एतच्छ्राद्धादिविषयम् । "द्वितीयादिषु युग्मानां पूज्यता नियमादिषु । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना ॥" इति व्यासोक्तेः ॥ नियमादिषु व्रतदानादिदैवकर्मसु । एकोद्दिष्टादिति-

---

एकादशी द्वितीया तृतीयासे युक्त सात युग्म वर्णन किये, यह युग्म शुक्लपक्षमें समझना । अमावस और प्रतिपदाका योग और पूर्णिमा शुक्लपक्षमेंही होते हैं ऐसा कोई कहते हैं, सिद्धान्त वाक्य तो यह है कि, अमावस और प्रतिपदाके योगसे कृष्णपक्षके लिंगसे ये वचन दोनों पक्ष विषयक हैं, और तिन २ विशेष वाक्योंसे कृष्णपक्षकी तिथिविशेषमें इसका अनुवाद है ॥ पुराणसमुच्चयमें दशमी कहीहै कि, शुक्लपक्षमें पूर्व (९) तिथिसे युक्त दशमी करनी । और सुमंतु ऋषिने सम्पूर्ण शुक्लपक्षमें त्रयोदशी कही है कि, हे मुने ! द्वादशीसहित त्रयोदशी करनी । कृष्णपक्षमें तो आपस्तम्ब ऋषिने यह लिखा है कि, द्वितीयासहित प्रतिपदा प्रतिपदासहित द्वितीया । और चतुर्थीसहित जो तृतीया है वह महान् फलको देतीहै; और हे नारद ! पंचमी षष्ठीसे युक्त करनी । और कृष्णपक्षमें अष्टमी और चतुर्दशी ये दोनों सप्तमी और त्रयोदशीसे युक्त करनी, पूर्वविद्धा करनी, परतिथियोंसे युक्त किसी प्रकार न करनी. हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! नौमीसे युक्त दशमी और षष्ठी—अष्टमी अमावस और कृष्णपक्षकी त्रयोदशी ये परतिथियोंसे युक्त पूजने योग्य होती हैं ॥ और जो व्याघ्रका कथन है कि, खर्व, दर्प और हिंसा ये तीन तिथियोंके लक्षण हैं, अर्थात् साम्य, वृद्धि, क्षय और मरना इनमें खर्व और दर्पमें परातिथि और हिंसामें पूर्वातिथि पूजनीय होती है, यह व्याघ्रऋषिका कथन इस व्यासके कथनानुसार श्राद्ध आदि विषयक है कि, द्वितीयामें युग्म श्रेष्ठ है, और व्रतदान आदि. देवकर्म और एकोद्दिष्ट आदि तिथिकी वृद्धिमें क्षय और वृद्धिका विचार है, ऐसा व्यासजी कहते हैं, अर्थात्

थेर्वृद्ध्यादावित्यर्थः ॥ कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमकालगैव ग्राह्या—'कर्मोपक्रमकालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः' इति दीपिकोक्तेः ॥ यानि तु—"यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः । सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥" इत्यादीनि ॥ तानि त्रिमुहूर्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली ॥ एकभक्तनिर्णयः । अथैकभक्तम् ॥ तत्कालः पाद्मे—'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः' इति ॥ मध्याह्नश्च पञ्चधा विभक्तदिनतृतीयांशः ॥ तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते तथापि 'दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्यादिवैव हि ॥ इति स्कान्दोक्तेः ॥ षोडशसप्तदशादिदण्डौ मुख्यः कालः ॥ दीपिकायां तु—'मध्याह्नांत्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्' इति ॥ ततः सूर्यास्तपर्यन्तं गौणः । 'दिवैव हि' इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्यैतत्परत्वात् ॥ अत्र पूर्वेद्युर्व्याप्तिः परेद्युरुभयेद्युर्व्याप्तिः तदभावेंऽशव्याप्तिः । तत्रापि साम्यं वैषम्यं चेति षट् पक्षाः ॥ तत्राद्ययोरसंदेह एव तृतीये तु पूर्वेह्नि गौणमुख्यप्राप्तेः सत्त्वात् पूर्वेति माधवः युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः । चतुर्थपक्षे पूर्वैव गौणकालव्याप्तेः सत्वात् । वैषम्येणां-

---

कर्मके सम्पूर्ण कालतक तिथि न रहै तो कर्मके प्रारम्भकालकी तिथि ही दीपिकाके इस कथनानुसार ग्रहण करनी चाहिये कि, कर्मके प्रारम्भकालकी तिथि ही पंडितोंको ग्रहण करनी । युग्मका आदर न करना, और जो यह वचन है कि, जिस तिथिको प्राप्त होकर सूर्य उदय हो, वह तिथि दान, पठन आदि कर्मोंमें पूरी जाननी । ये सब वचन तीन मुहूर्त्त आदि तिथिकी स्तुति करनेवाले हैं, यही निर्णयका मार्ग है ॥ अब एकभक्तको कहते हैं उसका समय पद्मपुराणमें यह कहा है कि, एकवार भोजनमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । मध्याह्न पांच प्रकार विभाग किये दिनका तीसरा भाग होता है, वह यद्यपि बारह घडीके पीछे प्राप्त होता है तो भी आधे दिनके बीतने पर नियमसे भोजन करते हैं, इससे इसको एक बार भोजन कहते हैं । और वह दिनमें ही होता है यह स्कंदपुराणमें कहा है । सोलह और सत्रह घडी मध्याह्नका मुख्य काल है दीपिकामें तो यह लिखा है, कि, मध्याह्नके पीछे जब त्रिभाग दिन रहै तब एकभक्त होता है, इसके पीछे जब सूर्यास्तपर्यंत गौणकाल है (दिवैव हि) इस वाक्यके व्यर्थ होनेके भयसे । दीपिकाके वाक्यका पूर्वोक्त अर्थ ठीक है, इसमें पहले दिन सब तिथिकी व्याप्ति और अगले दिन दोनों दिनकी व्याप्ति, एक भागमें व्याप्ति तिथिका साम्य और वैषम्य इस प्रकार छः पक्ष हैं, इन छः पक्षोंमें पहले दोनोंमें कुछ सन्देह नहीं, तीसरे पक्षमें पूर्व दिन एकभक्त करे तो गौण होता है, सत्त्व होनेसे पूर्वमें करना ऐसा माधव कहते हैं कारण कि, उसमें मुख्यतिथिमेंही एकभक्त पाया जाता है, हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, युग्मवाक्यसे निर्णय करे, चौथे पक्षमें संकल्पकालमें होनेसे परतिथि लेनी, यह कोई कहते हैं कारण कि, चौथे पक्षमें गौण व्याप्ति है और विषम-

शव्याप्तौ याऽधिका सा ग्राह्या । साम्ये पूर्वा ॥ अयं च स्वतन्त्रैकभक्तनिर्णयः अन्याङ्गे उपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण निर्णयः ॥ अथ नक्तम् ॥ तच्च दिवानशनपूर्वरात्रिभोजनम् ॥ तत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ' इति वत्सोक्तेः ॥ प्रदोषस्तु–" त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति । नक्तं तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥ इति मदनरत्ने व्यासोक्तेः । तत्रापि त्रिदण्डोत्तरं कार्यम् ' सायंसंध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः ' इति स्कांदोक्तेः दण्डत्रयस्य संध्यात्वात् ॥ तत्र । चत्वारीमानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत् । आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम् ॥ " इति ॥ मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात् ॥ " मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप ॥ " इति माधवीये भविष्योक्तेश्च ॥ गौडास्तु–' प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते ' इति वत्सोक्तः प्रदोषः । संध्या च दिनरात्र्योः संधौ मुहूर्तः । " अर्धास्तमया संध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिवशाद्भानोरर्धोदयं यावत् ॥ " इति वराहोक्तेरित्याहुः ॥ तन्न । अस्य संध्यावन्दनानध्यायादिपरत्वात् ॥ अत एव तत्र खण्डमड–

तासे अंशव्याप्ति होय तो जिस दिन अधिक हो वह तिथि लेनी चाहिये, दोनों दिन (एकसी) होय तो पूर्वतिथि लेनी यह निर्णय स्वतन्त्र एकवार भोजनका है, व्रतके स्थानमें जो एकभक्त है उसका निर्णय उपवासके अनुसार होता है ॥ अब रात्रिव्रत कहते हैं, वह दिनमें भोजनको न करके रात्रिमें भोजन होता है, उसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि इस वत्स वचनके अनुसार सदैव लेनी चाहिये कि, नक्तव्रतमें सदैव प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी, व्यासवचनसे सूर्यके अस्त होनेपर तीन मुहूर्त्त प्रदोष होता है, उसमें रात्रिव्रत करना यह शास्त्रका निश्चय है, यह मदनरत्नमें व्यासका वाक्य है । और वह भी तीन घडीके उपरान्त मानना, कारण कि, स्कन्दपुराणके इस वचनसे कि, सूर्यके अस्त होनेके अनन्तर तीन घडी सायंकालकी संध्या होती है, और उस संध्याके समय मार्कण्डेयके इस वचनसे भोजनका निषेध है कि, संध्याके समय इन चार कर्मोंको त्यागदे, भोजन, मैथुन, निद्रा और पढना और माधवीय ग्रन्थमें भविष्यपुराणका भी यह वचन है कि, एक मुहूर्त न्यून दिनको बुद्धिमान् मनुष्य नक्त कहते हैं, और हे गणेशजी ! नक्षत्रोंके दर्शन होनेपर मैं नक्त ' रात्रि ' मानता हूँ, गौड तो इस वत्सके वाक्यसे यह कहते हैं कि, सूर्यास्तसे पीछे दो घडी प्रदोष हमको माननीय है । और संध्या ये दोनों दिन रात्रिके संधिमें एक मुहूर्त्त होते हैं, कारण कि, वाराहपुराणमें यह लिखा है कि, अस्तसे पहिले और तारोंके प्रगट होनेसे पहलेतक इतने सूर्यके तेजकी हानि न हो तबतक और प्रातःकाल सूर्यके अर्द्ध उदय होनेतक संध्या होती है सो यह गौडोंका कहना सत्य नहीं है, कारण कि यह वचन संध्यावंदन और अनध्यायके विषयमें कहे हैं, इसीसे विज्ञानेश्वरने खण्ड हुए सूर्यके

लस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण ॥ यत्तु मदनरत्ने-नक्तस्य वैधत्वाद्रागप्राप्तभोजन-गोचरो निषेध इत्युक्तम् ॥ तन्न । विधेर्निषेधाविरोधात् ॥ अन्यथा कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योऽधिकानां हिंसनं स्यात् ॥ सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोषस्पर्शे ज्ञेयम् । " अतथात्वे परत्र स्यादस्तादर्वाग्यतो हि सा " इति । जाबालिवचनात् । 'प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते । आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे । तन्नक्तं नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशि भोजनम् । " इति स्कान्दाच्च ॥ इत्यादीनामपि सायाह्ने " नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः । यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम् ॥ " इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात् ॥ इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम् ॥ पुत्रवतस्तु रात्रावेव ' अनाश्रमोप्याश्रमी स्यादपत्नीकोपि पुत्रवान् ' इति संग्रहोक्तेः ॥ सौरनक्तं तु दिवैव-" त्रिमुहूर्तस्पृगेवाह्नि निशि चैतावती तिथिः । तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम् ॥ " इति सुमन्तूक्तेः ॥ हरिनक्तनिर्णयः । हरिनक्ते विशेषः कालादर्शे स्कान्दे-' उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः ' इति अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यावपि रात्रावेव । निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन

मण्डलको ही संध्या कहा है ॥ और मदनरत्नने यह कहा है कि, नक्तव्रत शास्त्रविहित है इससे रात्रिके भागमें प्राप्त हुए भोजनका यह निषेध है—सो भी ठीक नहीं; कारण कि, विधिका निषेधके संग विरोध न होना चाहिये अन्यथा कपिंजलान् इस स्थलमें तीनसे अधिककी हिंसा होजायगी । सन्ध्याकालके समय तब नक्त होताहै जो दोनों दिन प्रदोषका स्पर्श होय, अन्यथा होय तो नक्त अस्तसे परे होता है कारण कि, सन्ध्या अस्तसे प्रथम होती है, यह जाबालिऋषिने कहा है, और स्कन्दमें यह लिखा है कि, यदि तिथि प्रदोषव्यापिनी न हो तो दिनमेंही नक्त करलेना चाहिये । जिस समय अपने शरीरसे दूनी छाया हो और सूर्य मन्द होजाय उसीका नाम नक्त है, रात्रिमें भोजनको नक्त नहीं कहते हैं । और संन्यासी आदिकोंभी नक्त सायंकालमें होता है और गृहस्थ रात्रिमें विधिपूर्वक नक्त करै और संन्यासी और विधवा दिनमें करैं । यह वहांही स्मृति अन्तरमें लेख है, यह वचन पुत्रकी हीनतामें उपलक्षणमात्र करता है । पुत्रवान् तो रात्रिहीमें करै कारण कि, संग्रहमें कहा है । अनाश्रम भी आश्रमी हो वा आश्रमहीन हो वा आश्रमवाला पत्नीरहित हो वा पुत्रवाला होय तो रात्रिमें नक्त करना चाहिये । और सौरनक्त तो दिनमेंही होताहै, जो तिथि दिन और रात्रिमें तीन मुहूर्त हो उसमें सूर्यका नक्त होता है । उसमें दिनमेंही भोजन करना चाहिये, यह सुमन्तु कहते हैं ॥ भगवान्के नक्तमें कुछ विशेष है, कालादर्शमें स्कंदपुराणका वचन है कि हरिनक्तके व्रत करनेवालेको सदा उदयतिथि लेनी चाहिये । दूसरे देवताओंका नक्त तो संक्रान्ति आदिमें भी रात्रिकोही होताहै कारण कि, रागप्राप्त भोजनका निषेध है, इस कारण यह विधिको बाध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । दोनों

धेयाबाधकत्वात् ॥ दिनद्वयव्याप्तौ परा " उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः । तदोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः ॥ " इति कालादर्शे जाबालिवचनात् ॥ अन्यपक्षेषु एकभक्तवन्निर्णयः ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे–"हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् । अग्निकार्यमधः शय्या नक्तभोजी षडाचरेत् ॥ " अग्निकार्यं व्याहृतिहोमः ॥ इति नक्तम् ॥ अयाचिते तु विशेषवचनाभावात् पक्षे उपवासे प्राप्ते उपवासवन्निर्णयः ॥ अथ नक्षत्रव्रतकालनिर्णयः ॥ विष्णुधर्मे–" उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः । युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शशिना सह ॥ " इति ॥ माधवीये स्कान्दे–" तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादर्वाग् भवेत् । उपवासे यदृक्षं स्यात्ताद्धि नक्तैकभक्तयोः " अथ व्रतपरिभाषा ॥ तत्राधिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये–" अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते । व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप ॥ " अनग्निग्रहणमुपवासविषयम् । अत एव देवलः–" आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम् ॥ " एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ शूद्रस्याप्यधिकारः–" शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति । वेदमन्त्रस्वधा-

---

दिनकी व्याप्तिमें परतिथि करनी चाहिये । और यदि दोनों तिथियोंमें प्रदोषव्यापिनी तिथि हो उनमें अगली तिथिमें नक्त करना कारण कि, वह दोनों दिन है, इस प्रकार कालादर्शमें जाबालिका कथन है, दूसरे पक्षमें एकभक्तकी समान निर्णय है इसमें विशेष मदनरत्नमें गरुडपुराणका वचन है, हविष्यभोजन, स्नान, सत्य, अल्पाहार, अग्निकार्य, हवन, भूमिशयन, नक्तभोजीको इन छः वस्तुओंका आचरण करना चाहिये, (इति नक्तम्) और विना मांगे- मिलनेमें विशेष वचनोंके अभावसे उपवासकी तुल्य निर्णय किया जाता है । अब नक्षत्रव्रतके समयका निर्णय करते हैं–विष्णुधर्ममें लिखा है कि, जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होवे अथवा जो नक्षत्र अर्धरात्रिके समय चन्द्रमाके साथ हो उसमें व्रत करै । माधवीयमें स्कन्दका वचन है कि, जो नक्षत्र अर्धरात्रिसे प्रथम हो उसमें व्रत करै । और जो नक्षत्र उपवासमें होता है वही एकभक्त और नक्तमें हुआ करता है ॥ अब व्रतकी परिभाषा लिखते हैं । उसके अधिकारी मदनरत्नमें भविष्यपुराणके मतसे लिखे हैं कि, जो ब्राह्मण अग्नि अर्थात् अग्निहोत्रादिसे रहित हैं, हे राजन् ! उनका कल्याण व्रत, नियम और दानसे होता है । अग्निका ग्रहण उपवासके विषयमें है, इसी बातको देवल कहते हैं कि, अग्निहोत्री बैल और ब्रह्मचारी इन तीनोंकी सिद्धि भोजनसे होती है, भोजनके बिना नहीं । और एकादशी आदिमें तो वचनसे बिना

---

१ एकभक्तमें जो तिथि बीस घडी हो वह सम्पूर्णतिथि जाननी वा जो रात और सन्ध्यामें संगत हो वह सब जाननी । तथाच–एकभक्तायाचितयोर्या त्रिंशद्घटिकावधिः । सा तिथिः सकला ज्ञेया नक्ते सायाह्नसंगता ॥ इति मयूखे ।

स्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ " इति व्यासोक्तेः ॥ प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्वि-रात्राधिकोपवासनिषेधः । " वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते ॥ चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते । त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः ॥ " इति हेमाद्रौ वचनादित्याहुः ॥ यावदुक्तनिषेध इत्यन्ये ॥ तत्त्वं तु निर्मूलमिति प्रकरणान्महातपोविषय इति युक्तम् ॥ एवं स्त्रीणामपि ॥ भर्त्रनुज्ञैव स्त्रीणां व्रतम् । यत्तु स्कान्दे—" नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च । तस्यार्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुंक्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥ " आदित्यपुराणे—" नारी खल्वननुज्ञाता भर्त्रा वापि सुतेन वा । विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ " इति ॥ और्ध्वदेहिकं पारलौकिकम् ॥ तद्भर्त्रननुज्ञाविषयम् । ' भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा ' इति कात्यायनोक्तेः ॥ अत्र विशेषो हरिवंशे—" स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् । स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापये-त्सती ॥ ' तथा—" गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा । गोशृंगं दक्षिणं

भोजनकेही सिद्धि होती है । यह आगे वर्णन करेंगे, शूद्रकाभी अधिकार है, जैसा कि व्यासजी कहते हैं कि, चौथा वर्ण शूद्रभी वर्णमें होनेसे धर्मके होग्य है, उसको केवल वेदमंत्र स्वधा स्वाहा और वषट्कार करना न चाहिये । और प्राच्य तो यह कहते हैं कि, वैश्य और शूद्रको दो रात्रिसे अधिक उपवासका निषेध है ऐसा हेमाद्रिमें लिखा है कि, जो वैश्य और शूद्र अज्ञानसे तीन वा पांच रात व्रत करते हैं उनको फल प्राप्त नहीं होता, वैश्य और शूद्रको चौथे कालमें भक्षण करना कहा है । वेदके जाननेवाले धर्मज्ञोंने तीन रातका व्रत उनको नहीं कहा है । कोई कहते हैं, जो उक्त निषेध है वह निर्मूल है, प्रकरण होनेसे महातपके विषयका है, इसी प्रकार स्त्रियोंकोभी जानना चाहिये ॥ जो स्कंदपुराणमें लिखा है कि, स्त्रियोंको पृथक् यज्ञविधि, उपवास, व्रत नहीं है, यह केवल स्वामीकी सेवासे ही यथेष्ट-लोकोंको गमन करती हैं, कारण कि जो कुछभी पति देवता और पितरोंके निमित्त पूजा और सत्कार करता है, पतिमें अनन्यचित्तवाली स्त्री उसका आधा फल स्वामीकी सेवा करनेके कारण प्राप्त करती है । आदित्यपुराणमें लिखा है, भर्त्ता वा पुत्रकी आज्ञाके विना स्त्री जो कुछ परलोकके निमित्त कर्म करती है वह निष्फल होता है, यह वचन विना स्वामीकी आज्ञाके करनेके विषयमें है कारण कि, कात्यायनऋषि कहते हैं कि, पतिकी अनुमति लेकर सदा व्रतादिका आचरण करै । इसमें हरिवंशमें विशेष लिखा है कि, शिरसे स्नान करनेसे स्त्री विशेष फलको प्राप्त होती है, सती स्त्री प्रभातकाल उठकर स्नान कर पतिसे प्रार्थना करै तथा कुश और अक्षत तांबेके पात्रमें ग्रहण कर उसके जलसे गौके दक्षिण सींगको सिंचन

सिंच्य प्रगृह्णीयाच्च तज्जलम्॥" औदुम्बरं ताम्रमयम्। "ततो भर्तुः सती दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च। आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम्। उपवासेषु कर्त्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च॥" इति॥ सर्वव्रतेषु संकल्पविधिश्च भारते-"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः। उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्बुधः॥" हस्तेनैवेत्यर्थः॥ व्रतारम्भकालनिर्णयः। अथ व्रतारम्भकालः॥ मदनरत्ने गार्ग्यः-"अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे। उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्॥" रत्नमालायाम्-"सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः। भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति॥" तथा-"विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः। सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोप्यरिष्टः परिघस्य चार्धम्॥ तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले। गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः॥" संग्रहे-"कृष्णेऽग्निदिशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः। शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः॥" श्रीपतिः-"न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषारिघातादिकमत्र सिद्धम्॥" व्यवहारसमुच्चये-"दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं

करै, उस जलको ग्रहण कर फिर नियममें तत्पर स्नान किये हुए अपने पतिको वह जल दे, पीछे वह जल अपने शिरके ऊपरभी छिडके, व्रत और उपवासमें यह बात करनी चाहिये॥ सब व्रतोंमें अनेक संकल्प हैं, भारतमें लिखा है, जलसे पूर्ण ताम्रपात्रको लेकर उत्तरकी ओर मुख कर जिस फलकी इच्छा हो उसके निमित्त अपने हाथसे जल लेकर संकल्प करै और उपवास ग्रहण करै॥ अब व्रतारंभका समय कहते हैं। मदनरत्नमें गर्गका वचन है कि, गुरु, शुक्रके अस्त होनेमें तथा बाल, वृद्ध होनेमें और मलमासमें व्रतोंका प्रारम्भ और उद्यापन न करै। रत्नमालामें लिखा है कि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र यह चार दिन सब कार्योंमें सिद्धि देनेवाले होते हैं। रवि, मंगल और शनिके दिन वही कर्म सिद्ध होता है जिसके करनेके निमित्त कहा है तथा जो योगविरुद्ध हैं उनका प्रथम चरण निषिद्ध कहा है और उनमें भी वैधृति, व्यतीपातका सम्पूर्ण और परिघका आधा भाग यह सब निषिद्ध है. विष्कंभ और वज्रकी तीन, व्याघातकी नौ, शूलकी पांच, गंड और अतिगण्डकी छः घडी सब कार्योंमें त्याग देनी चाहिये। अब भद्राका निर्णय लिखते हैं कि, संग्रहमें लिखा है, कृष्णपक्षमें तीज और दशमीकी पीछेकी सात और चौदसको प्रथमकी तीस घडी, इसी प्रकार शुक्लपक्षमें चौथ और एकादशीकी पिछली अष्टमी तथा पूर्णिमाको यह पहिली तीस घडी भद्रा होती है। श्रीपति कहते हैं कि भद्रामें जो कार्य किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है विष और शत्रु-घातादि सिद्ध होते हैं। व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है, दशमी और अष्टमीकी पहली पांच घडीके

हरिघौसप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीयाराकायां खयमघटिकाभ्यः परभवं, शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे ॥ " तत्रैव–"सर्पिणी तु सिते पक्षे कृष्णे चैव तु वृश्चिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥ " व्रतारम्भे विशेषः । माधवीये–'विष्टिर्यदाहनि तिथेरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे ॥ ' ब्रह्मयामले–"दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा । न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः ॥" श्रीपतिः–"षड् पौष्णतो द्वादश शांकराच्च पौरंदराद्यानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरंतनैर्ज्यौतिषिकैः स्मृतानि ॥ " व्रतारम्भे च विशेषो मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः–"उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् । सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ॥ " इति ॥ देवलः–"अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः । सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥ " मदनरत्ने भविष्ये–"क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिंद्रियनिग्रहः । देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम् । सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥ " अग्निहोमस्तद्दैवत्यः, व्याहृतिहोमो वेति वर्धमानः, यत्तु तेनोक्तम्–सर्वपदमेतत्पुराणोक्तकृतव्रतपरम् । व्रतान्तरे तु विध्यन्तरसत्त्वे

उपरान्तकी, एकादशी और सप्तमीको बारह घडी पीछेकी, तीज और पूनोंके पीछेकी दश घडी, चौदस और चौथकी अन्तकी तीन घडी भद्राका पुच्छ होता है, वहीं लिखा है, शुक्लपक्षकी भद्रा सर्पिणी और कृष्णपक्षकी वृश्चिकी होती है । सर्पिणीका मुख और वृश्चिकीकी पीठ त्याग देनी चाहिये ॥ माधवग्रन्थमें लिखा है, जो भद्रा तिथिके अन्तभाग दिनमें लगे और रातमें तिथिके पूर्वार्धमें प्राप्त हो तो पुच्छमें मंगलदायक होती है । ब्रह्मयामलमें लिखा है, जो रातकी लगी भद्रा दिनमें हो और दिनकी लगी रातमें हो तो वह शुभकार्योंमें नहीं त्यागनी, ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं । श्रीपति कहते हैं रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वभागी और आर्द्रासे लेकर बारह नक्षत्र मध्यभागी, ज्येष्ठासे लेकर नौ नक्षत्र परभागी, पुरातन ज्योतिषियोंने स्वीकार किये हैं । मदनरत्नमें सत्यव्रतने व्रतके आरम्भमें विशेष कहा है, यदि दिनके मध्यभागमें उदयकी तिथि न हो वह तिथि खण्डित कही है, उसमें व्रतका आरम्भ और पूर्त्ति न करनी चाहिये. देवल कहते हैं कि प्रभातकाल स्नान करके भोजनको विना किये सूर्य और देवताओंकी प्रार्थना करके व्रतका आचरण करना चाहिये ॥ मदनरत्नमें भविष्यका वचन है–क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, संतोष और अस्तेय (चोरी न करना) इन सब व्रतोंमें सामान्यसे यह धर्म कहा है, वर्धमानके कथनानुसार देवताओंके मंत्रोंसे वा व्याहृतिसे होम करै और जो उसीने यह कहा है कि, यह सब पुराणोंमें लिखे हुए व्रतोंके विषयमें हैं, अन्य व्रतोंमें यदि कोई और विधान होय तो हवन करे अथवा न करै और इसी कारणसे शिष्टलोग

होमोऽन्यथा न। अत एवैकादश्यां शिष्टानां होमानाचरणमिति ॥ तन्न। 'जपो होमश्च' इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य काम्यव्रतसमाप्तिपरत्वात् ॥ तत्त्वं तु सप्तदश्यस्य पशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्थेनैव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्योपसंहार इति ॥ विष्णुधर्मे-"तज्जप्यजपनं ध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम्। तदर्चनं च तन्नामकीर्त्तनश्रवणादयः ॥ उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥" कौर्मे-"बहिर्ग्रामान्त्यजान्सूतिं पतितं च रजस्वलाम्। न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासरे ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे-"स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्तयः। पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना ॥ जपो होमश्च सामान्यं व्रतान्ते दानमेव च। चतुर्विंशद्द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव च ॥ विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥" अत्र विप्रा इति पुँल्लिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्याः। न तु स्त्रियः ॥ एवं सहस्रभोजनादावपि। विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात् ॥ अत एव-द्वयोर्यजमानयोः प्रतिपदं 'कुर्यात् बहुभ्यो यजमानेभ्यः' इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात् पत्न्यभिप्रायं द्वित्वं बहुत्वं वा न संभवतीत्युक्तमाचार्यैः। पार्थसारथिना च ॥ एतेनैकस्य ब्राह्मणस्यावृत्त्या भोजनं परास्तं बहुत्वस्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन

एकादशीको हवन नहीं करते। यह वर्धमानका कथन उचित नहीं है कारण कि, जप और होम करै। इस आगे कहे वचनके संग एकवाक्यता करनेको यह वाक्य कामनायुक्त व्रतके विषयमें है। तत्त्व तो यह है कि, सत्रह पशुमित्रविन्द आदि प्रकरणमें जिस प्रकार जिस २ विशेष हवन और विधिका उपसंहार है इसी प्रकार इस हवनविधिको भी जानै। जिस हवनकी जहाँ विधि है वह वहीं करै। विष्णुधर्ममें लिखा है कि, उसी देवताके मन्त्रका जप, उसीका ध्यान, उसीकी कथा श्रवण, उसीका पूजन और उसीके नामका कीर्त्तन श्रवणादि करै. बुद्धिमानोंने उपवास करनेवालोंके इतने गुण कथन किये हैं। कूर्मपुराणमें लिखा है कि, व्रतके दिन ग्रामके बाहरके अन्त्यजजाति, सूतिका, पतित और रजस्वलाका स्पर्श न करै, न इनको देखै और न इनसे भाषण करै। पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वाक्य है। व्रत करनेवाले सब व्रतोंमें स्नान करके भूमिपर शयन करै और सुवर्णमयी अपने देवताकी प्रतिमा शक्तिसे निर्माण कर पूजन करैं। सामान्यतासे व्रतके उपरान्त जप होम और दान करैं। चौवीस, बारह, पांच वा तीन, यथाशक्ति ब्राह्मणोंको जिमाकर दक्षिणा दे, विप्रशब्दसे ब्राह्मणोंको ही जिमाना, उनकी स्त्रियोंको नहीं इसी प्रकार सहस्रके भोजनादिमें पुरुषोंकोही भोजन करावे, कारण कि, व्याकरणसे विरूप स्त्री पुरुषोंका एकशेष प्रमाणके न मिलनेसे अयुक्तही है। इसी कारण दो वा अनेक यजमानोंका कर्म क्रमपूर्वक करना इस कथनसे आचार्योंने यह जताया है कि, भार्याके आशयसे द्वित्व वा बहुत्व नहीं होता तथा पार्थसारथिने भी यह लिखा है॥ इससे यह बात कटगई कि, ब्राह्मणकी दो बारादि आवृत्तिसे भोजन मानकर द्वित्व बहु

भोजनान्वयाभावादित्यन्यत्र विस्तरः ॥ शूद्रस्य तु प्रतिष्ठादिवद्विप्रद्वारा व्याहृतिहोम इति वर्धमानः ॥ व्रतमूर्तयो व्रतदेवताप्रतिमाः ॥ प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये—"अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप । सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तिकी तथा ॥ चित्रजा पिष्टलेखोत्था निजवित्तानुरूपतः । आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्या शाठ्यवर्जितैः ॥ " तत्रैव ब्राह्मे—"आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ " मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः प्रजापतिश्च देवतेति कल्पतरुः । वर्धमानधृतदेवीपुराणे—" होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्ति विधीयते ॥ " मदनरत्ने—'अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं शतम् ' वर्धमानधृतवृद्धशातातपः—" उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् । कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते ॥ " व्रतोद्यापने विशेषः । व्रतोद्यापनानुक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये नन्दिपुराणे—" कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम् । उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ॥ यदि चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत् । वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते ॥ गाश्चैव काञ्चनं दद्याद्व्रतस्य परिपूर्तये ॥ " अशक्तौ नारदीये—

सकैगा, कारण कि, जिस पदके आगे बहुत्व है उसका अन्वय उसके अर्थ ब्राह्मणमें ही होगा, भोजनमें नहीं. दूसरे ग्रन्थोंमें इसका विस्तार लिखा है । प्रतिष्ठाकी समान, शूद्रको भी ब्राह्मणद्वारा व्याहृतियोंके होमका अधिकार है, ऐसा वर्धमान कहते हैं । व्रतमूर्तिका अर्थ व्रतके देवताकी प्रतिमाका करना, मदनरत्नमें भविष्यके वचनसे प्रतिमाका स्वरूप लिखा है । हे राजन् ! देवताकी प्रतिमाका द्रव्य वा संख्या नहीं है, सुवर्ण, चांदी, ताम्र, वृक्ष, मृत्तिका, चित्र, चून इनकी हो वा लिखी हो, अपने धनके अनुसार एक मासेसे लेकर ३ टके पर्यन्त बनावे, धनकी शठता न करै, वहीं ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जहाँ हवनका द्रव्य नहीं कहा वहां घी लेना, और जहाँ देवताका उल्लेख नहीं किया वहाँ प्रजापति देवता जानना और यदि मन्त्र न कहा होय तो सात व्याहृतिरूप सम्पूर्ण मन्त्र और प्रजापति देवता जानना, ऐसा कल्पतरुमें कहा है । वर्धमानमें देवीपुराणका वाक्य है, होम और गृहादि पूजामें १०८, अट्ठाईस वा आठ मंत्रोंसे हवन करे । मदनरत्नमें लिखा है कि, जहां संख्या न कही हो वहां १०८ आहुति देनी । वर्धमानमें लिखा वृद्धशातातपका वचन है कि, द्विज उपवास करके फिर ब्राह्मणभोजन करावे तो इसका उपवास सफल होता है । जहां व्रतका उद्यापन न लिखा हो वहां पृथ्वीचन्द्रोदयमें नन्दिपुराणके वचनसे यह जानै कि, जो व्रतकी समाप्तिमें लिखा है वही उद्यापन करै. कारण कि, उद्यापनके विना व्रत निष्फल होता है और जो व्रतका उद्यापन न कहा हो तो व्रतके तुल्य जपादि करै और व्रतके अनुसार शक्तिपूर्वक दान दे, व्रतकी पूर्तिके निमित्त गौ और सुवर्ण देना चाहिये, अशक्तिमें नारदीयपुराणमें कहा है कि, यदि कुछभी धन न हो

"सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना। विप्रवाक्यं स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्तये॥" तत्रैव—"यथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभम्। अदत्त्वा दक्षिणां पापः स याति नरकं ध्रुवम्॥" भारते—"वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा। सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम्॥" बैजवापः "शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्। अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥" टोडरानन्दे देवीपुराणे—"व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेपि च विशेषतः। परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्॥" व्रते नियमः। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे—"नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः। क्षारं क्षौरं च लवणं मधु मांसं च वर्जयेत्॥" क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः "तिलमुद्गादृते शैम्ब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ। धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम्॥ स्विन्नधान्यं तथा पुण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः॥" गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः—"व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायः सतिलं पयः। श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः॥ कूष्माण्डालाबुवार्ताकपालंकीज्योत्स्निकास्त्यजेत्। चरुभैक्ष्यं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु॥ श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मूलतन्दुलम्॥ हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम्॥ मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम्॥" इति शमीधान्यं माषादि। पालंकी मध्यदेशे (पोई) इति प्रसिद्धा। ज्योत्स्निका कोशातकी। मिताक्षरायां गौतमः—"चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकप-

---

और शास्त्रोक्त विधि न कर सके तो ब्राह्मणका वचन ही यज्ञकी पूर्तिके निमित्त बहुत है और जो मनुष्य ब्राह्मणके वचनको विना दक्षिणा दिये ग्रहण करता है वह मूढ अवश्य नरकको जाता है। भारतमें लिखा है कि, वेद उपनिषद् पाठ सब कर्मोंमें सर्वत्र मैंने भूमि, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा कही है। बैजवाप कहते हैं—जिस कारण कि, शिवके नेत्रसे उत्पन्न चांदी पितरोंको प्यारी है, इससे वह देवकार्यमें मंगलीक नहीं है, इससे उसको सब कामोंमें त्यागदे॥ टोडरानंदमें देवीपुराणका वाक्य है, हे देवी! व्रत तीर्थ अध्ययन श्राद्ध इनमें पराया अन्न भोजन न करे कारण कि, जिसका भोजन हो उसीको फल मिलता है॥ पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वचन है कि, नित्यस्नान करनेवाला, परिमित भोजन करनेवाला, गुरु, देवता, ब्राह्मणका पूजन करै तथा खारी पदार्थ, हजामत, लवण, मधु और मांसको त्याग दे। क्षार वहीं लिखे हैं। तिल और मूंगको छोडकर सामनी अन्न गेहूं, कोंदों धान, देवधान, उर्द, गन्ना, स्विन्न, धान्य और विकतेहुए मूल यह सब क्षार कहे हैं और वहां ही यह वचन गेहूंके विषयमें तो निषेधका निषेध है। व्रीहि सट्ठीके चावल, मूंग, कलाय, तिलसहित दूध, समाके चावल, नीवार और गेहूँ आदि यह सब व्रतमें हितकर हैं। काशीफल घिया बैंगन पोई कोशातकी इनको न खाना चाहिये। चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तुकण, शाक, गौका दही घी मीठा सामक वनके चावल नीवार जौ मूलतण्डुल और हविष्यअन्न यह क्रमसे नक्तव्रत आदिमें उत्तम कहे हैं और अग्निकार्यमें भी हितकारी हैं, मद्य और मांसको छोडकर भिन्न वस्तु व्रतमें हितकर हैं। मिता-

योदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पयो दधि घृतं च गव्यम् इति ॥ " अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यन्ते ॥ गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः—" पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो न चरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ॥ " तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निगारुडपुराणयोः—"क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि । दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा ॥ " इति ॥ प्रायश्चित्तस्नानादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं नास्तीति गम्यते ॥ यत्तु 'प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।' इति वचनात् यत्रातिक्रान्तमपि व्रतं कार्यमेवेति शूलपाणिः तमन्मध्ये लोप व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम् ॥ एतच्च शक्तविषयम् ॥ अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे—"उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् । तावद्धनादि वा दद्याद्भुक्तस्य द्विगुणं तथा ॥ सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् । कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यातुरो नरः ॥ " इति ॥ शुद्धितत्त्वे मात्स्ये—'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ॥' मदनरत्ने वायवीये—'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।' तथापरार्के देवलः—"ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठा-

क्षरामें गौतमजी कहते हैं—चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तुकण, जौ, शाक, गौका दूध, दही, घी, मूल, फल, जल और हवि यह क्रमक्रमसे उत्तम कहे हैं इनमें विशेष एकादशी और चातुर्मास्यादिके प्रकरणमें कहेंगे । महात्मा छागलेय ग्रहण किये व्रतके त्यागमें कहते हैं कि, जो कोई पहले व्रतको ग्रहण कर फिर कामसे मोहित हो उसे त्याग दे वह जीतेही चाण्डाल है और मरकर श्वान होता है । उसका प्रायश्चित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्नि और गरुडपुराणके मतसे लिखा है क्रोध प्रमाद वा लोभसे यदि व्रतभंग हो जाय तो तीन दिन भोजन न करे । अथवा शिरका मुण्डन करावे जब व्रतभंग हो जाय तो शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तके विना उसको न करे और यह जो लिखा है प्रायश्चित्तको करके फिर व्रती हो इस वचनसे भंग हुये व्रतको करै यह शूलपाणि कहते हैं यह तबके निमित्त हैं जब मध्यमें व्रतका लोप हो जाय और कुछ दिन व्रतके शेष रहे हों और यह भी सामर्थ्यवानके निमित्त है असामर्थ्यमें तो कालहेमाद्रिमें कहे पुराणान्तरका वचन है । यदि उपवासमें अशक्य हो तो एक ब्राह्मणको भोजन करावे या उतना उसे धन दे और जो ब्राह्मणको विना जिमाये भोजन कर लिया हो तो उससे दूना धन दे और यदि रोगी हो तो प्राणायाम कर सहस्र गायत्रीका जप करै । अथवा बारह प्राणायाम करै । शुद्धितत्त्वमें मत्स्यपुराणका वचन है जो उपवासमें असमर्थ हो वह रात्रिमें भोजन करले, मदनरत्नमें वायुपुराणका वाक्य है द्रव्यका दान करनेवाला उपवासके फलको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ अपरार्कमें देवल कहते हैं ब्रह्मचर्य, पवित्रता, सत्य बोलना और मांस-

१ स्त्रियोंके प्रेक्षण स्पर्श आलाप और अऋतुमें संगम करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होता, है इतिमें

नीति निश्चयः ॥ " मात्स्ये–"तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यंगपूर्वकम्। वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप ॥ " अन्ये च नियमास्तत्रतत्रान्वेषणीयाः ॥ अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते। तत्र हेमाद्रौ व्रतकाण्डे गारुडे–" गन्धालंकारताम्बूल-पुष्पमालानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥ " इति ॥ इदं च सभर्तृकोपवासविषयम्। " अञ्जनं च सताम्बूलं कुंकुमं रक्तवाससी । धारये-त्सोपवासापि अवैधव्यकरं यतः ॥ विधवा यतिमार्गेण कुमारी वा यदृच्छया ॥ " इति ॥ तत्रैव भविष्योक्तेः ॥ तथा विष्णुधर्मे–"सर्वेषु तूपवासेषु पुमान्वाथ सुवासिनी। धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च । विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत् ॥" मनुरपि–" पुष्पालंकारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधाव-नमञ्जनम् ॥ " मदनरत्ने व्यासः–'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेप्यस्या न दुष्यति ' इति ॥

त्याग व्रतमें यह चार वस्तु विशेष हैं यह निश्चय है । मत्स्यपुराणमें लिखा है इससे उपवास करनेवाला शरीरमें उबटन लगाकर स्नान न करे, यह प्रयत्नसे वर्जना चाहिये कारण कि, यह व्रतमें रूपका नाश करनेवाला है, और दूसरे नियम भी वहां वहां खोज लेने । अब स्त्रीके व्रतोंमें विशेष लिखते हैं । हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें गरुडपुराणका वचन है, सुगन्धि लगाना, गहने पहरना, ताम्बूल, फूलमाला, चन्दन, दन्तधावन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते यह वार्ता सौभाग्यवतीके उपवासमें जाननी, कारण कि, वहां भविष्यपुराणका यह वाक्य है, अंजन पान कुंकुम लालवस्त्र यह सौभाग्य करनेवाले हैं, इस कारण इनको उपवासमें भी धारण करै, विधवा यतिमार्गसे व्रत करै, और कुमारी अपनी इच्छासे व्रत करै । विष्णुधर्ममें लिखा है सब उपवासोंमें पुरुष वा सौभाग्यवती स्त्री लालवस्त्र और श्वेत पुष्प धारण करै और विधवा एकही श्वेत वस्त्र धारण करै । मनु भी कहते हैं फूलोंकी माला, अलंकार, वस्त्र, धूप, अनु-लेपन, दतौन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते हैं । मदनरत्नमें व्यासजीका वचन

जल गौका छोडकर अन्य दूध सस्यमें मसुर फलमें जम्भीरी नीबू शुक्तिचूर्ण आरनाल यह व्रतमें मांसरूप हैं, स्मरण कीर्तन केलि दर्शन गुह्यभाषण संकल्प अध्यवसाय क्रियाकी निर्वृत्ति यह आठ प्रकारका मैथुन है इनसे भिन्न ब्रह्मचर्य है । तथा च–"स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिः संकथनादपि ॥ विपद्यते ब्रह्मचर्यं स्वदारेऽनृतुसंगमात् ॥ १ ॥ आमिषं दतिपानीयं गोवर्ज्यं क्षीरमामिषम् ॥ मसूरमामिषं सस्ये फले जम्बीरमामिषम् ॥ २ ॥ आमिषं शुक्तिकाचूर्ण-मारनालं तथामिषम् ॥ ३ ॥" इति स्मृत्यंतरोक्तं च–"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥ ४ ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणात् ॥ ५ ॥ "

यद्यपीदं सर्वोपवासविषये प्रतीयते, तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाण-नवरात्रत्रिरात्राद्युपवासविषयमेव ॥ न त्वेकादश्यादिविषयम् ॥ "असकृज्जलपानाञ्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाञ्च मैथुनात् ॥ " इत्यपरार्के देवलेन तन्निषेधात् ॥ न चास्य पुंविषयत्वेन सावकाशत्वात् स्त्रीणां ताम्बूलादि प्राप्नोतीति वाच्यम् । ताम्बूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् ॥ यत्तु हरिवंशे "अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान्सुमनसस्तथा । व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ शिरसोभ्यञ्जनं सौम्ये नैवमेतत्प्रशस्यते । न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥ " इति ॥ तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयम् । नतु सर्वत्र । पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ तत्रैव-" अश्रुप्रपातो रोपश्च कलहस्य कृतिस्तथा । उपवासाद्व्रताद्वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियम् ॥ " स्त्रियमित्युपलक्षणम् ॥ मदनरत्ने शिवधर्मे-" दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः । यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥ " अथ सूतकादौ निर्णयः ॥ तत्र शावसूत्याशौचयोः सर्वस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निबन्धेषु स्पष्टैव ॥ गौडास्तु शौचादावपि तामाहुः । " जानूर्ध्वं

है, स्त्रियोंके व्रतमें दतौन और पुष्पादिका निषेध नहीं है, यद्यपि यह सब उपवासके विषयमें प्रतीत होता है तोभी शिष्टाचारसे सौभाग्यके निमित्त किये जाते हैं नवरात्र त्रिरात्रादिउपवासके विषयमें है एकादशी आदिके विषयमें नहीं कारण कि, अपरार्कमें देवलका वाक्य इसके निषेधका है वारंवार जलपान तथा एकही वार ताम्बूल चर्वणकरने, दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट हो जाता है । यदि कहो कि, यह वचन पुरुषोंके निमित्त है स्त्रियोंके ताम्बूल सेवनमें दोष नहीं तो ऐसा कहना ठीक नहीं कारण कि, ताम्बूल भक्षणका कथन करनेवाला वचनही एकादशीसे भिन्न व्रतोंमें क्यों न माना जाय और जो हरिवंशमें यह लिखा है कि, अंजन, गौरीचन्दन, सुगंधि, फूल इनको व्रत और उपवासमें सदा त्याग दे । शिरसे स्नान चरण और देहका तेल आदिसे मलनाभी श्रेष्ठ नहीं है, यह मर्यादा है, यह वचन हरिवंशमें लिखे हुए पुण्यकव्रतकेही विषयमें है सर्वत्र नहीं कारण कि, पूर्वोक्त वचनसे विरोध पडेगा, यह मदनरत्नमें कहा है वहाँही कहा है कि, अश्रुपात करना, क्रोध, क्लेश यह उपवास वा व्रतमें करनेसे स्त्रियोंके व्रत वा उपवास तत्काल भंग हो जाते हैं । यहां स्त्रीपद पुरुषका भी उपलक्षण है ॥ मदनरत्नके शिवधर्ममें लिखा है दान व्रत नियम ज्ञान ध्यान हुत जप यह यत्नसे सम्पादन करनेसेभी क्रोधीके नाश हो जाते हैं अर्थात् वृथा हो जाते हैं, अब सूतकादिका निर्णय करतेहैं, इसमें मरण और जन्मसूतकमें स्मृतियोंमें लिखे सब कर्मोंका न करना, सब ग्रन्थोंमें स्पष्टही लिखा है, गौड तो शावके अशौचमें सब कर्मोंका त्याग लिखते हैं, कि, घुटनोंमें वा

क्षतजे जाते नित्यकर्म न चाचरेत्। नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत्॥ लौतके च समुत्पन्ने ज्वरकर्मणि मैथुने। धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत्॥ द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च नैव भुक्त्वापि किंचन। कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा॥" इति कालिकापुराणात्॥ वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः। तथा हेमाद्रौ पाद्मे-"गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी चाथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदान्येन कारयेत्प्रयता स्वयम्॥" इति॥ पुंसोप्येष विधिः। लिंगस्याविवक्षितत्वात्॥ तेन-'यस्मिन्व्रते यत्पूजाद्युक्तं तदन्येन कारयेत्। शारीरनियमान्स्वयं कुर्यात्' इति हेमाद्रिर्व्याचख्यौ॥'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेश्च। आरम्भस्तु न भवत्येव। शुद्धितत्त्वे विष्णुः-"बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि। सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति॥" एतत्काम्यपरम्॥ नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यमिति गौडाः॥ मदनरत्ने-"पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम्॥" माधवीये कौर्मे-"काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्॥" इति॥ एतेन साधिकाराद्व्रतांगदेवपूजादि कार्यमिति वर्धमानोक्तिः परास्ता॥

ऊर्ध्वमें घाव हो जानेमें नित्यकर्म न करै, और घुटनोंसे नीचेके रुधिरस्रावमें नैमित्तिक कर्मका त्याग कहा है, मांस निकलनेपर, ज्वर, मैथुन, धूम, डकार वान्तिके होनेमें नित्यकर्म छोड दे, यदि किसी वस्तुके भोजन करनेसे अजीर्ण हो जाय, तो कुछभी भोजन न करै, भोजनके उपरान्त सूतक वा मृत्युमें नित्यकर्म न करना, यह कालिकापुराणके वचन हैं, यथार्थमें तौ हम प्रथमसे देवीपूजाका प्रकरण होनेसे यह वचनभी देवीपूजाके विषयमेंही जानतेहैं, इसी प्रकार हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि, गर्भिणी सूतिका कुमारी रोगिणी जब अशुद्ध हो तब दूसरेसे व्रत धरा दे। यही विधि पुरुषोंके निमित्त है, कारण कि, इसमें लिंगकी विवक्षा नहीं है, इससे जिस व्रतमें जो पूजादि कही है वह दूसरेसे करादे, शरीरके नियमोंको स्वयं करै यह हेमाद्रिने व्याख्या की है और व्रतवालोंके व्रतमें विष्णुनेभी यही कहा है कि, सूतक आदिमें व्रतका आरंभ नहीं होता शुद्धितत्वमें विष्णुका कथन है। यदि पहले बहुत कालका संकल्प किया हो अर्थात् बहुत कालके व्रतका संकल्प लिया हो तो सूतक और मृत्युमें वह व्रत दूषित नहीं होता, यह वाक्य काम्य व्रतमें जानना और विना प्रारम्भ कियेभी नित्यकर्म करले ऐसा गौड कहते हैं। मदनरत्नमें कहा है जिस व्रतका व्रतके नियम करानेवालेने प्रथमसे संकल्प कर रक्खा है वह शुद्रमनुष्य उस व्रतको दान और अर्चनके विना करै। माधवीयमें कूर्मपुराणका कथन है, यदि काम्य उपवासके आरम्भमें मध्यमें मरण वा सूतक हो जाय तौ दान और अर्चनके विना काम्य व्रतका अनुष्ठान करै इससे वर्द्धमानका यह कहना खण्डन हो गया कि,

प्रारब्धं पूजादि कार्यमेव ॥ नवरात्रे तु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः ॥ एवं रजस्वलापि ॥ यत्तु सत्यव्रतः—"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचन ॥" इति ॥ तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम् ॥ तदुक्तं मदनरत्ने मात्स्ये—'अन्तरा तु रजोयोगे पूजामन्येन कारयेत्' इति । प्रतिनिधयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः—"भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ॥ असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥" स्कान्देपि—"पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा । एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥" पित्राद्यर्थं उपवासव्रतनिर्णयः । कात्यायनः—"पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः । उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे । कृते ते तु फलं विप्रा समग्रं समवाप्नुयुः ॥" मदनरत्ने प्रभासखण्डे—"भर्त्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च । यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः ॥ एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ॥" तत्रैव वायवीये—' स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत्कारयेत पुरोधसा ॥' इदं च सर्ववर्णसाधारणम् । अविशेषात् ॥ यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह—शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः "जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥ इति मरीचि-

---

सांगव्रतमें अधिकार होनेसे उस २ व्रतके अंगभूतदेवता आदिका तौ पूजन करै आरम्भ किये व्रतके पूजन तो करैही । नवरात्रमें तो वहीं विशेष कहेंगे, इसी प्रकार रजस्वलाभी व्रत करै, और जो सत्यव्रत यह कहते हैं कि, दीर्घव्रतके प्रारंभमें यदि स्त्री रजोवती हो जाय तौ उसका व्रत नहीं रुक सकता, यह वचन प्रतिनिधिसे करवा देनेके विषयमें है ऐसाही मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वचन है कि, यदि व्रतमें रजोधर्म हो जाय तौ दूसरेसे व्रत करादे । इस प्रकार प्रतिनिधि निर्णयामृतमें पैठीनसीके वाक्यसे कहेहैं, भार्या पतिका और पति भार्याका व्रत कर दे, इनके सामर्थ्य न होनेपर दूसरेके व्रत करनेसे व्रतभंग नहीं होता, स्कन्दपुराणमें भी लिखा है, नम्रतायुक्त पुत्र बहन भ्राता इनको अथवा इनके अभावमें ब्राह्मणको प्रतिनिधि करना चाहिये ॥ कात्यायन कहते हैं, पिता माता भ्राता पति और विशेष कर गुरुके निमित्त उपवास करनेसे सौगुना पुण्य होताहै मातामहादिके उद्देश्यसे एकादशीमें उपवास करनेसे समग्र फलकी प्राप्ति होतीहै । मदनरत्नके प्रभासखण्डमें लिखा है कि, भर्ता पुत्र पुरोहित भ्राता पत्नी सखा, यात्रा और धर्मकार्यमें प्रतिनिधि होते हैं हे महादेवि ! इनका किया हुआ स्वयंही किया हुआहै, वहीं वायुपुराणका वाक्य है कि, यदि स्वयं करनेमें अशक्त हो तो पुरोहितसे करादे विशेष न कहनेसे यह सब वर्णोंके निमित्त साधारण है और जो किसी महोक्ष (बलीवर्द) ने यह कहाहै, शूद्रके ब्राह्मणादिही प्रतिनिधि युक्त हैं, शूद्र नहीं होसकते । जप तप तीर्थसेवा संन्यास मन्त्रसाधन जिसका ब्राह्मण सम्पादन करते हैं उसका पूरा फल मिलताहै यह मरीचिका वचन है सो तुच्छ है, कारण

वचनात् इति ॥ तत्तुच्छम् । प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसंभवात् 'विषये प्रायदर्शनात्' इति न्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात्॥ यदापि-'उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्' इति पूर्वार्द्धं पाठस्तदापि स एव दोषः 'स्त्रीशूद्रपतनानि षट्' इति मानवीये जपनिषेधात् "ब्राह्मणो हीनवर्णस्य यः कुर्यात्कर्म किंचन । स तां जातिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥" इति कालहेमाद्रौ मरीचिनिषेधाच्च ॥ वस्तुतस्तु । संपूर्णतावाचनमात्रमत्रोच्यत इति प्रतिनिधेः का वार्तेत्यलम् ॥ अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः-"काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः । काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु । स देशकालयोर्नास्ति नारणेरग्निरेव सा ॥ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥" हिरण्यकेशिसूत्रेपि-"न स्वामित्वस्य भार्यायाः पुत्रस्य देशस्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते" इति ॥ अथ व्रतादिसंनिपाते निर्णयः । तत्र तिथिद्वयसंनिपाते तत्रोक्तं दानहोमादिकर्मणानुष्ठेयम् । अविरोधात् ॥ इदं पूर्वारब्धेष्वेव ॥ एकमध्येऽन्यकाम्यकर्मारम्भस्तु न भवत्येव गुणफलादृते-'यस्य यज्ञे प्रततेन्तरा यज्ञस्तायते तं यज्ञं निर्ऋतिर्गृह्णाति' इति रा-

---

कि, संन्यासादिका होना शूद्रमें सम्भव नहीं, और यह न्यायसंगत भी है कि, कर्मोंके विषय ब्राह्मणपन ब्राह्मणका है । इससे यह वचनभी ब्राह्मणके विषयमें जानना, और जो उसने लिखाहै कि, प्रथमका आधा श्लोक यह है उपवास व्रत हवन तीर्थ जप तौभी वही, दोष आता है कारण कि, स्त्री और शूद्र जपादिसे पतित होतेहैं, इस कारण शूद्रको जपका निषेध है, ऐसा मनुमें है और कालहेमाद्रिमें मरीचिके वचनसे इस प्रकार निषेधभी है । जो ब्राह्मण शूद्रवर्णके निमित्त कुछ कर्म करे तो वह इस लोक और परलोकमें उस जातिको ही प्राप्त होता है, यथार्थ तो यह है जब पूर्णजातिका होनाही यहां लिखा तौ प्रतिनिधिकी क्या बात है बहुत विस्तार नहीं करते हैं, त्रिकाण्डमण्डनने यहाँ यह विशेष लिखा है कि, काम्यकर्ममें प्रतिनिधि नहीं होता नित्य नैमित्तिकमें ही होता है । कोई आचार्य आरम्भके उपरान्त काम्यकर्ममें भी प्रतिनिधि मानते हैं, इससे मन्त्र स्वामी देवता और अग्निकर्ममें प्रतिनिधि होता है, देश काल तथा अरणीके मथनमें प्रतिनिधि नहीं होता कारण कि, वह अग्निही है और निषिद्ध वस्तुको भी, कहीं प्रतिनिधि करै । हिरण्यकेशीसूत्रमें कहा है स्वामी स्त्री बेटा देश काल अग्नि देवता कर्म और शब्द इनका प्रतिनिधि नहीं होता । अब व्रतादिके मेलमें निर्णय करते हैं । यदि व्रतमें दो तिथियोंका संयोग होजाय तो उस २ तिथिमें कथन किये दान हवन आदि विरोध न होनेमें करने चाहिये, और यह भी पहले आरम्भ किये व्रतोंमें जानना । एकके बीचमें दूसरे काम्य कर्मका आरम्भ तो नहीं होता, और गौणफल तो प्राप्त होता है । जिस यज्ञके आरम्भमें दूसरे यज्ञका विस्तार किया जाय उस यज्ञको राक्षस ग्रहण करलेते हैं, यह राणकमें श्रुति लिखी है इससे यज्ञ व्रत आदि सब कर्मोंमें अनंग (यज्ञके

णकधृतश्रुतेः । यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रम् । अनङ्गेन व्यवधानदोषस्य सर्वत्र साम्यात् शिष्टास्तु माघकार्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोमतुलाभारतश्रवणाद्याचरन्ति तन्नित्यमध्ये, न तु काम्यमध्ये ॥ यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम् । नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम् । समकालीनविरुद्धव्रतादौ त्वेकं स्वयं कृत्वान्यद्भार्यादिना कारयेदिति माधवः ॥ यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाऽह्नि भोजनं प्राप्तम् । " भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ " इति तन्निषेधश्च ॥ तत्र पारणाया वैधत्वाद्दिवैव भोजनम् । निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः । एवमष्टम्यादिनक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ संकष्टचतुर्थ्यां च रात्रौ भोजनम् ॥ यत्र त्वष्टम्यादौ दिवाभुजिनिषेधः संक्रमे च रात्राविति निषेधद्वयम् ॥ तत्रोपवास एव कार्यः ॥ यद्यपि पुत्रिण उपवासो निषिद्धः । तथापि 'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत्' इति वचनात्किंचिद्भक्षयित्वोपवासः कार्यः चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु भोजनं कार्यमेव । चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात् । अबाधेन गत्यसम्भवाच्च ॥ एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत् 'आपो वा अशितमनशितं च' इति श्रुतेः ॥ एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्धम-

---

अंगके सम्बन्धसे रहित) कर्मके व्यवधानक दोष सब स्थानमें तुल्य है शिष्ट पुरुष तो कार्त्तिक-स्नानादिके मध्यमें लक्षहवन तुलादान भारतादिका श्रवण करते हैं यह उनका कर्त्तव्य नित्यकर्म-विषयक है काम्यमें नहीं है ॥ और जहाँ एकभक्तादिमें तथा नक्तादिमें विरोध हो वहाँ प्रथम होनेसे एकभक्त आदि करना चाहिये और नक्त तो दूसरे दिन गौण तिथिमें करना चाहिये, और एकही कालमें विरुद्ध दो व्रत आन पडें तो एक स्वयं करै और एकको भार्या आदिसे करावे यह माधव कहते हैं और जहाँ शिवरात्रि तिथिमें पारणाके निमित्त दिनमें भोजन प्राप्त है और निषेध है कि चतुर्दशी और अष्टमीको दिनमें पर्वमें रात्रिको और एकादशीको दिनरातमें भोजन कर चान्द्रायण करे । उस स्थलमें पारणाको शास्त्रोक्त होनेसे दिनमें भोजन करना, और उस निषेधको रागप्राप्त भोजनमें जानना, इस प्रकार अष्टमी आदि नक्तव्रत संक्रांति आदि रवि संकष्ट चतुर्थीमें रात्रिको भोजन करना और जिस स्थलमें अष्टमी आदिमें दिनके भोजनका निषेध है कि, संक्रांतिमें रातको भोजन न करै, वहाँ उपवास करनाही जानना, यद्यपि पुत्रवालोंको उपवासका निषेध है, तथापि उपवासके निषेधमें भी कुछ भोजन करले, इस वाक्यसे कुछ भोजन करके ही उपवास करे और चान्द्रायणमें भी एकादशीको तो भोजन करनाही चाहिये कारण कि, चान्द्रायण काम्य होनेसे नित्यका बाधक है । और विना बाध माने दूसरा मार्गही नहीं है एकादशीको एकान्तरे आदि व्रतकी पारणा आ पडे तो जलसे पारणा करके उपवास करे कारण कि, (आपो वा अशितमनशितं च) इस श्रुतिके अनुसार जलका भक्षण अभक्षणही

दोषादिषु ज्ञेयम् ॥ एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥ अथ प्रतिपदादितिथिनिर्णयः । शुक्लप्रतिपदपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या । युग्मवाक्यात् 'प्रतिपत्संमुखी कार्य्या या भवेदपराह्णिकी' इति स्कान्दोक्तेः ॥ 'शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्सापराह्णे भवेत्' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ अपराह्णश्च पञ्चधा भक्ते दिने चतुर्थो भागः । तदभावे सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः ॥ कृष्णा तु परा । 'कृष्णा तूत्तरतोखिला' इति दीपिकोक्तेः ॥ 'कृष्णापि पूर्वैव' इत्यनन्तभट्टाः ॥ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि मुहूर्तदीपिकायाम्—"कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा तैलं चामलकं दिवं प्रवसतां शीर्षं कपालान्त्रकम् । निष्पावांश्च मसूरिकान्फलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश ॥" शीर्षं नारिकेलम् । कपालम् अलाबु । अन्त्रं पटोलकम् ॥ भूपालः—"कूष्माण्डं बृहती क्षारं मूलकं पनसं फलम् । धात्रीशिरःकपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत् ॥" नखं शिंबी । चर्म मसूरिका ॥ द्वितीयानिर्णयः । 'द्वितीया तु कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा' इति हेमाद्रिः ॥

है । इसी प्रकार द्वादशी मासोपवास श्राद्ध प्रदोषादिमें जानना, इस प्रकारसे काम्य नैमित्तिक नित्य आदि व्रतोंमें बल अबल स्वयं विचार लेना यह संक्षेपसे कहा है ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥ अब प्रतिपदाका निर्णय करते हैं, जो शुक्लपक्षकी प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी होवे तो पूर्वकी ग्रहण करनी कारण कि, इसके दो वाक्य मिलते हैं । स्कंदपुराणमें लिखा है, जो प्रतिपदा अपराह्णमें हो तो निःसंदेह उसीको करे । शुक्ला प्रतिपत्तिथि होती है वह जो अपराह्णमें हो तो पहली होती है, यह दीपिकामें लिखा है । अपराह्ण, पांच भक्त दिनका चतुर्थ भाग है यदि वह न प्राप्त हो तो संध्यामें व्यापनेवाली तिथि ग्रहण करनी, ऐसा माधव कहते हैं । कृष्णा प्रतिपदा तो आगेकी लेनी, ऐसा दीपिकामें लिखा है । कृष्णपक्षकी प्रतिपदा भी पहलीही होती है, ऐसा अनन्तभट्ट कहते हैं । मुहूर्त्तदीपिकामें सब तिथियोंमें निम्नलिखित वस्तु वर्जित की हैं, कूष्माण्ड, कटेरी, लवण, तिल, खटाई, तेल, आंवले, नारियल, तोंबा, पटोल, निष्पाव (पसाईके चांवल), मसूर, बैंगन, शहत, द्यूत, स्त्रीगमन इन सोलह वस्तुओंको क्रमसे प्रतिपदादि तिथियोंमें त्याग दे । भूपाल कहते हैं—कूष्माण्ड कटेरी क्षार मूल पनसका फल आमले नारियल कपाल (अलाबू) पटोल नख (शिम्बीशाक) मसूर तिल हजामत बनवाना इनको प्रतिपदा आदि तिथियोंमें त्याग दे ॥ और द्वितीयाके विषयमें तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी दूसरी ग्रहण करनी चाहिये, यह हेमाद्रिका मत है, कारण कि, दीपिकामें

"कृष्णाद्वितीयादिमा, पूर्वाह्ने यदि सा सिता तु परतः सर्वा ' इति दीपिकोक्तेः । माधवानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा । तथा च माधवः—पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा । सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोऽन्यथा ॥ इति ॥ तृतीयानिर्णयः । तृतीया तु सर्वमते रम्भाव्यतिरिक्ता परैव तेन युग्मवाक्यं रम्भाव्रतविषयम् " रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीया द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥ " इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः—" मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥ " इति॥ चतुर्थीनिर्णयः । चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । "एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥ " इति माधवीये बृहद्वसिष्ठोक्तेश्च ॥ 'नागचतुर्थी तु मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीयुता च ग्राह्या ' इति निर्णयामृते । माधवीये चोक्तम्—"युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् । क्षीरेणाप्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत्प्रयतो नरः ॥ विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान्हिंसन्ति पन्नगाः ॥ " इति माधवीये देवलोक्तेः ॥ युगचतुर्थी । पूर्वत्र मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वा । अन्यपक्षेषु परैव पञ्चम्यां पूजोक्तेः ॥ गणे-

---

भी यही लिखा है कि, जो पूर्व दिनमें हो तो कृष्णपक्षकी द्वितीया पहली और शुक्लपक्षकी तो सब प्रकार दूसरीही होती है, अनन्तभट्ट कहते हैं सब द्वितीया पहलीही करनी चाहिये । माधव भी यही कहते हैं कि प्रभातकाल जो प्रथम दिन न हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त हो वह द्वितीया उपवासमें दूसरीही लेनी, और यदि ऐसी न हो तो प्रथम तिथि प्रतिपदासे विद्धा लेनी चाहिये ॥ रम्भातीजको छोडकर सबके मतमें अगलीही तृतीया होती है, उनमें दो वाक्य रम्भाव्रतके विषयमें हैं । हे द्विजसत्तम ! रम्भा नामक तीजको छोडकर और सब कार्योंमें चतुर्थीयुक्त तृतीया श्रेष्ठ है, ऐसा ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है, गौरीव्रतमें माधव विशेष कहते हैं, मुहूर्त्तमात्र होनेसे भी दूसरेही दिन गौरीव्रत करना चाहिये, और यदि शुद्ध तृतीयाकी वृद्धि हो जाय तो भी चतुर्थीमें योगकी प्रशंसा होनेसे परदिनमें ही करनी ॥ और गणेशचतुर्थीको छोडकर सबके मतमें पहलीही चतुर्थी लेनी । इसमें भी युग्म वाक्य है, माधवीयमें वृद्धवसिष्ठका वचन है कि, एकादशी छठ अमावस्या चौथ यह उपवास करनेमें परतिथिसे संयुक्त लेनी और नागचतुर्थी तो मध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी ऐसा निर्णयामृत और माधवीयने कहा है । नागतिथि मध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी, जिस दिन मध्याह्नमें चतुर्थी हो उस दिन उपवास करके पंचमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराय जो इनकी पूजा करता है उसके विष दूर होते हैं और उनको सर्प नहीं काटते हैं, ऐसा माधवीयमें देवलका वचन है । मध्याह्नसे प्रथम पंचमी आजाय तो पहली न होकर परली होती है, कारण कि, पूजा पंचमीमें लिखी है ।

शव्रते तृतीयायुतैव चतुर्थी । "चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्त्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी ॥ " इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात् ॥ माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्नव्यापिनी मुख्या । "चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥" इति बृहस्पतिवचनात् ॥ " प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप । " इति तत्कल्पेऽभिधानाच्च । तेन परदिने सत्त्वे परा । अन्यथा पूर्वेत्युक्तम् । वस्तुतस्तु । यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्ता तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि, न तु सार्वत्रिकाणि ॥ संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः । तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धम् ॥ संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वेति केचित् ॥ अन्ये तु दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्य भावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्नव्यापित्वात्सम्पूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते ॥ दिनद्वये तदभावे तु परैव ॥ गौरीव्रते तु पूर्वैव । " गणेशगौरीबहुला व्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः ॥" इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥ पञ्चमीनिर्णयः । पञ्चमी तु माधवमते सर्वापि पूर्वा–" चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी

और गणेशव्रतमें तृतीयायुक्त चतुर्थी लेनी । कारण कि, तृतीयामें चतुर्थी महापुण्यकी देनेवाली है, वही गणेशजीके प्रसन्न करनेको करनी चाहिये ऐसा हेमाद्रिमें ब्रह्मवैवर्तका वचन है, और माधवीयमें तो गणेशव्रतमें मध्याह्नव्यापिनी ही मुख्य कही है कि, गणेशचतुर्थी तृतीयायुक्त श्रेष्ठ है और जो वह मध्याह्नव्यापिनी हो परे होय तो अगले दिन होती है, ऐसा बृहस्पतिका वचन है । हे राजन् ! प्रातःकाल श्वेततिलोंसे स्नान कर मध्याह्नमें पूजन करे ; ऐसा उसके कल्पमें विधान किया है इससे परदिन होनेसे परा करनी अन्यथा पूर्व करनी यह कहा है और जहां भाद्र शुक्ल चौथमें गणेशव्रत विषयमें मध्याह्नकी पूजा कही है उसके विषयके पहलेही वचन कह दिया है, वह सर्वत्रके नहीं हैं, कारण कि, संकष्टचतुर्थी आदिमें बहुतसे कालका बाध हो जायगा, इससे गणेशव्रतमें सर्वत्र पहलीही लेनी, यह सिद्ध हुआ और यह कहते हैं कि, संकष्टचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी और यदि दोनों दिन चन्द्रयोग होय तो तृतीयाका योग होनेसे प्रथमहीकी ग्रहण करनी । और तो यह कहते हैं कि यदि प्रथम दिन तीन मुहूर्त आदि तृतीयाका योग न होय और अगले दिन माधवकी कही मध्याह्नव्यापिनी हो तो सम्पूर्ण चतुर्थी होनेसे परली स्वीकार करनी, और यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी न हो तो परली करनी, और गौरीव्रतमें तो पहलीही लेनी कारण कि, गणेश गौरी बहुला इनसे अतिरिक्त जो चतुर्थी हैं वह दूसरे देवताओंके व्रतमें पंचमीयुक्त लेनी चाहिये ऐसा मदनरत्नमें ब्रह्मवैवर्त्तका वचन है ॥ माधवने सबही पंचमी पहली लेनी लिखी है । चतुर्थीसे युक्त पंचमी करनी षष्ठीसे युक्त नहीं चाहे

परया न तु । दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथासिता ॥ '' इति हारीतोक्तेः । हेमाद्रिमते तु कृष्णा पूर्वा सिता परा । ' कृष्णा पूर्वयुता सिता परयुता स्यात्पञ्चमी ' इति दीपिकोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया ॥ " प्रतिपत्पञ्चमी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा । नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः ॥ " इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ यत्तु–" पञ्चमी तु प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद " इत्यापस्तम्बीयं तत्स्कन्दव्रतपरम् ॥ " स्कन्दोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता " इति वाक्यशेषादिति माधवः ॥ तन्नागपूजाविषयमित्यनन्तभट्टनिर्णयामृतादयः ॥ चमत्कारचिन्तामणौ च–" पञ्चमी नागपूजायां कार्य्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरासु चतुर्थिका ॥ " इति ॥ तेन नागपूजादौ परैव ॥ यत्तु मदनरत्नदिवोदासीययोः–" श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी ॥ तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः ॥ " इति संग्रहोक्तेः ॥ " गणेशस्कन्दयोगाभ्यां क्रमान्नागः शुभाशुभः । मित्रामित्रे तयोः पत्रे नागानामाखुबर्हिणौ ॥ " इति षट्त्रिंशन्मताच्च ॥ श्रावणपञ्चम्यातिरिक्ताया नागपञ्चम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तम् ॥ तदुपवासादिविषयम् ॥ पंत्रे वाहने ॥ षष्ठीनिर्णयः । षष्ठी सर्वमते स्कन्दव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । ' नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन ' इति स्कान्दाच्च ॥

दैव चाहे पित्र्यकर्म हो चाहे शुक्ल चाहे कृष्णपक्ष हो ऐसा हारीतने कहा है । हेमाद्रिके मतसे तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी अगली ग्रहण करनी कारण कि यही दीपिकामें कहा है, कृष्ण पंचमी चौथसे युक्त और शुक्लपक्षकी छठसे युक्त लेनी, यथार्थमें तो हारीतका वचन उपवासके विषयमें है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है प्रतिपदा पंचमी सावित्री चौदश पूनौ नवमी दशमी यह जब परतिथिसे युक्त हों तो इनमें उपवास न करै, और जो आपस्तंबमें यह लिखा है कि हे नारद ! पंचमी षष्ठीसे युक्त करनी चाहिये, यह वाक्य स्कन्दव्रतके विषयमें है, इसमें माधवका यह विशेष वचन है कि, स्कन्दव्रतमें पञ्चमीयुक्त षष्ठी लेनी चाहिये अनन्तभट्ट निर्णयामृतादि इसको नागपूजाविषयक कहते हैं, चमत्कारचिन्तामणिमें भी लिखा है कि, नागपूजामें षष्ठीयुक्त पंचमी करनी कारण कि उसमें नाग प्रसन्न होते हैं, और शेष चतुर्थीयुक्त करनी इससे नागपूजामें परही करनी । और जो मदनरत्न दिवोदासीयमें लिखा है कि, श्रावण शुक्लमें जो नागपंचमी है उसको छोडकर और पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी उत्तम है, यह संग्रहका वचन है, कि चतुर्थीके योगसे क्रमसे नाग शुभ और अशुभ होते हैं कारण कि चौथ और छठमें नागोंके वाहन मित्र और अमित्र आखु और बर्ही होते हैं, इस प्रकार षट्त्रिंशकका भी मत है, श्रावणशुक्ल पंचमीसे अतिरिक्त पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी यह उपवासके विषयमें है ॥ स्कन्दव्रतके विना सबके मतमें षष्ठी परली ही ग्रहण की है इसमें युग्मवाक्य है, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, पंचमी–

सप्तमीनिर्णयः ॥ निर्णयामृते—"षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदंशुमालिनः । योगोयं पद्मको नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः ॥" सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'षष्ठ्या युता सप्तमी च कर्तव्या तात सर्वदा ' इति स्कान्दाच्च ॥ अष्टमीनिर्णयः । अष्टमी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा सिता परा । ' व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा ' इति माधवोक्तेः ॥ परयुक् शुक्लाष्टमी पूर्वयुक् कृष्णा इति दीपिकोक्तेश्च ॥ शिवशक्त्युत्सवे च कृष्णाप्युत्तरा ' पक्षद्वयेप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे '.इति माधवोक्तः ॥ बुधाष्टमीनिर्णयः ॥ दिवोदासीये भविष्ये—"यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत्कचित् । तदातदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप ॥ संध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने । बुधाष्टमी न कर्तव्या हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥ " अंत्यं पद्यं हेमाद्रौ न धृतम् । नवमीनिर्णयः ॥ नवमी तु सर्वमते पूर्वा युग्मवाक्यात् । ' न कुर्यान्नवमी तात दशम्या तु कदाचन ' इति स्कान्दाच्च ॥ दशमीनिर्णयः । दशमी तु पूर्वा परा च इति हेमाद्रिः ॥ 'कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येवं व्यवस्थिता' इति माधवः ॥ वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव ग्राह्या । 'दशमी तु प्रकर्त्तव्या सद्दुर्गा द्विजसत्तम' इत्यापस्तम्बोक्तेः ॥ यत्तु—'सम्पूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाथवा' इत्याङ्गिरसोक्तम् ॥ तन्नवमीयुक्तालाभे औदयिकी ग्राह्येत्येवं नैवम् ॥ एकादशीनिर्णयः । अथै-

---

विद्धा छठ कभी न करे ॥ निर्णयामृतमें लिखा है, जो षष्ठी सप्तमी रविवारके दिन हो यह पद्मक नामक योग सौ करोड सूर्यग्रहणके समान है, युग्मवाक्यसे सप्तमी पहली ही होती है, स्कन्दमें लिखा है, हे तात ! सदा सप्तमी छठके सहित करनी चाहिये ॥ और अष्टमी सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली होती है, ऐसा माधव कहते हैं, दीपिकामें भी यही लिखा है कि कृष्णपक्षकी अष्टमी सप्तमीसे युक्त और शुक्लपक्षकी नवमीसे युक्त लेनी । और शिवा शिवके उत्सवमें दोनों पक्षमें नवमीसे युक्त लेनी चाहिये, ऐसा माधव कहते हैं ॥ दिवोदासीयमें भविष्यका वचन है, जब जब शुक्लाष्टमी बुधवारी होय हे राजन् ! तब तब एकभक्तवाले मनुष्यको वह ग्रहण करनी चाहिये, सन्ध्याकाल चैत्र जनार्दनके शयनमें बुधाष्टमी न करनी चाहिये करनेसे पुरातन पुण्यको हरण करती है हेमाद्रिमें अन्तका पद नहीं लिखा है ॥ नवमी तो सबके मतमें अष्टमीसे युक्त पहली ही लिखी है, युग्मवाक्य होनेसे स्कन्दपुराणका वचन है हे तात ! दशमीयुक्त नौमी कभी न करनी चाहिये ॥ हेमाद्रि कहते हैं कि, दशमी पहली वा परली होती है । कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली करनी ऐसा माधव कहते हैं । यथार्थमें तो मुख्य नौमीयुक्तही ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! नौमीसे युक्त दशमी करनी ऐसा आपस्तम्बका वाक्य है, और जो यह अंगिराने कहा है—सम्पूर्ण दशमी पूर्व वा परसे युक्त करनी चाहिये, यह वचन तब जानना जब नवमीयुक्त न मिले ॥ अब एकादशीका निर्णय कहते हैं । एकादशी उपवासके

-कादशी ॥ तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा–निषेधपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च ॥ तत्राद्यः– "न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्मसूकरौ । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥" इति कौर्मदेवलाद्युक्तेः ॥ अग्निपुराणेपि–"गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति ॥ न चात्र पर्युदासेन व्रतविधिः, तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात् ॥ व्रतरूपस्तु ब्रह्मवैवर्ते–"प्राप्ते हरिदिने सम्यग्विधाय नियमं निशि । दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् ॥" इति ॥ इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्' इति शिवधर्मोक्तेः ॥ 'वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोप्येतत्समाचरेत्' इति सौरपुराणाच्च ॥ सोपि द्वेधा नित्यः काम्यश्च । 'उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि' इति गारुडोक्तेः ॥ 'पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्' इति नारदोक्तेश्च नित्यता ॥ "यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति कौर्मादिषु फलश्रुतेश्च काम्यता ॥ उभयैकादशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम् ॥ गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यम्, न कृष्णायाम् । "एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । वनस्थयति-

---

दो भेद हैं, एक निषेधपालन, एक व्रतरूपसे, पहला निषेधपालनात्मक कहते हैं । एकादशीके दिन शंखसे जल न पीये, कूर्म और शूकरको न खाय और दोनों पखवारोंमें एकादशीको भोजन न करै, यह कूर्मपुराण और देवलादिका वचन है । अग्निपुराणमें लिखा है--गृहस्थ, ब्रह्मचारी, अग्निहोत्री यह दोनों एकादशीको भोजन न करैं । यहां कोई कहै कि भोजनके निषेधसे व्रतकी विधि प्राप्त हो जायगी, सो उचित नहीं कारण कि, व्रतविधिका हेतु कोई व्रतादि शब्द उन वचनोंमें नहीं है । व्रतका स्वरूप तो ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है । एकादशीके प्राप्त होनेपर रात्रिमें सम्यक् प्रकारसे नियम करके नियमपूर्वक दशमीके दिनही वैष्णव व्रतका संकल्प करै । यह व्रत शिवके भक्तोंकोभी करना उचित है, शिवधर्ममें लिखा है–वैष्णव शैव कोई हो, एकादशीव्रत करना चाहिये । सौरपुराणमें लिखा है–वैष्णव, शैव, सूर्यभक्त कोई हो, यह व्रत करना चाहिये । यह भी नित्य और काम्यभेदसे दो प्रकारका है । गरुडमें लिखा है, दोनों पक्षकी एकादशीमें नित्य उपवास करना नित्य है । नारदभी कहते हैं प्रत्येक पक्षमें एकादशीका उपवास करना चाहिये, यह नित्यपरत्व है । जो विष्णुके सायुज्यकी इच्छा हो, अपने कल्याणकी इच्छा हो, श्री और सन्तानकी इच्छा हो तो एकादशी दोनों पखवारेकीमें भोजन न करे, इस प्रकार कूर्मपुराणादिकी फलश्रुतिसे काम्यता भी है । दोनों एकादशीका व्रत गृहस्थसे अतिरिक्तोंकोही नित्य है । गृहस्थको तो शुक्लमें ही नित्यव्रत है, कृष्णमें नहीं कारण कि देवल कहते हैं, दोनों पक्षकी एकादशीमें भोजन न करै, यह वनवासी और

धर्मोयं शुक्लामेव सदा गृही ॥ " इति देवलोक्तेः ॥ न चानेन निषेधपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंह्रियते, न तु व्रतमिति वाच्यम् । अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात् ॥ अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारोक्त्या विरोधः स्यात् ॥ निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात् । अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च ॥ तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये उपसंहारान्न गृहस्थस्य, कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः ॥ कथं तर्हि "संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥" इति नारदादिवचनेषु कृष्णानिषेधः, प्राप्त्यभावादिति चेच्छ्रूयताम्—"शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् । सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥" इति पाद्मे गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकी मध्यस्था या कृष्णा विहिता सा पुत्रवतो निषिध्यते ॥ अन्यकृष्णायां तु न विधिः । सर्वविधीनां वनस्थयतिषूपसंहारात् निषेधः प्राप्त्यभावात् ॥ शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्यनन्तभट्टहेमाद्र्यादिग्रन्थाः ॥ दीपिकापि—"असिता तु शयनी-

---

यतियोंका धर्म है, और गृहस्थोंको शुक्लाका व्रत करना चाहिये । यदि कोई कहै कि इस वचनसे वानप्रस्थ और संन्यासीके विषयमें निषेधके पालनकाही उपसंहार करते हैं व्रतका नहीं, सो उचित नहीं कारण कि, यह वाक्य पर्युदासद्वारा व्रतकी विधिका कहनेवाला है, यदि यह न मानोगे तो अग्निपुराणके वचनमें निषेधपालनमें जो गृहस्थीको अधिकार लिखा है उससे विरोध होगा इस कारण निषेधको निवृत्तिका कथन करनेवाला होनेसे विशेषकी अपेक्षा नहीं है, और इसीसे उपसंहारका अयोग है, और अभाव कभी किसीका धर्मभी नहीं हो सक्ता इस कारण इस वचनके द्वारा सम्पूर्ण सामान्य वाक्य जो एकादशी व्रतके बोधक हैं उनका वनवासी और संन्यासीके विषयमें उपसंहार होनेसे गृहस्थको नित्यव्रतकी विधि कृष्णपक्षमें प्राप्त नहीं होती ॥ और यदि ऐसा है तो क्यों नारदजी ऐसा कहते हैं कि, संक्रांति कृष्णपक्षकी एकादशी सूर्य चन्द्रमाका ग्रहण इसमें पुत्रवान् गृहस्थी उपवास न करै, इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि, निषेध प्राप्तिके विना नहीं होसकता ऐसी शंकापर यह समाधान है कि, देवशयनी और देवोत्थान इन दोनों एकादशियोंके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी है वही गृहस्थीको करनी चाहिये दूसरी नहीं इस पद्मपुराणके वाक्यसे आषाढ और कार्तिकके मध्यमें जो कृष्णपक्षीय एकादशी हैं उनमें उपवास करना कहाहै और पुत्रवालेको पूर्व कहे वचनसे उसकाही निषेध कहाहै और कृष्णएकादशीका तो विधान नहीं है, सब विधियोंमें वानप्रस्थ और संन्यासीके विषयमें समाप्ति होनेके कारण अभावसे निषेध नहीं है और पूर्वोक्तदेवशयनी देवोद्बोधिनी आदि जो वचन है वह पुत्री गृहस्थीके विषयमें जानने यह अनन्तभट्ट हेमाद्रि आदि ग्रन्थ कहते हैं । दीपिकामेंभी लिखाहै कि, शयनी बोधिनीके बीचमेंकी कृष्णा

बोधान्तरस्याप्यथो न स्यात्सात्त्विनोपि" इति ॥ मदनरत्ने भविष्ये–"यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा प्रिया । शुक्ला गृहस्थैः कर्त्तव्या भोगसन्तानवर्धिनी । मुमुक्षुभिस्तथा कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता ॥" इति ॥ निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां सर्वगृहिणां भवेत्येव । "पुत्रवांश्च सभार्यश्च बन्धुयुक्तस्तथैव च । उभयोः पक्षयोः काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम् ॥" इति नारदोक्तेः ॥ एतच्च सर्वं कालादर्शे उक्तम् "विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये ॥ उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः । भुजेर्निषेधः कृष्णायां सिद्धिस्तस्य ततो व्रते ॥" इति ॥ प्राच्यास्तु वैष्णवगृहस्थानां कृष्णापि नित्या । "नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥ सपुत्रश्च सभार्यश्च सुजनो भक्तिसंयुतः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति नारदोक्तेरित्याहुः ॥ पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः ॥ नारायणवृत्तौ–'पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्' इत्यत्रापत्यमात्रवाचित्वोक्तेः॥ 'जनयेद्बहुपुत्राणि' इति लिङ्गात् ।' पौत्री मातामहस्तेन' इति मनूक्तेः । पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु "स्त्रीभ्यो ढक्" इति पौत्रेय इत्यापत्तेः ॥ 'पुमान् पुत्रो जायते' इति च ॥ उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः–"उपवा-

---

एकादशीको पुत्रवालाभी गृहस्थी करै । मदनरत्नमें भविष्यपुराणका वचन है । जैसी शुक्ला वैसीही कृष्णा द्वादशी मुझको सदा प्यारी है, शुक्ला गृहस्थियोंको करनी चाहिये यह भोग और सन्तानकी बढानेवाली है, मुमुक्षुओंको कृष्णा करनी चाहिये जो २ उनके आचार्यने कही है । निषेधका पालन और काम्यव्रत तो सब कृष्णा एकादशियोंमें सब गृहस्थी करैं; कारण कि, नारद यह कहतेहैं कि, पुत्रवान् भार्यायुक्त और बन्धुसम्पन्न गृहस्थी विष्णुके काम्यव्रतको दोनों पखवारेमें करै. यह सब कालादर्शमें कहा है कि, विधवा, वानप्रस्थ और संन्यासी यह दोनों एकादशी और पुत्रवान् गृहस्थी शुक्लामें व्रत करै और भोजनका निषेध तो गृहस्थीको कृष्णामेंभी है, इससे उसका व्रत सिद्ध होताहै, प्राच्योंका यह कथन है कि, वैष्णव गृहस्थियोंको कृष्णा एकादशीभी नित्य है, कारण कि, नारदने यह लिखा है कि, विष्णुकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य प्रत्येक पक्षमें एकादशीका व्रत करै, पुत्र स्त्री बंधु सम्पन्न भक्तिमान् मनुष्यभी दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत करै, इन वाक्योंमें पुत्रशब्दसे सन्ततिमात्रका कथन जानना ॥ नारायणवृत्तिमें कहाहै कि, पुरुषही मेरे अपत्य हों इसमें अपत्यमात्रका वाची पुत्रशब्द कहाहै और मनु भी कहते हैं कि, नानाभी उस पुत्रके पुत्रसे पोतेवाला होताहै पुत्रके पुत्रको पौत्र कहते हैं यदि बेटीका जो अपत्य ऐसा अर्थ होता तो (स्त्रीभ्यो ढक्) इस अष्टाध्यायीके सूत्रसे ढक् प्रत्यय होनेसे पौत्रेय पद होता और पुमान् पुत्र सन्तान होता है ऐसा भी कहा है इससे भी पुत्रपद अपत्यका बोधक विदित होता है । वायुपुराणमें उपवासके निषेधमें कहा

सनिषेध तु भक्ष्यं किंचित्प्रकल्पयेत् ॥ न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥" भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्–" नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम् । यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥ " इत्यलम् ॥ दशमीवेधनिर्णयः । तत्र दशमीवेधो द्वेधा– अरुणोदयवेधः, सूर्योदयवेधश्चेति ॥ आद्यो गारुडे–" दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दि नैकादशीव्रतम् ॥" इति ॥ अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे–'उदयात्प्राक्चतस्रस्तु घटिका अरुणोदयः ' इति । यदपि–" उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता । संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥ " इति गारुडसौधर्मादिवचनम् । यच्च भविष्ये–" आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता ॥ " इति ॥ तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ यत्तु ब्रह्मवैवर्ते–" चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः । चतुष्टयविभागोत्र वेधादीनां किलोदितः ॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् । अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासंदर्शनाद्रवेः ॥ " महावेधोपि तत्रैव दृश्यते । " तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः " इति तदप्यवयवद्वारा

है कि, यदि कोई वस्तु उपवासके निषेधमें भक्षण करले तो उपवासके न करनेसे वह दूषित नहीं होता, और उसको उपवासका फल प्राप्त होता है, भक्ष्य वस्तु वहीं कही है, नक्त, हविष्य, अन्न, चावल, फल, तिल, दूध, जल, घी, गौका दूध, वायु इनमें क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जानने, विस्तारसे अलम् ॥ दशमीका वेध एकादशीविषयमें दो प्रकारका है, पहला अरुणोदयका और दूसरा सूर्योदयका वेध, प्रथम गरुडपुराणमें इस प्रकार कहा है । यदि दशमीके शेषमें अरुणोदय होय तो वैष्णव एकादशीव्रत न करें और माधवीयमें स्कंदके वचनसे इस प्रकार अरुणोदयका स्वरूप कहा है कि, सूर्योदयमें प्रथम चार घडी अरुणोदयकाल होता है, और गरुड और धर्मादिका जो यह वाक्य है कि, हे ब्राह्मण ! यदि उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी होती है, गृहस्थीको उसमें ही व्रत करना चाहिये, और जो भविष्यका यह वाक्य है कि, सूर्यके उदयसे प्रथम दो मुहूर्त होय तो वह एकादशी सम्पूर्ण जाननी, और इसके सिवाय विद्धा जाननी, उपसंहारके न्यायसे यह दोनों वाक्य भी चार घडीके विषयमें ही जानने, हेमाद्रिमें भी यही है और जो ब्रह्मवैवर्तमें यह लिखाहै कि, प्रभात-समय चार घडी अरुणोदयका निश्चय है, और चार प्रकार वेधादिका विभाग कहा है, १ साढे तीन घडी अरुणोदय है, २ सूर्यकी प्रभा दीखनेसे दो घडी अतिवेध है, ३ सूर्यका दर्शन हो वा न हो वह महावेध भी वहां हीहै, चौथा वेध वहां यह लिखा है कि, जो दशमी सूर्य उदयके समय हो । यह वचन भी अवयवके द्वारा अरुणोदयवेधपरही है यह माधवीय और मदनरत्नमें लिखा है, इनसें भिन्न

अरुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च ॥ अन्यस्तूदयवेधः ॥ तथान्येपि वेधाः ॥ हेमाद्रौ माधवीये च गारुडे—" उदयात्प्राक् त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा । संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ उदयात्प्राङ्मुहूर्तेन व्यापिन्येकादशी यदा । संयुक्तैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये ॥ " हेमाद्रौ—रात्रेरन्त्योष्टमो भागोप्यरुणोदय उक्तः ॥ "निशः प्रान्ते तु यामार्धे देवतादिप्रवादने । सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते ॥ " इति स्मृतेः ॥ अत्रैके एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्तद्वयेन क्रोडीकारात् 'निशःप्रान्ते' इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयोनेकेऽरुणोदयाः । तदाह हेमाद्रिः—" सार्धघटिकात्रयोत्तिरष्टाविंशति-

उदयवेध जानना ॥ इसी प्रकार और वेध भी हेमाद्रि, माधव और गरुडपुराणमें कहे हैं, जो उदयसे पहले एकादशी तीन घडी व्यापिनी हो यह संदिग्धा एकादशी है, धर्मकी वृद्धिवालोंको यह त्यागनी चाहिये और जो एकादशी उदयसे पहले एक मुहूर्त हो वह संयुक्ता एकादशी है धर्मवृद्धिके अर्थ उसे भी छोडदे, हेमाद्रिमें रात्रिके अन्तका आठवां भाग अरुणोदय लिखा है, रात्रिके अन्तमें वह आधा पहर जब देवताओंके निमित्त बाजे बजैं अथवा जब सरस्वतीका अनध्याय हो तब अरुणोदय होता है, ऐसी स्मृति है । किन्होंका इसमें यह कहना है कि, इन सब पक्षोंसे मुहूर्त आनेसे और 'निशः प्रान्ते' इस स्मृतिके वचनसे रात्रिमानके अनुसार तीन घडी आदि अनेक अरुणोदय होते हैं यहां हेमाद्रि कहते हैं कि, साढे तीन घडीके वेधका कहना तब जानना जब अट्ठाईस घडी रात्रिका मान हो और यदि इससे अधिक रात्रिका

१ पूर्णा खण्डा और विद्धाके भेदसे एकादशी तीन प्रकारकी है उनमें ६२ मुहूर्तव्यापिनी पूर्णा, जो सूर्यके उदयसे प्रतिपदा आदि चर्ली आवै वह एकादशीको छोडकर और पूर्णा कहाती है, ऐसा स्कन्दमें निषेध होनेसे लिखा है कि, हे प्रिय ! जो उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो वह पूर्णा एकादशी व्रतके योग्य है यह गरुडमें कहा है इसमें विशेष भी है कि सूर्योदय ६० घडीपर्यन्त एकादशी हो तो सम्पूर्ण एकादशी धर्मफलवालोंको करनी चाहिये यह गरुडमें लिखा है अरुणोदयव्यापिनी परदिनमें न्यून होनेसे खण्डा कहाती है अरुणोदयव्यापिनी विद्धा होती है आदित्यके उदयसे दो मुहूर्त पहले तक होनेसे एकादशी सम्पूर्ण होती है इससे भिन्न विद्धा होती है यह भविष्यमें लिखा है । विद्धा भी संदिग्ध और संयुक्त भेदसे दो प्रकारकी है । पुत्र और राज्यकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें उपवास कर त्रयोदशीमें पारण करनेसे सौ यज्ञका फल मिलता है यह काम्य उपवास कहकर विधान किया । अब संदिग्धमें लक्ष देकर निषेध करते हैं । पुत्र पौत्रकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें व्रत करै त्रयोदशीमें पारणासे सौ यज्ञका फल है यह विहित काम्य उपवास व्रतका लक्ष कर निषेध करते हैं । उदयादिति—यह दोनों वाक्य वैष्णवोंसे भिन्न दूसरोंके विषयमें हैं । वैष्णवोंके प्रति (नैवोपोष्यं वैष्णवेन)-इस वचनसे व्यर्थ होनेसे इस प्रकार साधारणसेही निवृत्तिसाधारणद्वारा निषेध होनेसे कहा ॥

घटीमितरात्रिविषया । महत्तरास्तु—'रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिकाः इत्युक्तामिति' इत्याहुः ॥ तत्र अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः न च मुहूर्तद्वयमर्थः । दण्डद्वयैकमुहूर्तादिवेधानां तथाप्यनुपपत्तेः । नहि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति । मुहूर्तद्वयस्य यामार्द्धस्य च चतस्रो घटिका इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः न च 'सार्द्धं तु घटिकात्रयम्' इत्यनेनापि तदापत्तिः शंक्या । तेन चतुर्दण्डवेधस्यैवोक्तेः । चतुर्दण्डेऽर्धघटीदशमीसत्त्वे हि वेधस्तदर्थः । द्विघटिकादौ तदयोगाच्च ॥ यत्तु मतम्—कियतारुणोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्द्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेऽर्धघटिकातो न्यूनदशमीसत्त्वे न दोष इति ॥ तत्तुच्छम् ॥ द्विदंडादावपि तदापत्तेः । "दशमी-

मान होय तो उसकी अपेक्षासे चार घडीका अरुणोदय जानना ऐसा जो कहना है सो ठीक नहीं कारण कि, ऐसा कहनेसे अरुणोदय पदके अनेक अर्थ हो जायँगे और जो कहै कि, अरुणोदयका अर्थ दो मुहूर्त है यह भी ठीक नहीं इसमें भी दो घडी वा एक मुहूर्तका वेध नः वन सकेगा, कारण कि उनको आधा पहर और अरुणोदय नहीं वन सकते, और दो मुहूर्त तथा आधे पहरकी चार घडी मानकर जो पूर्ती की है यह अर्थ योग्य नहीं है और यदि कहो कि, साढे तीन घडीके वचनसे अरुणोदय हो जायगा सो भी ठीक नहीं है कारण यहाँ इस प्रकार चार घडी पर वेध लिखा है कि जो चार घडीके आरंभमें आधी घडी दशमी होय तो वेध होता है यह दो घडीके अरुणोदयमें नहीं हो सकता और जो किसीने यह स्वीकार किया है कि, वेध कितने अरुणोदयपर होता है यह अपेक्षा प्राप्त होने पर अरुणोदयमें साढे तीन घडीके नियमसे आधी घडीसे न्यून दशमी होय तो कुछ दोप नहीं यह मन्तव्य तुच्छ है कारण

" तथा च--एकादशी त्रेधा--पूर्णा, खण्डा, विद्धा चेति भेदात् ॥ तत्र या द्वाविंशन्मुहूर्त्तव्यापिनी सा पूर्णा 'प्रतिपत्प्रभृतिः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः । सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिता' इति स्कान्दे हरिवासरपर्युदासात् तत्र 'उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । सम्पूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥' इति गारुडात् । अत्र विशेपापेक्षायाम् 'आदित्योदयवेलायां आरभ्य षष्टिनाडिकाः । सम्पूर्णैकादशी नाम कार्या धर्मफलेप्सुभिः' ॥ इति गारुडे द्रष्टव्यम् ॥ अरुणोदयव्यापिन्याः परदिने न्यूनत्वे खण्डा ॥ अरुणोदयाव्यापिनी तु विद्धा ' आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता । ' इति भविष्यात् ॥ विद्धापि द्वेधा--संदिग्धा संयुक्ता च ॥ तत्र ' पुत्रराज्यप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र ऋतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥ ' इति विहितं काम्योपवासं संदिग्धां लक्षयित्वा तत्र निषेधति--उदयादिति ॥ 'पुत्रपौत्रप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र ऋतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥' इति विहितं काम्योपवासं संयुक्तां लक्षयित्वा तत्र निषेधति--उदयादिति ॥ एतच्च वाक्यद्वयं वैष्णवेतरविषयम् । वैष्णवान्प्रति तन्निषेधवैयर्थ्यात् ' नैवोपोष्यं वैष्णवेन ' इति सामान्यत एव निवृत्य साधारण्येन निषिद्धत्वात् ॥ इति टीका ॥ "

शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥" इति गारुडे भविष्ये च योगमात्रनिषेधात् ॥ नारदीयेपि—"लववेधेपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत् । सुराया बिंदुना स्पृष्टं गङ्गांभ इव निर्मलम् ॥" स्कान्देपि—"कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो । एकादश्यां न कर्तव्यं व्रतं राजन्कदाचन ॥" इति ॥ तत्र कलादिवेधनिर्णयः । माधवोप्याह—सोऽयं कलादिवेधोऽरुणोदयवेधे सूर्योदयवेधे च समान इति ॥ निगमेपि—'सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः' इति ॥ अत एव माधवेन—'अरुणोदयाद्यदंडेऽल्पदशमीस्पर्शे संपृक्ता, कृत्स्नघटीयोगे संदिग्धा, मुहूर्तव्याप्तौ संयुक्ता, उदये संकीर्णा' इत्युक्त्वा "अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता । संपृक्तैकादशीं तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः ॥" इति गोभिलाद्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवेधो निषिद्धः ॥ यत्त्वष्टमभागोरुणोदय इति हेमाद्रिणोक्तम्, यच्च महत्तरा रात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव दूषितम्, अन्तेप्युक्तम् । वेधतारतम्यं च दोषतारतम्यादुपपद्यत इति ॥ दोषतारतम्यं च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते तच्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—"अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कुर्वन्नेकादशीं नरः । दशमी-

---

कि, दो घडीके अरुणोदयमें भी यही बात होगी । जिस दिन अरुणोदयमें दशमी शेष हो वष्णवोंको उस दिन एकादशीव्रत न करना चाहिये इस गरुड और भविष्यपुराणके मतसे दशमीके योगमात्रमें व्रतका निषेध है । नारदपुराणमें लिखा है हे राजन् ! जो दशमीका एकादशीसे लवमात्र भी वेध हो तो उसे त्यागन कर दे जैसे सुराकी बूंदसे निर्मल गंगाजल अपेय हो जाता है तद्वत् छोड दे, स्कन्दपुराणमें भी लिखा है हे राजन् ! यदि काष्ठा कलायुक्त भी दशमी हो तो एकादशीका व्रत कभी न करै ॥ माधवने भी लिखा है सो यह कला आदिका भेद अरुणोदय और सूर्यके वेधमें तुल्य है, निगममें भी लिखा है यह सब प्रकारकाही वेध उपवासका दूषक है इसी कारण माधवने यह कहकर कि, अरुणोदयकी प्रथम घडीमें थोडाभी दशमीका स्पर्श होय तो सम्पृक्ता, पूरी घडीका योग होनेसे सन्दिग्धा, मुहूर्तकी व्याप्तिमें संयुक्ता और उदयमें दशमी होय तो यह एकादशी संकीर्णा होती है, फिर इस गोभिलके वचनसे यह कहा है कि अरुणोदयके समय दशमीका संग होनेसे सम्पृक्ता एकादशी होती है, प्रभुने उसे मोहिनीको दिया है और पूर्वमें कहे गरुडादिके वचनसे भी सामान्य और विशेष रीतिसे भी अरुणोदयका वेध निषिद्ध है, और जो हेमाद्रिने अरुणोदयको रात्रिका आठवां भाग लिखा है और जो दीर्घरात्रिमें चार घडी वेध कहा है यह स्वयंही दूषित कियाहै और पीछे लिखाहै कि, वेधका न्यून अधिकता दोष न्यूनाधिक्यसे सिद्ध होताहै और दोषकी न्यूनता और अधिकाई प्रायश्चित्तकी न्यूनाधिकतासे जानी जाती है यह हेमाद्रिमें और स्मृतिके वचनसे लिखा है जो मनुष्य अज्ञान वा मोहसे दशमीशेष एका-

शेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत् ॥ कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां च दद्यात्सवत्सकाम् । सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम् ॥ " विधानान्तरं तत्रैव-"ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशद्गां च दद्यात्सवत्सकाम् । धरणस्यार्धकं देयं तिलद्रोणमथापि वा ॥ " इति ॥ अत्र वेधतारतम्याद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः । ' निशः प्रान्ते' इत्यपि दोषाधिक्यार्थमेव ॥ तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम् । तेन षट्पञ्चाशद्दण्डानंतरं दशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेध उक्तो भवति ॥ अंत्योपि तत्रैव कण्वेनोक्तः-" उदयोपरि विद्धा तु दशम्यैकादशी यदि । दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान्पाकशासनः ॥ " इति ॥ स्मृत्यन्तरेपि " दशम्याः प्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः । तेन स्पृष्टं हरिदिनं दत्तं जम्भासुराय तत् ॥ " इति ॥ तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः । तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात् ॥ तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे-" परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ॥ विष्ण्वर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥ " इति ॥ यद्यपि पित्रादेरागमदीक्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादेः तथापि स्वपारम्पर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्त्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः ॥ अत्रान्येषामतिप्रसक्तेर्व्यभिचाराद्वैष्णवदीक्षावत्त्वमेव वैष्णवत्वम् ॥ तत्त्वसागरे भविष्ये-" यथा शुक्ला

दशीको करता है वह चौथाई कृच्छ्र करके वत्ससहित गौ आधा सुवर्ण और द्रोण (३२ सेर) तिल देकर प्रायश्चित्त करै इन प्रायश्चित्तोंमें वेधकी न्यूनाधिकतासे व्यवस्था है । यह हेमाद्रिका कथन है निशिप्रान्ते यह पूर्वोक्त वचनभी दोषकी अधिकताके निमित्त है इससे यह सिद्ध है कि, चार घडीकाही अरुणोदय होता है, इससे छप्पन घडीके उपरान्त दशमीके प्रवेशमें अरुणोदय लिखागया है कण्वके इस वचनसे और वेधभी यहीं कहा गया है, यदि दशमीमें सूर्योदयके उपरान्त एकादशी हो उसका फल इन्द्रने दानवोंकी प्रसन्नताके निमित्त प्रदान कियाहै और स्मृतियोंमेंभी लिखाहै यदि दशमीके अन्तमें सूर्योदय हो तो वह दशमीमिश्रित दिन राक्षसोंको मिलताहै, अर्थात् जम्भ असुरके निमित्त है । उसमें अरुणोदयवेध वैष्णवोंके विषयमें है कारण कि, उन वाक्योंमें वैष्णवपदका ग्रहण है, उसका स्वरूप तो माधवीयमें स्कन्दपुराणके वचनसे लिखाहै कि, जिसको वैष्णवी दीक्षा है वह चाहै परम आपत्ति और परम हर्षको प्राप्त होवै एकादशी न त्यागे जिसने अपने सम्पूर्ण आचार विष्णुको अर्पण कर दियेहैं उसको वैष्णव कहते हैं, यद्यपि पिता आदिको शास्त्रसे विष्णुकी दीक्षा होय तौ पिताही वैष्णव होगा, उसके पुत्र आदि वैष्णव न होंगे तौभी निज कुलकी परम्परासे प्रसिद्धिके कारण वृद्ध उनको वैष्णव और स्मार्त मानते हैं, परन्तु यथार्थमें व्यभिचारके अभावसे वही वैष्णव होसकताहै, जिसे विष्णुकी दीक्षा हो । तत्त्वसागरमें भविष्यका वचन है जो शुक्ल और कृष्ण एकादशियोंको तुल्य

तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥" केचित्तु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । उदयवेधस्तु परिशेषात् स्मार्तगोचरः । तदाह माधवः—" अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा । उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ॥ " हेमाद्रिस्तु केषांचिदर्धरात्रेपि दशमीवेधमाह—" अर्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध उच्यते । कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥ " इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अस्यार्थः—' अनद्यतने लङ् ' इत्यत्रातीताया रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागामिन्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च स काल एषोद्यतनः । स काल इत्युक्तं महाभाष्ये स एष वर्तमानः काल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः । तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या । अत एव हेमाद्रौ "दशम्याः संगदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा ॥ " इति दोष उक्तः ॥ चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः । स्वमते तु रात्रेस्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः । सोप्यरुणोदय एव । 'सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः ' इति मार्कण्डेयपुराणात् । ' प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः ' इति कोशादरुणोदयमारभ्य सूर्यांशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः । तेन मतभेदाद्व्यवस्थेति

मानताहै उसको वैष्णव कहतेहैं । कोई दशमीमें नौमीका वेध हो तो इसको भी त्यागन करतेहैं परन्तु इसमें प्रमाण खोजना चाहिये, और उदयवेध तो परिशेष होनेसे स्मार्तोंके निमित्त है सोई माधवने कहा है दशमीके अरुणोदयमें और सूर्योदयमें दोनों वेध क्रमसे वैष्णव और स्मार्तोंके निमित्त हैं, और हेमाद्रि तौ ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनसे किसीके मतमें अर्धरातमें दशमीका वेध इष्ट कहते हैं परन्तु वह कहते हैं इसको भगवान्के प्रिय आचार्य कपालवेध कहते हैं यह मेरा मत नहीं है कारण कि, रात्रि तीन पहरकी ही इष्ट है । इसका यह अर्थ है (अनद्यतने लङ्) अनद्यतन कालमें लङ् लकार हो इसपर महाभाष्यमें यह लिखा है कि, बीती हुई रात्रिके पिछले दो पहर और आनेवाली रातके पहले दो पहर और मध्यका सारा दिन अद्यतन काल है, इसीको वर्तमान कहते हैं इसी अहोरात्र समयमें एकादशीका व्रत करना चाहिये यदि उसमें दशमीका प्रवेश हो जाय तौ विद्धा एकादशी त्याग देनी चाहिये. इसीसे उसके विषयमें हेमाद्रिने दोष लिखा है कि, आधीरातसे उपरान्त दशमीके संग दोषसे दिनके चार पहरोंका संकल्प और पूजनमें सदा त्याग दे. और अपने मतमें तौ निशा तीन पहरकी होनेसे रातको तीन पहरही पूर्वका शेष हो जाता है, इससे चौथे पहरमेंही वेध युक्त है और वहभी अरुणोदयमेंही जानना, कारण कि, सूर्योदयके विना स्नान दानादिका क्रम नहीं होता ऐसा मार्कण्डेयपुराणमें लिखा होनेसे और 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः ' ऐसा कोषसे अरुणोदयसे आरंभ करके सूर्यकी किरण जबतक प्रवृत्त हों तबतक उसमेंही वेधका निषेध है, इससे कोई इसकी

केचित् ॥ कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयं स्तुतिरिति तु माधवः ॥ यत्तु 'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इति वेधः स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः ॥ "सर्वप्रकारवेधोयमुपवासस्य दूषकः ॥ सार्धसप्तमुहूर्त्तस्तु योगोयं बाधते व्रतम् ॥" इति निगमादित्यलम् ॥ अत्र माधवमते–वैष्णवैररुणोदयविद्धा त्याज्या ॥ एकादशीद्वादशीवृद्धौ विशेषः । यदा त्वेकादश्येव शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी वा उभयं वा तदा परोपोष्या । "एकादशी द्वादशी वाधिका चेत्त्यज्यतां दिनम् । पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः ॥" इति माधवोक्तेः ॥ स्मार्त्तैस्तु–सूर्योदयविद्धा त्याज्या ॥ 'यदा त्वेकादशी शुद्धा सती वर्धते द्वादशी च समा न्यूना वा तदा गृहस्थैः पूर्वा, यतिभिरुत्तरा कार्या । "प्रथमेहनि सम्पूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता । द्वादश्यां च तथा तात दृश्यते पुनरेव च ॥ पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो ॥" इति स्कान्दोक्तेः ॥ वर्धमानोप्येवमेवाह ॥ उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां परैव । "सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥" इति नारदोक्तेः । द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव । "न चेदेकादशी विष्णौ द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्यैकादशी तत्र यदीच्छेत्परमं

मत भेदसे व्यवस्था करते हैं, कैमुतिकन्यायसे यह अरुणोदयवेधकी ही स्तुति है । और जो दश पन्द्रह घडीका वेध किसीने लिखा है, वह उपवाससे भिन्नमें जानना, कारण कि, निगममें यह लिखा है कि, यह सब प्रकारका वेध उपवासको दूषित करता है, और साढे सात घडीका वेध व्रतको दूषित करता है, विस्तार नहीं करते हैं, इसमें वैष्णवोंको माधवके मतसे अरुणोदय वेधवाली एकादशी त्यागनी चाहिये ॥ और जब शुद्ध एकादशीहीकी वृद्धि हो वा द्वादशी बढै अथवा दोनों बढ जांय तो माधवके कहे अनुसार दूसरे दिन व्रत करना, अर्थात् एकादशी वा द्वादशी तिथि बढ जाय तो पहले दिनको त्याग दे अगले दिन व्रत करै यह वैष्णवोंका निर्णय है और स्मार्तोंको तो सूर्योदयविद्धा एकादशी त्यागनी चाहिये और जब शुद्ध एकादशी बढै द्वादशी उसके समान हो वा न्यून हो तो प्रथम दिन गृहस्थ और दूसरे दिन संन्यासी उपवास करैं यदि एकादशी पहले दिन सम्पूर्ण अहोरात्रव्यापिनी होय और हे तात ! द्वादशीमेंभी दीखे तो गृहस्थियोंको पहली और संन्यासियोंको पिछली करनी चाहिये ऐसा स्कन्दपुराणमें लिखा है, वर्द्धमान भी कहते हैं यदि दोनोंकी वृद्धि होय तो शुद्ध हो चाहै विद्ध सबकी पहली ही होती है । जब एकादशी पूर्ण दिन हो और प्रभातमें फिर भी हो तो सबको दूसरे दिन व्रत करना चाहिये, जो उससे अगले दिन द्वादशी होय तो यह नारदने कहा है । यदि द्वादशी मात्रकी वृद्धि हो तो प्रथमही होती है, कारण कि, यह भी नारदजी ही कहते हैं एकादशीकी वृद्धि न हो और अगले दिन

यदम् ॥ " इति नारदोक्तेः । " द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते । शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः ॥ " इति माधवोक्तिश्च ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु–" विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धापि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि ॥ " इति हेमाद्रौ पाद्मवचनम् ॥ तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम् । तदुक्तं माधवेन–" एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ॥ तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम् ॥ " इति ॥ द्वादशीमात्रवृद्धौ निर्णयः । विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा । पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः । " एकादशीविवृद्धौ चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः । उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥ " इति प्रचेतसोक्तेः ॥ एतच्छुद्धाविद्धातुल्यमिति माधवः ॥ " त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किंचन । उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि च ॥ " इति स्कान्दात् ॥ "अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु । मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः ॥ " इत्यृष्यशृङ्गोक्तेश्च । मुहूर्तपञ्चककमरुणोदयमारभ्य ज्ञेयम् । अन्यथोत्तरेऽहि एकादश्यभावासम्भवात् ॥ तथा च स एव–" सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा मा भूद्यस्मान्नि-

---

द्वादशी हो तो परमपदकी इच्छावालेको उस एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये, माधव कहते हैं केवल द्वादशी मात्रकी वृद्धि हो तौ स्मार्तोंने इस शुद्ध विद्धाकी व्यवस्थामें ऐसा निर्णय कहा है कि, पहली शुद्धा और दूसरी विद्धा होती है, मदनरत्नमें भी यही लिखा है और हेमाद्रिमें जो पद्मपुराणका यह वचन है कि यदि परे द्वादशी न होय तो विद्धा भी एकादशी अविद्धा जाननी चाहिये और द्वादशी होय तो अविद्धा भी विद्धा जाननी चाहिये । एकादशीकी वृद्धिमें यह वचन है सोई माधव कहते हैं जो एकादशी द्वादशी दोनोंकी वृद्धि होय तौ स्मार्तोंको पहला दिन छोडकर दूसरे दिन करनी चाहिये ॥ यदि एकादशी विद्धा होय द्वादशीमात्रकी वृद्धि होय तो सबके मतमें परली होती है और यदि एकादशीमात्रकी वृद्धि हो तो गृहस्थको पहली यतिको परली करनी चाहिये । यह पूर्वोक्त पक्षका वचन है । और प्रचेता भी कहते हैं कि शुक्लपक्षमें कृष्णपक्षमें एकादशीकी वृद्धि होय तो पहली गृहस्थी और यति अगली करै यह वचन शुद्धा और विद्धामें तुल्य है ऐसा माधव कहते हैं यदि द्वादशी कुछभी त्रयोदशीमें न मिलै तो दशमीसंयुक्त एकादशीमें भी व्रत करले यह स्कन्दमें लिखा है और ऋष्यशृङ्ग यह कहते हैं कि, निषिद्धोंसे विना विधे वहुधा दिन नहीं मिलते हैं इससे एकादशी तिथि पांच मुहूर्तोंसे विद्धा हुई भी ग्रहण कर लेनी चाहिये, अरुणोदयसे आरम्भ कर पांच मुहूर्त लेने नहीं तो अगले दिन कहै एकादशीके अभावकी असंभवता प्राप्त होगी उनका ही यह कहना है कि मनुष्योंको सर्वत्र द्वादशीसे मिली एकादशी करनी चाहिये प्रभातकालमें हो वा न हो कारण कि, उपवास नित्य है

त्यमुपोषणम् ॥" यदपि हेमाद्रिणा-'शुद्धसमा शुद्धन्यूना, वा अधिकद्वादशीका चेत्सर्वेषां परैवेत्युक्तम्' तदपि वैष्णवविषयम् ॥ स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्यविरोधः ॥ हेमाद्रिमते तूच्यते तत्र-"शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः ॥" इत्यष्टादशैकादशीभेदाः॥ तत्र शुद्धाधिकन्यून-द्वादशिका शुद्धाधिकसमद्वादशिका च सकामैः पूर्वा, निष्कामैरुत्तरा कार्या। 'प्रथ-मेहनि सम्पूर्णा' इति पूर्वोक्तस्कान्दात्। ऊनद्वादशिकायां तु विष्णुप्रीतिकामैरुपवा-सद्वयं कार्यम्। "सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नु-पवासः कथं भवेत् ॥ उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः ॥" इति वृद्धवसि-ष्ठोक्तेः॥ शुद्धन्यूना शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना विद्धसमा वाधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः॥ मदनरत्ने तु शुद्धाधिका परा। 'सम्पूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः। अन्या पूर्वा। "शुद्धा यदा समा हीना समा हीनाधिकोत्तरा। एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि ॥" इति स्कान्दात्। शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी। 'न चेदेकादशी विष्णौ' इति नारदोक्तेश्च ॥ यत्तु-'अवि-

---

और जो हेमाद्रिने यह लिखा है कि शुद्धके तुल्य शुद्धसे न्यून अधिक द्वादशीयुक्त एका-दशी होय तो परली ही सबके मतमें होती है यह भी वैष्णवोंके विषयमें है। और स्मार्तोंकी तो प्रथमहीकी होती है इसमें कोई विरोध नहीं ॥ हेमाद्रिके मतमें तौ यह लिखा है कि एकादशीके यह अठारह भेद हैं, वह इस प्रकार हैं शुद्धा विद्धा-यह प्रत्येक न्यून सम और अधिक होनेसे छः भेद हुए फिर द्वादशीसे सम न्यून और अधिक यह तीन प्रकार हुए प्रत्येकके साथ यह तीन मिलानेसे ६+३=१८ भेद हुए जिसमें शुद्धासे अधिक वा न्यून द्वादशी हो तौ सकाम पुरुष पहली और कामनारहित पिछली एकादशी (प्रथमेहनि सम्पूर्णा) इस स्कन्दके वचनसे करे। यदि एकादशीसे न्यून द्वादशी होय तो भगवान्के प्रिय करनेवाले भक्तोंको दो व्रत करने चाहिये, कारण कि, वृद्धवसिष्ठ कहते हैं कि, जब सम्पूर्ण एकादशी हो और प्रभातकालमें फिर भी द्वादशीकी हानि हो जाय तो उपवास कैसे करे तो ऐसे स्थलमें नारायणके प्रियकारीको दो उपवास करने चाहिये। और शुद्धसे न्यून, अधिक, वा सम हो तो तथा विद्धसे तुल्य वा अधिक द्वादशीवाली एकादशी सबके मतसे परली ही होती है यह हेमाद्रिका कथन है मदनरत्नमें तो यह लिखा है शुद्धाधिका एका-दशी परली ही होती है (सम्पूर्णैकादशी यत्र) इसमें यह वचन प्रमाण है और इससे भिन्न होय तो पहली करनी चाहिये, कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि जब समहीन शुद्धा एकादशी हो। अथवा समहीन अधिक द्वादशी हो तो उस शुद्ध एकादशीका वैष्णव भी उपवास न करैं शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी, (न चेदेकादशी विष्णौ) इस नारदजीके कथनसे यह

द्धापि च विद्धा स्यात् ' इति पाद्मम् । तच्छुद्धाधिकापरम् ॥ यत्तु "सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि । उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम् ॥ " इत्यादि तद्वैष्णवपरम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ विद्धन्यूना समद्वादशिका तु मुमुक्षूणां पुत्रवतां च परा, अन्येषां पूर्वा ॥ पुत्रवतोपि पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः ॥ मुमुक्षूणां परा, अन्येषां पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः पराऽन्यैः पूर्वा कार्या "दशमीमिश्रिता पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते । शुद्धवद्द्वादशीं राजन्नोपोष्या मोक्षकांक्षिभिः ॥ " इति व्यासोक्तेः । मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव । "सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यमुपोषणम् ॥ इति पाद्मोक्तेः ॥ विद्धाधिका समद्वादशिका च सर्वेषां पूर्वैव । "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् । तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥ " इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ॥ माधवमते तु-अत्र गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षपापक्षयविष्णुप्रीं-

---

विदित है कि, अविद्धाकोभी ऐसे स्थलमें विद्धा जाने, यह पद्मका वचन शुद्धाधिकाके विषयमें जानना चाहिये ॥ और जो यह कथन है कि, यदि आगे द्वादशी हो तो सम्पूर्ण एकादशीको छोडदे, और शुद्ध द्वादशीमेंही उपवास और पारणा करै यह वचन वैष्णवोंके विषयमें है । यह पहलेही कह दिया है स्मार्तोंकी पहली होती है, जो एकादशी विद्धासे न्यून द्वादशीके तुल्य हे । वह मुक्तिकी इच्छावालोंको और पुत्रवालोंको परली करनी चाहिये, औरोंको पहली करनी चाहिये । मदनरत्नमें लिखा है कि, पुत्रवालेकी भी पहली ही होती है । हेमाद्रिका यह कथन है कि, जो एकादशी विद्धासे न्यून और न्यून द्वादशीवाली है वह सवको करनी चाहिये । मदनरत्नमें कहते हैं मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये । और विद्धाके तुल्य द्वादशीके तुल्य वा जिससे द्वादशी न्यून हो ऐसी एकादशी मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये । व्यासजी कहते हैं यदि द्वादशी घटजाय तो हे राजन् ! दशमीसे मिली पहली ही शुद्ध द्वादशी है मुक्तिकी इच्छावालोंको उसमें व्रत करना चाहिये इसमें मोक्षकी इच्छावालोंको ऐसा कहनेसे यह जताया कि, औरोंकी प्रथमकी होती है । कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखाहै कि सर्वत्र मनुष्य द्वादशी मिश्रित एकादशी करै । प्रभातकालमें हो वा न हो कारण कि, उपवास नित्य है । विद्धसे अधिक और द्वादशीकी समान तौ सबकीही पहली होती है यदि द्वादशी पारणाके दिन एक कलाभी न मिलै तौ दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास कर लेना, ऐसा ऋष्यशृंगने कहा है ॥ माधवके मतमें गृहस्थियोंकी पहली संन्यासियोंकी अगली होती है विद्धासे अधिक और द्वादशीसे हीन एकादशी मुक्ति, पापकी नष्टता, विष्णुकी प्रीति

तिकामैः परा कार्या । गृहस्थेन तु नक्तं कार्यम् । "एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥" इति कौर्मे दिनक्षये उपवासनिषेधात् ॥ "दशम्यैकादशीविद्धा द्वादशी च क्षयं गता। क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः स्मृतम् ॥" इति वृद्धशातातपोक्तेश्च ॥ गृहिणः पूर्वत्रोपवासः ॥ एकादश्याः शुद्धन्यूनत्वे, शुद्धसमत्वे वा द्वादश्या न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः ॥ यानि तु "दशम्यनुगता हन्ति द्वादशी द्वादशीफलम् । धर्मापत्यधनायूंषि त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥" इति कौर्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि तानि विहितभिन्नपराणि ॥ अत्र मूलवचनानि तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया ॥ यत्तु कालहेमाद्रौ–"बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा। द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः 'संधिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत् ।' तथा–"विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम् । पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने ॥" इति पाद्मोक्तेश्च वेधसंदेहे ज्योतिर्विदां विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम् ॥ तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना ॥ अथात्रोपयुक्तं किंचिदुच्यते । तत्र दशम्यामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं

देनेवाली है । इन वस्तुओंकी जिसको इच्छा हो वह परली करै गृहस्थियोंको तो नक्तव्रत करना चाहिये, कारण कि, कूर्मपुराण और वृद्धशातातपके यह दो वचन क्रमसे लिखेहैं कि, यदि एकादशी और द्वादशी हो और त्रयोदशी रातके शेषमें होय तो पुत्र पौत्रवाला उपवास न करै इससे उपवासका निषेध दिनके क्षयमें है यदि एकादशी दशमीसे विधी हो और द्वादशी घटी होय तो ऐसे अवसरमें वह द्वादशी क्षीण कहाती है उसीमें गृहस्थीको नक्तव्रत करना लिखा है । और गृहस्थीको पहलीमें उपवास करना कहाहै, यदि एकादशी शुद्धासे कमती वा तुल्य हो । वा द्वादशी कमती और तुल्य हो तो एकादशीमें व्रत करै और कूर्मपुराणादिके दशमी वेध और त्रयोदशीमें पारणके निषेधादि जो वचन हैं कि, दशमीसे मिश्रित एकादशी और तेरसमें पारणा करनी, द्वादशी एकादशीके पुण्यको और धर्म तथा सन्तानको नष्ट करती है वे जिसका शास्त्रसे विधान नहीं है उनके निषेध हैं, इनके मूलवचन और उनकी व्यवस्था बडे ग्रन्थोंमें जाननी चाहिये, और जो कालहेमाद्रिमें यह लिखाहै कि, जब बहुत वाक्योंके विरोध होनेसे सन्देह हो तो द्वादशीमें व्रत और त्रयोदशीमें पारणा करनी, यह मार्कण्डेयका कथन है कि, सन्देहके वाक्य हों तो द्वादशीमें उपवास करै और पद्मपुराणका यह वचन है कि, सब विवाद होनेसे द्वादशीमें व्रत करै, और त्रयोदशीमें पारणा करै, हे मुने ! यह मेरी आज्ञा है, इस पद्मपुराणके वचनसे वेधके सन्देहमें ज्योतिषियोंके विवादमें अगली करनी चाहिये, यह दिखलाया सो यह वैष्णवोंके विषयमें है. विस्तारसे अलम् ॥ अब कुछ उपयोगी कहते हैं, दशमीका

कार्यम् । 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात् ॥ 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति देवलोक्तेश्च ॥ केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वेद्युरेकभक्तविधानाद्विधिस्पृष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रतांगे भोजननिषेधः प्रवर्तते तेनैकादशीमध्येपि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः ॥ अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः—" अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिन्यूनवत्सरः ॥ एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥ " इति ॥ स्त्रीणां भर्तुरनुज्ञया व्रतविधिः । भविष्य—'ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही' इति ॥ यत्तु विष्णुः— " पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति ॥" इति । तद्भर्त्रनुज्ञाविषयमिति प्रागुक्तम् ॥ उपवासासामर्थ्ये तु मार्कण्डेयकौर्मयोः—"एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत् ॥" अत्र—" एकभक्तेन यो मर्त्य उपवसाव्रतं चरेत्' इत्येकभक्तादिषूपवासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः संकल्पमंत्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति मदनरत्ने ॥ तथाऽसामर्थ्ये प्रतिनिधिना कारयेदिति प्रागुक्तम्—व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः " अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा । एकदश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं

एकादशीसे योग हो तौ दशमीके मध्यमें भोजन करलेना, कारण कि, एकादशीमें भोजन न करै उसमें यह निमित्त है, निषेध तौ निवृत्तिरूप कालमात्रकी अपेक्षा रखताहै, ऐसा देवल कहतेहैं, और कोई तौ एकादशीके व्रताङ्गत्वके कारण प्रथम दिन भोजनके निषेधकी विधिसे युक्त कालमें भोजनके निषेधका अनवकाश कहतेहैं, इससे काम्यव्रतके अंगमें भोजनका निषेध प्राप्त होताहै, इससे पूर्वदिन एकादशीके मध्यमेंभी भोजन करले यह प्राप्त हुआ, इनमें अधिकारी माधवीयमें कात्यायनके वचनसे कहा है आठ वर्षसे अधिक और ८० वर्षतकका मनुष्य एकादशी उपवास दोनों पक्षमें करै ॥ भविष्यपुराणमें लिखा है ब्रह्मचारी स्त्री और गृहस्थी शुक्ला एकादशीमें व्रत करै जो विष्णु कहते हैं जो स्त्री पतिके जीवित रहते उपवास कर व्रत करती है वह स्वामीकी आयु हरण करतीहै तथा नरकको जाती है यह स्वामीकी आज्ञाके विना व्रत करनेमें है, ऐसा. पहलेही कहचुकेहैं, उपवासके असमर्थ होनेमें मार्कण्डेय और कूर्मपुराणमें लिखा है, एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास और दान इनसे भी एकादशी व्रत होताहै, इनमें जो मनुष्य एकभक्तसे उपवास व्रत करता है, इसमें उपवास शब्द इस कारण है कि, उसमें उपवासके धर्म करने उचित हैं, इससे उसके प्रतिनिधिमें भी उपवासके सब धर्म होतेहैं और केवल संकल्पमात्रमें उपवासके स्थानमें एकभक्त उच्चारण करै ऐसा मदनरत्नमें लिखाहै । और सामर्थ्य न होनेसे प्रतिनिधिसे करावे यह पहलेही कह चुकेहैं, व्रतके न करनेमें माधवमें कात्यायनके वचनसे प्रायश्चित्त लिखाहै, रविवार अमावस पूर्णिमामें तो रात्रिमें

चरेत् ॥ " इति ॥ अथ काम्यव्रतविधिः लघुनारदीये-"दशम्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत् । गन्धताम्बूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महायशाः ॥ " तत्र दशम्यां विधिः कौर्मे-"कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान् कोरदूषकान् । शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसंस्त्रियम्॥" तथा-"शाकं मांसमसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने । द्यूतमत्यंबुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ॥ " मदनरत्ने नारदीये- "अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः । अवनीतल्पशयनाः प्रियासंगमवर्जिताः॥" व्रतघ्नान्याह हेमाद्रौ देवलः-"असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥" अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः-'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति' अत्यये कष्टे ॥ विष्णुरहस्ये- "गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम् । व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ॥" एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे-"स्तेनहिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम् । प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्रयम् ॥ मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोम्बुनिषेवणे । अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥ " तत्रैव पैठीनसिः-"ताम्बूलचर्वणे स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे । व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावह्निविवर्जनम् ॥ " इति ।

चौदश और अष्टमीको दिनमें और एकादशीको दिन रातमें किसी समय भोजन करै तो चान्द्रायण व्रत करना होताहै । अब काम्यव्रतकी विधि कहते हैं, लघुनारदीयमें लिखा है कि, हे राजन् ! दशमी, एकादशी, द्वादशी तीन दिनतक गन्धसेवन, ताम्बूलका खाना पुष्पादिधारण और स्त्रीसम्भोग त्याग दे । उसमें दशमीमें कर्तव्य विधि कूर्मपुराणमें लिखी है, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, शहत, पराया अन्न और स्त्री इनको व्रती त्याग दे । तथा शाक, मांस, मसूर, पुनर्भोजन, मैथुन, द्यूत, बहुत जलका पीना यह वैष्णव दशमीको त्यागन करै । मदनरत्नमें नारदीयका वचन है सब प्रकारके खारी और लवण यह व्रती न खाय और हविष्यान्नका भोजन करै, भूमिमें शयन करै, प्रियाके संगको वर्जित करै । देवल कहते हैं वारंवार जलपान, एकही बार ताम्बूल भक्षण, दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट हो जाता है । अशक्तिमें तो मदनरत्नमें देवल कहते हैं, कि कष्टमें जलमात्रपानसे उपवास नहीं नष्ट होता । विष्णुरहस्यमें लिखा है शरीर और शिरमें उबटन लगाना, ताम्बूल खाना, सुगन्ध लगाना तथा और भी निषिद्ध वस्तुओंको व्रतमें व्रतीको त्यागना चाहिये । निर्णयामृतसंग्रहमें इनका प्रायश्चित्त लिखा है, हिंसक और चोरकी मित्रताई चोरी और हिंसा करनी इनको व्रती मनुष्य त्याग दे यदि करै तो तीन सौ नाम भगवान्के जपै । असत्यभाषण, दिनमें शयन और वारंवार जलपान अष्टाक्षर मन्त्रको व्रती १०८ वार जपे (ओं नमो नारायणाय) यह अष्टाक्षरमन्त्र है, वहीं पैठीनसी स्मृतिका वचन है, ताम्बूलचर्वण, स्त्रीसंभोग, मांससेवन इनसे जो व्रतलोप

कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावपि न दोष इत्यर्थः ॥ संभोगे ऋतुकालादन्यत्र । 'रेतःसेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः' इति कात्यायनोक्तेः ॥ हेमाद्रौ वसिष्ठः—"उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ " काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्टाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । विष्णुरहस्ये—" श्राद्धोपवासदिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति ॥" निर्णयामृते व्यासः—'वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेऽप्यौषधं सदा' इति ॥ तत्र श्राद्धनिर्णयः । एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन आह—"उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम् ॥" इति ॥ हेमाद्र्यादिसर्वनिबन्धेष्वप्येवम् ॥ एतेन एकादशीनिमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ॥ किंच महालये—" स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति " इति श्रुतं षोडशत्वम् । पौषैकादश्यां

न होनेकी इच्छा करे तो कृष्ण एकादशीकी समान भोजनको छोडदे, अर्थात् एकादशीकी समान भोजनके निषेध मात्र परिपालनमें तो ताम्बूलचर्वणादिमें भी दोष नहीं है, और संभोगका निषेध ऋतुमात्रको त्याग करलेना कारण कि, कात्यायन कहते हैं रेतका सिंचन ऋतुके विना अपने सुखके निमित्त करनेसे उपवासका लोप करता है । हेमाद्रिमें वसिष्ठका वचन है, उपवास और श्राद्धमें दतौन न करै, दांतोंसे काष्टका संयोग सात कुलको दग्ध करता है, काष्टके ग्रहणसे मृत्तिका ढेले आदिका निषेध नहीं है, यह हेमाद्रि कहते हैं, विष्णुरहस्यमें लिखा है, श्राद्ध और उपवासके दिन दतौनको चाबकर सौ गायत्री पढ जलका आचमन करनेसे फिर शुद्ध होता है । निर्णयामृतमें व्यास कहते हैं पारणमें मांस और व्रतके दिन औषधीको कभी न खाय, एकादशीमें श्राद्ध आपडे तो माधवीयमें कात्यायनका वचन है कि, उपवास तो नित्य और श्राद्ध नैमित्तिक है तो पितरोंको दिये पदार्थका सूंघकर उपवास करले यदि माता पिताके क्षयाहमें एकादशी आजाय तो पितृदेवतोंका पूजन करके पितरोंके दिये पदार्थको सूंघले । हेमाद्रि आदि सब निबन्धोंमें भी यही लिखा है इससे एकादशी निमित्तक श्राद्ध द्वादशीमें करना चाहिये ऐसा कहनेवाले परास्त हुए और महालयमें भी अर्थात् कन्यागतमें भी वह पक्ष सम्पूर्ण सोलह श्राद्धके कारणसे सत्कार योग्य है. इस प्रकार सोलह संख्या सुनी हुई और

---

१ व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा ॥ अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥' इति मयूखः । पैठीनसिः—'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने ॥ पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव च' ॥ निषिद्ध तिथिमें बारह. कुल्ले करले दतौन न करै यह व्यास कहते हैं । वा पत्तेसे मुख शुद्ध करले ।

च मन्वादिश्राद्धं, क्षयाहापरिज्ञाने च, तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं बाधितमेव स्यात्॥ यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति-"अन्नाश्रितानि पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव च। मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः॥" इति॥ तस्यापि रागप्राप्तभुजिगोचरस्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां महत्साहसमित्यलम्॥ येपि 'अकृतश्राद्धनिचया जलपिण्डं विना कृताः' इति। लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः सः मातापितृभिन्नविषयः। पूर्ववाक्ये तद्ग्रहणात्॥ निचयः प्रतिग्रहः॥ व्रतघ्ननिर्णयः। व्रतघ्नान्याह मदनरत्ने देवलः-"सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम्। अव्रतघ्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः॥" स्कान्देपि-"अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥" इदं चातिसंकटविषयम्॥ नारदीये-"अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि। मूलं फलं पयस्तोयमुपभोज्यं भवेच्छुभे॥ न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्॥" इति॥ अस्यापवादः-"शयने च मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने। नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्॥" एते चाविरोधिनो निर्णयाः सर्वव्रतेषु ज्ञेयाः॥ तत्रैकादश्यां संकल्पः-"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः।

मन्वादिक श्राद्ध पूरकी एकादशीको और मृत्युदिनके अज्ञातमें उस पक्षकी एकादशीमें श्राद्ध करना, इन सबका बाध हो जायगा। यद्यपि स्मृतिचन्द्रिकाकार यह वाक्य पढते हैं कि, एकादशीको भोक्ता और दाताके पाप अन्नमें निवास करते हैं उसमें दाता भोक्ताके पितर बहुत कालतक नरकमें रहते हैं यह वचन अनुरागसे प्राप्त हुए भोजनका निषेधक हैं, इसको शास्त्रकथित श्राद्धमें माननेवाले मानों बडाही साहस करते हैं, और जो लघुनारदीयमें यह लिखा है कि, एकादशीको व्रती मनुष्य श्राद्धमें प्रतिग्रह न ले, तथा जलपिण्ड न करै यह जो श्राद्धका निषेध है वह माता पिताके भिन्नविषयमें है, कारण कि, पूर्ववाक्यमें माता पिताकाही ग्रहण है॥ मदनरत्नमें लिखे देवलके वाक्यसे व्रतघ्न वर्णन करते हैं कि, सब प्राणियोंसे भय, व्याधि, प्रमाद गुरुकी आज्ञा यह सब एकवार होनेसेही शास्त्रके अनुसार व्रतको नष्ट नहीं करते हैं। स्कन्दमें कहा है यह आठ वस्तु व्रतनाशक नहीं हैं-जल, मूल, फल, दूध, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और औषधि परन्तु अतिसंकट पडनेपर इनका प्रयोग है। नारदीयमें लिखा है कि, हे पार्वति! रोगी मनुष्यको व्रतमें यह अनुकल्प लिखे हैं, मूल, फल, दूध, थोडा भोजन यह उत्तम है किन्तु भोजनके निमित्त किसीने भी एकादशीको नहीं लिखा है, इसका अपवादभी है कि, मेरे सोने जागने और करवट लेनेमें जो मनुष्य मूल फलका आहार करता है वह मेरे हृदयमें शल्य अर्पण करता है, यह भी आरोग्यतामें जानना और विरोधरहित यह निर्णय सब व्रतोंमें जानने, एकादशीमें इस प्रकार संकल्प है कि, जलसे पूर्ण उदुम्बर वा ताम्र

उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा वार्येव धारयेत् ॥" इति माधवीये वाराहोक्तेः । मन्त्रस्तु विष्णूक्तः—"एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत" इति ॥ शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे—"सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत् ॥" शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ॥ वाराहे—'इत्युच्चार्य्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् ॥'ततस्तज्जलं पिबेत् । "अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमान्त्रितम् । उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम्' ॥' इति कात्यायनोक्तेः ॥ मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ संकल्प इति माधवः ॥ "दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोस्तदा ॥ विद्धोपवासेऽनशंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च तदाचरेत् ॥" इति नारदीयोक्तेः ॥ तत्रैव पूजामभिधाय 'देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती ॥' द्वादश्यां निवेदनमन्त्रविधिः । द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन—"अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥" इति ॥ नारदीये "ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां ततः" स्कान्देपि—"कृत्वा चैवोपासं तु योऽश्नीयाद्द्वादशीदिने । नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्या-

---

पात्रको लेकर उत्तरमुख हो व्रतग्रहण करे अथवा जलमात्रही ग्रहण करे, यह माधवीयमें वाराहपुराणका वचन है और विष्णुने इस प्रकार संकल्पका मंत्र कहा है कि, हे भगवन् ! मैं एकादशीमें निराहार रहकर द्वादशीमें भोजन करूंगा. हे पुण्डरीकाक्ष ! आपही मेरी गति हो और शैवादिक तो हेमाद्रिमें सौरपुराणके मतसे कहा है कि, सावित्री अथवा नामसेही संकल्प करे शिवादिकी गायत्री यजुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकमें सब लिखी है. वाराहपुराणमें ऐसा कहा है कि, फिर विद्वान् इस प्रकार उच्चारण कर पुष्पाञ्जलि समर्पण करे फिर जलपान करे तीन वार अष्टाक्षर मंत्र पढकर और अभिमंत्रित करके उपवासके फलकी इच्छावाला मनुष्य वह जलपान करले ऐसा कात्यायनने कहा है । आधी रातमें वा उदयमें दशमीका वेध होय तो रात्रिमें ही संकल्प करे यह माधव कहते हैं. नारदपुराणमें यह लिखा है यदि आधीरातसे आगे. दशमीके संगका दोष होय तो पूजन और संकल्पमें चार प्रहरोंको छोडदेना चाहिये, और दशमी विद्धाके उपवासमें दिनको त्याग कर रात्रिमें सावधानीसे विष्णुका पूजन और संकल्प करै और उसी स्थलमें पूजनको करनेके पश्चात् कहा है कि, व्रती देवताके सन्मुख सावधानीसे जागरण करै ॥ द्वादशीमें निवेदनका मंत्र कात्यायनने लिखा है—हे केशव ! अज्ञानरूपी अंधकारसे अन्धे मेरे इस व्रतके करनेसे प्रसन्न होकर आप मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान कीजिये. नारदीयमें लिखा है कि, शक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराय दक्षिणा दे, स्कन्दपुराणमें भी लिखा है उपवास करके जो द्वादशीके दिन भोजन करता है और तुलसीमिश्रित नैवेद्य पाता है उसकी अनेक

कोटिविनाशनम् ॥" द्वादश्यां च वर्ज्यान्याह बृहस्पतिः–"दिवानिद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने। क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥" हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे–"पुनर्भोजनमध्यायो भार आयासमैथुने। उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी ॥" स्कान्दे–'परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं वितथभाषणम् ॥' वर्जयेदिति शेषः। विष्णुधर्मे–"असंभाष्यान्हि सम्भाष्य तुलस्यतसिकादलम्। आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुध्यति ॥" बृहन्नारदीये–"रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा। सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् ॥ व्रतादिमध्ये शृणुयाद्यद्येषां ध्वनिमुत्तमः। अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् ॥" एतद्व्रतं सूतकेपि कार्यम्। "सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्" इति विष्णूक्तेः ॥ तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम्। "सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम्। दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते ॥" इति मात्स्योक्तेः ॥ रजोदर्शनेपि कार्यम्–' एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि' इति पुलस्त्योक्तेः ॥ यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः। "शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता। तयोरेवोप-

कोटिहत्या दूर हो जाती हैं। बृहस्पतिने द्वादशीमें यह वर्जित किये हैं, दिनमें शयन, परान्नभोजन, पुनर्भोजन, मैथुन, शहत, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, तेल यह आठवस्तु द्वादशीको वर्जित करनी चाहिये। हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वचन है कि, दूसरी बार भोजन, पढना, बोझ उठाना, परिश्रम करना, मैथुन, दिनमें सोना यह पांच वस्तु उपवासका फल नष्ट करती हैं स्कन्दमें कहा है परान्न, काँसीके पात्रमें भोजन, पान, लोभ, असत्यभाषण इनको व्रती त्याग दे। विष्णुधर्ममें लिखा है कि, असम्भाषोंके साथ वार्ता कर तुलसी अतसी पत्र आंवले इनको खाकर शुद्ध होता है. बृहन्नारदीयमें लिखा है रजस्वला, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, जूँठन, धोबी, यदि व्रती व्रतादिमें इनकी ध्वनिको श्रवण करले तौ १०८ वेदमाता गायत्रीका जप करै, यह व्रत सूतकमेंभी करना, द्वादशीका व्रत सूतक और मृतक (पातक) में भी न छोडना ऐसा विष्णु कहते हैं और सूतकमें छोडे हुए दानादि सूतकके पश्चात् करने मत्स्यपुराणमें लिखा है मनुष्य सूतकके अन्तमें स्नान कर और जनार्दनका पूजनकर विधिपूर्वक दान देकर व्रतका फल प्राप्त करता है. पुलस्त्य कहते हैं एकादशीका व्रत रजोदर्शनमेंभी करना चाहिये। रजोदर्शन होनेपरभी स्त्री एकादशीको भोजन न करै। और जो द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र हो तो शुद्ध एकादशीको छोडकर उसमेंही व्रत करै। शुक्ला वा

१ श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च ॥ पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृदिति वचनं तु निर्मूलम् ॥ अर्थात्–श्वशुर, गुरु, मातुल, चाचा, भाईके पुत्र इनके परान्न दोषकारक नहीं है यह वचन निर्मूल है।

वासश्च त्रयोदश्यां च पारणम् ॥" इति नारदीयोक्तेः ॥ एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः । नित्यव्रते सति सम्भवे कार्याः । "शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम् " इति कात्यायनोक्तेः ॥ अशक्तौ तु माधवीये ब्रह्मवैवर्ते ॥ व्रतंकर्तुमशक्तौ निर्णयः । " इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् । विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥" इति ॥ अथाष्टौ महाद्वादश्यः । तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनीसंज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते चेत्सा वञ्जुली ॥ वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा । अग्रे पर्वणः सम्पूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी । पुष्यर्क्षयुता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः । पार्थक्ये तु शक्तस्योपवासद्वयम् । 'एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् ' इति विष्णुरहस्यात् ॥ अशक्तौ तु द्वादश्यामेव । " एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥" इति तत्रैवोक्तेः ॥ यदा त्वल्पा द्वादशी तदोक्तं मात्स्ये- " यदा भवति अल्पापि द्वादशी पारणादिने । उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा ॥" नारदीयेपि-" अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ॥ स्नानार्चनक्रियाः

कृष्ण एकादशी जो श्रवणनक्षत्रसे युक्त हो तो उसी द्वादशीमें उपवास करके तेरसको पारणा करै ऐसा नारदीयमें कहा है । यह नियम काम्यव्रतोंके जानने और नित्यव्रतमें होसकैं तोभी करले, कारण कि कात्यायन कहते हैं कि, शक्तिमान् मनुष्य पूर्णरूपसे नियम करै और शक्ति न हो तो माधवीयमें ब्रह्मवैवर्तका कथन है ॥ यह जानकर एकादशीके दिन व्रतको अवश्य करै यदि विशेष नियम न निभसकै तो अहोरात्रका व्रत छोडना चाहिये. अब आठ महाद्वादशी लिखतेहैं, जो द्वादशी शुद्ध अधिक एकादशीसे युक्त हो वह उन्मीलिनी, और जो शुद्धद्वादशीही अधिक होजाय तो वंजुली, जो तीन वारोंको स्पर्श करै वह त्रिस्पृशा, आगे सम्पूर्ण पर्व १२ ही अधिक हो तो पक्षवर्द्धिनी, पुष्यनक्षत्रयुक्त जया, श्रवणयुक्त विजया, पुनर्वसुयुक्त जयन्ती, रोहिणीयुक्त पापनाशिनी, जिसको पापक्षयपूर्वक मुक्तिकी अभिलाषा हो इनमें उसको व्रत करना चाहिये इसका मूल हेमाद्रिमें लिखाहै यदि द्वादशी एकादशी एक होजाँय तो उसही दिन उपवास करले और पृथक् होय तो शक्तिअनुसार दोनों व्रत करै, कारण कि, विष्णुरहस्यमें कहा है कि, एकादशीमें उपवास करके द्वादशीमें उपवास करै और शक्ति न होय तो द्वादशीमेंही व्रत करै कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, जो एकादशीको भोजन कर द्वादशीमें उपवास करै वह अवश्यही पूर्व दिनके पुण्यको प्राप्त करता है और द्वादशी थोडी हो तब मत्स्यपुराणमें यह कहाहै जो पारणाके दिन थोडीभी द्वादशी हो तो प्रभात और मध्याह्नके दोनों कृत्य प्रभातहीमें करले । नारद कहते हैं हे ब्राह्मणोत्तम ! यदि अरुणोदयमें थोडी

कार्या दानहोमादिसंयुताः ॥" इति ॥ संकटे तु माधवीये देवलः–" संकटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम् । अद्भिस्तु पारणां कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत् ॥" इति ॥ संकटे त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ ॥ अत्र केचिदाहुः–अपकर्षवाक्यान्यनाहिताग्निविषयाणि अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षायोगादिति ॥ द्वादश्यां च प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम् । " द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः । तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः ॥" इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णुधर्मोक्तेः । अत्र केचित्संगिरन्ते । यदा भूयसी द्वादशी, तदापि प्रातर्मुहूर्तत्रये पारणं कार्यम् "सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम्" इति वचनात् ॥ अस्मद्गुरवस्तु–बहूनां कर्मकालानां विना कारणं बाधापत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्यामेवापकर्षविधानादपराह्ण एव कार्यम् । प्रातःशब्दस्तु–" सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् " इतिवदपराह्णवाचित्वेप्युपपन्नः । न च वाक्यवैयर्थ्यं, पुनर्भोजनसायंपारणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः ॥ प्रमादेन एकादश्युपवासातिक्रमे अपरार्के वाराहे–" एकादशी विप्लुता चेद्द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्या द्वादशी तत्र यदिच्छेत्परमं पदम्॥" इति ॥ केचित्तु–" विष्णुना चेत् " इति पठितम् ॥ अत्राविरोधिनो

द्वादशी हो तो उसी समय स्नान, दान, हवन, पूजन आदि क्रिया करले और संकट होनेपर माधवीयमें देवलका कथन है यदि कठिन संकट होय तो द्वादशीमें कैसे पारण करै वहां लिखाहै जलसे पारणा करने उपरान्त फिर भोजनका दोष नहीं है यहां संकटशब्दसे त्रयोदशीमें श्राद्ध प्रदोषादिका ग्रहण करना. इसमें किसीका तो यह कथन है कि, यह अल्प विधायकवाक्य अग्निहोत्रियोंसे भिन्नोंके निमित्त है कारण कि, वेदोक्त होनेसे अग्निहोत्रमें अल्पता नहीं है और पारणा द्वादशीका प्रथम चरण त्यागकर करै । द्वादशीका पहला चरण हरिवासरसंज्ञक है विष्णुभक्तको उसके उपरान्त पारणा करनी चाहिये यह निर्णयामृतमें लिखाहै और मदनरत्नमें विष्णुधर्मकाभी यही कथन है, इसपर कोई कहते हैं जो बहुत द्वादशी हो तब भी प्रभातसमय तीन मुहूर्ततक पारणा करले कारण कि, ऐसे लेख हैं कि, सब उपवासोंकी पारणा प्रभातमें होती हैं, और हमारे गुरुका तो यह कथन है कि, बहुतसे कर्मोंका एकही समय विना कारण बाध होजायगा, इससे पूर्वमें कहे वचन थोडी द्वादशीमेंही जानकर अल्पके विधानसे अपराह्णमें पारणा करनी चाहिये, और प्रभातका कथन करनेवाला प्रातःशब्द तो इसके तुल्य अपराह्णमें संगत होगा कि, सन्ध्यासमय और प्रभातसमय द्विजातियोंको भोजन करना वेदमें लिखाहै, यदि कोई सन्देह करै कि, वाक्योंकी व्यर्थता होजायगी सो भी नहीं कारण कि, वे वाक्य तो पुनर्भोजन सायंकालकी पारणा वृत्तिके विषयवाले हैं, यदि प्रभातसे एकादशीका उपवास न हुआ हो तो अपरार्कमें वाराहपुराणका कथन है कि, यदि एकादशी छुटगई हो तो द्वादशीमें उपवास करना, और कोई इस वाक्यमें " विष्णुना चेत् " पढतेहैं इसमें सब व्रतोंमें अविरोधके नियम जानने, दूसरे वचन नवरात्रोंमें

नियमाः सर्वव्रतेषु बोद्धव्याः । अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ एकादशीनिर्णयः ॥ द्वादशीनिर्णयः । द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात् । ' द्वादशी तु प्रकर्त्तव्या एकादश्या युता प्रभो' इति स्कान्दाच्च ॥ त्रयोदशीनिर्णयः । त्रयोदशी तु सर्वमते शुक्ला पूर्वा-

लिखेंगे यह दिक्मात्र कहा है ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायामेकादशीनिर्णयः ॥ युग्मवाक्यसे द्वादशी पूर्वा करनी चाहिये और स्कन्दपुराणमेंभी लिखा है हे प्रभो । एकादशीयुक्त द्वादशी करनी चाहिये ॥ और त्रयोदशी तो शुक्ल और कृष्णपक्षकी सबके मतमें तेरस पिछली होतीहै कारण कि, दीपिका

---

१ अत्र प्रदोषव्रतम्–ब्रह्मोत्तरखण्डे–'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्दिवा । घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः । कृतसंध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत् ॥' इति व्रतमभिधाय 'एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥' इति दिनेनाहारकर्तृकं शिवपूजाप्रधानकं व्रतं स्मर्यते ॥ अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तत्रैव पूजा विधानात् । प्रदोषस्त्रिमुहूर्तमित्यभिप्रायः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा 'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशी सहिता मुने' इति सुमन्तूक्तिरिति मयूखकृतः ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ, तदव्याप्तौ, साम्येन तदेकदेशस्पर्शे, च उत्तरा संकल्पकाले सत्त्वात् । वैषम्ये तदेकस्पर्शे तदाधिक्यवती ग्राह्येति विवेचनानुसारिणः ॥ इदं च मन्दवारे कृष्णपक्षेऽतिप्रशस्तम् 'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन्कृष्णपक्षे समागतः ॥' इति तत्रैवोक्तेः ॥ आरम्भश्च शनिप्रदोषे कार्यः ' यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता । आरभेत व्रतं तत्र संतानफलसिद्धये ॥' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इति ॥ अर्थात्–प्रदोषव्रत ब्रह्मोत्तरखण्डमें लिखा है दोनों पक्षकी त्रयोदशीको दिनमें निराहार हो फिर अस्तसे तीन घडी पहले स्नान करै । श्वेतवस्त्र पहर वाणीको रोक नियममें तत्पर हो सन्ध्या जपविधि कर शिवका पूजन करै । इस प्रकार व्रत कहकर 'इस प्रकार गिरजापतिकी प्रदोषमें आराधना करके फिर ब्राह्मणोंको जिमाय दक्षिणा दे' इस वचनसे दिनमें अनाहारपूर्वक प्रधान शिवपूजनका व्रत है । इसमें प्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्रहण करनी । प्रदोष तीन मुहूर्तका लेना, दोनों दिनमें प्रदोषकी व्याप्ति अव्याप्ति हो तो पहली करनी मयूखमें सुमन्तुका कथन है हे मुने ! त्रयोदशी द्वादशीयुक्त करनी और जो प्रदोष दोनों दिन हो वा दोनों दिन न हो साम्यतासे एक देशमें स्पर्श हो तो संकल्पकालमें होनेसे उत्तरा करनी विषमता तथा एकस्पर्शमें वा अधिकवर्ती होनेसे अधिक लेनी । यह प्रदोष शनि भौमवारका कृष्णपक्षमें हो तो उत्तम है मन्दवारका प्रदोष सब देहधारियोंको दुर्लभ है और कृष्णपक्षका तो अधिकही दुर्लभ है । यह वहीं लिखा है शनि प्रदोषसे इसका आरम्भ करै वहीं लिखा है जो शुक्लत्रयोदशी शनिवारी हो तो सन्तान फलकी सिद्धिके निमित्त उस समय व्रत आरम्भ करै ॥

कृष्णोत्तरा । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोत्थोऽथासितः पश्चात्' इति दीपिकोक्तेः । ' शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी ' इति माधवाच्च ॥ चतुर्दशीनिर्णयः ॥ चतुर्दशी सर्वमते कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा ॥ उपवासे तु द्वय्यपि परेति मदनरत्ने ॥ पूर्णिमानिर्णयः । पौर्णमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये । " भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन । वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम् ॥ " इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अमावास्यानिर्णयः । अमायां योगविशेषमाहापरार्के शातातपः– " अमावास्यां भवेद्वारो यदा भूमिसुतस्य वै । जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी । चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम् ॥" तत्रैव व्यासः–"सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत् । गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं वै मौनिना कृतम् ॥ " हेमाद्रौ बृहन्मनुः–"श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके । यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥ " नागदैवतमाश्लेषा । मस्तको मृगशिरः । प्रथमपाद इत्यन्ये स च सर्वेषाम् ॥ अथेष्टिकालः गोभिलः–"पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याः' इति । उपवासोन्वाधानम् । तत्र मध्याह्ने तत्पूर्वं वा पर्वप्रतिपत्संधौ तद्दिने यागः । " पूर्वाह्णे वाथ

और माधवके यह वाक्य हैं सबके मतमें उपवासमें शुक्लपक्षकी पहली और कृष्णपक्षकी पिछली होती है ॥ सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहिली शुक्लपक्षकी पिछली उपवास व्रतमें दोनों पक्षकी पिछली चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा मदनरत्नमें कहा है ॥ पूर्णिमा और अमावास्या यह दोनों तिथि सावित्रीव्रतको छोडकर परली ही लेनी, कारण कि ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है हे मुनिराज ! सावित्रीके श्रेष्ठव्रतको त्यागकर अमावास्या और पूर्णिमा यह पूर्वविद्धा न करनी चाहिये ॥ शातातपने अमावास्यामें विशेष योग लिखा है कि, यदि मंगलवारी अमावस होय तो उसदिन गंगाके स्नानमात्रसे सहस्र गोदानका फल होता है । जब अमावस सोमवारी और सप्तमी रविवारी हो तो और चतुर्थी मंगलवारी हो तो इनमें मेष और तुलासंक्रांतिकी समान फल मिलता है वहीं व्यासजी कहते हैं । यदि चन्द्रमायुक्त अमावस और जिसमें चन्द्रमा न दीखे ऐसी अमावस सोमवती होय तो मौन होकर स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है । हेमाद्रिमें बृहन्मनुका कथन है कि, श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, श्लेषा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र होय और रविवार हो वा रविवारी अमा हो तो व्यतीपात होता है । कोई कहते हैं इनका प्रथम पाद व्यतीपात होता है । अब इष्टि (यज्ञ) का समय लिखते हैं । गोभिलका वचन है कि, पक्षकी अन्तकी तिथियोंमें उपवास और आदिकी तिथियोंमें यज्ञ करना चाहिये उपवाससे अग्निहोत्रका ग्रहण करना इससे मध्याह्नमें वा उससे पूर्व दोनों पर्व और प्रतिपदाकी संधि होय तो उसमें यज्ञ करना लौगाक्षि कहते हैं कि, पूर्वाह्णमें

मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते ॥ " इति लौगाक्षिवचनात् ॥ तत्र द्वेधा विभागः–"आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः । मध्याह्नस्तु तयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यते ॥" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ मध्याह्नादूर्ध्वं संधौ माधवमते परेऽह्नि यागः "अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते ॥" इति लौगाक्षिणोक्तेः॥हेमाद्रिस्त्वपराह्णसंधावपि परदिने प्रतिपच्चतुर्थांशे चन्द्रोदये च सति द्वितीयादिष्वत्यन्तक्षये सति पूर्वेद्युर्यागः " पर्वणोंशे द्वितीये तु यष्टव्य तु द्विजातिभिः । द्वितीयासहितं यस्माद्दूषयंत्याश्वलायनाः ॥" इति ॥ द्वितीये त्विति कैमुतिकन्यायेन तुर्यांशपरम् । तुरीयेत्विति शूलपाणौ पाठः स्पष्टार्थ एव । तथा–"भूता पञ्चदशी पूर्णा द्वितीया क्षयगामिनी । चरुरिष्टिरमायां स्यात्कृते कव्यादिकी क्रिया॥" इति बौधायनवचनाच्चेत्यूचिवान् ॥ मदनरत्नेपि–"चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते । श्वोभूते प्रतिपच्चेत्स्यात्पूर्वा तत्रैव कारयेत् ॥" इति ॥ यत्तु माधवः–"यस्तु वाजसनेयी स्यात्तस्य संधिदिनात्पुरा । न काप्यन्वाहितिः किंतु सदा संधिदिनेहि सा " इत्याह । यच्च कालादर्शेप्युक्तम्–"आवर्तनादधःसंधिर्यद्यन्वाधाय तद्दिने ।

वा मध्याह्नमें पर्व समाप्त होजाय तो प्रथम दिन उपवास करके उसी दिन यज्ञ करै, दो प्रकारसे इसका विभाग है आरंभसे पूर्वाह्न और उसके उपरान्त पराह्न होता है इनकी संधिका नाम मध्याह्न है उसीको आवर्तन कहा है, यह मदनरत्नका कथन है, मध्याह्नसे ऊर्ध्वसन्धिके विषयमें माधवके मतसे परले दिन यज्ञ करना चाहिये, अपराह्न वा रात्रिमें यदि पर्वकी समाप्ति होजाय तो उस दिन उपवास करके अगले दिन यज्ञ करना चाहिये. यह लौगाक्षिका कहना है। हेमाद्रिका तो यह कहना है कि, यदि सन्धि अपराह्नमें हो और प्रतिपदाके चौथे अंशमें चन्द्रोदय हो, और द्वितीया आदिका क्षय हुआ होय तो प्रथम दिनही यज्ञ करै ऐसे वाक्य हैं कि, द्विजाति पर्वके दूसरे अंशमें याग करैं कारण कि, द्वितीयाके सहित यज्ञको आश्वलायन दूषित करते हैं ॥ (द्वितीये तु) यह पद इस वचनमें कैमुतिकन्यायसे चौथे अंशका जतानेवाला है जिससे कि, (तुरीये तु) ऐसा चौथ अंशका बोधक पद शूलपाणिने स्पष्ट लिखा है । बोधायन कहते हैं पूनो और चौदश पूरी हो और द्वितीयाका क्षय होनेवाला हो तौ चरुयज्ञ और अमावास्यामें कव्यकर्म पितरोंके निमित्त करना चाहिये, मदनरत्नमें भी लिखा है यदि चौदश चार प्रहर हो और अमावस घटजाय और प्रतिपदा अगले दिन हो तो प्रथम दिनहीं करै और माधव जो कहते हैं कि, वाजसनेयिशाखावाले पुरुषोंका अग्न्याधान सन्धिदिनसे प्रथम नहीं होता, किन्तु सदा सन्धिदिनसे प्रथम नहीं होता, किन्तु सदा सन्धिके दिनही होता है और जो कालादर्शमें भी यह लिखा है कि, वाजसनेयिब्राह्मणोंका यह कथन है कि, जो

परेद्युरिष्टिरित्याहुर्विमा वाजसनेयिनः॥" इति । यच्च मदनरत्ने-"मध्यंदिनात्स्याद्-हनीह यस्मिन् प्राक्पर्वणः संधिरियं तृतीया । सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोष्याथ परेद्युरिष्टिः॥" इति । एतत् पौर्णमासीपरमिति तत्रैव । आवर्त-नोर्ध्वमर्वागस्तात्प्रात्रौ वा समाप्तौ द्वे, मध्याह्नादर्वाक् समाप्तौ ततीयेत्यर्थः ॥ तत्क-र्कभाष्यदेवजानीश्र्यनन्तभाष्यादिसकलतच्छाखीयग्रन्थविरोधात् वृद्धानादराच्चो-पेक्ष्यम् । पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्यायनः-"संधिश्चेत्संगवादूर्ध्वं प्राक् पर्यावर्तना-द्रवेः । सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ नरैः ॥" अमायां विशेषमाह बौधायनः-"द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत् प्रतिपच्चापराह्णिकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात् ॥" कात्यायनश्च-"यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते । तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्द्विजातये॥" इति। एतच्च बौधायनवाजस-नेयिविषयम् ॥ तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि यागः उक्तः ॥ अमायां चन्द्रदर्श-नेपि यागनिर्णयः । "एषा वै सुमनानामेष्टिर्यामभ्यजानन् । पश्चाच्चन्द्रमा अभ्यु-देत्यस्मिन्नेवास्मै लोकेर्धुकं भवति" इति । श्रुत्यन्तरेऽपि-'यदहः पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाँल्लोकानभ्युदेति' इति । इदं बहुऋचापस्तम्बविषयम् ॥

मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो उस दिन अन्याधान करके अगले दिन योग करै और मद-नरत्नमें जो लिखा है कि, जिस दिन मध्याह्नसे पहले पर्वकी सन्धि प्राप्त हो, वाजसनेयियोंके मतसे वह तीज खर्विका कहाती हैं उस दिन उपवास करके अगले दिन इष्टि करै यह तीनोंका कहना पूर्णिमाके विषयमें जानना, और उसी स्थलमें यहभी कहा है कि, मध्याह्नसे उपरान्त वा अस्तसे प्रथम वा समाप्तिके उपरान्त सन्धि होय और तृतीया मध्याह्नसे प्रथम समाप्त होजाय यह पूर्वोक्त वचनका अर्थ है, यह सब वाक्य कर्कभाष्यदेवजानी श्रीअनन्तभाष्य और उस २ शाखाके सम्पूर्ण ग्रन्थ इनके विरोध और वृद्धोंके अनादरसे उपेक्षा करने योग्य हैं । कात्यायनने पूर्णि-मामें यह विशेष लिखा है कि, यदि सूर्योदयके उपरान्त और मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो शीघ्रकालकी विधिमें मनुष्योंको वही पूर्णिमा माननी चाहिये । बौधायनने अमावास्यामें विशेष लिखाहै यदि प्रतिपदा अपराह्नमें हो और द्वितीया तीन मुहूर्त हो तो चौथेमें अन्वा-धान करै, कारण कि, आगे चन्द्रमाका दर्शन होगा, और कात्यायनने भी लिखा है कि, यदि यागके दिन चन्द्रमाका पश्चिममें दर्शन हो तो व्याहृतियोंसे हवन करके द्विजातियोंको दण्ड दे, यह बौधायनवाजसनेयिशाखावालोंके विषयमें कहते हैं और तैत्तिरीयश्रुतिमें तो चन्द्रदर्शनमेंभी याग कहा है ॥ कि, 'यह सुमना नाम है जिस इष्टिको करते हुए पीछे चन्द्रोदय हो इस यज्ञसे यजमानको निश्चल पुण्य होताहै और श्रुतियोंमें भी कहा है कि, जिस दिन यज्ञके उपरान्त चन्द्रोदय हो उस दिन यज्ञका करनेवाला इन लोकोंको प्राप्त होताहै, यह आप-

मदनरत्नेप्येवम् । आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहेप्येवम् ॥ अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्राद्व्यवस्थेति तत्त्वम् ॥'दूषयन्त्याश्वलायनाः इति तु पूर्वाह्णसंधिविषयमिति माधवः' शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः–"प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते । पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः॥" गृह्याग्नेनायं नियम इति मदनपारिजातः ॥ एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्रयोंऽशा यागकाल उक्तः ॥ क्वचित् प्रतिपत्तुर्यांशेऽपि यागः–"संधिर्यद्यपराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेहनि । कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेपि न दुष्यति " इति वृद्धशातातपोक्तेः॥ एतत्पूर्णिमापरमिति मदनरत्ने ॥ पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्द्धं प्रक्षिप्य संधिर्ज्ञेयः । तदाह माधवः– "वृद्धिः प्रतिपदो यास्ति तदर्धं पर्वणि क्षिपेत् । क्षयस्यार्धं तथा क्षिप्त्वा संधिर्निर्णीयतां सदा॥" इति ॥ कात्यायनोपि–"परेह्नि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च याः। क्षिप्त्वा तदर्थं पूर्वस्मिन् ह्रासवृद्धी प्रकल्पयेत् ॥" इति ॥ एवं स्मार्तस्थालीपाकेपि ज्ञेयम् ॥ तत्रेष्टिस्थालीपाकान्वाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ, न तु दर्शे ॥ मलमासादावप्यारम्भः । यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरुशुक्रास्तादि भवति तदाप्यारम्भः कार्यः ॥ यानि तु–" उपरागोधिमासश्च यदि

स्तम्बबहृचोंके विषयमें कहतेहैं । मदनरत्नमेंभी ऐसाही कहाहै आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहमें भी यही है इस कारण दोनों पक्षोंकी व्यवस्थाके सिद्धान्तको जो आश्वलायनने दूषित किया है वह पूर्वदिन सन्धि होनेसे जानना यह माधवका कहना है । माधवीय ग्रन्थमें गर्गने शेषपर्वोंके यज्ञमें यह विशेष लिखाहै कि, प्रतिपदा आनेसे पहले २ यदि यज्ञ समाप्त हो जाय तो यज्ञके जाननेवाले फिरसे उस सम्पूर्ण इष्टिको करैं. मदनरत्नमें पारिजातका यह कथन है कि, गृह्य अग्निमें यह नियम नहीं है इस प्रकार पर्वका अन्त्यपाद और प्रतिपदाका पहला, तेरहवां भागभी यज्ञका समय कहाहै और स्थलमें तो पडवाके प्रथम चतुर्थ भागमें यज्ञ करना कहा है कारण कि, वृद्धशातातप यह कहते हैं कि, यदि अपराह्णमें सन्धि होय तो दूसरे दिन प्रतिपदाके चौथे भागमें यज्ञ करनेका दोष नहीं है, मदनरत्नमें लिखा है कि, यह वाक्य पूर्णिमाविषयक हैं प्रतिपदाकी पर्वमें वृद्धि और क्षयके अर्धभागको मिलाकर सन्धि जाननी, और यही माधवने लिखा है कि, प्रतिपदाकी वृद्धिके आधेको पर्वमें मिलादे और इसी भाँति क्षयके आधेको मिलाकर सदा सन्धिका निर्णय करै, कात्यायन भी कहते हैं जो घटी परदिनमें न्यून हो वा अधिक हो उसका अर्धभाग करके पर्वमें न्यून वा वृद्धि करले यही विधान स्मार्तोंके स्थालीपाकमें जानना उसमें इष्टि और स्थालीपाक यह दोनों उस दोनों उस पूर्णिमामें प्रारम्भ करने जो अन्याधान और गृहप्रवेशके हवनके उपरान्त आई हो । अमावास्यामें न करने॥ जो मलमास पौषमास तथा गुरुशुक्रादिका अस्त हो तो ऐसे समयमें भी आरंभ कर दे, और जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण मलमास यह प्रथम पर्वमें हो वा अधिक

प्रथमपर्वणि । तथा मलिम्लुचे पौषे नान्वारम्भणमिष्यते । गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥" इति संग्रहवचनानि ॥ तानि आलस्यादिनातिक्रान्तशुद्ध-कालप्रारम्भविषयाणि ॥ "नामकर्म च दर्शेष्टिं यथाकालं समाचरेत् । अतिपाते सति तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभे ॥" इत्यपरार्के गर्गवचनादिति प्रयोगपरिजाते उक्तं चैतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः ॥ कालादर्शे तु–'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति पाठः । याज्ञिकास्तु–"आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा । तस्यामारम्भणीया-दीन्न कुर्वीत कदाचन ॥" इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छुद्धकाल एव विभ्र-ष्टेष्टिं कृत्वारम्भं कुर्यादित्याहुः ॥ कालादर्शे स्मृतिसंग्रहेपि–"आरम्भे दर्श-पूर्णेष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठाः पञ्चकर्माद्या मलमासे विवर्जयेत् ॥" इति ॥ विकृतीष्टिनिर्णयः । अथ विकृतीष्टिः । तत्रापस्तम्बः–'यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा' इति ॥ अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेपि सद्यस्कालता विधेया । तृतीयायां साङ्गत्वे-नोक्तेः ॥ अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यां तदन्त्यक्षणो गृह्यते । तेन तद-न्त्यहोरात्रे इत्यर्थमाह रामाण्डरः ॥ माधवोपि–'इष्ट्यादिविकृतिः सर्वा पर्व-ण्येवेतिनिर्णयः' इति । अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः कात्यायनश्च–"आवर्तनात्

मास पौष गुरु और शुक्रका-अस्त होय तो प्रारंभ न करना यह संग्रहके वचन हैं, यह उस विषयमें जानने चाहिये जब आलस्यसे शुद्ध काल बीत गया हो तो अशुद्धमें प्रारंभ न करके शुद्धमें करे, अपरार्कमें गर्ग यह कहते हैं नामकर्म अमावस्याकी इष्टि यह शुद्धकालमें करै और यदि ऐसे कालमें न हो सके तो किसी उत्तम मास और पवित्र नक्षत्रमें प्रारंभ करै । प्रयोग-पारिजात और प्रयोगरत्नमें भट्टभी ऐसा ही कहते हैं । कालादर्शमें तो नामकर्म और जातकर्म यह दो पाठ हैं और याज्ञिक तो यह लिखते हैं कि, जो पूर्णिमा अग्न्याधानके उपरान्त मल-मासमें होय उसमें किसी प्रकारके यज्ञकार्य आरंभ न करै, त्रिकाण्डमण्डनके वचनसे शुद्धकालमें ही नष्ट यज्ञको प्रारंभ करना चाहिये, कालादर्शमें स्मृतिसंग्रहका वचन है कि, अमावस पूर्णिमाका यज्ञ प्रथम अग्निहोत्र और प्रतिष्ठा पंचकर्मादिको मलमासमें त्याग देना चाहिये ॥ अब विकृतियज्ञका वर्णन करते हैं इसमें आपस्तम्ब कहते हैं कि, जो मनुष्य प्रधान यज्ञकी सिद्धिके निमित्त इष्टि अग्नीषोमीयपशु वा सोमयज्ञ करना चाहे उसे अमावस्या और पूर्णिमामें करना चाहिये इसमें प्रकृतिका समय सिद्धभी था, परन्तु शीघ्रकालमें करनी यह सांगत्वने तृतीयामें कहा है यहां पूर्णिमा और अमावसशब्दोंसे इनके अन्त्यका क्षण ग्रहण करना, इससे अन्त्यक्षणवाले अहोरात्रमें करना यह अर्थ रामाण्डरने लिखा है और माधव भी यह कहते हैं कि, यह निर्णय है कि, इष्टि आदि सब विकृति पर्वमें ही होती हैं यह निर्णय है । इसमें विशेष त्रिकाण्डमण्डन और कात्यायनने कहा है कि, यदि पर्वकी संधि मध्याह्नसे पहले की

प्रागयदि पर्वसंधिः कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः । तदैव यागः परतो यदि स्यात्तस्मिन्विकृत्या प्रकृतेः परेद्युः ॥ " इति ॥ धूर्तस्वाम्यादयोप्येवमाहुः । 'यदीष्ट्येति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनात् प्राक् संधौ संधिमभितो यजेत' इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात् प्रकृत्यन्तरप्रतिपदि विकृत्ययोगात् पूर्वेद्युर्विकृतिरित्युक्तं तन्त्ररत्ने पार्थसारथिना । यद्यपि–'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्ते स्यात्' इत्यापस्तम्बेनोक्तम् । तथापि हेतुवादेन श्रुतिमूलत्वाभावात् 'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इतिवदप्रामाण्यमिति तदाशयः ॥ आग्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ अन्वारम्भणीया तु चतुर्दश्यां कार्येति हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये ॥ अन्येषां पर्वण्येव ॥ पशौ सोमे च कालान्तरमप्याह बौधायनः–'अमावास्येन वा हविषेष्ट्वा नक्षत्रे च' इति ॥ शुक्लपक्षे कृतिकादिविशाखान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी व्याचख्यौ ॥ चातुर्मास्येष्वपि इष्ट्यारम्भनिर्णयः । चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रेष्वप्यारम्भः ॥ यावज्जीवसांवत्सरप्रयोगयोस्तु फाल्गुन्यां चैत्र्यां वारम्भः ॥ पशौ तु विशेषमाह कात्यायनः–"अर्धादह्नो भवति नियतं पर्वसंधिः परस्तात्कृत्वा तस्मिन्नहनि तु पशुं सद्य एव द्व्यहं वा ॥ आरम्याथ प्रकृतिरथ

हो तो उस दिन पहले विकृतिकी प्रकृतिको करके पीछेसे यज्ञ होता है, उस दिन विकृतिसे दूसरे दिनमें विकृतिकी प्राप्ति हो सकती है इसी प्रकार धूर्तस्वामी आदिभी कहते हैं । (यदीष्ट्या) इस वाक्यसे पर्वकालमें अंगसहित विकृतिकोही होनेसे मध्याह्नसे प्रथम सन्धि होय तो यज्ञ दोनों दिन करना इस वाक्यसे प्रकृतिकी पूर्तिका प्रतिपदाको नियम है, यदि प्रकृतिके पीछे प्रतिपदा आवे तो विकृति नहीं हो सकती, तन्त्ररत्नमें पार्थसारथि यह कहते हैं कि, पहले दिन विकृति होती है यद्यपि प्रकृतिको पहले होनेसे अपूर्व अन्तमें होता है यह आपस्तम्ब लिखते हैं तथापि हेतुवादसे यह वार्ता श्रुतिप्रमाण न होनेसे जिस प्रकार असमभिव्याहार होनेसे अंगको अप्रमाणता है इसी प्रकार यहभी अप्रमाण हो जायगा यह उसका अशय है, विशेष आग्रयण यज्ञमें लिखेंगे और अन्वारम्भणयाग तो चतुर्दशीमें करना, यह वार्ता हिरण्यकेशिवृत्ति और मातृदत्तीयमें लिखी है औरोंके मतमें यहभी पर्वमेंही करना, बौधायन पशु और सोमयाग अन्यसमयमेंभी कहते हैं कि, अमावस्याको हविष इष्टिसे नक्षत्रमें करै और शुल्कपक्षमें कृत्तिका आदि विशाखातक देव नक्षत्रोंमें करै केशवस्वामीने ऐसी व्याख्या की है ॥ चातुर्मास्यमेंभी कर्मानुसार द्वादश दिनतक नक्षत्रोंमेंभी प्रारंभ करै, यदि जीवनपर्यन्त वा एक वर्षका प्रयोग होय तो फाल्गुन और चैत्रकी अमावास्याको प्रारंभ करना चाहिये, अग्नीषोमीय पशुयोगमें कात्यायनने विशेष लिखा है कि, यदि नियमसे आधे दिनसे आगे पर्वकी संधि हो तो उसमें उसी कालमें वा दो दिनतक पशुयाग आरंभ करके प्रकृतिको निष्पादन

त्पर्वसंधिः पुरस्तात्कृत्वा तस्मिन्प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य एव ॥ " अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेण सवनीयेन वा समानतन्त्रो वा कार्य इति त्रिकाण्डमण्डनः ॥ सोमे त्वापस्तम्बः–'अमावास्याया दीक्षायजनीये वामावास्यायां यजनीये वा सुत्यमहः, पौर्णमास्या दीक्षायजनीये वा पौर्णमास्यां यजनीये वा सुत्यमहः ॥" इति ॥ लाट्यायनसूत्रेपि–'पूर्वपक्षस्य प्रथमेहनि दीक्षेत दृष्ट्वा वा नक्षत्रयोगे च' इति ॥ पूर्वपक्षः शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगे चेति । अयमर्थः–' चैत्र्यादिपूर्णिमायांश्चित्रानक्षत्रयोगे दीक्षेत ' इति ॥ आधानकालनिर्णयः । आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्व नक्तं 'गार्हपत्यमादधीत ' इत्यादिकर्मकालव्याप्यपि ग्राह्यम् ॥ दिनद्वये सत्त्वे परं ग्राह्यम् । संकल्पस्य पर्वणि लाभात् । पूर्वत्र नक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् ॥ यत्र त्रीणि सन्निपतितान्यृतुर्नक्षत्रं च पर्व तत्समृद्धं 'विप्रतिषेधे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्यकेशिसूत्रात् ॥ ऋतुः 'वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत'इत्यादिः ॥ रेणुकारिकायां तु " माघादिपञ्चमासेषु श्रावणे वाश्विने तथा । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथ कारयेत् ॥ " इत्युक्तम् ॥ अत्र मूलं मृग्यम् ॥ आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे–'कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वोत्तरापूर्वाषाढोत्तराषाढाहस्तचित्राविशाखाऽनुरा-

---

करै यदि मध्याह्नसे प्रथम पर्वकी संधि होय तो उसी दिन प्रकृतिको निष्पादन करै सद्यही पशुयाग करै । त्रिकाण्डमण्डन कहते हैं कि, अधिकार पशुयागको तो अग्नीषोमीयके वा सवनीयके संग करै वा एक साथही करे । सोमयागमें तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि, अमावस्याको दीक्षा ले, और अमावस्यामें वा यज्ञके दिन स्तुतिका दिन होता है । लाट्यायनसूत्रमें भी लिखा है कि, नक्षत्रके योगको देखकर वा शुक्लपक्षके प्रथम दिनमें दीक्षा ले, और चैत्र पूर्णिमाकी चित्रादि नक्षत्रके योगमें दीक्षा लेनी ॥ आधान तो पर्व वा नक्षत्रोंमें भी लिखा है इसमें पर्व नक्तको उसेही माने गार्हपत्य अग्निका आधान करै इस आदिकर्मकालका व्यापी हो जो दोनों दिन होय तो परदिनमें माननी चाहिये, कारण कि, पर्वमें संकल्पका लाभ होगा, और यदि प्रथमही संकल्पका योग होय तो उसकोही माने और जहां ऋतु नक्षत्र पर्व यह तीनों प्राप्त हो जांय वह श्रेष्ठ है विरोधमें ऋतु नक्षत्रका बल विचारकर कार्य करै । हिरण्यकेशिसूत्रका कथन है कि, ऋतु वह है कि, वसन्तमें ब्राह्मण अग्न्याधान करै इत्यादि और रेणुकारिकामें यह लिखा है कि, माघआदि पांच महीने श्रावण आश्विन और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें अग्न्याधान करै पर इसमें प्रमाण खोजना चाहिये, आपस्तम्बमें यह आधानके नक्षत्र लिखे हैं कि, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा,

धाश्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति ॥ सोमपूर्वाधाने विशेषमाहापस्तम्बः–सोमेन यक्ष्यमाण आदधानो: नर्तून्सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्' इति ॥ अत्र प्रकरणादाधानकालबाधः । तेन सोमस्य वसंतकालता न बाध्यत इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् ॥ तन्त्ररत्ने वार्तिके च–'ते वा एते उभये अपहतपाप्मानो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्य एषां पाप्मनोपहन्ता । यदेवैनं कदाचन यज्ञमुपनमेदथादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं दैवं दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमृतुत्रयं सोमाधाने शतपथे विशिष्य विहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्तरेपि–'नर्तून् सूर्क्षेत्' इत्यत्र सोमकालबाध एव । आधानकालबाधस्य–'यदेवैनं श्रद्धोपनमेत्तदादधीत' इत्यस्यां शाखायां वाक्यान्तरेणासिद्धत्वात्सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तम्॥ धूर्तस्वामी तु–'सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि न सूर्क्षेत्' इति लिखनादुभयकालबाधं मन्यते ॥ श्रीरामाण्डारस्तु–'कालान्तरविधानं वा सर्वकालऽनादरो वा' इति पक्षद्वयमुक्तवान् । तत्राद्ये कृत्तिकादिकालान्तरस्य यथाधाने वसन्ताद्यबाधेन विधानम् । तथा–'सोमेप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसंनिपाते यज्ञकालानादेशः' इति छन्दोगसूत्रोक्तोदगयनबाधेन सोमाभिसंधिरूपकालान्तरविधानादुदग–

विशाखा, अनुराधा, श्रवण और उत्तराभाद्रपदा यह नक्षत्र हैं । और आपस्तम्बने सोमपूर्वक आधानमें विशेष लिखा है कि, सोमयागकर्ताको आधानमें ऋतु और नक्षत्रोंके पूछनेकी आवश्यकता नहीं यहां प्रकरणसे आधानकालका बाध प्राप्त है इससे सोमको वसन्तकालका बाध नहीं है यह वार्ता रुद्रदत्तवृत्ति और नारायणवृत्तिमें कही है तन्त्ररत्नवार्त्तिकमें भी लिखा है यह दोनों उत्तरायण दक्षिणायन पापरहित ऋतु हैं यह उदय होता हुआ सूर्य इनका पाप दूर करनेवाला है जो इनमें कभी यज्ञ करै और आधान करै इस प्रकार उत्तर नारायणरूप दैव और दक्षिणायनरूप पितृकार्य यह दोनों और तीनों ऋतु सोमाधानमें शतपथब्राह्मणने विशेष लिखी है, सो एकवाक्यता होनेसे शाखान्तरमें भी ऋतु और नक्षत्रको न देखे यह सोमकालका बाधही है, आधानके कालका बाध यह है कि जब यह श्रद्धासे युक्त हो तब आधान करै, इस शाखासे वाक्यान्तरसे सिद्ध होनेसे यह सोमकालके बाधके निमित्तही है ऐसा कहा है ॥ धूर्तस्वामीका तो यह लिखना है कि, सोमकी जो ऋतु है उसकीही परीक्षा न करै इस लिखनेसे दोनों कालका बाध मानते हैं, श्रीरामाण्डार तो दूसरे कालकी विधि वा समयोंका अनादर मानना इन दो पक्षोंको कहते हैं, उनमें प्रथम पक्षमें कृत्तिका आदि समयान्तरका विधान अग्न्याधानमें वसन्तादिके बाध विना होता है, इसी प्रकार सोमयागमेंभी उत्तरायण पूर्वपक्ष पुण्याह इन सबके संयोगमें पुण्यसमय वहां होता है जिस स्थलमें कोई विशेष विधान न हो इस प्रकार छान्दोग्यसूत्रके लिखे हुए उदगयन अर्थात् उत्तरायण सोमयज्ञके प्रारंभरूप कालान्तरके विधानसे

यनं त्वपेक्षत इत्युक्तम् ॥ द्वितीयपक्षे तु 'यदैवैनं यज्ञ उपनमेत्' इति सर्व-कालानादर उक्तः इति भारद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य च 'विश्वजित्सर्वपृष्ठः' इतिवत् द्वयोरप्रयोगात् सर्वकालबाध इति। तेन दक्षिणायनेपि भवतीत्युक्तम् ॥ षड्-गुरुभाष्ये देवत्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्वपि ऋतुषु भवतीत्युक्तमिति दिक् ॥ दर्शश्राद्धकालः। श्राद्धे त्वमावास्या त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशे योऽपराह्णभागस्त-द्व्यापिनी साग्निकैर्ग्राह्या। "पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते। वास-रस्य तृतीयेंशे नातिसंध्यासमीपतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः ॥ "दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम्। अपराह्णे पितृणां च तत्र दानं प्रशस्यते ॥" इति शातातपोक्तेश्च ॥ दिनद्वये तत्र सत्त्वे सर्वापराह्णव्यापी दर्शो ग्राह्यः ॥ 'यज्ञभयेष्टरेष विहितः सर्वापराह्णस्थितः" इति दीपिकोक्तेः ॥ यत्तु का-र्ष्णाजिनिः--"भूतविद्धाममावस्यां मोहादज्ञानतोपि वा। श्राद्धकर्मणि ये कुर्यु-स्तेषामायुः प्रहीयते ॥" इति। तदपराह्णे चतुर्दशीवेधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः ॥ अपराह्णव्याप्तिपरमिति माधवः ॥ 'दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेंशतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वा' इति हेमाद्रिः। "यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्। अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥" इति कात्यायनोक्तेः॥ चतुर्दश्याश्चतुर्थं यामं दर्शः

उत्तरायणकी तो अपेक्षा होती है इस प्रकार लिखाहै, दूसरे पक्षमें जब कालान्तरमें यजमानको यागप्राप्ति हो तभी और सब समयोंका अनादर जानना, इस प्रकार भारद्वाजके सूत्रानुसार सर्व-शब्दको (विश्वजित् सर्वपृष्ठ) विश्वजित् यज्ञ सबसे अधिक है इसके तुल्य दोनों प्रयोग न होनेसे सर्वकालका बाध प्राप्त होताहै, इससे यह जताया कि, दक्षिणायनमेंभी यज्ञ होता है षड्गुरुभाष्य देवत्रातभाष्य, और तन्त्ररत्नमें लिखा है कि, छहों ऋतुओंमें यज्ञ होताहै. यही संक्षेपसे मार्ग कहा ॥ श्राद्धमें इस प्रकार अमावास्याका ग्रहण है कि, एक दिनके तीन विभाग करके तीसरे भागके अपराह्न भागमें व्याप्त होनेवाली अमावस ग्रहण करनी वही अग्निहोत्रियोंको ग्रहण करनी चाहिये, कात्यायन लिखते हैं कि, सपिण्डश्राद्ध दिनके तृतीयभाग अमावास्यामें करना उत्तम है और जब सन्ध्यासमय बहुत निकट आगया हो तो न करै, शातातप कहते हैं अमावसके श्राद्धकोही पार्वण कहते हैं उसके अपराह्नमें पितरोंको दिया दान अति श्रेष्ठ है। जो दोनों दिन अपराह्न होय तो वह ग्रहण करनी जो सम्पूर्ण अपराह्नव्यापिनी हो दीपिकामें कहा है कि, दोनों दिन श्राद्धकी विधि प्राप्त हो तो सब अपराह्नमें स्थितको ग्रहण करै और कार्ष्णाजिन यह कहते हैं कि, जो मनुष्य मोह वा अज्ञानसे चतुर्दशीविद्धा अमावास्याको करते हैं उनकी आयु क्षीण होती है यह वार्ता अपराह्नमें चतुर्दशीके वेध होनेपर जानना, यह, श्राद्धहेमाद्रिका कथन है। माधव कहते हैं जो अपराह्नव्यापिनी होय तो मानै जो दोनों दिन अपराह्नमें व्याप्त न हो अथवा किसी अपराह्नके भागमें वर्तती हो अथवा तिथिका क्षय हुआ हो तो प्रथमहीकी करनी. यह हेमाद्रिका कथन है। कारण कि, कात्यायन कहते हैं जिसदिन चौदसके चतुर्थ पहरको अमा-

पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः ॥ क्षीयमाणा परदिनेऽपराह्णव्यापिनी नेत्यर्थः ॥ व्यतिरेकमाह–" वर्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेहनि । यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ " ततः श्राद्धं च ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौ तिथिवृद्धौ च हारीतः–"त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा खर्वा च बह्वृचैः । कुहूरध्वर्युभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः ॥"त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेत्यर्थः ॥ पिण्डपितृयज्ञः । पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युः कार्यः ' पूर्वो वांगत्वात् पिण्डपितृयज्ञः'इति तत्सूत्रात् ॥ व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैः पूर्व एव दर्शात् पिण्डपितृयज्ञो, न पश्चात् । कुतः अंगत्वात् । तथा च श्रुतिः–" तस्मात्पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान् यजन्ते " इति । ' पूर्वेद्युः पितृभ्यो यज्ञं निपृणीय प्रातर्देवेभ्यः प्रतनुते ' इति च । तेन तन्मते अंगमेवासौ तदुक्तम्–" अंगं वा समभिव्याहारात् "इति । तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पिण्डपितृयज्ञ इति॥ श्रीअनन्तभाष्ये तु–'परेद्युः 'इत्युक्तम् ॥ अत्र द्वेधाप्याचारो दृश्यते ॥ आपस्तम्बानां तु परदिने मुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः । तदाह आपस्तम्बः–"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिंडपितृयज्ञं कुरुते " इति ॥ अस्य रुद्रदत्तीया व्याख्या पिंडैर्युक्तः पितृयज्ञः पिंडपि-

वास्या पूर्णकरदे और अमावस अगले दिन अपराह्णमें न हो क्षीण हो तो चतुर्दशीकोही श्राद्ध करलेना, इसका अभाव लिखाहै कि, जो अगले दिनमें तीनपहर अथवा अधिक पहरतक बढती हुई अमावास्याको देखै तो पितृयज्ञ होता है जो दोनों दिन पराह्णव्यापिनी होय वा तिथिकी वृद्धि होय तो हारीत यह कहते हैं कि, चन्द्रकलायुक्त अमावसके तीन मुहूर्त होनेपर भी बह्वृचोंको पहली करनी चाहिये, और जिसमें चन्द्रकला न हो उसको अध्वर्यु करै, और सामवेदी इच्छानुसार चाहै जिसे करै जो पहले दिन तीन मुहूर्तपर्यन्त न हो तो न करै ॥ कात्यायन महर्षिने पिण्डपितृयज्ञ यागदिनसे पहले करना लिखा है यह उनका सूत्र है कि, यज्ञाङ्ग होनेसें पिण्डपितृयज्ञको प्रथम करना चाहिये, कर्काचार्यने इस प्रकार इसकी व्याख्या की है कि, पिण्डपितृयज्ञ अंग होनेसे अमावास्यासे पहले करै पीछे न करै श्रुति है कि, पहले दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करना दूसरे दिन देवताओंके निमित्त, प्रथम दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करके दूसरे दिन प्रभातमें देवताओंके निमित्त करै, इस कथनसे उनके मतमें पितृयज्ञ देवयज्ञका अंगही विदित होता है, यही लिखा भी है कि, समभिव्याहारके कारण प्रथम अंगकोही करना चाहिये, इससे कर्काचार्यके मतमें चतुर्दशीसे युक्त अमावास्याको पिण्डपितृयज्ञ होना चाहिये, श्री अनन्तभाष्यमें लिखाहै कि, पहले दिन करै, लोकमें दोनों प्रकारकाही आचार देखा जाताहै और आपस्तम्बोंके मतमें यदि दूसरे दिन अमावस मुहूर्तमात्र हो तो भी उसी दिन पितृयाग होताहै । यह कहतेहैं जब अमावसमें चन्द्रमा न हो तब उस दिन पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये, इसपर जो रुद्रदत्तने व्याख्या की है कि, जो पितृयज्ञ पिण्डोंसे युक्त होनेसे पिण्डपितृयज्ञ कहाता है यह कर्म दूसरा

नृयज्ञः सच कर्मान्तरं न तु दर्शशेषः । यथा वक्ष्यति–' पितृयज्ञः स्वकालविधानाद्-नंगं स्यात् ' इति । ' तं च यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति पञ्चदश्यां प्रतिपदि वा तदहः कुरुते । यदहस्तयोः संधिस्तदहरित्यर्थः ' इति ॥ रामांडारोप्याह ' पिंडपितृयज्ञस्तु पर्वसंधिमदहोरात्रापराह्ण ' इति॥ अतः पर्वसंधिदिने पितृयज्ञः॥ शतपथश्रुतिरपि " यदैवैष नापुरस्तान्न पश्चाद्दृश्यतेऽथ पितृभ्यो ददाति " इति ॥ पर्वसन्धिदिने हि पूर्वतः पश्चाद्वा चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः ॥ सत्यापाढोपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य ' दृश्यमाने तूपोष्य श्वोभूते यजते ' इत्याह ॥ हेमाद्रिस्तु अमावास्याशब्दस्तिथिवचन एव। पूर्वोक्तापस्तम्बसूत्रे यदुक्तं न पश्यन्ति इति तत्र क्षयोभिप्रेतः अतश्चतुर्दश्यां चन्द्रमसश्च क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शे पितृयज्ञः ' पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रे क्षयेऽग्निमान् ' इति मनूक्तेः ॥ " यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः । तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि ॥ " इति । यदुक्तं ' दृश्यमानेपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ' इति च कात्यायनोक्तेः । ' दृश्यमानेप्येके ' इति गोभिलोक्तेः ॥ " तस्यां सन्ध्यागतः सोमो मृणालमिव दृश्यते । अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम् ॥ " इति हारीतोक्तेश्च । चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन– "अष्टमेंशे

है कुछ अमावस्याका शेष नहीं है यही: आगे कहेंगे, स्वकालमें अनुष्ठान करनेसे अमावास्याके श्राद्धका पितृयज्ञ अंग नहीं है जिस दिन चन्द्रमाको पूर्णिमा वा प्रतिपदामें न देखे उसी दिन करे तात्पर्य यह है कि, जब इन दोनोंकी संधि होय तब करै श्रीरामाण्डारभी कहते हैं कि, पिण्डपितृयज्ञ भी पर्वकी संधिवाले अहोरात्रके अपराह्णमें होता है, इससे पितृयज्ञ पर्वकी संधिके दिन होता है, शतपथब्राह्मणकी श्रुति है कि, यजमान जब पर्वकी संधिके दिनसे पहले वा पीछे दिनमें चन्द्रमा न देखे तब पितरोंके निमित्त दे अर्थात् यज्ञ करे पितृयज्ञके प्रकरणमें सत्याषाढ कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते हुए चतुर्दशीको उपवास करके फिर दूसरे दिन प्रभातमें याग करे, हेमाद्रितो यह लिखते हैं कि, अमावस्या शब्दका यहां तिथि अर्थ है और पूर्वोक्त आपस्तम्बमें जहां लिखा है कि, जब चन्द्रमा न दीखे वहां चन्द्रमाका क्षय लेना, इस कारण चन्द्रमाके क्षीण होनेसे चतुर्दशीको भी चतुर्दशीयुक्त अमावसको भी पितृयज्ञ करना चाहिये अग्निहोत्री ब्राह्मण चन्द्रमाके क्षीण होनेमें पितृयज्ञ करै फिर अन्यकर्म करै यह मनु कहते हैं और यह जो कहा है कि, जब चन्द्रमा दर्शन न दे और क्षीणचन्द्रमा हो तब यज्ञ करै यह सब क्षयकी अपेक्षासे जानना, और यह जो कहा कि, चन्द्रमाके दर्शन होनेसे उपवास करके चतुर्थीकी अपेक्षासे समझना यही कात्यायनने लिखा है कोई कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते भी पितृयाग होता है यह गोभिलजीने लिखा है, हारीत महर्षि कहते हैं कि, संध्यासमय जिस तिथिको चन्द्रमा कमलतन्तुके समान दीखे उसके अपराह्णमें क्षय होता है उसमें अवश्य पिण्डदान करै, कात्यायनने चन्द्रमाके क्षयका यह समय कहा है कि चौदशके अष्टम भागमें चन्द्रमा

-चतुर्दश्यां क्षीणो भवति चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमेंशे तु पुनः किल भवेदणुः ॥ " इति ॥ तेन पूर्वेद्युरेव पितृयज्ञ इत्यूचिवान् ॥ कर्काचार्यैरपि-'अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम् ' इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः , तस्मिन् क्षीणे ददाति ' इति श्रुतेः ॥ अतस्तन्मते चतुर्दशी-युक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोर्थात्सिद्धः ॥ तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैरनभ्युपगमात्कातीयबौधायनादिविषयम् ॥ आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः ॥ तथा च सूत्रम्-' अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः ' इति ॥ अत्र नारायणवृत्तिः-अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः संधिवचनोप्यत्रापराह्णशब्दसमन्वयात्तद्युक्तेऽहोरात्रे वर्तते । तस्यापराह्णेऽह्नश्चतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः । औपवसथ्ययजनीये वाहनि ॥ यदा त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदौपवसथ्ये एवाहनि क्रियत इति ॥ अत एव-"मुहूर्त्तमप्यमावास्या प्रतिपद्यपि चेद्भवेत् । तद्दत्तमक्षयं ज्ञेयं पर्वशेषं तु पूर्ववत् ॥" इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञपरमुक्तं प्रयोगपारिजाते । अयं च स्मार्ताग्निमता संपूर्णे दर्शे श्राद्धव्यतिषङ्गेण कार्यः । व्यतिषंगोनामोभयोः सहानुष्ठानम् । एतच्च ' स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य ' इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम् ॥ खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः-'पूर्वेह्नि पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धं कृत्वा परेह्नि

क्षीण होता है और अमावास्याके आठवें भागमें अणु होजाता है इससे पिण्डपितृयज्ञ प्रथम दिनही करना चाहिये ॥ कर्काचार्यने भी अमावास्याके अपराह्णमें चन्द्रमाके न दीखनेपर पिण्डपितृयज्ञ करना कहा है और चन्द्रमाके न दीखनेपर ही कात्यायनसूत्रमें भी क्षय लिखा है कि, चन्द्रमाके क्षीण होनेपर देना. ऐसी श्रुति है इस कारण उनके मतमें चतुर्दशीयुक्त अमावसके होनेमें पितृयज्ञ होनेपर परदिनमें यज्ञ सिद्ध है सो यह सबसे उत्कृष्टभी हेमाद्रि और कर्कादिका व्याख्यान आपस्तम्बोंने न माननेसे कातीय और बौधायनादिके निमित्त जानना और आश्वलायनोंका भी पिण्डपितृयज्ञ पर्वके शेषमें होताहै ऐसाही सूत्र है कि, अमावास्याको अपराह्णमें पिण्डपितृयज्ञ करना, इसपर नारायणीवृत्ति है कि, अमावसशब्द प्रतिपदा और पंचदशीकी संधिका कहनेवालाभी अपराह्नके मेलसे संधियुक्त अहोरात्रमें वर्तता है उस दिनरात अपराह्ण चतुर्थभागमें पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये अथवा यजन योग्य औपवसथ्यके दिन करै जब अहोरात्रकी संधिमें तिथिकी संधि होय तब प्रथमके दिन यज्ञ करै इसीसे यदि प्रतिपदामें मुहूर्तमात्रभी अमावास्या हो तो उसमें जो दिया जाताहै वह अक्षय होता है कारण कि, यह पर्वका शेष भी पर्वकी सदृश होता है यह हेमाद्रिका वचन पिण्डपितृयज्ञपर प्रयोगपारिजातमें लिखा है और यह स्मार्त अग्निसम्पन्न पुरुष इस यागको पूर्णा अमावास्याके दिन श्राद्धके संगही करै व्यतिषंगसे दोनोंका अनुष्ठान करै यह वार्ता स्थालीपाकके सहित पिण्डोंके निमित्त निकालकर श्राद्ध करै इस सूत्रमें वृत्तिकारने कहा है खण्डपर्वमें तो किसीका

केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः ' ॥ वृत्तिकृता तु–"अन्वाष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम् । काम्यमभ्युदयेष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् ॥ इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु–'स्थालीपाकाद्धुकृत्यामौकरणम्' इत्युक्तेर्दर्शश्राद्धस्थालीपाको नियत इति गम्यते ॥ स्थालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिषङ्गः प्रसिद्धः प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्राद्धादेरपि व्यतिषङ्ग उक्तः किमुत दर्शश्राद्धस्य न्यायविदस्त्वाहुः। सूत्रस्य वृत्तेश्च संपूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवलं श्राद्धं परदिने च केवलः पितृयज्ञः कार्यः ॥ अतएवोक्तं वृत्तिकृता नात्र पूर्वस्थालीपाकश्चोद्यते सर्वश्राद्धेषु प्रसंगादिति ॥ प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव ॥ पूर्वदिने च श्राद्धे अग्नौकरणमेव न पाणिहोमः । "चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते। पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥" इति परिशिष्टे नियमात् ॥ न च लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः । 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुयात्' इति निषेधात् ॥ मैवम् 'श्राद्धस्य गृहत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा कर्तव्यत्वात्' तस्मात् पूर्वेद्युः केवलं श्राद्धं न व्यतिषंगः ॥ इदमेव च युक्तम् आहिताग्निना तु सर्वाधा-

यह कथन है कि, श्राद्ध प्रथम दिन पिण्डपितृयज्ञके साथ करके दूसरे दिन केवल पिण्डपितृयज्ञ करै और वृत्तिकार तो यह कहते हैं कि, अन्वष्टकाश्राद्ध "जो मार्गशिरकी अष्टमीको होता है" को प्रथम दिन और प्रत्येकमहीने पार्वण,. अभ्युदयकाम्यश्राद्ध और आठवां एकोद्दिष्ट होता है यह कथन करके पहलेके चारोंमेसे स्थालीपाकको निकालकर अग्नौकरण करै इस उक्तिसे दर्शश्राद्धमें भी स्थालीपाकका नियम है तथा पितृयज्ञकाही नाम स्थालीपाक है इससे पहले दिनमें दोनोंकी सन्धि सिद्ध हुई और प्रयोगपारिजातमें क्यों यह वार्षिक श्राद्धमें भी मेल कहा है। फिर अमावसश्राद्धकी तो बातही क्या उसमें क्यों न हो। और न्यायके ज्ञाता तो यह कहते हैं कि, सूत्र और उसकी वृत्ति यह सब अमावास्याविषयक है खण्डपर्वमें पूर्वदिनमें केवल श्राद्ध और परदिनमें केवल पितृयज्ञ करना इसी कारण वृत्तिकार यह कहते हैं कि, इस स्थलमें अकथित पूर्व स्थालीपाक नहीं कहा है कारण कि, स्थालीपाकका प्रसंग सब श्राद्धोंमें होता है। और प्रयोगपारिजातकी उक्तिभी इसी विषयमें है पूर्वदिनमें श्राद्ध करै तो अग्नौकरण करना चाहिये पाणिहोम (ब्राह्मणके करमें होम) न करै कारण कि, परिशिष्टमें कहा है कि, प्रथम चार श्राद्धोंमें अग्निहोत्रीको अग्निमें हवन करना चाहिये यह नियम है, और पितृकर्ममें अगले चारोंमें भी ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करै यदि शंका हो कि लौकिक अग्निमें पाचित किये द्रव्यका हवन विवाहकी अग्निमें कैसे नहीं होसकता है कारण कि, अन्य अग्निमें पाचित किये द्रव्यका दूसरी अग्निमें हवन निषेध किया है यह शंका यहां नहीं हो सकती, कारण कि, श्राद्ध गृहकार्य होनेसे स्मार्त वा पाक अग्निमें करने योग्य है इस कारण प्रथम दिन श्राद्ध करना, व्यतिषंग न करना; और यह

निनार्धाधानिना वा सम्पूर्णे खण्डे वा दर्शे श्रौताग्नौ पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो न तु दर्शश्राद्धव्यतिषङ्गेणेति विस्तरभीतेर्विरमामः॥ सम्पूर्णे दर्शे च विशेषमाह लौगाक्षिः—"पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः। पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोन्वाहार्यकं बुधः ॥" इति पक्षान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् ॥ अयमेव साग्नेर्जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञकालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन होमान्तमनारम्भो वा इत्याम्नानात् ॥ पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः—"पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेपि च। भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥" इत्यलम् ॥ प्रकृतमनुसरामः निरग्निकादिभिस्त्वमावास्यापराह्णव्याप्त्यभावे तु कुतुपकालव्यापिनी ग्राह्या । "भूतविद्धाप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा। पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतुपकालिकी ॥" इति हारीतोक्तेः ॥ इदं च निरग्निकादिविषयम् । "सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि। स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः ॥" इति लौगाक्षिवचनात् ॥ अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ कुतप-

---

युक्त भी है कि, अग्निहोत्रका ग्रहण करनेवाला चाहे सर्वाधानी वा अर्धाधानी हो अर्थात् जिसने सम्पूर्ण अग्नि वा एक दो का आधान किया हो वह पूर्ण वा खण्डित अमावसमें श्रुतिकी अग्निमें पृथक्ही पितृयज्ञ करै दर्शश्राद्धके संग न करै अब विस्तारभयसे बस करतेहैं॥ लौगाक्षिने पूर्ण अमावस्यामें विशेष लिखा है कि, पक्षान्तकर्म और बलिवैश्वदेव करके अग्निहोत्री ब्राह्मणको पिण्डयुक्त करना चाहिये पक्षान्तकर्म अन्वाधान है अन्वाहार्यक दर्शश्राद्ध है, फिर बुद्धिमान् दर्शश्राद्ध करै, और जीवितपितावाले अग्निहोत्रीका भी पिण्डपितृयज्ञका यही समय जानना, कात्यायन कहते हैं वह भी होमके अन्ततक आरम्भ न करै ॥ पराशरमाधवीय ग्रन्थमें पिण्डपितृयज्ञके न करनेमें कात्यायनने प्रायश्चित्त लिखा है कि, यदि पितृयज्ञ और बलि वैश्वदेव न करै और नवयज्ञके किये विना नवान्नमें भोजन करले तथा पतितका अन्न भोजन करले तो अग्निमन्त्रसे निर्माण किये चरुसे हवन करै, यही बहुत है, अब प्रकरणपर चलते हैं कि, जो अग्निहोत्री नहीं है यदि उनको अमावास्या अपराह्णव्यापिनी न मिले तो कुतुपकाल अर्थात् मध्याह्नकी दो घडी व्यापनेवाली ग्रहण करले कारण कि, हारीत कहते हैं, जो अमावस चौदसविद्धा हो वा प्रतिपदासे संयुक्तहो तो पितृकालमें बुद्धिमान्को वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि वह कुतुपकालव्यापिनी होय तो यह भी उन्हींके निमित्त है यदि वे अग्निहोत्र करनेवाले न हों कारण कि, लौगाक्षि कहते हैं कि, पितरोंके कार्यमें अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको सिनीवाली लेनी चाहिये। स्त्री, शूद्र तथा दूसरे जो अग्निहोत्री न हों उन ब्राह्मणोंको कुहू अमावास्यामें करना चाहिये। कोई यहां अग्निपदसे उपासनाग्निका ग्रहण करते हैं । यह मदनपारिजातमें लिखा है और यदि अपराह्णमें कुतुपसमय न मिले तो कुतुपके समान लेलेना

आपराह्णव्याप्त्यलाभेऽनुकल्पः—"अपराह्णद्वयव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता ॥" इति जाबालिनाऽभावे विधानात् ॥ तेन साग्नीनां निरग्नीनां वापराह्णव्यापिन्येव मुख्या ॥ तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः । वैषम्येऽधिका दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे कुतुपव्यापिनीति माधवः इदमेव युक्तम् ॥ हेमाद्रिमते कुतुपव्यापिन्येव निरग्न्यादेर्मुख्या । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ सिनीवाली दृष्टचन्द्रा । तथा च व्यासः—'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता' इति ॥ पूर्वदिने परदिन एव वा तद्व्याप्तित्वे सैव ग्राह्या । अंशव्यापित्वे वैषम्येऽधिककालव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वयेंशतः समव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा वृद्धौ साम्ये च परा । "तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता । साम्येपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदांगवेदिभिः ॥" इति प्रचेतोवचनात् ॥ दिनद्वये सम्पूर्णकुतुपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धावेव भवतीत्यनन्तरवचनात् परैवेति । कुतुपस्तु 'अह्नो मुहूर्ता विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः" इति मात्स्योक्तेः तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र विस्तरः ॥ दर्शे अन्यश्राद्धप्राप्तौ निर्णयः । दर्शे च मासिकवार्षि-

---

कारण कि, जाबालिने कुतुपके अभावमें यह विधान कहा है यदि अमावास्या तिथिके क्षयमें दोनों अपराह्णमें व्याप्त हों तो अग्निहोत्रीको सिनीवाली जिसमें चन्द्रमा दीखे और अग्निहोत्ररहितोंको कुहू माननी चाहिये इस साग्नि और निरग्नियोंको अपराह्णमें व्याप्त होनेवाली ही मुख्य तिथि है तुल्यता वृद्धि क्षय इनसे यदि समव्याप्ति होय तो खर्वादिसे निर्णय करना, विषमतामें अधिकता दोनों दिन अपराह्णमें न हो तो कुतुपकालव्यापिनी लेनी यह माधव कहते हैं और यही युक्त है॥ हेमाद्रिके मतमें कुतुपव्यापिनी ही अग्निहोत्रीको छोडकर मुख्य है, यही साग्नि और उपासनाग्नि भी मदनपारिजातमें कही है जिसमें चन्द्रदर्शन हो उसे सिनीवाली कहते हैं । यही व्यास कहते हैं जिसमें चन्द्रमा दीखै वह सिनीवाली और जिसमें चन्द्रदर्शन न हो उसे कुहू कहते हैं पूर्व दिनमें अथवा परदिनमें कुतुपकालव्यापिनी सोही ग्रहण करना चाहिये । और जो दोनों अंशमें व्यापिनी होनेसे विषमता होय तो अधिककालव्यापिनीको ग्रहण करना चाहिये यदि दोनों दिन अंशोंमें समान रूपसे व्याप्त हो तो वा तिथिकी क्षय वृद्धि अथवा दोनों दिन समानता हो तो परली ग्रहण करनी चाहिये कारण कि, प्रचेता यह कहते हैं कि, वेद वेदांगके जाननेवालोंने तिथिके क्षयमें सिनीवाली और वृद्धि समानतामें कुहू ग्रहण करनी कही है । और वृद्धिमें तिथि दोनों दिन कुतुपकालव्यापिनी होती है, यह आगेका वचन है इससे परलीही होती है। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, सदाही दिनके मुहूर्त पन्द्रह जानने उनमें आठवें मुहूर्तका नाम कुतुप है, तुलादान और पितृदेवताकी प्रीतिके निमित्त उपवासादिमें अगलीही ग्रहण करनी इसका विस्तार अन्यत्र है ॥ अमावसमें मासिक वा वार्षिक श्राद्ध आपडे तो कालादर्शमें विशेष लिखा है,

कादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शे विशेष उक्तः "दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि वार्षिकाब्दिकयोरपि ॥" इत्युक्त्वा "संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् । निमित्तानि यतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्" इति ॥ अत्र क्रमो निर्णयदीपे उक्तः—"नष्टचन्द्रे यदा काले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात् प्राग्दर्शकर्मणः ॥ अनुपनीतानां शूद्राणां च श्राद्धनिर्णयः । अमाश्राद्धं चानुपनीतोपि कुर्यात् । श्राद्धशूलपाणौ—"अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च" इत्युपक्रम्य "एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ भार्याभीरहितोप्येतत् प्रवासस्थोपि नित्यशः । शूद्रोप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः" इति मात्स्योक्तेः ॥ अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तनिर्णयः । अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने—"न्युपूर्वाचं जपेन्मन्त्रं[1] शतवारं दिने दिने । अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा संपूर्णमेति तत् ॥" अत्र पूर्वोक्तसाग्निकपदेनाहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्च गृह्यते । विच्छिन्नाग्न्यादिश्च निरग्निकः ॥ तथा च हेमाद्रिरग्नौकरणप्रकरणे—"साग्निरग्नावनग्निस्तु द्विजपाणा-

---

अमावास्या और वटदानका, अमावस्या और मासिकका, नित्यश्राद्ध और वार्षिकश्राद्धका, तथा अमावास्या और वार्षिकश्राद्धका संयोग एक दिन आनपडे तो देवताभेदसे दो श्राद्ध करै, और इनमें निमित्त ही पहले श्राद्ध करनेमें कारण जाना जाता है जिसका प्रथम निमित्त होय उसे पहले करे, यह निर्णयदीपमें लिखा है अमावास्याको यदि क्षयाह दिन आनपडे तो दर्शकर्मसे पहले बलिवैश्वदेव और क्षयाह श्राद्ध करै ॥ और अनुपनीत पुरुषभी अमावास्याका श्राद्ध करै श्राद्धशूलपाणिमें लिखा है कि, अमावास्या अष्टका कृष्णपक्षकी अमावस यहांसे चलकर कहते हैं कि, इनमें यज्ञोपवीतसे हीन होकर भी सब पर्वोंमें करना चाहिये यह साधारण नामक श्राद्ध सब कामनाओंको देता है, यह श्राद्ध भार्याहीन तथा नित्यप्रवासी पुरुषभी करै, और मन्त्ररहित शूद्र भी इसको करै ऐसा मत्स्यपुराणका वाक्य है अमावास्यामें श्राद्ध न करनेसे ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त कहा है, यदि अमाश्राद्ध न करै "न्युपूर्वाचं" इस मंत्रको प्रतिदिन सौ वार जपनेसे उसकी पूर्ति हो जाती है "ऋग्वेद १। ४। ४६" में मंत्र है ॥ यहाँ पूर्वोक्त साग्निपदसे आहिताग्नि और स्मार्ताग्निका ग्रहण है और नष्टअग्निवाला निरग्निक कहाता है यही हेमाद्रि अग्निप्रकरणमें कहते हैं कि, साग्निक ब्राह्मण अग्निमें और निरग्निक ब्राह्मणको हाथ, जल, वा लौकिक अग्निमें सदा अग्नौकरण करै

---

१ 'न्यूषुवाचं प्रमहेभरामहेगिरइन्द्राय सदने विवस्वतः नूचिद्धिरत्नं ससतामिवाविदन्नदुष्टुतिर्द्रविणोदेषुशस्यते ॥' ऋ० १।४।४६ ॥

थाप्सु वा। कुर्यादग्नौ क्रियां नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम्॥"इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य यस्त्वस्वीकृतौपासनतया समुच्छिन्नाग्नितया भार्याविधुरतया वाग्निरहितस्तस्य द्विजपाणौ जलादौ होम इति व्याचचक्षे॥ मदनपारिजातेप्येवम्॥ इदमेव साग्निकानग्निकस्वरूपं सर्वत्र ज्ञेयम्॥ ग्रहणनिर्णयः। अथ ग्रहणं निर्णीयते॥ तत्र चन्द्रग्रहणे यस्मिन्यामे ग्रहणं तस्मात् पूर्वं प्रहरत्रयं न भुञ्जीत। सूर्यग्रहे तु प्रहरचतुष्टयं न भुञ्जीत।" सूर्यग्रहेतुनाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना॥" इति माधवीये वृद्धगौतमोक्तेः॥ "ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधियामतः। भुञ्जीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः॥" इति मार्कण्डेयोक्तेश्च॥ अधिऊर्ध्वम्। ननु चन्द्रग्रहे यामचतुष्टयनिषेध उचितः, न तु सूर्यग्रहे। सूर्योदयात् प्राग्भोजनाप्राप्तेः। मैवम्। वचनस्य प्रथमयामे सूर्यग्रहे सति पूर्वेद्युः पूर्वरात्रे भोजननिषेधपरत्वात्। चन्द्रग्रहे विशेषमाह माधवीये वृद्धवसिष्ठः—'ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्' इति॥ द्वयोर्ग्रस्तास्ते तु माधवीये व्यासः—'अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद्दृष्ट्वापरेहनि' इति॥ विष्णुधर्मेपि "अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥" अहोरात्रनिषेधः सूर्य-

चाहिये इस प्रकार इस स्मृतिके वचनको लिखकर उसकी इस प्रकार व्याख्या की है कि, जो औपासन अग्निके स्वीकार न करनेसे अग्निके नाश वा स्त्रीके अभावसे अग्निरहित है वह ब्राह्मणके हाथ वा जलादिमें हवन करै यही मदनपारिजातमें लिखा है साग्निक और निरग्निकका सब स्थानमें यही स्वरूप जानना॥ अब ग्रहणका निर्णय करते हैं चन्द्रग्रहण जिस पहरमें होय उससे पहलेके तीन पहरोंमें और सूर्यग्रहणसे पहले चार पहरोंमें भोजन न करै कारण कि, माधवीयमें वृद्धगौतम कहते हैं कि, सूर्यग्रहणमें चार पहर पहले और चन्द्रग्रहणमें तीन पहर पहलेमें वृद्ध बालक और रोगी इनको छोडकर अन्य भोजन न करैं, मार्कण्डेयपुराणमें यह लिखा है कि, जो चन्द्रग्रहण प्रथम पहरसे पीछे हो तो मध्याह्नसे प्रथम भोजन करले और जो रात्रिके प्रथम पहरमें होय तो उससे उपरान्त भोजन करै, यदि कहो कि, चन्द्रग्रहणमे चार पहरके निषेध करना चाहिये, सूर्य ग्रहणमें नहीं कारण कि, सूर्योदयसे प्रथम तो कोई भोजनही नहीं करता, सो यह ठीक नहीं कारण कि, प्रथम पहरमें सूर्यका ग्रहण होय तो पहले दिनकी रात्रिमें भोजनका निषेध है माधवीयग्रन्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें वृद्धवसिष्ठ यह विशेष कहते हैं कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तोदय होय तो प्रथम दिन भोजन न करै। और दोनोंके ग्रस्तास्तमें तो माधवीय ग्रन्थमें व्यासजी इस प्रकार कहते हैं कि, यदि चन्द्र सूर्य दोनों ग्रस्तास्त हो जायँ तो फिर चन्द्र सूर्यका दर्शन करके स्नानकर भोजन करना चाहिये विष्णुधर्ममें कहा है कि, चन्द्रसूर्यके ग्रहण होनेमें एक दिनरात भोजन न करै किन्तु राहुसे जब मुक्त हो जाय तब दर्शन कर स्नानके उपरान्त अपने घरकाही भोजन करै, इसमें अहोरात्रका निषेध सूर्यग्रहण

१ नाश्नीयादथ तत्कालग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः॥ मुक्तयोश्च कृतस्नानः पश्चाद्भुञ्ज्यात्स्ववेश्मनि॥ चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें भोजन न करै मोक्ष होनेपर स्नान करके फिर अपने घर स्नान कर पराया अन्न न खाय॥

ग्रस्तास्ते ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः—"सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तदह्नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन ॥" सायंसंध्यायाः सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेह्नि रात्रौ च न भोक्तव्यम् । प्रातःसन्ध्यायां चन्द्रग्रस्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरेह्नि च न भोक्तव्यमित्यर्थः ॥ चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने सन्ध्याहोमादौ न दोषः । तदाहोशनाः—"ग्रस्ते चास्तं गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम् । स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः ॥" एतदनाहिताग्निविषयम् ॥ 'अपराह्णे व्रतोपायनीयमश्नीत ' इति कात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात् ॥ अद्भिर्व्रतं कुर्यादिति निर्णयदीपः । रागप्राप्तभोजने कालनियमोऽयम् । तेन ज्वरादाविव न भोजनमिति कर्कानुसारिणः॥ बालवृद्धातुराणां तु ग्रहयामात्पूर्वमेकयामो निषिद्धः । "सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् । अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने न तु संगवे ॥ भुञ्जीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः । इदं च बालादिविषयम् । 'बालवृद्धातुरैर्विना ' इति पूर्वोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा पक्वमन्नं त्याज्यम् ।

ग्रस्तास्तमें जानना । मदनरत्नमें गर्ग कहते हैं कि, जब सन्ध्यासमय राहु चन्द्र वा सूर्यका ग्रास करै तब उस दिन रात्रिमें किसी प्रकार भोजन न करना चाहिये, अर्थात् सायंकालमें सूर्य ग्रस्तास्त हो जाय तो प्रथम दिन और रात्रिमें भोजन न करै । और प्रभातकी संन्ध्यामें चन्द्रमा ग्रस्तास्त हो जाय तो प्रथम रात्री और अगले दिन भोजन करना उचित नहीं चन्द्रमा ग्रहण होते २ अस्त हो जाय तो अगले दिन हवन सन्ध्यादि करनेका दोष नहीं है यही उशनाने लिखा है कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तास्त हो जाय तो शास्त्रसे उसका मोक्ष जानकर स्नान हवनादि कर ले परन्तु भोजन तो फिर चन्द्रोदय परही करना चाहिये. यह वार्ता निरग्नियोंके निमित्त है ॥ यदि व्रत होय तो अपराह्न तीसरे पहरमें जलपान करलेना चाहिये इस प्रकार कात्यायनके वचनसे व्रतकी प्रबलता वेदोक्त होनेके कारण है निर्णयदीपमें लिखा है कि, जलसेही व्रत करलेना चाहिये परन्तु यह नियम रागप्राप्त भोजनमें है इसकारण ग्रहणमें भोजन ज्वरादिके समान न करना चाहिये । यह कर्काचार्यके अनुसार वर्तनेवालोंका कथन है और ग्रहणसे एक पहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी व्रत रक्खैं भोजन न करैं कारण कि, मार्कण्डेयका यह कथन है कि, यदि सन्ध्यासमय ग्रहण होय तो अपराह्णमें, अपराह्णमें होय तो मध्याह्नमें, मध्याह्नमें होय तौ संगवमें और संगवमें होय तो उससे प्रथम भोजन त्याग दे, यह वचन बालादिके विषयमें जानने; कारण कि, बालवृद्धातुरोंके विना करै ऐसा पहले कह आयेहैं । वेधकाल अथवा ग्रहणमें पक्वान्न भी न खाना चाहिये, सब वर्णोंको राहुदर्शनमें सूतक लगता है इससे स्नान करके कर्म

१ सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् । न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ' इति वचनात् । निद्रायां जायते रोगो मूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात् । पुरीषे क्रमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामसूकरः । अभ्यङ्गे च भवेत् कुष्ठी भोजने स्यादधो गतिः । वञ्चने च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत् इति ॥ निगदोक्तेश्च इति । अर्थात्—ग्रहणमें सोने आदिका निषेध है जबतक सूर्यग्रहण चन्द्र—

" सर्वेषामेव वर्णानां, सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ " इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् ॥ शृतमिति तदन्तारितस्योपलक्षणम् । 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत् ' इति मिताक्षरायां वचनात् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः–" आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ॥" मन्वर्थमुक्तावल्याम्–"अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति ". जले त्वदोषो गाङ्गविषयः ॥ ' ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत् ' इति तत्रैव चतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं माधवीये कात्यायनेन–" चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति । तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति " इति ॥ ग्रहणे च त्रिरात्रमेकरात्रं वोपवासः श्रेयोर्थिना कार्यः । " एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः । कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः ॥ त्रिरात्रं समुपोष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह ॥ इति हेमाद्रौ लैंगोक्तेः ॥ इदं च पुत्र्यतिरिक्तविषयम् । "आदित्येऽहनि संक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । पारणं चोपवासं च न कुर्यात्

करै, और पक्वान्न न खाय ऐसा हेमाद्रिमें षट्त्रिंशके मतसे लिखा है पक्वान्नसे ग्रहणके मध्यमें वह न खाना जो पहला पक किया हो यह उसीका उपलक्षण है, कारण कि, मिताक्षरामें लिखाहै नवश्राद्धके शेष और ग्रहणके बासी अन्नको न खाय, मेधातिथिने भार्गवार्चनदीपिका और ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है नरसल, दूध, मट्ठा, दही, घृतका पक्वान्न और मणिमें स्थित जल यह राहुदर्शनमें दूषित नहीं होता, मन्वर्थमुक्तावलीमें लिखाहै कि, पक्वान्न और घरमें सवस्त्र स्नान इनको त्याग देना चाहिये, और जल, मट्ठा, कन्द, नरसल यह वस्तु तिल और कुशाके डालनेसे दूषित नहीं होता, जलका अदोष गंगा जलविषयक है, घरमें रहे जलको पानसे चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये, वहांही चतुर्विंशतिके मतसे और जलका दोष कहा है वेधकाल वा ग्रहणके भोजनमें प्रायश्चित्त लिखा है माधवीयमें कात्यायनका वचन है, चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें भोजन करके प्राजापत्यव्रतसे शुद्ध होताहै, और उसीदिन भोजन करके त्रिरात्र व्रतसे शुद्ध होताहै, इस कारणसे कल्याणकी इच्छावालेको एकरात वा तीनरात उपवास करना चाहिये । एक रात उपवास करके शक्ति अनुसार कुछ दान देकर कैंचलीसे सर्पकी समान पापोंसे छूट जाताहै चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तीनरात व्रत करके विधिपूर्वक स्नान दान करके ब्रह्माके संग प्रसन्न होताहै, ऐसा हेमाद्रिमें लिंगपुराणका वचन है यह पुत्रवालोंको छोडकर अन्योंके निमित्त वचन है, रविवार, संक्रांति, चन्द्रसूर्यका ग्रहण इनमें पुत्रवालेको उपवास करना न चाहिये, यह जैमिनि

ग्रहण हो जपादि करते रहे न सोवै न भोजन करै । मुक्ति होनेपर स्नानकर भोजन करै सोनेसे रोग होता है मूत्र करनेसे दरिद्र, पुरीष करनेसे कृमियोनि, मैथुनसे ग्रामसूकर, उबटनेसे कुष्ठी, भोजनसे अधोगति होती है, ठगई करनेसे सर्प और वधसे बन्धन होता है ॥

पुत्रवान् गृही ॥ " इति जैमिनिवचनात् ॥ यदा तु रवेर्ग्रस्तस्तदा पुत्रिणः प्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः । सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात् इति पूर्वोक्तमार्कण्डेयवचनात् ॥ " सायाह्ने संगवेऽश्नीयाच्छारदे संगवादधः । मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे ॥ " इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः । शारदोऽपराह्णः ॥ माधवमते तु पुत्रिणोपि तत्रोपवास एव–' अहोरात्रं न भोक्तव्यम् ' इति पूर्वोक्त निषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात् उपवासनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः । कृष्णैकादशीनिषेधवदिति॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ इदमेव च युक्तम् ॥ वर्धमानस्तु–' अहोरात्रं न भोक्तव्यम् ' इति शातातपीयोक्तेः । ' सूर्याचन्द्रमसोर्लोकानक्षयान्याति मानवः ' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने उपवासः काम्यः । न त्वयं निषेध इत्याह तन्न । तत्र व्रतत्वेपि प्रागुक्तविष्णुधर्मं निषेधावश्यंभावात् ॥ तथा च व्यासः–" रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा । चूडामणिरिति ख्यातस्तत्र दत्तमनन्तकम् ॥ वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ तत्पुण्यं कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम् ॥ " तत्र स्नाननिर्णयः । अत्र चाद्यन्तयोः स्नानं कुर्यात् । " ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥ " इति हेमाद्रौ वचनात् 'स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम् ' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च । " सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।

कहते हैं जब कि, सूर्यका ग्रस्तास्त हो तब दो पहर छोडकर पुत्रवान् भोजन करले उपवास न करै कारण कि, यह पूर्वोक्त मार्कण्डेयपुराणके वचन हैं कि, सायाह्नमें ग्रहण होय तो इत्यादि ॥ और स्मृतिमें भी कहा है कि, सायात्रके ग्रहणमें संगवमें अपराह्नमें होय तो संगवसे प्रथम मध्याह्नमें होय तो उससे परे भोजन करना चाहिये, हेमाद्रिका यह कथन है कि, सूर्यग्रहणमें उपवास न करै माधवने तो ग्रहणमें पुत्रवालेको भी उपवास कहा है । दिन रातके भोजन करनेका निषेध पुत्रवालेको भी मानना चाहिये और यह उपवासका निषेध तो कृष्णपक्षकी द्वादशीके तुल्य व्रतरूप उपवासमें जानना, इसी प्रकार मदनरत्नमें भी लिखाहै और यह युक्त भी है और वर्द्धमान कहतेहैं कि, दिनरात नहीं भोजन करना चाहिये यह शातातपीयकी उक्ति है । सो अहोरात्रमें भोजन न करनेवाला सूर्य और चन्द्रमाके अक्षयलोकोंको प्राप्त होताहै, इस फलश्रुतिसे चन्द्र सूर्यकी राहुसे मुक्तिके विना दर्शन किये उपवास फलके निमित्त हैं और यह निषेध नहीं है सो वर्धमानका यह कथन ठीक नहीं जिससे कि, यहां व्रतके प्राप्त होनेपर भी पूर्वमें कहे विष्णुधर्ममें निषेधका होना अवश्यंभावि है, और यही व्यास भी कहतेहैं कि, रविवारको सूर्य और चन्द्रवारको चन्द्रग्रहण होय तो यह चूडामणियोग है इसमें दिया हुआ अनन्त होता है जो और वारोंमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें दान जपका फल है उससे चूडामणियोगमें करोड गुण फल है ॥ ग्रहणके आदि अन्तमें स्नान करना चाहिये, ग्रस्यमानमें स्नान, ग्रस्त होनेपर हवन, मुक्त होनेपर दान और मुक्त होजानेमें फिर स्नान करना चाहिये यह हेमाद्रिमें कहा है, ब्रह्मवैवर्तमें भी लिखाहै ग्रहणकी आदिमें स्नान मध्यमें हवन और देवताअर्चन करना चाहिये, वृद्धवसिष्ठने भी कहा है राहुदर्शनमें सब वर्णोंको सूतक लगता है, इसमें सचैलस्नान होता है, सूतकमें अन्न वर्ज देना चाहिये सचै-

सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत् ॥ " इति वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च ॥ सचैलं मुक्तिस्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां चतुर्विंशतिमते-" मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः " इदं च स्नानममन्त्रकं कार्यमिति स्मृतिरत्नावल्याम् । तत्र तीर्थविशेषो भारते-" गंगास्नानं तु कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ " स्नानमाहात्म्यम् । महानदीष्वपि मासविशेषे काश्चिच्छ्रेष्ठाः-"प्रयागं देविका रेवा संनिहत्या च वारणम् । सरस्वती चन्द्रभागा कौशिका तापिका तथा । सिन्धुर्गण्डकिका चैव सरयूः कार्तिकादितः" मूलं हेमाद्रौ।व्यासः-"इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः॥ गंगातोये तु संप्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश । गवां कोटिसहस्रस्य यत्फलं लभते नरः ॥ तत्फलं लभते मर्त्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ असंभवे तु माधवीये शंखः-" वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि ॥ उष्णोदकेन वा स्नायाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः ॥ स्नानतारतम्यनिर्णयः ॥ शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात् । भूमिष्ठमुद्धतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥ ततोपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् । तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु पावनम् ॥ ततस्ततोपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यस्ततोम्बुधिः ॥ " इति ॥ उष्णोदक-

---

लस्नान मुक्त होनेपर करना चाहिये ऐसा मदनरत्नमें लिखा है भार्गवार्चनदीपिकामें चतुर्विंशतिके मतसे लिखा है जो ग्रहणके सूतक और मुक्तिमें स्नान नहीं करता है, वह दूसरे ग्रहणतक सूतकी रहताहै स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है यह स्नान विना मन्त्रके करना चाहिये वह तीर्थकी विशेषतासे भारतमें लिखा है चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें गंगास्नान करै अथवा करै दूसरी महानदियोंमें विधिपूर्वक स्नान करै ॥ महानदियोंमें किसी २ महीनेमें कोई २ श्रेष्ठ कहीं है, प्रयाग, देविका, रेवा, संनिहत्या, वारणा, सरस्वती, चन्द्रभागा, कौशिकी तापिका, सिन्धु, गण्डकी, सरयू, यह क्रमसे कार्तिकादि महीनोंमें ग्रहण और स्नानके लिये श्रेष्ठ हैं, इसका प्रमाण हेमाद्रिमें देखना । व्यासजी कहतेहैं चन्द्रमाके ग्रहणमें लाखगुणा पुण्य, सूर्यका इससे दशगुणा पुण्यहै जब गंगाजी ऐसे समय प्राप्त होजाँय तो चन्द्रमाका करोड गुणा और सूर्यका उससे दशगुणा फल वहां स्नान करनेसे होता है, जो फल कोटि सहस्र गोदानसे मनुष्यको मिलता है वह फल मनुष्यको चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें मिलता है, यह गंगादि नदियें न मिलसकैं तो माधवीयमें व्यासका वाक्य है, बावडी, कूप, तडाग, पर्वत, प्रस्रवण, झरने, नदी, नद, देवखात (पुष्कर आदि) सरोवर सींचा हुआ वा कूपादिसे निकाला जल वा गरम जलसे चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान करै इसमें तारतम्य मार्कण्डेयजी कहते हैं ॥ उष्ण जलसे पर्वतके शीतल जल, दूसरेके जलसे निजका जल, उद्धृतसे भूमिका जल, पृथ्वीके जलसे झरनेका, उससे सरोवरका, उससे नदीका उससे तीर्थका, उससे महानदीका, उससे गंगा और गंगाजलसे सागरको जल पवित्र है, गरम जल रोगीके निमित्त है हे महामुने ! चन्द्रग्रहणमें

मातुरविषयम् ॥ तथा-"गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते । सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते तमोभूते महामुने । नर्मदातोयसंस्पर्शे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे-"गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि कनकं मही । सम्प्रदाय कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरः । तदिन्दुग्रहणेऽम्भोधौ स्नानाद्भवति षड्गुणम् ॥" तत्रैव सौरपुराणेऽम्बुधिस्नानमुपक्रम्य-" दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः । तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥" देवीपुराणे-" गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागः पुष्करं तथा । कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ " स्नानाऽसम्भवे स्मरणं वा कार्यम् " स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम् ॥ स्पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तु पीत्वा सौत्रामणेर्लभेत् ॥ स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः । रविचन्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः ॥ ग्रहणे श्राद्धम् ॥ अत्र श्राद्धमाह ऋष्यशृंगः-"चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् । तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥ " भारते-"सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति ॥" विष्णुः-'राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम् ' इदं चामान्नेन हेम्ना वा कार्यम्, न त्वन्नेन "आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे

गोदावरीका, सूर्यग्रहणमें नर्मदाका जल स्नानमात्रसे कृतकृत्य करदेता है, पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभासखण्डमें कहा है गौ, हाथी, तिल, अन्न, रत्न, सोना और भूमि कुरुक्षेत्रमें प्रदान करनेसे जो फलकी प्राप्ति होती है वह चन्द्रग्रहणपर सागरमें स्नानका छः गुना फल है, वहीं सौरपुराणमें सागरके स्नानप्रकरणमें कहा है जितने दान जगत्में बुद्धिमानों द्वारा प्रसिद्धहैं चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान दानसे उन सबका फल मिलता है देवीपुराणमें लिखा हैं गंगा पवित्र कनखल, प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र यह सूर्यग्रहणमें महापुण्यदायक हैं, कुरुक्षेत्र महापवित्र है यदि यहां स्नानको न आसके तो उस अवसरमें स्मरण करले स्मरणसे सौ यज्ञका फल और दर्शनसे सब पाप नाश, छूनेसे गोमेधका पुण्य और पानसे सौत्रामणियज्ञकी प्राप्ति और स्नानसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं यह फल चन्द्रसूर्यके ग्रहण और उत्तरायणमें जानना । ऐसा मार्कण्डेयका कथन है ॥ इसमें स्पर्शके[१] समय ऋष्यशृंग श्राद्ध करना कहतेहैं, । जो चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है मानो उसने ब्राह्मणके हाथमें सब पृथ्वी प्रदान करदी । भारतमें लिखा है कि, राहुदर्शनमें सब प्रकारसे श्राद्ध करना और नास्तिकतासे न करनेमें कीचमें फंसी गौकी समान दुखी होता ह, विष्णु कहते हैं राहुग्रस्त समय जो श्राद्ध कियाजाय चन्द्रसूर्यकी स्थितिपर्यन्त उसका फल है, यह कच्चे अन्न वा सुवर्णसे करना और अन्नसे नहीं कारण कि, आपत्तिमें अग्निके अभावमें तीर्थ, चन्द्र सूर्यके ग्रहण

१ स्पर्शसमय देवता और पितर तृप्त होते हैं मध्यकालमें मनुष्य और मोक्षकालमें राक्षस तृप्त होते हैं यह वृद्धवसिष्ठका कथन है ॥

तथा। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा॥" इति शातातपोक्तेरिति हेमाद्रिमाधवादयः॥ अपरार्कस्तु–एतद्द्विजातीनां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत्। 'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः॥ गजच्छायानिर्णयः। "सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत्॥" इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह॥ विज्ञानेश्वरोप्याह–'ग्रहणश्राद्धे भोक्तुर्दोषो दातुस्त्वभ्युदयः' इति "सूतके मृतके भुंक्ते गृहीते शशिभास्करे। छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्॥" इत्यापस्तम्बेन भोजननिषेधाच्च॥ अयं च निषेधः श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात्॥ अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रान्त्यादिनैमित्तिकानां सिद्धिः 'दर्शिकालभ्ययोरपि' इति कालादर्शोक्तेः॥ अत्राशौचमध्येपि स्नानश्राद्धादि कार्यमेव "सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥" इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः॥ 'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' इति व्याघ्रपादोक्तेश्च॥ कालादर्शे अंगिराः–"सर्वे वर्णाः सूतकेपि मृतके राहुदर्शने। स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम्॥" मदनपारिजातेप्येवम्॥ तेन–'स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम्' इति निर्मूलं वदन्तो गौडाः परास्ताः॥ इयं

इनमें कच्चे अन्न वा सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये, यह शातातपने कहा है और यही हेमाद्रि और माधव आदिका कथन है, अपरार्क तो यह कहते हैं कि, यह श्राद्ध तीनों द्विजातियोंको तीर्थश्राद्धवत् पाकके अभावमें जानना चाहिये कारण कि, सुमन्तु यह कहतेहैं पाककी जब प्राप्ति नहीं तब: कच्चे अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये॥ जिस समय पर्वसन्धिमें राहु सूर्यका ग्रास करै उसका नाम गजच्छाया है उसमें श्राद्ध करना चाहिये घृतविशेषसे ब्राह्मणोंको जिमावै और घृतही भूमिपर डालना। यह वायवीयपुराणका कथन है, विज्ञानेश्वर भी यह कहते हैं कि, ग्रहणश्राद्धमें भोजन करनेवालेको दोष है दाताका तो प्रताप बढता है, कारण कि, आपस्तम्बमें इस अवसरमें भोजनका निषेध कहा है, सूतक, मरण चन्द्रसूर्यग्रहण और गजच्छाया इनमें जो भोजन करताहै वह फिर पुरुष नहीं होता, यह निषेध गजच्छायाके साथ पढनेसे श्राद्ध खानेवालेको है, यहां ग्रहणके निमित्त किये हुए श्राद्धसेही अमावास्या और संक्रान्ति आदिके निमित्त किये हुए श्राद्धोंकी भी सिद्धि जाननी। कारण कि, कालादर्शमें यह कहाहै कि, संक्रान्ति और अमावसमें भी श्राद्ध करै ग्रहण होते समय अशौचमें भी स्नान और श्राद्ध कर कारण कि, माधवीयम वृद्धवसिष्ठ यह कहते हैं सूतक और मृतक इन दोनोंका राहुदर्शनमें दोष नहीं. जब तक ग्रहण मुक्त न हो तबतक सूतक और पातकवाले शुद्ध रहतेहैं, व्याघ्रपाद भी यह कहतेहैं. राहुके सूतकको छोडकर स्मार्त कर्म न करै, कालादर्शमें अंगिरा कहतेहैं सूतकी और पातकी सबही मनुष्य राहुदशनम स्नान कर श्राद्ध करैं और शठतासे रहित होकर दान करैं कृपणता न करैं यही मदनपारिजातमें लिखा ह, इस वचनसे "स्नानमात्र करके श्राद्धके विना दान करै" इस निर्मूल वचनको कहते हुए गौड परास्त हुए और यह विशेषता रूप शुद्धिके अभावसे

च शुद्धिरविशेषान्मन्त्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे–"न सूतकादिदोषोस्ति ग्रहे होमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृतवारिणा ॥" इति ॥ अत्र च–"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥" इत्यादिमिताक्षरोक्तो विधिर्ज्ञेयः । ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादि कार्यम् । "ग्रहणोद्वाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसवेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते" इत्यपरार्के व्यासः । 'चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते' इति देवलोक्तेः यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चन्द्रग्रहो, रात्रौ च सूर्यग्रहस्तदा स्नानादि न कार्यं "सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् "इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥ ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धनिर्णयः ॥ ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः–"दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम् । अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ॥" इति ॥ अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः । न्यायसाम्यात् ॥ तेन चन्द्रग्रहेपि सापिण्ड्यादि वार्षिकमन्नादिना तद्दिन एव कार्यमिति मदनपारिजाते व्याख्यातम् । पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् ॥ तेन यानि–'आमश्राद्धं प्रकुर्वीत माससंवत्सरादृते' इति । 'अन्नेनाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित्' इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचनानि, तानि

मन्त्रदीक्षा पुरश्चरणादि सब स्मार्तकार्योंमें जानना, मदनरत्नमें भी ऐसाही लिखाहै, भार्गवार्चनदीपिकाके सूर्योदयनिबन्धमें लिखा है कि, ग्रहणमें रजस्वलाको होमजपादिका दोष नहीं है ग्रस्तमें तीर्थमेंसे जल निकालकर पृथक् स्नान करै, इसमें यदि ग्रहणमें नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति हो और स्त्री रजस्वला हो तो पात्रमें धरे जलसे स्नान करने उपरान्त व्रत करना, इत्यादि मिताक्षरामें कही हुई यह विधि जाननी और ग्रहणके दिन रातमें भी श्राद्ध करै कारण कि, अपरार्कमें व्यासजी कहते हैं ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, रोग, जन्म इनमें जो दान है वह नैमित्तिक होता है इसके रात्रिके करनेमें भी दोष नहीं है, देवलभी कहते हैं कि, रात्रिको चन्द्रग्रहणमें स्नान दान करना उत्तम है, और जब ज्योतिःशास्त्रके अनुसार दिनमें चन्द्रग्रहण और रात्रिमें सूर्यग्रहण हो तो स्नान दानादि नहीं करना चाहिये, यही षट्त्रिंशत् कहते हैं रात्रिमें सूर्यग्रहण दिनमें चन्द्रग्रहण हो तो उसमें स्नान दानकी आवश्यकता नहीं ॥ ग्रहणदिनमें वार्षिक श्राद्धकी प्राप्तिमें तो प्रयोगपारिजातमें गोभिल कहते हैं यदि अमावास्याको सूर्य ग्रहण आपडै और उसी दिन आब्दिक श्राद्ध हो तो पकअन्नके द्वारा न बन सके तो सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये । वा कच्चे अन्नसे करै, इन वाक्योंसे न्यायकी समतासे अमावास्या आदित्यवार पिता पुत्र क्रमसे इनके वाचक दर्श, रवि, पितृ, सुत यह शब्द दिखानेके निमित्त हैं इससे चन्द्रग्रहणमें भी सपिण्ड आदि वार्षिक श्राद्धको अन्नादिसे उसी दिन करना, यह मदनपारिजातमें कहा है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकारका लेख है इससे वे वचन मरीचि लौगाक्षि आदिके हैं, वे ग्रहणदिनसे

ग्रहणादिनातिरिक्तविषयाणि ॥ यानि तु ' ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे " तथा--"अस्तोदये यदा चन्द्रे प्रत्यब्दं समुपस्थितम् । तद्दिने चोपवासः स्यात्प्रत्यब्दं तु परेहनि ॥ " तथा--"ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि । प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेहन्येव सर्वदा ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च तथा श्राद्धं परेहनि ॥ " इत्यादीनि वचनानि । तानि महानिबन्धेषु काप्यनुपलम्भान्निर्मूलानि ॥ प्रत्युत पूर्वोक्तनिबन्धेषु तद्दिन एव श्राद्धमुक्तमित्यलम् ॥ ग्रहणे दीक्षानिर्णयः । ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता । शिवार्चनचंद्रिकायां ज्ञानार्णवे--"मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । ग्रहणाद्वापि देवेशि कालः सप्तदिनावधिः ॥ " इति ॥ रत्नसागरे--" सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तंतुदामनपर्वणि । मंत्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ " अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम् । "सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत् । सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥ न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ " इति तत्रैव कालोत्तरवचनात् । "चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा व्रतचारिणाम् । वनस्थस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥ " इति तत्रैव योगिनीतन्त्रे निषेधाच्च ॥ ग्रहणं च जन्मराश्यादौ निषिद्धम् । तदुक्तं ज्योतिषे--"त्रिषड्दशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद्ग्रहणं रवीन्द्वोः । द्विसप्तनन्दे-

पृथक्में जानने । मासिक और वार्षिक श्राद्धके विना कच्चे अन्नसे श्राद्ध करै वार्षिक श्राद्धको पक्वान्न वा सुवर्णसे करै और आमान्नसे कभी न करै निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार लिखा है और यह जो कथन है कि, ग्रहणसे दूसरे दिन और रजस्वला दोषसे पांचवें दिन और चन्द्रमाके ग्रस्तोदयमें वार्षिकश्राद्ध आनकर प्राप्त होजाय तो उस दिन उपवास करै और अगले दिन श्राद्ध करना तथा चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें परदिन श्राद्ध करै यह वचन बडे २ ग्रन्थोंमें न मिलनेके कारण निर्मूल है किन्तु पूर्वोक्त ग्रन्थोंमें उसी दिन श्राद्ध करना कहा है, बहुत कहनेसे बस करत हैं ॥ ग्रहणसे सात दिनतक रामगोपालादि शास्त्रमें कहेहुए मन्त्रोंका उपदेश शिवार्चनचन्द्रिकाके ज्ञानार्णव प्रकरणमें लिखा है कि, हे गिरिजे ! चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें अथवा ग्रहणसे सात दिन पर्यंत मन्त्र आदिका आरंभ करना, रत्नसागरमें लिखा है कि, अच्छे तीर्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तथा बालशिक्षाके समय मन्त्र लेताहुआ पुरुष महीने नक्षत्रका विचार न करै, इसमें सूर्यग्रहणही मुख्य है, सूर्यके ग्रहण समय और कोई बात नहीं देखी जाती सूर्यग्रहणकी समान और कोई समय नहीं है, सूर्यपर्वमें मास, तिथि, वारका शोधन न करै यह वहांही कालोत्तरके वचन हैं । चन्द्रग्रहणमें जो दीक्षा है तथा जो दीक्षा व्रतचारियोंकी है और जो वानप्रस्थकी दीक्षा है वह सात जन्मतक दरिद्र करती है (यह सूर्यदीक्षाके प्रशंसापरत्व वाक्य हैं) इस प्रकार योगिनीतन्त्रमें चन्द्रदीक्षाका निषेध है ग्रहण जन्मराशि आदिमें निषिद्ध है यही ज्योतिषमें लिखा है । सूर्यचन्द्रग्रहण मनुष्योंको तीसरे छठे दशमें ग्यारहवें वा पांचवें

षुषु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः ॥" इति ॥ आय एकादश । नन्दा नव । इषुः पञ्च ॥ मदनरत्ने गर्गः—"जन्मसप्ताष्टरिःफाङ्कदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥" रिःफं द्वादशम् । अंका नव । निधनं सप्तमतारा ॥ ग्रहणनक्षत्रजातानां पीडा तथा तच्छांतिनिर्णयः । पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—"यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शांतिवर्जिताः ॥" तत्रैव पुराणान्तरे—"सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथ वा मृतिः ॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भविष्यति ॥ स्वर्णेन वाथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् । ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः ॥" जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते । जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति केचित् । सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः ॥ अद्भुतसागरे भार्गवः—"यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभंगः सुहृन्नाशो मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥" राज्यस्य नक्षत्रम् अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् ॥ भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिःसागरे—"सौवर्णं कारयेन्नागं पलेनाथ पलार्धतः । तदर्धेन तदर्धेन फणायां मौक्तिकं न्यसेत् ॥ ताम्रपात्रे निधायाथ घृतपूर्णे विशेषतः । कांस्ये वा कान्तिलोहे वाप्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् ॥ चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम् । नागं रुक्ममयं

राशिमें हो तो सुखदाई है। दूसरी सातवीं राशिमें मध्यम और १।३।८।१२ राशियोंमें मुनियोंने अनिष्ट कहा है। मदनरत्नमें गर्गजी कहते हैं। १।७।८।९।१० वीं राशिपर चन्द्रमा होय उस दिन ग्रहण हो अथवा जन्मनक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे अष्टमस्थानपर हो तो रोग करता है॥ पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखा है, जिस नक्षत्रमें स्थित होकर राहु सूर्य, चन्द्रमाको ग्रस्त करता है उस नक्षत्रमें जन्मे हुए मनुष्यको दुःख होता है और यदि शान्ति न करै तो। पुराणान्तरमें लिखा है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें वा जन्मनक्षत्रसे अगले पीछे सूर्यकी संक्रांति अथवा सूर्यचंद्रग्रहण हों तो उसको रोग अथवा मृत्यु होती है, उसके निमित्त दान, होम, देवार्चन, जप, ग्रहणमें मंत्रोंसे अभिषेक करै तो शान्ति होती है। सुवर्णकी वा आटेकी मूर्ति सर्पाकार बनाकर ब्राह्मणको दे तो रोगादिका विघ्न नहीं होता, किन्हीका यह कथन है कि, जन्मसे दशवाँ वा उन्नीसवां नक्षत्र निषिद्ध है। अद्भुतसागरमें भार्गव कहते हैं जिसके राज्यअभिषेकके नक्षत्रमें ग्रहण होय तो राज्यभंग सुहृदोंका नाश और मरण होता है, भार्गवार्चनदीपिकामें ज्योतिःसागरका वाक्य है, एक तोले सुवर्णका सर्प निर्माण करके अथवा दो तोलेका बनाकर उसके फणपर छः वा तीन मासेका मोती रक्खे घृतसे पूर्ण कर तांबे कांसे वा कांतिसार लोहके पात्रमें उसको रक्खे, दक्षिणापूर्वक ब्राह्मणको दे। चन्द्रग्रहणमें चांदीके चन्द्रमाका बिम्ब बनाय दक्षिणासहित ब्राह्मणको दे। सूर्यग्रहणमें सोनेके नाग वा सोनेके चन्द्रमाको

सूर्यग्रहे बिम्बं च हेमजम् ॥ तुरंगरथगोभूमितिलसर्पिश्च काञ्चनम् ॥" कालविवेकेपि—"सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः । उपरागभवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ॥" मन्त्रस्तु—"तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन । हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥ विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत । दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात् ॥" इति ॥ अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौ मात्स्ये—"यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंभवः । स्नानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥ चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् । संपूज्य चतुरो विप्राञ्छुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् । स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सलिलान्वितान् ॥ गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाह्रदगोकुलात् । राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं त्वक्पञ्चपल्लवम् । रोचनं पद्मकं शंखं कुंकुमं रक्तचन्दनम् ॥ शुक्तिस्फटिकतीर्थाम्बुसितसर्षपगुग्गुलून् । मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ॥ बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च । गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरचन्दनम् ॥ एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान् । सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः । योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ॥ सहस्रनयनः

अथवा घोडा, रथ, भूमि, गौ, तिल, घी सुवर्णको प्रदान करै, कालविवेकमें कहा है सुवर्ण, नाग वा सतिल कांस्यपात्र यह दक्षिणा और वस्त्रसहित ब्राह्मणको दे, ग्रहणदोषशान्तिके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सोने वा चांदीकी सूर्य चन्द्रमाकी मूर्ति बनाय ब्राह्मणको देनी चाहिये। मंत्र यह है—हे अन्धकारमय महाभयंकर सोमसूर्यके मर्दन करनेवाले ! सुवर्ण तार दानसे मुझे शान्ति दो हे सिंहिकानन्दन च्युत न होनेवाले चन्द्रको कष्टदायक ! हे राहो ! इस सुवर्णनागके दानसे मेरी ग्रहणके भयसे रक्षा करो। हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणके वचनसे इसको शान्ति कही है कि जिसकी राशिपर ग्रहण हो उसको मंत्रौषधि सहित स्नान कहता हूं। चन्द्रग्रहण होनेपर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढवाय श्वेत माला और चन्दनसे चार ब्राह्मणोंका पूजन कर ग्रहणसे पहलेही औषधी आदि लाकर स्वच्छ चार घडे जलसे भरे स्थापन करै, उनमें हाथी, घोडे, गली, बामी, दो नदियोंके संगमकी, कुण्ड, गोष्ठ, राजद्वार इतने स्थानोंसे मृत्तिका लाकर डाले, और पंचपल्लव, पंचगव्य, पंचरत्न, पंचत्वचा, गोरोचन, पद्मक, शंख, कुंकुम, लालचन्दन, सीपी, स्फटिक, तीर्थजल, सफेदसरसों, गूगल, महुआ, देवदारु, विष्णुक्रांता, शतावर, बला, सहदेई, दोनों हलदी, हाथीदांत, उशीर, चन्दन इन सबको इन घडोंमें डालकर देवताओंका आवाहन करै कि, सब सागर, नदी, तीर्थ, मेघ, नद यजमानके पाप नाश करनेवाले यह सब घटोंमें आनकर प्राप्त हो आदित्योंके पति वज्रधारी सहस्र नेत्र इन्द्र इन्द्र

शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु । मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ॥ चन्द्रोपराग-संभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु । यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ॥ यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ रक्षोगणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः । खड्गहस्तोतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ॥ स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु । प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृग-प्रियः ॥ वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूल-गदाधरः ॥ चन्द्रोपरागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु । योसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥ चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः । त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् । एवमावाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः ॥ एतानेव तथा मन्त्रान्स्वर्णपट्टे विलेख-येत् । ताम्रपट्टेऽथवालिख्य नववस्त्रे तथैव च ॥ मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः । कलशान्द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् ॥ गृहीत्वा स्नापयेद्रुद्रं भद्रपीठोपरि स्थितम् । पूर्वैरेव तु मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः ॥ अभिषेकं ततः कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः । आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत् ॥ आचार्य-दक्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः । होमं वापि प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ॥

ग्रहोंकी पीडाको दूर करो, सब देवताओंके मुखरूप सहस्रज्वाला युक्त अप्रमाण कान्ति-युक्त अग्निदेवता चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाको दूर करो, जगत्के शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी, महिषवाहन धर्मरूप यम चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाको दूर करें ॥ रक्षोगणोंके अधिपति नीलांजन पर्वतकी समान कान्तिमान् खड्गधारी भयंकररूप निर्ऋति ग्रहपीडाको दूर करो, नागपाशधारी देव सदा मकरपर चढनेवाले जलके अधिपति देव वरुण ग्रहपीडाको दूर करैं । लोगोंके प्राणरूप कृष्णमृगको सदा प्यार करनेवाले वायु चंद्रग्रहणसे उत्पन्न हुई ग्रहपीडाको दूर करो । जो यह निधिपतियोंके देवता खड्ग, शूल, गदा धारण करनेवाले कुबेर सो ग्रहपीडाको दूर करो । जो यह चन्द्रविम्बधारी पिनाकी वृषभवाहन देव हैं वह शंकर चन्द्रग्रहणसे उत्थित हुए पापोंको दूर करैं, त्रिलोकीमें जितने स्थावर जंगम प्राणी हैं वह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य मेरे पातकोंको नष्ट करैं, इस प्रकार वरुणमंत्रोंसे देवताओंका आवाहन करै और इन मंत्रोंको सुवर्णपट्टपर लिखै, ताम्रपट्ट अथवा नये वस्त्रमें लिखाकर वे ब्राह्मण श्रेष्ठ यजमानके मस्तकमें रक्खै अनेक रूप सम्पन्न पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्त उन घडोंको निज हाथमें ग्रहण करके मंगलके आसनपर बैठेहुए यजमानको पूर्वोक्त मंत्रोंसे स्नान करावैं और यह वारुण सूक्तके मंत्र पढै । फिर आचार्यको वरण करके स्वर्णपट्ट निवेदन करै । आचार्यको दक्षिणा और स्वशक्तिसे गोदान करै तिलोंसे व्याहृति पढकर हवन करै और अपना हित करनेके निमित्त शक्तिसे दान करै और

दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् । सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मंत्रांश्च कीर्तयेत् ॥ अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् । न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥ २९ ॥ " इति ग्रहणशान्तिः ॥ ग्रहणदर्शननिर्णयः । भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते–"सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणैः। ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥ " तत्र मंगले वर्ज्यदिननिर्णयः । तथा मङ्गलकृत्येषु वेधविशेषो हेमाद्रौ–" त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ " प्रकारान्तरं तत्रैवोक्तम्– "द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः । एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥ " इदं च पूर्णग्रासे । ' त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः । ' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इदं च–' ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम् ' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्ग्रस्तास्तभिन्नग्रहणपरम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः–"ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च रविणा मुक्तं भुक्तं भं दग्धकाष्ठवत् ॥ " अन्यानि चाग्नेयानि मण्डलानि, तत्फलं वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ तत्र पुरश्चरणम् । पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्–" चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम् ।

सूर्यग्रहणमें सूर्यके नामके मंत्र पढकर मंत्रकीर्तन करै इस प्रकारसे जो ग्रहणमें स्नान करता है उसको ग्रहणमें कभी दोष नहीं लगता है । इति ग्रहणशान्तिः ॥ मार्गवार्चनदीपिकाके ब्रह्मसिद्धान्तमें लिखाहै कि, ग्रहणको आकाशमें जो देखे तो वे सब वस्त्र, तेल, जल, दर्पणमें देखैं और गर्भवती स्त्रीको तो नेत्रोंके आगे वस्त्र डालकर देखना चाहिये अन्यथा कभी न देखै ॥ इसी प्रकार हेमाद्रिमें मंगल कार्योंमें वेधका विशेष लिखा है कि, चन्द्रसूर्य ग्रहणमें तेरससे नौदिनतक सम्पूर्ण मंगलकार्योंको त्यागदे और वहीं दूसरा प्रकार यह लिखाहै कि, द्वादशीसे तृतीया तक चंद्रग्रहणमें, एकादशीसे चतुर्थी तक सूर्यग्रहणमें वेध लगता है परंतु सम्पूर्ण ग्रासमें यह वेध जानना, कारण कि, खण्डग्रहणमें उसी ग्रंथमें तीन दिन ग्रहण कहा है और यह वार्ता मी ग्रस्तास्तको छोडकर दूसरे ग्रहणमें जाननी, कारण कि, नारदने ग्रस्तास्तसे प्रथम तीन दिन वेधकी विशेपता कही है ॥ ज्योतिर्निबंधमें च्यवन ऋषि कहतेहैं कि, तीन ऋतुपर्यन्त ग्रहणके और उत्पातके नक्षत्रको मंगलकार्यमें छोड देना चाहिये और जबतक सूर्य उस नक्षत्रको भोगकर न छोडै तबतक दग्ध काष्ठकी समान उसको त्याग दे इससे अन्य आग्नेयादिके मण्डल उनके फल और वर्णविकारादियोंके फल ज्योतिषियोंसे पूछकर जानने चाहिये ॥ पुरश्चरणचन्द्रिकामें कहाहै कि, चंद्रसूर्यग्रहणमें सावधानीसे स्नान करके राहुके स्पर्शसे मोक्षतक मनको रोककर मंत्र जपै, मंत्र जितना पढा हो उससे दशांश हवन उससे दशांश तर्पण और तर्पणसे दशांश मार्जन

तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल ॥ तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च । नमोन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ॥ द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषि-श्चाम्यनेन तु । तोयैरञ्जलिना शुद्धैरेभिः सिञ्चेत्स्वमूर्धनि ॥ मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत् । जपोर्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम् ॥ भूदेवपूजनं पञ्चप्रकारोक्ता पुरस्क्रिया ॥ " तथा-" होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम् । एवंकृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ॥ " कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तम् । ग्रहणप्रसङ्गात् कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्यते । तत्रारुणस्मृतौ-" प्रतिग्रही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत् । तथापि मनसः शुद्ध्यै प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यादैन्दवेन सम-न्वितम् ॥ सत्रेण वा यजेताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम् ॥ वापीकूपतडागा-दिखननैर्विसृजेद्धनम् ॥ " इति ॥ एतच्च "यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति दानेन तपसैव च ॥ " इति मनूक्तरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति दिक् ॥ ग्रहणेन्तरिते पूर्वसंकल्पितस्य द्वैगुण्यम् । ग्रहणान्तरितस्य पूर्व-संकल्पितद्रव्यस्य द्वैगुण्यं भवतीति शिष्टाः पठन्ति च लघुब्रह्मवैवर्ते-" दातव्य-मिति नो काश्यां वक्तव्यं कुत्रचित्कचित् । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥ दर्शोत्तरं पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् । सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेऽनन्तकं-

---

करै, जिस देवताका मंत्र जपै उसको और अपनी आत्माको पूजन कर मंत्रके अंतमें नमः लगा-कर मन्त्रको जपै, और द्वितीया विभक्ति देवताके अंतमें लगाकर कहै मैं अमुक देवताको स्नान कराता हूं (अहं सूर्यमभिषिञ्चामि) यह पढकर शुद्ध जलोंको अपने मस्तकपर छिडकै, और जितना मार्जन किया हो उसके दशांशसे ब्राह्मणोंको जिमावै प्रथम करनेका कर्म पांच प्रकार लिखा है, जप, पूजन, हवन, तर्पण अभिषेक । ब्राह्मणोंका सत्कार भोजन करावे यदि हवनकी सामर्थ्य न होय तो हवनसे चौगुना जप करै ऐसा करनेपर मन्त्रकी उत्तम सिद्धि होती है ॥ ग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेसे प्रायश्चित्त लगता है, यह अरुणस्मृतिमें लिखा है कि कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेवाला फिर पुरुष नहीं होता है, तो भी मनकी शुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्त करै । दो तप्तकृच्छ्र व्रत इंदुकृच्छ्र व्रतके सहित करै, अथवा सत्रद्वारा यजन करै वा सात लाख मन्त्रका जप करै, अथवा बावडी, कूप, सरोवरादिके खोदनेके अर्थ कुछ द्रव्य दे, यह प्रायश्चित्त भी इस मनुके वाक्यसे उसके धन त्यागनेके उपरान्त जानना । कि, जिस द्रव्यको ब्राह्मण निन्दितकर्म करके संग्रह करते हैं, उसके त्याग वा दान तपस्यासे शुद्ध होते हैं यही नियम है ॥ प्रथम संकल्प किये द्रव्यके मध्यमें जो ग्रहण आजाय और वह न दिया जाय तो दूना हो जाता है यह शिष्टोंका कथन है । लघुब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, काशी वा अन्य किसी क्षेत्रमें दूंगा ऐसा कभी न कहै कारण कि, अहोरात्र बीतनेपर दान दूना हो जाता है । पर्वमें दशगुणा

स्मृतम् ॥ '' इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तत्र केचिन्मतखण्डनम्। अत्र कचि-द्बौद्धतुल्या आहुः ग्रहणस्य निमित्तत्वेन तन्निश्चयस्य प्रयोजकत्वात्। ज्योतिः-शास्त्रादिना जातस्य ज्ञानस्य निमित्तत्वे प्राप्तेपि "स्नानं दानं ततः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने। चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरम् ॥ '' इति जाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चाक्षुषज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेन निमित्तत्वम्। अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात्। तेन मेघाच्छादनेऽन्धादीनाम्। 'जन्मसप्ताष्ट' इत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्राद्धादौ नाधिकार इति ॥ कल्पतरुरप्याह दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते न ज्ञानमात्रम्। अज्ञानस्य निमित्तत्वासंभवान्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन दर्शनपद-वैयर्थ्यापत्तेः। तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः पुण्यः। योग्यत्वं च प्रयत्नानपनेयचा-क्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यं तेन मेघच्छन्ने योग्यताभावान्न स्नानादीति ॥ निर्णया-मृतेप्येवम् ॥ तदेतत्तुच्छम्। यदि चाक्षुषज्ञानं निमित्तं स्यात्तदा-"सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् ॥ '' इति वाक्यं व्यर्थं स्यात्। चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभावात्। तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य॥ न चेदं ग्रस्तास्तपरम्। रविचन्द्रयोरस्तानन्तरं रात्रिंदिवाग्रहत्वादिति वाच्यम्।

चंद्रग्रहणमें सौगुणा और सूर्यग्रहणमें सहस्रगुणा और मरणमें अनंत हो जाता है, इसमें मूल विचारने योग्य है॥ इसपर कोई बौद्धोंकी समान कहते हैं, ग्रहणके निमित्तत्व होनेसे दान जप आदिमें दान निमित्त है और वह निश्चयके विना नहीं हो सकता, ज्योतिःशास्त्रादिसे उत्पन्न हुआ ग्रहणका ज्ञान यद्यपि निमित्त हो सकता है तथापि स्नान, दान, तप यह राहुके दर्शनमें अनंत होता है, चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जबतक दर्शन हो तो इस जाबालिके वचनसे दृष्ट प्रयोग होनेसे नेत्रोंसे देखनेको ही अंतमें न्यायसे निमित्तता हुई, ऐसा न करनेसे ग्रहणमें दर्शनकी लक्षणा माननी होगी, इससे मेघके आच्छादन होनेसे अंधोंको और नेत्रवालोंको जन्म, सातवीं और आठवीं राशियोंके निषिद्ध ग्रहणके देखनेसे स्नान और श्राद्धादिमें अधिकार नहीं रहैगा, कल्पतरुमें भी लिखा है कि, दर्शनशब्दसे नेत्रोंसे देखनेका ग्रहण करना ज्ञानमात्र नहीं, अज्ञानकी निमित्तता नहीं हो सकती, अन्यथा ज्ञानकी प्राप्ति तो निमित्तकी महिमासेही हो जाती, फिर दर्शनपद धरना वृथा था, इस कारण जिस कालमें ग्रहण नेत्रोंसे दीखने योग्य हो वही समय शुद्ध है, उसकी योग्यता यही है कि, प्रयत्नसे प्राप्त किये पदार्थसे नेत्रोंके दृष्टज्ञानके प्रति अवरोधक न हो इस कारण मेघाच्छादित आकाशमें नेत्रोंसे देखनेकी योग्यता नहीं है इसी कारण स्नान आदि नहीं होते निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार कहा है परंतु यह सब बौद्धोंकी समान कथन तुच्छ है, कारण कि, यदि निमित्त नेत्रावलोकनही होता तो यह कथन "सूर्यग्रहण रात्रिमें होय, दिनमें चन्द्रग्रहण होय तो न स्नान करै और न दान दे '' व्यर्थ होजाता। कारण कि, नेत्रदर्शनके न होनेसे स्नान आदिकी स्वयंही प्राप्ति नहीं थी, और प्राप्त वस्तुका निषेध होता है और जो यह शंका करो कि, यह निषेध ग्रस्तास्तमें है, तो सूर्य चंद्रमाके अस्तके अनंतर भाविरात्रि और दिनका ग्रहण है सो यह शंकाभी ठीक नहीं है।

तत्रपदस्य ग्रहपरत्वेऽधिकरणत्वायोगात् । निमित्तपरत्वे च तद्ग्रहनिमित्तकस्नाना-देरस्तात् प्रागप्यभावापत्तेः ॥ अथ तत्रेति रात्रिदिने उच्येते—'सा वैश्वदेवी' इति-वद्गुणभूते अपि । तन्न । तादृशमन्त्रलिंगाभावात् तयोर्निमित्तत्वेऽधिकरणत्वे वाऽन्य-प्रयुक्तस्नानाद्यभावापत्तेश्च ॥ किंच—"नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन । नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥" इति मनुवचनं बाध्येत । 'दृष्टो रिष्टप्रदो राहुः' इत्यादि च । न चात्र विहिते दर्शने निषेधाप्रवृत्तिवत् पर्युदासनी-यतापि न युक्तेति वाच्यम् । दर्शनस्यानुवादेन विधेयत्वाभावात् । एतच्चाग्रे वक्ष्यामः । तत्त्वे वा विरुद्धत्रिकद्वयापत्तेः ॥ अस्तु सकृद्दर्शनविधानेन संकोच. इति चैन्न ॥ 'मुक्तं दृष्ट्वा ततः स्नायात्' इति मुक्तिस्नानेपि चाक्षुषज्ञानस्य निमित्तत्वापत्तेः ॥ अस्तु किं नश्छिन्नमिति चेत् न ग्रस्तास्ते तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाभ्यवहरेच्छुचिरिति दर्शनोत्तरं भोजनविधानादन्धस्य पूर्ववेधकाल इव यावद्दर्शनं भोजननिषेधापत्तिः ॥ मध्येन्धीभूतस्य सुतरां यावच्चक्षुःप्राप्त्युपवासप्रसंगश्च । अथान्नलोलुपतया तत्र

कारण कि, यह ग्रहपद ग्रहणका वाचक है, उसको ग्रस्तास्त समयपर नहीं माना जा सकता, और यदि निमित्तका बोधक मानोगे तो अस्तसे प्रथम भी ग्रहणके निमित्त स्नान आदि न होंगे और यदि कहो कि, उक्त वचनमें तंत्र पदसे 'सावैश्वदेवी' (विश्वदेवादेवतावाली) आमीक्षाके तुल्य गौणभी रात्रि दिन कहे हैं सोभी यथार्थ नहीं इस प्रकार कोई मन्त्ररूप प्रमाण नहीं और जो रात अथवा दिनको निमित्त वा अधिकरण मानोगे तो दूसरेके निमित्त भी स्नानादिका अभाव प्राप्त होजायगा, और उदय वा अस्त हो तो राहुसे संयुक्त जलमें प्रतिबिम्ब, और मध्याह्नके सूर्यको आकाशमें न देखै इस मनुवचनका बाध होजायगा, ग्रहणके समय देखनेसे रोग करता है इत्यादि । और जैसे शास्त्रमें लिखे दर्शनमें निषेधकी प्राप्ति नहीं तैसेही निषेध मानना भी युक्त नहीं, ऐसी शंका करनी न चाहिये । कारण कि, निमित्तरूप दर्शनकी अनु-वादता होनेसे वह शास्त्रोक्त नहीं कहा जा सकता और यह वार्ता आगे वर्णन करेंगे, और जो निमित्तको भी विधेय कहोगे तथा स्नानविधि मानोगे तो परस्पर विरुद्ध दो स्थानमें तीन तीन मानने पडेंगे ॥ अस्तु एकबार दर्शनके विधिसे संकोच मानना भी यथार्थ नहीं कारण कि, राहुसे मोक्ष देखकर स्नान करै, इस मोक्षसे भी नेत्रदर्शनकी निमित्तता प्राप्त होगी; जो कहो इसमें हमारी क्या हानि है, सोभी उचित नहीं कारण कि ग्रस्तास्त होनेपर ग्रहणके अगले दिन दर्शन कर शुद्ध हो भोजन करे इस वाक्यके अनुसार पश्चात् भोजन करना कहा है इससे जिस प्रकार पूर्ववेधमें अन्धे मनुष्यको भोजनका निषेध है इसी प्रकार चन्द्र सूर्यके देखने तक भोजनका निषेध होजायगा, जो मनुष्य मध्यमें अन्धा हुआ है उसको जबतक दर्शन न हो तब-तक उपवास करना होगा (बहुत सूर्यके दर्शनसे नेत्रज्योति मलीन होजाती है:) । यदि कोई अन्नके लोभसे दर्शनसे ज्ञानमात्रका ग्रहण करे सोभी ठीक नहीं कारण कि, यह अलज्जावाला

ज्ञानमात्रं विवक्ष्यते, तत् पूर्वमपि निर्लम्बेन स्वीक्रियताम् ॥ एतेन यत् केनचिदुक्तं स्पर्शस्नानं मुक्तिस्नानं च यस्य दर्शनं तेनैव कार्यम् । नान्येन । 'क्त्वाप्रत्येन समानकर्तृकत्वावगते' इति तन्निरस्तम् ॥ का तर्हि तस्य गतिः । दृशेरुद्देश्यावि-शेषणत्वात् ग्रहैकत्ववदविवक्षयार्थतः सिद्धज्ञानमात्रानुवादत्वे सर्वं सुस्थम् ॥ अंगुल्याद्यनादेश्यग्रहव्यावृत्त्या वा दर्शनस्यार्थवत्त्वम् ॥ न चोक्तयोग्यतापि साध्वी दर्शनोत्तरं मेघच्छन्ने योग्यताभावापत्त्या दानाद्यभावापत्तेः॥ तेन तत्तद्रेखात्वच्छेदेन ज्योतिःशास्त्रावेद्यत्वमेव योग्यता॥ किंच–'रजसो दर्शने नारी त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्' इत्यत्राप्यन्धस्त्रीणामाशौचाभावप्रसंगः ॥ यत्तु वर्धमानेनोक्तम्–'ज्ञानोत्तरं त्वधिकारो न ज्ञानकाले' । स्नानकाले ज्ञानाभावात् । एवं दर्शनोत्तरं मुक्तिपर्यन्तमस्त्येव योग्य-तेति तदपि प्रतिज्ञामात्रम् ॥ किंच ग्रस्तास्ते–'तयोः परेद्युरुदये दृष्ट्वाऽभ्यवहरेच्छु-चिः' इत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः। चाक्षुषज्ञानान्यथानुपपत्त्यैवार्थादुदये स्नानसिद्धेः ॥ ननु मुक्तिस्नाने शास्त्रीयमेव ज्ञानं निमित्तं न चाक्षुषम् ॥ "चन्द्रसूर्यग्रहे नाऽद्यात्त-स्मिन्नहनि पूर्वतः । राहोर्विमुक्तिं विज्ञाय स्नात्वा कुर्वीत भोजनम्" इति वृद्धगौत-मेन विज्ञायेति ज्ञानमात्रोक्तेः ॥ यत्तु–'मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्'

उससे प्रथमभी ज्ञानमात्रको पहले क्यों नहीं मान लेता, इससे यह वार्ता भी परास्त हुई । जो कोई कहतेहैं कि, स्पर्श और मुक्तिका स्नान. उस मनुष्यको करना चाहिये जिसने देखा हो दूसरेको नहीं । जिससे कि, क्त्वाप्रत्यय दृष्ट्वाके सदृश दर्शन और स्नानका कर्ताही प्रतीत होता है तो इसकी दशा क्या होगी, ऐसा कहनेपर इसकी गति यह है कि, दर्शन उद्देश्यका विशे-षण है ग्रहणके एकत्वकी समान इसकी विवक्षासे अर्थात् प्राप्तज्ञानमात्रके अनुवाद दर्शनको स्वीकार करनेसे सम्पूर्ण यथार्थ है, अंगुली आदिके विना बताये ग्रहणके निषेधसेही दर्शनपद सफल होजायगा, और पूर्वोक्त दर्शनकी योग्यता ठीक करनेकी शंका उचित नहीं. कारण कि, दर्शनके पश्चात् मेघोंसे आच्छादित होजाय तो दर्शनकी योग्यताके अभावसे दान आदिका भी अभाव प्राप्त होजायगा, इससे ज्योतिःशास्त्रसे उस रेखामें ग्रहणके अज्ञानको अदर्शनकी योग्यता कही है, रज दीखनेसे स्त्री तीन रात अपवित्र होती है इस वाक्यमें अन्धी स्त्रियोंको अशौच न होगा, और जो वर्द्धमान यह कहतेहैं कि, ज्ञान होनेके पीछे स्नानका अधिकार होगा कारण कि, स्नानके समयमें ज्ञानका अभाव है इसी प्रकार दर्शनसे राहुग्राससे मुक्तिपर्यन्त योग्यता है, यह वर्द्धमानका वाक्य प्रतिज्ञामात्र जानना यथार्थमें नहीं कारण कि, ग्रस्तास्ते–अर्थात् सूर्य और चन्द्रमाके ग्रस्तास्तमें दोनोंको देख हो भोजन करै, नेत्र विषयकज्ञान होनेसे अन्यथा अनु-पपत्तिसेही उदयमें स्नान सिद्ध है यदि कहो राहुसे मोक्षके स्नानमें शास्त्रीय ज्ञान निमित्त है, नेत्रसे नहीं, सोभी ठीक नहीं. कारण कि, चन्द्र सूर्य ग्रहणमें उस दिन प्रथम भोजन न करै, किन्तु राहुमुक्तिको जानकर स्नानके उपरान्त भोजन करना चाहिये, विज्ञायपदसे वृद्धगौतमने

इति तदपि ज्ञानमात्रपरम् । "मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते । आकलय्य तु तं कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः " इति गौडनिबन्धे वचनात् ॥ मैवम् । अज्ञातस्य निमित्तत्वाभावेन निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभे वाक्यवैयर्थ्यात् । ग्रस्तास्तेपि तदापत्तेश्च ॥ किं च दर्शनं पुंसो विशेषणमुपलक्षणं वा ॥ नाद्यः ॥ दर्शनावच्छिन्ने काले स्नानतुलादानादेर्बाधात् । दर्शनविच्छेदे कृतमपि स्नानादि न ग्रहणनिमित्तं स्यात् ॥ नान्त्यः । 'यावद्दर्शनगोचरः' इति यावत्पदवैयर्थ्यप्रसंगात् । दृष्टग्रहस्य ग्रहणोत्तरमपि स्नानाद्यापत्तेश्च ज्ञानपक्षेप्येष दोषस्तुल्य इति चेत् । मूर्खोसि । यदि ज्ञानवाचकं पदं श्रूयते ततस्तस्यान्वयो विचार्येत ॥ दृशिस्तु श्रूयत इति वैषम्यम् ॥ कथं तर्हि ज्ञानं लभ्यते । 'संक्रान्तौ स्नायात्' इतिवदर्थादित्येवहि ॥ अश्रुतत्वादेव नोद्देश्यविशेषणविवक्षाकृतो वाक्यभेदोपि ॥ अस्तु तर्हि दृष्टं ग्रहणं निमित्तमिति चेत् । ग्रस्तास्तेऽस्तोत्तरं स्नानापत्तेः ॥ विशिष्टोद्देशे वाक्यभेदाच्च तवाप्येतत्तुल्यमिति चेत् । 'यावद्दर्शनगोचरः' इति वचनेन तन्निषेधात् ॥ तत्त्व-

---

ज्ञानमात्र अर्थ किया है और जो गौडनिबन्धमें यह लिखा है कि, पुनः राहुसे मोक्षको देख स्नान करने-उपरान्त भोजन करे और जो मेघोंके आच्छन्न रहनेसे मुक्ति न दीखै तो मोक्षके समयको शास्त्रसे जान स्नानके उपरान्त मौन हुएही भोजन करै, यह गौडनिबन्धका कथन ठीक नहीं कारण कि, जब अज्ञानकी निमित्तता हुई तो उसके निमित्तकी महिमासेही ज्ञानकी प्राप्ति होजायगी तो वाक्य व्यर्थ होजायगा, और ग्रस्तास्तमें भी भोजनकी प्राप्ति होजायगी ॥ दर्शन पुरुषका विशेषण या उपलक्षण है, विशेषण अपने विशेष्यमें स्थित रहकर दूसरेको हटाता है, इसमें पहला विशेषण नहीं होसकता. कारण कि, ग्रहण दर्शनसे युक्तकालमें स्नान और तुलादानादि नहीं होसकते, और जब दर्शनका अभाव अर्थात् सूर्यग्रहणकी ओरसे दृष्टि हटी हुई है तब इस विचारसे कियेहुए स्नानादिमें ग्रहण निमित्त न होगा, दूसरा उपलक्षण भी ठीक नहीं. कारण कि, जबतक दीखे इसमें यावत् पद व्यर्थ होजायगा, और दृष्टग्रहणके पश्चात् भी स्नान तुलादानादि करने होंगे, यदि कहो यह दोष तो ज्ञानपक्षमें भी तुल्य है, तो यह अज्ञता है, कारण कि, ज्ञानवाचकपद वाक्यमें दृष्ट होनेसे किसप्रकार ज्ञान प्राप्त होगा सो ठीक नहीं, संक्रान्तिमें न्हाना चाहिये, जिसप्रकार यहां संक्रांतिका ज्ञान ग्रहण करते हैं उसी प्रकार दर्शनसे दर्शनका ज्ञान ग्रहण करते हैं इसप्रकार जानना चाहिये । और वाक्यमें अश्रूयमाण होनेसे विशेषतासे जब देवताके निमित्त विवक्षाकी उस समयभी वाक्यभेद तो होगाही, यदि कोई शंका करै जो ऐसा है तो दर्शनको ही ग्रहणमें निमित्त मानो तो ग्रस्तास्तके उपरान्त भी स्नानकी प्राप्ति होगी, और विशेषणके सहितको उद्देश्य स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद होगा । जो शंका करो तुम्हारे मतमें भी यह समान है सो ठीक नहीं, कारण कि जबतक, दर्शन हो

न्यग्रह इव ग्रस्तास्तेपि स्यात् ॥ किं च दर्शनस्य विधिरपवादो न वा । आद्ये ग्रहणोद्देशेन दर्शनविधिः, न तु दर्शनविशिष्टस्नानविधिः, उत स्नानोद्देशेन दर्शनविधिः॥ नाद्यः ॥ ग्रहोद्देशेन स्नानविधाने दर्शनविधाने च वाक्यभेदात् ॥ एतेन द्वितीयोपि परास्तः ॥ न तृतीयः स्नानस्याप्राप्तेः । दर्शनस्य निमित्तत्वेनाविधेयत्वाच्च ॥ अन्यथा सोमवमनादौ प्रसज्जनविधिः केन वार्येत ॥ अथ नानावाक्येषु कचिद्दर्शनविशिष्टस्नानविधिः कचिच्च प्राप्तं दर्शनं निमित्तीकृत्य स्नानमात्रविधिः ॥ तन्न । स्नानस्य प्रधानस्य प्राप्तौ तदङ्गदर्शनप्राप्तिः तस्यां च निमित्ते सति स्नानमित्यन्योन्याश्रयात् । एवं दर्शनविधौ सति तन्निमित्तकस्नानविधिः । सति च प्रधानस्नानविधौ तदंगदर्शनविधिः ॥ एवमधिकारे प्रयोजकत्वे च योज्यम् ॥ दृष्ट्वेति क्त्वार्थपूर्वकालत्वविधौ चास्त्येव वाक्यभेदः । अन्यथा स्नानोत्तरमपि दर्शनमंगं स्यात् ॥ न द्वितीयः । तत्रापि दर्शनग्रहयोर्निमित्तत्वे स्नानद्वयापत्तेः। दर्शनावृत्तौ नैमित्तिकावृत्तिप्रसंगात् । दर्शनविशिष्टग्रहस्य विशिष्टस्यानुवादे वाक्यभेदापत्तेः॥ न च हविरार्तिवद्विशिष्टं निमित्तमिति वाच्यम्॥

इस वाक्यसे हमारे मतमें तो दर्शनके अभावमें स्नानकी मनाई है । हां तुम्हारे मतमें दूसरे ग्रहणकी समान ग्रस्तास्तमें भी स्नानकी प्राप्ति होगी, और यह तो कहो यहां दर्शनका विधान है वा अनुवाद ? पहला नहीं: होसकता कारण कि, ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनकी विधि है अथवा दर्शनके सहित स्नानकी विधि है वा स्नानके उद्देश्यसे दर्शनका विधान है इन तीनोंमें भी प्रथमका विधान नहीं होसकता जो ग्रहणके उद्देश्यसे दर्शनका विधान तथा स्नानविधान स्वीकार करोगे तो वाक्यभेद आवेगा, इनसे दूसरा पक्षभी खण्डित हुआ, तीसरा पक्षभी ठीक नहीं, कारण कि; जब स्नानही प्राप्त नहीं और दर्शनका निमित्त होनेसे निषेध भी संभव नहीं होसकता, अन्यथा सोमवमनमें प्रसंगविधिको कौन निवारण कर सकता है । यदि कहो विविध वाक्योंमें कहीं तो दर्शनके सहित स्नानकी विधि है, और कहीं प्राप्तदृष्टको निमित्त मानकर स्नानमात्रका विधान है सो यह कथन ठीक नहीं. कारण कि इसमें अन्योन्याश्रयदोष प्राप्त होता है कि, प्रधान स्नान विधिके विना प्राप्त हुए उसके अंग दर्शनकी प्राप्ति नहीं होसकती और यदि दर्शनको निमित्त स्वीकार करो तो स्नानकी प्राप्ति होगी इसप्रकारसे दर्शनविधि होवेगी, तो उसके निमित्तवाले स्नानकी विधि प्राप्त होगी, और प्रधान स्नानकी विधि होनेपर उसके अंगदर्शनका विधान प्राप्त होगा और अधिकारक प्रेरक स्वीकार करनेमें भी इसी प्रकार जानना चाहिय । तथा दृष्ट्वा इस पूर्वोक्त पदमें क्त्वाप्रत्ययके अर्थसे पूर्वकालकी विधिमें वाक्यभेद अवश्य होताही है, नहीं तो स्नान अंगके पीछे भी दर्शन अंगकी प्राप्ति होजायगी. दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, यदि उसमें दर्शन और ग्रहणको निमित्त: मानोगे तो दो स्नानकी प्राप्ति होगी, यदि दर्शनकी आवृत्ति स्वीकार करोगे तो उसके नैमित्तिककी आवृत्तिका प्रसंग होजायगा, और यदि दर्शनविशिष्ट ग्रहणको अनुवाद स्वीकार करो तो वाक्यभेद होगा और जो यह कहो कि, दुःखमें हविकी समान विशिष्टको निमित्त स्वीकार करेंगे, यह पक्ष भी ठीक

अर्तिमात्रस्य हि निमित्तत्वे निर्निमेषाद्यार्तेरपि तत्त्वापत्तेर्नैमित्तिकत्वभङ्गाद्युक्तं विशिष्टोद्देशत्वम् ॥ इह तु ग्रहणमात्रस्य निमित्तत्वे न काचित् क्षतिः ॥ तस्माद्दर्शनवाक्यानां ग्रस्तास्तविषयत्वादनादेश्यग्रहपरत्वाद्वा ज्ञानस्य चार्थतः प्राप्तेस्तदेव निमित्तं तेन मघाद्याच्छादनेऽन्धादेश्च स्नानादि भवत्येवेत्यलं वेदबाह्यैः संलापेन ॥ इति ग्रहणनिर्णयः ॥ समुद्रस्नाननिर्णयः । अथ समुद्रस्नानम् ॥ आश्वलायनः—" समुद्रे पर्वसु स्नायादमायां च विशेषतः । पापैर्विमुच्यते सर्वैरमायां स्नानमाचरन् ॥ भृगुभौमदिने स्नानं नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ " भारते—" अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्प्रष्टव्यौ कदाचन । अश्वत्थं मन्दवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये स्कांदे- " पुनाति पर्वणि स्नानात्तर्पणैः सरितां पतिः । कदाचिदपि नैवात्र स्नानं कुर्यादपर्वणि ॥ " अस्यापवादस्तत्रैव प्रभासखण्डे—" पर्वकाले च संप्राप्ते नदीनां च समागमे । सेतुबन्धे तथा सिन्धौ तीर्थेष्वन्येषु संयुतः ॥ एवमादिषु सर्वेषु मध्येऽन्ये तु स्वकर्मणि ॥ " तथा-"विना मंत्रं विना पर्व क्षुरकर्म विना नरैः । कुशाग्रेणापि देवेशि न स्प्रष्टव्यो महोदधिः ॥ " तथा ' न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि '

नहीं कारण कि, दुःखमात्रको निमित्त माननेसे निमेषके दुःखको भी निमित्तताकी प्राप्ति होगी तब निमित्तकता भंग होगी, इससे विशिष्टको उद्देश्यतायुक्त मानना पडेगा । और इस स्थलमें तो ग्रहणका निमित्त स्वीकार करनेमें कोई क्षति नहीं है इस कारण दर्शन वाक्योंका ग्रस्तास्त विषय होनेसे वा अनुद्दिश्य (जो कहीं कथन न किया हो) ग्रहणका विषय होनेसे. अर्थसे ज्ञानही प्राप्त है, इस कारण यही निमित्त है, इसी कारणसे बादलोंके घिरे रहनेसे भी अन्ध आदिकोंको स्नानादिक करनेही पडेंगे । अब वेदबाह्य चलनेवालोंके साथ बहुत वार्ता नहीं करते । इति ग्रहणनिर्णयः ॥ अब समुद्रस्नान कहते हैं । आश्वलायन कहते हैं—समुद्रमें पर्वमें और विशेषकर अमावास्याको स्नान करै तो उसके सम्पूर्ण पाप दूर होजाते हैं शुक्र और मंगलको कभी सागरमें स्नान न करै, भारतमें कहा है पीपल और सागरकी सेवा करै पर इनको छुवै नहीं, शनिको पीपल और पर्वमें सागरको स्पर्श करै । पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पर्वमें स्नान और तर्पण करनेसे समुद्र पवित्र करताहै, और इसके विना स्नान न करै वहीं प्रभासखण्डमें इसका अपवाद लिखा है कि, पर्वके प्राप्त होनेपर नदियोंके संगम, सेतुबन्ध, तीर्थ तथा और सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे पवित्रता होती है, तथा दूसरे कर्म करनेसे भी पवित्र है. तथा हे पार्वति ! विना मन्त्र विना पर्व और विना क्षौर कराये कुशाके अग्रभागसे भी मनुष्योंको सागरका स्पर्श करना न चाहिये, तथा समुद्रके स्नानमें सेतुबन्धपर कालका नियम नहीं है उसी स्थलमें स्नानका विधान भी कहाहै ।

तद्विधिश्च तत्रैव—"पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्ये लोकभयंकरे । पाषाणस्ते मया दत्त आहारार्थं प्रकल्प्यताम्" इति पाषाणं प्रक्षिप्य "विश्वाची च घृताची च विश्वयोने विशांपते । सान्निध्यं कुरु मे देव सागरे लवणाम्भसि ॥ नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते । नमो जलधिरूपाय नदीनां पतये नमः ॥ नमस्ते जगदाधार शंखचक्रगदाधर । देव देहि ममाज्ञां तव तीर्थनिषेवणे ॥ त्रितत्त्वात्मकमीशानं नमो विष्णुमुमापतिम् । सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥ ४ ॥" "अग्निश्च योनिरनिलश्च देहे रेतोधा विष्णुरमितस्य नाभिः । एतद्ब्रुवन्पाण्डव सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पतिं नदीनाम् ॥" इति भारतोक्तमन्त्रान् पठित्वा विधिवत्स्नात्वा । "सर्वरत्नो भव त्वं श्रीमान् सर्वरत्नाकरो यतः । सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं महोदधे ॥" इत्यर्घ्यं दत्त्वा तर्पयेत् ॥ यथोक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये—"पिप्पलादं विकण्वं च कृतान्तं जीविकेश्वरम् । वसिष्ठं वामदेवं च पराशरमुमापतिम् ॥ वाल्मीकिं नारदं चैव वालखिल्यांस्तथैव च । नलं नीलं गवाक्षं च गवयं गन्धमादनम् । जाम्बवन्तं हनूमन्तं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा । मैन्दं च द्विविदं चैव ऋषभं शरभं तथा ॥ रामं च लक्ष्मणं चैव सीतां चैव यशस्विनीम् । एतांस्तु तर्पयेद्वि-

---

हे पिप्पलादसे प्रगट राक्षसी ! लोकोंको भय देनेवाली ! मैं यह पाषाण तुझे देताहूं तू इसे भोजनके निमित्त कल्पना कर, इस प्रकार सागरमें पाषाण फेंककर इन भारतके मन्त्रोंको उच्चारण करै, हे विश्वाचि, हे घृताचि, हे विश्वके कारण जगत्के रक्षक ! क्षार समुद्रमें तुम इस समय विराजो, हे विश्वरक्षक विष्णु, जलोंके स्वामी, सागररूप नदियोंके पति ! आपको प्रणाम है, हे जगत्के आधार शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले ! आपको प्रणाम है, हे देवस्व ! तीर्थ सेवनके निमित्त मुझे आज्ञा दीजिये, तीन तत्त्वस्वरूप ईशान विष्णु और शिवको प्रणाम है. हे देवेश ! इस क्षारसमुद्रके जलमें सन्निधि करो, जो भगवान् अग्नि और वायुके कारण है अमृतके स्थान और वीर्यके देनेवाले हैं वे प्राप्त हों. हे पाण्डव ! इस प्रकार सत्यवाक्योंको उच्चारण कर सागरमें स्नान करै इस प्रकार भारतके मन्त्र पढ विधिपूर्वक स्नान करके इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर तर्पण करै. हे सागर ! आप सब रत्नोंके देनेवाले श्रीमान् और रत्नोंके आकर सब रत्नोंके प्रधान हैं, हे सागर ! हमारा अर्घ्य ग्रहण करो इस प्रकार अर्घ्य दे तर्पण करे, पृथ्वीचन्द्रोदयमें स्कन्दपुराणके वचनसे यह तर्पण लिखाहै कि, पिप्पलाद, विकण्व, कृतान्त, जीविकेश्वर, वशिष्ठ, वामदेव, पराशर, शिव, वाल्मीकि, नारद, वालखिल्य, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, जाम्बवंत, हनूमान, सुग्रीव, अंगद, मैन्द, द्विविद, ऋषभ, शरभ, राम, लक्ष्मण, यशस्विनी सीता, विद्वान् इनको जलके मध्यमें स्थित हो विशेषकर तर्पण करै,

द्धाञ्जलमध्ये विशेषतः ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमेवाभिगच्छतु ॥ ५ ॥ इति ॥

इति श्रीमीमांसकनारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त जो कुछ चराचर हैं वह सब इस हमारे दिये जलसे तृप्ति प्राप्त करैं ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ कान्यकुब्जवंशावतंसमिश्रसुखानंदसूरिसूनुपण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतानिर्णयसागरसेतुनामके भाषानुवादे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

इति निर्णयसिन्धौ प्रथमः परिच्छेदः ।

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ–

द्वितीयः परिच्छेदः २.

श्रीगणेशाय नमः॥ अथ सांवत्सरप्रतिपदमारभ्य । "तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च ॥ विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥ ". इति ब्राह्म प्रायशोऽनुसृत्य तिथिनिर्णयस्तत्कृत्यं च निरूप्यते । तत्र मीनसंक्रान्तौ पश्चात् षोडश घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु निशीथात्प्राक् परतश्च संक्रमे पूर्वोत्तर-दिनार्धं पुण्यम् । निशीथे तु दिनद्वयं पुण्यमिति सामान्यनिर्णयादवसेयम् ॥ तिथिनिर्णये चैत्रशुक्लप्रतिपन्निर्णयः । अथ तिथिनिर्णयः ॥ तत्र चैत्रशु-क्लप्रतिपदि वत्सरारम्भः तत्रौदयिकी ग्राह्या । " चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि ॥ शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ॥ " इति

दोहा–राम लखन सीतासहित, भरतचरण शिर नाय ॥
तिथिनिर्णयतिथिकृत्यको, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

अब संवत्सरकी प्रतिपदासे आरम्भ कर प्रायः इस ब्रह्मपुराणके कथनानुसार तिथिनिर्णय और तिथियोंका कृत्य लिखतेहैं:–तिथियोंके कार्यमें कृष्णपक्षसे और व्रतोंमें शुक्लपक्षसे और विवाह आदिमें संक्रान्तिसे मासको मानै, वहां मीनसंक्रान्तिमें पिछली सोलह घडीका पुण्यकाल होता है,. और रात्रिमें आधी रातसे प्रथम संक्रान्ति होय तो पूर्वदिनमें और आधीरातसे परे होय तो पर निर्णयसे जानना चाहिये । और आधीरातमें होनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होताहै यह सामान्य निर्णय है ॥ चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको वर्षका प्रारम्भ होता है उसमें उदय समयकी प्रतिपदा लेनी. कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका यह कथन लिखा है कि, चैत्रमहीने प्रथम दिन शुक्लपक्षमें सूर्योदयके समय ब्रह्माने सब जगत्को रचा है, यदि दोनों दिन सूर्योदयमें हों वा दोनों दिन सूर्योदयमें

हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वैव । तदुक्तं ज्योतिर्निबन्धे– "चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः ॥ उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेपि पूर्वः स्यात् ॥ यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः ॥" इति "वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ॥ पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥" इति ॥ वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ "चैत्रमासस्य या शुक्लप्रथमा प्रतिपद्भवेत् ॥ तदहि ब्राह्मणः कृत्वा सोपवासस्तु पूजनम् ॥ संवत्सरमवाप्नोति सौख्यानि भृगुनंदन॥" इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मोक्तेः ॥ यदा तु चैत्रो मलमासो भवति तदा देवकार्यस्य तत्र निषिद्धत्वाच्छुद्धे मासि संवत्सरारम्भः कार्य इति केचिदाहुः ॥ निष्कर्षस्तु- 'शुक्रादेर्मलमासस्य सोन्तर्भवति चोत्तरे' इत्यादिवचनादग्रिमवर्षान्तःपातान्मलमासमारभ्यैव वर्षप्रवृत्तेः शुक्रास्तादाविव मलमास एव कार्य इति वयं प्रतीमः ॥ ननु शुक्रास्तादौ चैत्रशुक्लप्रतिपदन्तरस्याभावाद्युक्तं तन्मध्य एवानुष्ठानम् । मलमासे तु शुद्धप्रतिपदन्तरस्य सम्भवात् शुद्ध एव वत्सरारम्भो युक्त इति चेत् भ्रान्तोसि न हि प्रतिपदन्तरसत्त्वं प्रयोजकं द्विःकरणापत्तेः वर्षद्वयापत्तेश्च । अपि तु वत्सरारंभः स तु मलमासेपीत्युक्तम् प्राक् ॥ न हि 'चैत्रशुक्लादिर्मलमासः पूर्ववर्षेन्तर्भवति ' इति

न हों तो पहली माननी, यही ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयमें जो दिन हो वही वर्षका राजा होता है. यदि दोनों दिन सूर्योदयमें प्रतिपदा हो वा दोनों दिन न होय तो प्रथम प्रतिपदाका दिनही राजा होता है. कारण कि, चैत्रशुक्ला प्रतिपदाको सूर्योदयसेही वर्ष आदिका प्रारम्भ होता है, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखा है कि, वत्सर और वसंतकी आदिमें और बलिके राज्यमें बुद्धिमान् मनुष्यको पूर्वविद्धा ही प्रतिपदा करनी चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिके विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, हे भृगुनन्दन ! चैत्र मासके शुक्लपक्षकी जो प्रथम प्रतिपदा होय उसी दिन ब्रह्माका अर्चन और व्रत करनेसे मनुष्य वर्ष दिनतक सुखको प्राप्त करता है । यह किन्हीका मत है. सिद्धान्त तो यह है कि, शुक्रपक्ष आदि मलमासके अन्तर्गत वह अगला मास आ जाता है, इत्यादि वाक्यसे अग्रिम वर्षके अन्तरमें आये हुए मलमाससेही वर्षकी प्रवृत्ति होती है, इससे मलमासमेंही शुक्र आदिके अस्तके तुल्य वर्षका प्रारम्भ करना यह हम जानते हैं, यदि कोई शंका करे कि, शुक्रास्त आदिमें चैत्रकी दूसरी शुक्लप्रतिपदा नहीं है, इससे शुक्र आदिके अस्तके मध्यही वर्षका आरम्भ करते हैं, मलमासमें तो शुद्धप्रतिपदा प्राप्त हो सकती है इससे शुद्धमेंही वर्षका आरम्भ उचित है, इस शंका करनेवालेको कहना चाहिये कि, तुम भ्रान्त हो कारण कि, दूसरी प्रतिपदाका होना पूजन और उपवासमें प्रयोजक नहीं है, अन्यथा दो वार पूजन करना पडेगा । वर्षके नृपति दो हो जांयगे किन्तु वर्षका आरम्भही पूजनमें प्रयोजक है, वा मलमासमें भी होता है, यह पहिले कह आये हैं ॥ चैत्रशुक्ल आदि मलमास पूर्ववर्षमें नहीं होते, यह ब्रह्माभी नहीं कब

ब्रह्मणापि सुवचम् ॥ तत्र तैलाभ्यंगो नित्यः । "वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इति वसिष्ठोक्तेः ॥ अस्यामेव नवरात्रारम्भः ॥ तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी' इति । तत्र परयुतैव ग्राह्या—"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता" इति देवीपुराणात् ॥ "तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनंदन । कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत" इति हेमाद्रौ ब्राह्मोक्तेः । पराः परयुताः । अत्र विशेषः । पारणानिर्णयश्च शारदनवरात्रे वक्ष्यते ॥ अत्र प्रपादानमुक्तमपरार्के भविष्ये—"अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे । पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत्" इत्युपक्रम्य "ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मंत्रेणानेन मानवः । प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः । अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्" इति ॥ तथा—"प्रपां दातुमशक्तेन विशेषाद्धर्ममीप्सुना । प्रत्यहं धर्मघटको वस्त्रसंवेष्टिताननः ॥ ब्राह्मणस्य गृहे देयः शीतामलजलः शुचिः ।" तत्र मंत्रः—"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥"

सकते हैं । वर्षके प्रारम्भ होनेमें तेलका मलना नित्य है, कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह कहा है कि, वर्ष और वसंतके आरम्भमें और बलिके राज्यमें जो तेल न मले वह नरकमें जाता है, इस प्रतिपदामेंही नवरात्रका आरम्भ होता है, यही मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है कि, शरत्कालमें और वर्षके प्रारम्भमें जो पूजा हो जाती है उसमें मेरे माहात्म्यको पढना चाहिये, नवरात्रके आरम्भमें दूसरी (२) तिथिसे युक्त प्रतिपदा ग्रहण करनी. कारण कि; देवीपुराणमें लिखा है कि, चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाका ग्रहण न करना. किन्तु द्वितीया आदिके गुणोंसे युक्त मुहूर्तमात्र प्रतिपदाभी होय तो वही करनी, और हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, हे कुरुनन्दन ! ये तीनों प्रतिपदा तिथि परतिथियोंसे युक्त करनी चाहिये, कि कार्तिक आश्विन और चैत्रकी इनमें विशेष और पारण आदिका निर्णय शरदृतुके नवरात्रमें लिखेंगें, इसमें प्रपाका दानभी अपरार्कमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फाल्गुन महीनेके बीतनेपर और चैत्रके महोत्सवके आनेपर ब्राह्मणके बताये पवित्र दिनमें प्रपाके दानका प्रारम्भ करे यह लिखकर कहा है कि, फिर इस मन्त्रसे प्रपादान करे, कि प्रपा सब प्राणियोंके निमित्त सामान्यरीतिसे की हुई है, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों, चार मासतक जल देना और किसीको निषेध न करे इसी प्रकार कहा है, कि जो मनुष्य प्रपाके देनेमें अशक्त हैं और धर्मकी इच्छा करता है, वह वस्त्रसे ढककर शीतल और निर्मल जलसे भरा घडा ब्राह्मणके घरमें प्रतिदिन पहुँचादे उसका मन्त्र यह है कि, ब्रह्मा विष्णु शिवरूप यह धर्मघट आपको दिया

"अनेन विधिना यस्तु धर्मकुम्भं प्रयच्छति । प्रपादानफलं सोपि प्राप्नोतीह न संशयः " इति ॥ चैत्रशुक्लतृतीयानिर्णयः । चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुतां शंपूज्य दोलोत्सवं कुर्यात् । तदुक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे—"तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् । कुंकुमागुरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥ स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः । आन्दोलयेत्ततो वत्सं शिवोमातुष्टये सदा" इति॥ अत्र चतुर्थीयुता ग्राह्या 'मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे' इति माधवोक्तेः ॥ अत्रैव सौभाग्यशयनव्रतमुक्तं मात्स्ये—" वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखेप्सुभिः " इति । तत्रापि परयुतैव ॥ इयं च मन्वादिरपि ॥ मन्वादिनिर्णयः । अत्रैव प्रसंगात्सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते । ताश्चोक्ता दीपिकायाम् ' तिथ्यग्नी न तिथिस्तिथ्याशे कृष्णेभोऽनलो ग्रहः । तिथ्यर्कौ न शिवोऽश्वोऽमा तिथी मन्वादयो मधोः " इति ॥ तिथिः पूर्णिमा । अग्निस्तृतीया । नेति वैशाखे नास्तीत्यर्थः । आशा दशमी ॥ कृष्णेभः कृष्णाष्टमी ॥ अनलस्तृतीया ॥ ग्रहो नवमी ॥ अर्को द्वादशी ॥ नेति मार्गशीर्षे नास्तीत्यर्थः । शिव एकादशी । अश्वः सप्तमी। मधोश्चैत्रादारभ्यैता मन्वादय इत्यर्थः ॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्यादेर्ज्ञेयानि ॥ एताश्च मन्वादयो हेमाद्रिमते शुक्लपक्षस्थाः पौर्वाह्णिकाः कृष्णपक्षस्था आपराह्णिकाः

है, इसके दानसे मेरे मनोरथ सब पूर्ण हों, इस विधिसे जो धर्मघटको देते हैं, वहभी इस लोकमें प्रपादानसे फलको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ चैत्रशुक्ला तृतीयाको शिवजीसे युक्त गौरीका पूजन करके दोलोत्सव करे यही निर्णयामृतमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तृतीयामें शंकरसे संयुक्त देवीका कुंकुम, अगर, कपूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, गन्ध, धूप दीपसे और विशेषकर मौलसरीके फूलोंसे पूजन करे, फिर शिव और पार्वतीकी प्रसन्नताके निमित्त झुलावे । माधव कहते हैं यह चतुर्थी युक्त लेनी मुहूर्तमात्रभी होनेपर दिनमें गौरीव्रत और इसी तिथिको मत्स्यपुराणमें सौभाग्यशयनव्रत लिखा है कि, वसंत मासकी तृतीयाको मनुष्योंको प्रिय शयन पुत्रसुखकी इच्छावाली स्त्रीको अपने सौभाग्यके निमित्त करना चाहिये । इनमें भी चतुर्थीयुक्त तृतीयाका ग्रहण करना, और यह मन्वादि भी है ॥ यहांपरही प्रसंगसे सब मन्वादि तिथियोंका निर्णय लिखते हैं, और वे दीपिकामें लिखी हैं कि, चैत्रमें पूर्णिमा, और तृतीया, ज्येष्ठमें पूर्णिमा, और आषाढमें पूर्णिमा और दशमी, श्रावणमें कृष्णपक्षकी अष्टमी, भाद्रपदमें तृतीया, आश्विनमें नवमी, कार्तिकमें पूर्णिमा और द्वादशी, पौषमें एकादशी, माघमें सप्तमी, फाल्गुनमें अमावस्या और पूर्णिमा यह चौदह तिथि चैत्रसे लेकर मन्वादि होती हैं। और वैशाख और मार्गशिरमें नहीं होतीं इनके प्रमाणके वाक्य हेमाद्रिमें लिखे हैं, और ये मन्वादितिथि हेमाद्रिके मतसे शुक्लपक्षकी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी कारण कि, गरुडपुराणका यह वाक्य है कि, मनु आदि और युगआदि तिथि शुक्लपक्षकी सदैव पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी

आह्याः । "पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः । दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः ॥" इति गारुडवचनात्' ॥ 'अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया आपराह्णिकाश्च बहुले' इति दीपिकोक्तेश्च ॥ कालादर्शे त्वपराह्णव्यापित्वं मन्वादिषूक्तं तत्त्वयुक्तमिति युगादिनिर्णये वक्ष्यामः ॥ अत्र च श्राद्धमुक्तं मात्स्ये–"कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितृणां तृप्तिदं भवेत् ॥" इति । मन्वादिश्राद्धं च मलमासे सति मासद्वयेपि कार्यम् । 'मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः ॥ अत्र पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तदुक्तं कालादर्शे–"विषुवायनसंक्रान्तिमन्वादिषु युगादिषु । विहाय पिण्डनिर्वापं सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥' इति मन्वादिश्राद्धं नित्यम् । अकरणे प्रायश्चित्तदर्शनात् । तदुक्तमृग्विधाने "त्वं भुवः प्रतिमन्त्रं च शतवारं जले जपेत् । मन्वादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः" इति ॥ एवं यत्र प्रायश्चित्तवीप्सादिदर्शनं तानि षण्णवतिश्राद्धानि नित्यानि ॥ तानि तु "अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः ॥ अन्वष्टक्यं च पूर्वेद्युः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः ॥" इत्युक्तानि ॥ चकारादष्टकाग्रहणम् । द्वासप्ततिः पुत्रकाम्यानि श्राद्धानि–"पित्रोः क्षये त्वमा-

---

सदा अपराह्णमें, देव और पितरोंके कर्ममें ग्रहण करनी । और दीपिकामें भी यही लिखा है कि, मन्वादि और युगादि कर्म तिथि शुक्ल पक्षमें पूर्वाह्णकी और कृष्णपक्षमें अपराह्णकी जाननी चाहिये । कालादर्शग्रंथमें तो यह लिखा है कि, मन्वादि तिथि अपराह्णव्यापिनी भी लेनी सो युक्त नहीं है, यह युगादि निर्णयमें लिखेंगे, इन तिथियोंमें श्राद्ध करना भी मत्स्यपुराणमें लिखा है, मन्वादि और युगादि तिथिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करनेसे दो सहस्र वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है और मलमास होय तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें करना चाहिये, कारण कि, स्मृतिचंद्रिकामें यह लिखा है कि, मन्वादि श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध दोनों महीनोंमें करै और इनमें पिंडरहित श्राद्ध करै, यही कालादर्शमें कहा है कि, विषुव (तुला मेष) और अयनकी संक्रान्ति और मन्वादि और युगादिमें पिण्डदानको त्यागकर सम्पूर्ण श्राद्ध करै, और मन्वादि नित्य लिखा है कारण कि, इसके न करनेमें प्रायश्चित्त लिखा है, यही ऋग्विधानमें लिखा है कि, जो पुरुष मन्वादिकोंको पिण्डरहित श्राद्ध नहीं करता है वह त्वंभुवः प्रति इस मंत्रको जलमें सौ १०० वार जप करै इस प्रकार प्रायश्चित्तके देखनेसे दर्श आदि अनन्त पर्यन्त छानवे ९६ श्राद्ध नित्य करने लिखे हैं । और वे इस प्रकार कहे हैं कि, अमावस्या १२, युगादि ४, संक्रान्ति १२, वैधृति १२, व्यतिपात १२ । महालय (कन्यागत) १६, अन्वष्टका १२, ये बानवे लिखे हैं और चकारसे चार अष्टका ग्रहण है, और बहत्तर श्राद्ध पुत्रकाम्य कहे हैं कि, माता पिताके मरनेके दिन २, अमावस्या

---

१ त्वंभुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्यबृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वासत्यमद्धानकिरन्यस्त्वावान् ऋ० १।४।१४।१३.

वस्या ऋतुसंक्रान्त्यनन्तकाः । अपरपक्षे नवान्ने द्वे मन्वादिषु युगादिषु ॥ आषाढी कार्तिकी माघी वैशाखीयेत्यनन्तकाः ॥ " २ । १२ । ६।१२ । १६ । २ । १४। ४ ।४। मिलित्वा द्वासप्ततिः ॥ दशावतारजयन्त्यः । चैत्रशुक्लतृतीयैव मत्स्यजयन्ती ॥ अत्रैव प्रसंगाद्दशावतारजयन्त्यो निर्णीयन्ते । तत्र पुराणसमुच्चये–"मत्स्योऽभूद्भुमृगुदिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यच्ते सिते माधवे ॥ सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माघवे रामो गौरितिथावतः परमभूद्रामो नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लपष्ठ्यां क्रमेण ॥ अह्नोमध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे ॥ कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥ २ ॥ " इति ॥ केचित्तु स्फुटान् श्लोकान् पठन्ति । तथा– "चैत्रे तु शुक्लपञ्चम्यां भगवान्मीनरूपधृक् ॥ ज्येष्ठे तु शुक्लद्वादश्यां कूर्मरूपधरो हरिः ॥ चैत्रे कृष्णे नवम्यां तु हरिर्वाराहरूपधृक् ॥ नरसिंहश्चतुर्दश्यां वैशाखे शुक्लपक्षके ॥ मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां वामनो हरिः । राधशुद्धतृतीयायां रामो भार्गवरूपधृक् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु रामो दशरथात्मजः । नभस्ये तु द्वितीयायां बलभद्रोऽभवद्धरिः ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां कृष्णोभूल्लोकरक्षकः । ज्येष्ठे शुक्लद्वितीयायां बौद्धः कल्की भविष्यति ॥ " इति ॥ कौंकणास्तु वराहपुराणस्थानि वाक्यानि पठन्ति–

१२, ऋतु ६, संक्रान्ति १२, अनन्त्य आषाढ, कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमासी ४ अपरपक्ष (कन्यागत) १६, नवान्न २, मन्वादि १४, युगादि ४, ये सब जोडनेसे बहत्तर होते हैं ॥ चैत्रशुक्ल तृतीयाही मत्स्यजयंती होती है, यहांही प्रसंगसे दश अवतारोंकी जयन्तियोंका निर्णय लिखते हैं । वे पुराणसमुच्चयमें लिखी हैं, कि, चैत्रशुक्ल तृतीयाके दिन मत्स्य, वैशाखकी अमावस्याके दिन कूर्म, श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन वाराह, वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन नृसिंह, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीके दिन वामन, वैशाख शुक्ल तृतीयाके दिन परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीके दिन रामचन्द्र, भाद्रपद शुक्ल अष्टमीके दिन श्रीकृष्ण, आश्विन शुक्ल दशमीके दिन बुद्ध और श्रावण शुक्ल छठीके दिन कल्की अवतार क्रमसे हुए होंगे । और वामन, परशुराम, रामचन्द्र ये तीनों मध्याह्नमें, मत्स्य, वराह अपराह्णमें, कूर्म, नरसिंह, बुद्ध, कल्की ये चारों सायंकालमें जानने और श्रीकृष्णचन्द्र अर्द्धरात्रके समय हुए, कोई आचार्य इन स्फुट (प्रकट) श्लोकोंको इस प्रकार पढते हैं कि, चैत्रशुक्ल पंचमीको भगवान् मत्स्यरूप, ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको कच्छपरूप, चैत्र शुक्ल नवमीको वाराहरूप, वैशाख शुक्ल द्वादशीको नरसिंहजी, भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामनजी, वैशाख शुक्ल तृतीयाको परशुराम, चैत्र शुक्ल नवमीको राजा रामचन्द्रजी, भाद्रपदकी द्वितीयाको बलरामजी, श्रावण कृष्ण अष्टमीको लोकोंके रक्षक श्रीकृष्णचन्द्रजी, और ज्येष्ठ शुक्लद्वितीयाको बुद्ध और कल्की अवतार होंगे, कौंकण देशके वासी तो वाराहपुराणके इन वाक्योंको कहते हैं कि

"आषाढे शुक्लपक्षे तु एकादश्यां महातिथौ ॥ जयन्ती मत्स्यनाम्नीति तस्यां कार्यमुपोषणम् ॥ नभोमासि तृतीयायां हरिः कमठरूपधृक् । नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका ॥ वैशाखे तु चतुर्दश्यां नृसिंहः समपद्यत । मासि भाद्रपदे शुक्लैकादश्यां वामनो हरिः॥ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां भृगूद्वहः । चैत्रे नवम्यां रामोऽभूत्कौसल्यायां परः पुमान् ॥ श्रावणे बहुलेऽष्टम्यां वासुदेवो जनार्दनः ॥ पौषशुक्ले तु सप्तम्यां कुर्याद्बौद्धस्य पूजनम् ॥ माघशुक्लतृतीययां कल्किनः पूजनं हरेः ॥ प्रातः प्रातस्तु मध्याह्ने सायं सायं तथा निशि ॥ मध्याह्ने मध्यरात्रे च सायं प्रातरनुक्रमात्" ॥ ६ ॥ इति । तदत्र समूलत्वनिर्णये सति कल्पभेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या ॥ एताश्च तदुपासकानां नित्याः अन्येषां तु काम्याः ॥ जन्माष्टम्यादौ तु विशेषं वक्ष्यामः ॥ चैत्रशुक्लपञ्चमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लपञ्चमी कल्पादिः । तदुक्तं हेमाद्रौ मात्स्ये– "ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता ॥ वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च ॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवांत्या तथापरा ॥ शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी ॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम् "कल्पानामाद्यो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः॥" अत्र सर्वोपि निर्णयो मन्वादिवज्ज्ञेयः । हेमाद्रौ ब्राह्मे– "शुक्लायामथ पञ्चम्यां चैत्रे मासि शुभानना । श्रीर्ब्रह्मलोकान्मानुष्यं सम्प्राप्ता केश-

आषाढ शुक्ल एकादशी महातिथि मत्स्यनाम जयंती है उसमें व्रत करै, श्रावणकी तृतीयामें कच्छप भगवान्का व्रत करै, और भाद्रपदशुक्ल पञ्चमीको वाराहजयन्ती, वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको नृसिंह जयन्ती, वैशाख शुक्ल एकादशीको वामन जयंती चैत्र शुक्ल नवमीको रामचन्द्र जयंती, श्रावणकृष्ण अष्टमीको श्रीकृष्णचन्द्र जयंती होती है, पौष शुक्ल सप्तमीको बौद्धका, माघ शुक्ल तृतीयाको कल्की भगवान्का पूजन करना चाहिये, और ये पूर्वोक्त दशों अवतार क्रमसे उक्त तिथियोंमें हुएहैं कि, प्रातःकाल १, प्रातःकाल २, मध्याह्न ३, सायंकाल ४, सायंकाल ५, रात्रिमें ६, मध्याह्नमें ७, अर्द्धरात्रि ८, सायंकाल ९, प्रातःकाल १० तिससे यहां प्रमाणका निर्णय होनेपर कल्पके भेदसे व्यवस्था देखनी चाहिये और ये अवतारोंकी तिथि तिस २ अवतारके उपासकोंको नित्य है (सदैव करनी चाहिये) और दूसरोंको काम्य हैं अर्थात् कामना होय तो करनी, जन्माष्टमी आदिकोंमें विशेष लिखेंगे ॥ चैत्रशुक्ल पंचमी कल्पादि है, सोई हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि, ब्रह्माके दिनको प्रथम तिथि कल्पादि कहलाती है वैशाख तृतीया और फाल्गुन कृष्ण तृतीया और चैत्रमासकी दोनों पंचमी, माघ शुक्ल त्रयोदशी, और कार्तिककी सप्तमी और मार्गशिरकी नवमी इन सातोंका मैं स्मरण करता हूं ॥ कारण कि, यह सातों कल्पकी आदि हैं, इनमें दान करनेका अक्षय फल होता है, इन सबका निर्णय मन्वादि तिथियोंके तुल्य जानना चाहिये । हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, चैत्रशुक्ल पंचमीके दिन लक्ष्मीने ब्रह्मलोकसे मनुष्यलोकमें आगमन किया, उस दिन जो कोई लक्ष्मीका अर्चन करता

त्राज्ञया ॥ अतस्तां पूजयेत्तत्र यस्तं लक्ष्मीर्न मुञ्चति ॥" चैत्रशुक्लाष्टमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः ॥ तत्र नवमीयुता ग्राह्या । 'अष्टमीनवमीयुता' इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ अत्र भवानीयात्रोक्ता काशीखण्डे–"भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः । न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥" इति ॥ अत्रैवाशोककलिकाप्राशनमुक्तं हेमाद्रौ लैंगे–"अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥ चैत्रे मासि सितेष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥ प्राशनमन्त्रस्तु–"त्वामशोकवराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम् । पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥" इति अत्र विशेषः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुः–"पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी । प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥" इति ॥ तिथितत्त्वे कालिकापुराणे–"चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः । स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रे तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः । लौहित्यतोये यः स्नायात्स कैवल्यमवाप्नुयात् "॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः॥ मन्त्रस्तु–"ब्रह्मपुत्र महाभाग शंतनोः कुलसंभव । अमोघ गर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर ॥" श्रीरामनवमीनिर्णयः । चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी । तदुक्तमगस्त्यसंहितायम्–"चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ । उदये गुरुगौराश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके ॥ मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने

है उसको कभी लक्ष्मी नहीं त्यागती ॥ चैत्रशुक्ल अष्टमीको भवानीकी उत्पत्ति हुई वह नवमी-युक्त लेनी चाहिये, कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें यह लिखा है कि, अष्टमी नवमी संयुक्त, और नवमी अष्टमी संयुक्त लेनी और इससे भवानीकी यात्राभी काशीखण्डमें लिखी हैं कि, जो मनुष्य चैत्र शुक्ल अष्टमीको भवानीका दर्शन करता है, वह कभी भी शोकको प्राप्त नहीं होता, सदा आनन्दमय रहता है, इसीमें अशोक वृक्षकी कलिकाभी भक्षण करनी । हेमाद्रिमें लिंगपुराणके कथनसे कहा है जो मनुष्य पुनर्वसु नक्षत्रमें और चैत्रशुक्ल अष्टमीके दिन आठ अशोककी कलिकाओंको भक्षण करते हैं वे शोकको नहीं प्राप्त होते और अशोकका मंत्र. यह है कि, अशोक वर चैत्रमें उत्पन्न हुए तुमको अपने अभीष्ट शोकसे तप्त हुआ मैं पान करता हूं, तुम मुझे सदैव अशोक करो, इसमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुने सिद्धिके निमित्त लिखा है कि, पुनर्वसु और बुधसे युक्त चैत्रशुक्ल अष्टमीको प्रभातकाल विधिसे स्नान करके वाजपेय यज्ञका फल मिलता है, तिथितत्त्वमें कालिकापुराणका कथन है कि, जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर चैत्रशुक्ल अष्टमीको ब्रह्मपुत्रके जलमें स्नान करता है उसकी ब्रह्मलोकमें गति होती है जो मनुष्य मनको नियम कर चैत्रभर ब्रह्मपुत्रमें स्नान करता है उसकी मुक्ति होती है, स्नानका मंत्र यह है कि, हे शंतनुके वंशमें उत्पन्न हुए ब्रह्मपुत्र ! हे अमोघके गर्भसे उत्पन्न ! मेरे पापको दूर करो ॥ चैत्रशुक्ल नवमीको रामनवमी होती है वही अगस्त्यसंहितामें लिखा है कि, चैत्रशुक्ल नवमीको मध्याह्नसे प्रथम पवित्र पुनर्वसुनक्षत्रमें और बृहस्पति तथा सूर्यके उदयमें और पांचग्रहोंके उच्च-

कर्कटकाह्वये ॥ आविरासीत्सकलया कौसल्यायां परः पुमान् ॥ तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा । तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि "॥ ३॥ इति ॥ इयं च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या " चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्॥" इति तत्रैवोक्तेः ॥ तथा "चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः । पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ॥ " तथा-" केवलापि सदोपोष्या नवमी शब्दसंग्रहात् । तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम् ॥ " पूर्वेद्युरेव मध्याह्नयोगे कर्मकालव्याप्तेः सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदभावे वा पूर्वदिने पुनर्वस्वृक्षयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या ॥ तदुक्तं माधवीयेऽगस्त्यसंहितायाम्-नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः ॥ उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥ " इति ॥ अष्टमीविद्धा सऋक्षापि नोपोष्येति माधवः ॥ रामार्चनचन्द्रिकायामपि-"विद्धैव चेदृक्षयुक्ता व्रतं तत्र कथं भवेत् ॥ विद्धा निषिद्धश्रवणान्नवमी चेति वाक्यतः ॥ वैष्णवानां विशेषात्तु तत्र विष्णुपरैरपि ॥ दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ॥ तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् " ॥ २ ॥ इति ॥ अत्र-'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत् ' इति । 'तदन्येषाम् ' इति च वदन् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी

स्थके समयमें मेषके सूर्य, कर्क लग्नमें अपनी कलाओंसहित परमात्मा कौसल्याके उदरमें प्रगट हुए, उस दिन सदैव व्रत करना और भगवान्का भक्त उस दिन पृथ्वीपर शयन कर जागरण करै और यह मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण की है, कारण कि यह वहांही लिखा है कि, चैत्रशुक्ल पक्षकी नवमी जो पुनर्वसुनक्षत्रसे युक्त होय तो वह मध्याह्नके योगसे अत्यन्तपवित्र होती है, इसी प्रकार ये वाक्य हैं कि, चैत्रमासकी नवमीको रामचन्द्रभगवान् स्वयं प्रकट हुए और पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त वह तिथि सब मनोरथोंको देती है, वही श्रीरामनवमी सूर्यके कोटियों ग्रहणोंसे अधिक पुण्यफलयुक्त होती है, लिखा भी है कि केवल नवमीका भी सदैव व्रत करै, कारण कि, जहां तहां वाक्योंमें नवमी यह शब्द पढा है इससे भली प्रकार श्रद्धासे नवमीका व्रत करै॥ यदि पहले दिनही मध्याह्नका योग होय तो कर्मसमयमें होनेसे वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि दोनों दिन मध्याह्नमें पूर्ण हो वा नहीं होय तो पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त भी प्रथम दिनकी नवमीको छोडकर परलीही करनी चाहिये सोई माधवीयग्रन्थमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे लिखा है कि, विष्णुके भक्तोंको अष्टमीसे मिली नवमी नहीं करनी और नवमीको व्रत और दशमीको पारणा करै, माधवने भी लिखा है कि, नक्षत्रसहित भी अष्टमीसे विद्ध नवमीको व्रत न करै, रामार्चनचन्द्रिकामें भी कहा है कि, अष्टमीसे विद्धाभी नवमी नक्षत्रयुक्त होय तो उसमें व्रत किस प्रकार हो विद्धाके निषेध सुननेसे और नवमी इस वाक्यसे और वैष्णवोंको विशेषसे विष्णुके भक्त भी दशमी आदिकी वृद्धि होय तो वैष्णवोंको विद्धा तो छोडनीही चाहिये और वैष्णवोंसे और सबको भी इन दो वाक्योंसे यह कथन किया कि, जब प्रातःकालमें नवमी तीन मुहूर्त हो और

दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते तदा स्मार्त्तानां तत्रैव एकादशी-निमित्तोपवासात् नवमीव्रतांगपारणालोपः स्यात् । अतोऽष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवानां त्वरुणोदयविद्धैकादश्या हेयत्वान्न पारणालोपप्रसंग इति द्वितीयैव तैः कार्येति सूचयति ॥ 'दशमी वृद्ध्यभावेऽष्टमीविद्धाया एव मध्याह्नव्यापित्वे क्षये च वैष्णवैरपि विद्धैवोपोष्या ' इत्यर्थसिद्धम् ॥ इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन काम्यं नित्यं च ॥ तदुक्तं हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम्--"उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् । तस्मिन्दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः ॥ सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्येकसाधनः ॥ अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् ॥ पूज्यः स्यात्सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः ॥ यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः ॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ तथा--"अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम् ॥ व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत् ॥ प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः ॥ उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ." ॥ २ ॥ अत्र केचित्--'तदुपासकानामेवेदं नित्यं न त्वन्येषाम् ' इत्याहुः । अन्ये तु--'अकरणे दोषश्रवणात् (तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कार्यं वै नवमीव्रतम्) इति पूर्वोक्तवचनाच्च जन्माष्टम्यादिवदिदमपि सर्वेषां नित्यम् । अन्यथा जन्माष्टम्यादावपि तदुपासकानामेव

दशमी क्षयके वशसे सूर्योदयसे प्रथमही पूर्ण हो जाय तब स्मार्त्तोंको एकादशीका व्रत उसी दिन होनेसें नवमीके व्रत अंग पारणाका लोप हो जायगा, इससे स्मार्त्तोंको अष्टमीविद्धा नवमीका व्रत करना चाहिये, वैष्णवोंको तो अरुणोदयविद्धा एकादशीका त्याग है इससे पारणाके लोपका प्रसंग नहीं है इससे वे दूसरीही करैं और दशमीकी वृद्धि न होय तो अष्टमीसे विद्धाके तुल्य मध्याह्नव्यापिनी हो वा क्षय होय तो वैष्णवोंको भी विद्धाकाही व्रत करना यह बात अर्थ सिद्ध है॥ और यह व्रत संयोग (अष्टमीका मेल) और पृथक्त्व (केवलत्व) न्यायसे इष्ट है, और नित्य है, सोई हेमाद्रिमें अगस्त्यसंहिताका कथन है कि, व्रत, जागरण, पितरोंका तर्पण इनको ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले मनुष्य नवमीके दिन करैं, भुक्ति और मुक्तिके निमित्त यह सबके निमित्त धर्म कहा है, अशुद्ध हो वा पापात्मा हो इस श्रेष्ठ व्रतको करके मनुष्य सब प्राणियोंका रामचन्द्रकी समान पूज्य होता है, जो मूढबुद्धि रामनवमीके दिन अज्ञानसे भोजन करता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है, इसमें सन्देह नहीं, कहा भी है कि, सब व्रतोंमें श्रेष्ठ रामनवमीके व्रतको त्यागकर जो मनुष्य और व्रतोंको करता है उसको उनका फल नहीं मिलता जो मूर्ख मनुष्य रामनवमीके दिन व्रत नहीं करता वह कुम्भीपाक नरकोंमें पक जाता है, इसमें किसीने यह कहा है कि, रामचन्द्रके उपासकोंकोही यह व्रत नित्य करना चाहिये, औरोंको नहीं, और दूसरे तो यह कहते हैं कि, न करनेमें दोषके सुननेसे सब प्रकार सबकोही नवमीव्रत करना चाहिये इस पूर्वोक्त वाक्यसे जन्माष्टमी आदिके तुल्य यहभी सबको नित्य करनी है, अन्यथा

नित्यतां वक्तुः को वारयिता' इत्याहुः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रावगस्त्यसंहितायाम् "आचार्यं चैव संपूज्य वृणुयात्प्रार्थयेन्निशि ॥ श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येहं द्विजोत्तम ॥ भक्त्याचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेवच ॥ श्रीरामपूजाविधिः । तथा-- 'स्वगृहेचोत्तरे देशे दानस्योज्ज्वलमण्डपम्॥ शंखचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलंकृतम् ॥ गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम् ॥ गदाखड्गांगदैश्चैव पश्चिमे सुविभूषितम ॥ पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेर्यां समलंकृतम् । मध्ये हस्तचतुष्काढ्यवेदिकायुक्तमायतम् ॥ ततः सङ्कल्पयेद्देवं राममेव स्मरन्मुने । अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः ॥ उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि । इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां च प्रयत्नतः ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते । प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ॥ अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च । ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमात्रतः ॥ निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम् । बिभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामुने ॥ वामेनाधः करेणाराद्देवीमालिंग्य संस्थिताम । सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते ॥ ९ ॥ तथा-- "अशक्तो यो महाभाग स तु वित्तानुसारतः । पलेनार्धतदर्धार्धतदर्धार्धेन वा मुने॥

जन्माष्टमी आदिकोभी कृष्णके उपासकोंकोंही नित्यकथन करनेवाला कौन निषेध करैगा, इसमें विशेष हेमाद्रिमें अगस्त्यसंहिताके वाक्यसे कहा है कि, आचार्यका पूजन और प्रार्थना करके वरण करै कि, हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! मैं श्रीरामचन्द्रकी प्रतिमाका दान भक्तिपूर्वक करूंगा, तुम मेरे आचार्य हो और आप ही श्रीराम हो इसी प्रकार अपने घरकी उत्तरदिशामें दानका उज्ज्वल मण्डप इस प्रकार बनावै जिसके पूर्वद्वारके आगे शंख, चक्र, महावीरकी प्रतिमा शोभित हो और दक्षिणके द्वारपर गरुड, शार्ङ्ग, बाण शोभित हो, और पश्चिमका द्वार गदा, खड्ग, अंगदसे शोभित हो, उत्तरका द्वार पद्म, स्वस्तिक, नीलमणिसे शोभित हो, जिसका मध्यभाग चार हाथ तथा और वेदियोंसे युक्त हो, हे मुने ! फिर रामचन्द्रका स्मरण करता हुआ देव रामचन्द्रका संकल्प करै कि: इस रामनवमीको रामकी सेवामें तत्पर मैं आठ प्रहर उपवास और यथाविधि पूजन करके इस स्वर्णकी प्रतिमाको प्रयत्नसे श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त बुद्धिमान् रामचन्द्रके भक्तके निमित्त देताहूं, प्रसन्न हुए रामचन्द्र मेरे बहुत और अनेक जन्मोंके किये बडे २ पापोंको दूर करो, फिर सुवर्णकी एक पलकी इस प्रकार प्रतिमाको बनावै जिसके दो भुजा हों और बायें अंगमें जानकी हो, और जानकीके दक्षिण करमें हे महामुने ! इस प्रकार ज्ञानमुद्रा हो जो बांये हाथके नीचेसे देवी (जानकीका) स्पर्श किये स्थित हो, और जो मूर्ति दो पल सुवर्णसे बने हुए सिंहासनपर स्थित हो, तैसेही हे महाभाग जो निर्धन हो वह अपने वित्तके अनुसार पल (चारकर्ष वा तोले)

सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम्ः। पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतच्छत्रकरावुभौ ॥ चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं चापि कारयेत् । दक्षिणाङ्के दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥ मातुरङ्कगतं राममिंद्रनीलसमप्रभम् पञ्चामृतस्नानपूर्वं संपूज्य विधिवत्ततः ॥ ४ ॥" कौसल्यामन्त्रस्तु-"रामस्य जननी चासि रामरूपमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते ॥ नमो दशरथायेति पूजयेत्पितरं ततः । अत्र दशावरणपञ्चावरणादिपूजाऽन्यत्र ज्ञेया । अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च । राक्षसानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोनघ ॥ पुष्पांजलिं पुनर्दत्त्वा यामे यामे प्रपूजयेत् । दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ॥ ततः प्रातः समुत्थाय स्नानसंध्यादिकाः क्रियाः । समाप्य विधिवद्रामं पूजयेद्विधिवन्मुने ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । पूर्वोक्त-पद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा समाहितः ॥ लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरं ततः । साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः ॥ ततो भक्त्या सुसन्तोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने । ततो रामं स्मरन् दद्यादेवं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां

वा पलका आधा वा उसके भी आधेसे हे मुने ! सोने वा चांदीके ऐसे रामचन्द्रको निर्माण करै, जिनके पास छत्र धारण किये भरत और शत्रुघ्न हों, और दो धनुष धारण किये लक्ष्मणभी हों, और पुत्रोंके देखनेमें तत्पर दशरथ दक्षिण भागमें हों, और माताकी गोदीमें स्थित इन्द्र-नीलमणिके तुल्य श्रीरामचन्द्रजी स्थित हों, फिर पंचामृतसे न्हवानेके उपरान्त विधिसे पूजन करके कौशल्याके इस मन्त्रको उच्चारण करै, तुम रामकी माता हो और यह सब जगत् रामरूप है इससे मैं पूजन करता हूं, हे लोककी माता ! तुमको नमस्कार है, फिर ' दशरथाय नमः ' इस मन्त्रसे पिताका पूजन करना चाहिये, यहां दश आवरण और पांच आवरण आदिकी पूजा और ग्रन्थोंमें लिखी जाननी चाहिये, बुद्धिमान् मनुष्य अशोकके फूलोंसे युक्त इस मन्त्रसे अर्घ दे कि, रावणके मारने और धर्मकी स्थिति, और राक्षसोंके और दैत्योंके नाशके निमित्त और साधुओंकी रक्षाके निमित्त रामचन्द्र भगवान् प्रगट हुए, हे पापहीन राम ! मेरे दिये हुए इस अर्घको माताओं सहित आप ग्रहण कीजिये, फिर पुष्पांजलि देकर प्रत्येक प्रहरमें पूजन करै इस प्रकार विधिसे दिनमें करके रात्रिको जागरण करै फिर सबेरेही उठकर स्नान सन्ध्या आदि कर्मोंको पूर्ण करके विधिसे रामचन्द्रका पूजन करै फिर मन्त्र जाननेवाला मूल मन्त्रसे पूर्वोक्त पद्मकुण्डमें वा वेदीपर लौकिक अग्निमें विधिसे एक सौ आठ १०८ होमको घीसहित खीरसे करै, और रामचन्द्रका सावधानीसे स्मरण करै, फिर हे मुने ! भक्तिसे आचार्यको सन्तुष्ट करके पूजन करै, फिर रामका स्मरण और इस मन्त्रको पढता

समलंकृताम् । चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः । इति दत्त्वा विधानेन दद्याद्वै दक्षिणां भुवम् । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १६ ॥ " इति ॥ तत्र मलमासप्राप्तौ व्रतनिषेधः । इयं मलमासे न कार्या । "भुजप्तमप्यजप्तं स्यान्नोपवासः कृतो भवेत् " इति ' न कुर्यान्मलमासे तु महादानव्रतानि च ' इति च माधवीये संग्रहवचनात् ॥ ननु रामनवमीव्रतस्य नित्यत्वादेकादशीवन्मलमासेपि कर्तव्यता स्यादिति चेत् ॥ अत्र मः—' नैकादश्युपवासस्य व्रतत्वेन प्राप्तिः । किं तु—'एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ' इत्यादिनिषेधस्य मलमासेपि पालनीयत्वात् कृष्णैकादश्यां पुत्रवद्गृहिण इवार्थाद्उपवासः प्रसज्यते । न त्विह तथेति व्रतत्वेन प्राप्तिर्वाच्या । सा च निषिद्धेत्यप्रसंगः । ' स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले ' इति निषेधाच्च ॥ एवं जन्माष्टम्यादावपि बोद्धव्यम् ॥ इति रामनवमी ॥ चैत्रशुक्लैकादशीनिर्णयः । चैत्रशुक्लैकादश्यां दोलोत्सव उक्तो ब्राह्मे—" चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः । आंदोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः " इति ॥ चैत्रशुक्लद्वादशीनिर्णयः । चैत्रशुक्लद्वादश्यां दमनोत्सवः । " द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम्॥" इति रामार्चनचन्द्रिकोक्तेः ।

हुआ यह कहै कि, इस शोभित और सुवर्णकी चित्र वस्त्रोंसे युक्त प्रतिमाको जो रामरूप मैं और राघवरूप आपको श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त देताहूं उससे श्रीराम मेरे ऊपर प्रसन्न हों, इस प्रकार विधिसे प्रदान कर भूमिकी दक्षिणा देनेसे ब्रह्महत्यादि, पापोंसे मुक्त होताहै इसमें सन्देह नहीं ॥ यह रामनवमी मलमासमें न करनी कारण कि, माधवग्रन्थमें संग्रहका यह वाक्य लिखा है जो मलमासमें रामनवमीका व्रत करता है उसका जप और व्रत दोनों वृथा होते हैं । इसमें कोई यह लिखते हैं कि, रामनवमीके व्रतको नित्य होनेसे एकादशीके तुल्य मलमासमें भी करना चाहिये । इस शंकाके उत्तरमें हमको यह कहना है कि, एकादशीके व्रतकी प्राप्ति व्रत होनेसे नहीं किन्तु दोनों पक्षकी एकादशीको भोजन न करै यह निषेध मलमासमें भी माननेयोग्य है, तिससे जैसे कृष्णपक्षकी एकादशीको पुत्रवाले गृहस्थीको करना लिखा है, इसी प्रकार यहां नहीं । तिससे रामनवमीका व्रत होनेसे मलमासमें प्राप्ति कहोगे, वह निषिद्ध है, इस कारण मलमासमें रामनवमीका प्रसंग ही नहीं होसकता, और यह निषेधभी है कि, जिस व्रतका महीना स्पष्ट लिखा हो उसको मलमासमें त्याग देना चाहिये, इसी प्रकार जन्माष्टमी आदिमें भी जानना चाहिये । इति रामनवमी ॥ चैत्रशुक्ल एकादशीको ब्रह्मपुराण हिंडोलेका उत्सव लिखाहै कि, चैत्रसुदी एकादशीको वैष्णव लोग लक्ष्मीसहित विष्णुको बडे प्रेमसे झुलावैं । चैत्रसुदी द्वादशीको दमनका उत्सव होताहै, कारण रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है चैत्रसुदी द्वादशीको

" ऊर्जे व्रतं मधौ दोला श्रावणे तन्तुपूजनम् । चैत्रे च दमनारोपमकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥" इति तत्रैव पाद्मवचनाच्च ॥ शिवभक्तादिभिस्तु चतुर्दश्यादौ कार्यम् " तत्र स्यात्स्वीयतिथिषु वह्न्यादेर्दमनार्पणम् " इति तत्रैवोक्तेः ॥ ज्योतिःप्रकाशेपि-"स्वस्वदेवप्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा । पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्तिथिर्बुधैः ॥ " तिथयस्तु-"वह्निर्विरिञ्चो गिरिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृन्महेशः । दुर्गान्तको विश्वहरिः स्मरश्च शर्वः शशी चेति तिथीषु पूज्याः " इत्युक्ताः ॥ दमनारोपणविधिः । अथागमोक्तदीक्षावतो दमनारोपणविधिः । रामार्चनचन्द्रिकायां--" तत्रैकादश्याम् । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो । न मे विघ्नो भवेदत्र कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवासेन त्वां देव तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥ तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य जगत्पते ॥ ३ ॥" इति देवं संप्रार्थ्य दमनमादाय पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य वारिणा प्रक्षाल्याशोकमूले देवाग्रे वा ॥" अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन । शोकार्ति हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ।" इत्यशोकम् " त्रुट्यादिकालपर्यन्तः काल-

वौधायन आदिके लिखे हुए दमनोत्सवको प्रतिवर्षमें करना चाहिये, और वहांही पद्मपुराणका यह वाक्य है कि, कार्तिकमें व्रत, चैत्रमें हिंडोला, श्रावणमें तन्तुपूजन, चैत्रमें दमनारोप जो मनुष्य नहीं करते वह नरकमें जाते हैं । शिवजीके भक्त आदिको तो चतुर्दशी तिथि आदिमें दमनारोप करना चाहिये. कारण कि, अपनी २ तिथिमें अग्नि उसी स्थलमें यह कहा है कि, अग्नि आदिदेवताओंका दमनार्पण होता है ज्योतिःप्रकाशमेंभी लिखाहै कि, अपने देवताओंकी प्रतिष्ठा मंत्रग्रहणमें पवित्र दमनारोपणमें वही २ तिथि लेनी, प्रतिपदा आदि तिथियोंको क्रमसे अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती, गणेश, सर्प, स्वामिकार्तिक, सूर्य, शिवजी, दुर्गा, यम, विश्वेदेव, हरि, कामदेव, शिवजी, चन्द्रमा ये देवता पूजने चाहिये कारण कि, उपरोक्त तिथियोंके यही देवता हैं ॥ वेदोक्त दीक्षावालेको दमनारोपणकी विधि रामार्चनचन्द्रिकामें कही है, सो लिखते हैं । हे प्रभो ! एकादशीको कर्मलोपकी विधिके निमित्त जो तुमने कहाहै वह विघ्न मुझे इस कर्ममें न हो, हे प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करो और सब प्रकार सब कालमें मेरी गति हो. हे देव ! हे जगत्के पति ! हे स्वामिन् ! मैं तुम्हें व्रतसे प्रसन्न करता हूं व्रत नष्ट करनेवाले काम क्रोध आदि मुझे न हों, आजसे लेकर जबतक देव शयन हो तबतक हे जगत्पते ! तुम सब जगत्की पालना करो इस प्रकार देवकी प्रार्थना करके दमनको ले पञ्चगव्यसे सींचे जलसे धोकर अशोकवृक्षकी जडमें अथवा देवताके आगे यह मन्त्र पढकर इनका पूजन करै और कहै कि हे अशोक ! हे कामदेवकी स्त्रीके शोक नाश करनेवाले ! आपको नमस्कार है, मेरे शोकको नष्ट करो और प्रसन्नताको दो इस मन्त्रसे अशोकको त्रुटि (तीन क्षण) से लेकर जो महाप्रलयकाल पर्यंत कालरूप सबको नष्ट करता है उस

रूपो महाबल । कलते चैव यः सर्व तस्मै कालात्मने नमः ॥ " इति कालम् ॥ " वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताश्रय । सहस्रमुखसंवास कामरूप नमोस्तु ते ॥ इति वसन्तम् । " कामभस्मसमुद्भत रतिबाष्पपरिप्लुत । ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक:नमोस्तु ते ॥ " इति दमनं च संपूज्य । " नमोस्तु पञ्चबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते " ॥ इति दमनमुपस्थाय । ॐ कामाय नम इति संपूज्य निशायां देवताग्रे, पञ्चवर्णैः चन्दनेन वा अष्टदलं कृत्वा बहिश्चतुरस्रं तद्बहिर्वर्तुलत्रयं तद्बहिर्वृत्तं चतुरस्रं च कृत्वा तत्र कुंभं संस्थाप्योपारि दमनं पूजयित्वा । " पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः । मदन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः । " ॐ क्लीं कामदेवाय नमः । ॐ ह्रीं रत्यै नमः इत्यावाह्य । दिक्षु पूर्वादितः स्मरशरीराय नमः । अनंगाय०, मन्मथाय०, कामाय०, क्लीं वसन्तसखाय०, स्मराय०, इक्षुचापाय०, पुष्पास्त्राय नमः । इति पूजयित्वा । ' ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि । तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ' । इत्यष्टोत्तरशतं संमंत्र्य पूजयित्वा । ' ह्रीं नमः ', इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा " नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे । मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय

कालरूपी ईश्वरके निमित्त नमस्कार है, इस मन्त्रसे कालको, वृक्ष, गुल्म, लता इनके आश्रय और सहस्र मुख सबमें निवास करनेवाले कामरूप वसंतको नमस्कार है, इस मन्त्रसे वसंतको, हे दमन ! कामदेवकी भस्मसे तुम उत्पन्न हुये हो रतिके आँसुओंसे युक्त और ऋषि गन्धर्व देवताओंको मोहित करनेवाले आपको नमस्कार है इस मन्त्रसे भली प्रकार दमनका पूजन करके जगत्के आनन्द करनेवाले जगत्के नेत्र रतिके प्रिय कामदेवको नमस्कार है, इस मन्त्रसे दमनकी प्रार्थना करके, 'ॐ कामाय नमः ' इस मन्त्रसे पूजन करके रात्रिको देवताके आगे पंचरत्न वा चन्दनसे अष्टदल निर्माण करे: उसके बाहिर चौकोन और चौकोरसे बाहर तीन गोल आकार निर्माण करे, उन तीनोंके बाहर एक चौकोर दल बनाकर वहां घटको स्थापन करे, घटके ऊपर अष्टदलपर दमनका पूजन करके यह मंत्र पढे कि, देवताओंके देव लक्ष्मीके पति प्रभुकी पूजाके निमित्त हे दमन ! तुम यहां आओ और निकटवर्ती हो तुमको नमस्कार है । फिर ओं क्लीं कामदेवको और ओं ह्रीं रतिको नमस्कार है, इस मन्त्रसे आवाहन करके पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमसे इन मन्त्रोंसे पूजा करके कि, क्लीं कामदेवको, क्लीं भस्म शरीरको, क्लीं अनंगको क्लीं मन्मथको क्लीं वसन्तके मित्रको, क्लीं स्मरको, क्लीं इक्षुधनुषवालेको, क्लीं पुष्परूप-अस्त्रधारीको, फिर ब्रह्मस्वरूपको हम जानते हैं, कामदेवका ध्यान करते हैं, वह अनंग काम हमारी श्रेष्ठ कामोंमें प्रेरणा करे, इस मन्त्रको अष्टोत्तर शत १०८ जप कर ह्रीं नमः इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर पुष्पबाणधारी, जगत्के आनन्दकारी, और जगत्के नेत्र, रतिकी

ते ॥ " इति नत्वा । " आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सांनिध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः । निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातर्दमनकं शुभम् । सर्वदा सर्वथा विष्णो नमस्तेस्तु प्रसीद मे " ॥ ३ ॥ इति देवं संप्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, अस्त्रेण चक्रमन्त्रेण वा रक्षां कुर्यात् । ततः प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुक्तं दमनमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा । " देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक । हृदिस्थान् पूरयेः कामान्मम कामेश्वरीप्रिय ॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् । इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय " ॥ २ ॥ इति मन्त्रान्ते पुनर्मूलमन्त्रेण देवे समर्पयेत् । ततो अंगदेवताभ्यः स्वस्वमन्त्रेण दत्त्वा प्रार्थयेत् । "मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा विष्णो कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताऽजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम् । तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽतु हृषीकेश महापुरुषपूर्वज" ॥ ४ ॥ मन्त्रहीनामिति च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैः पुनः सम्पूज्य

प्रीतिवाले कामदेवको नमस्कार है. इस मंत्रसे नमस्कार करके हे देवताओंके पति ! हे पुराण-पुरुषोत्तम ! आप आमंत्रित हो आपका प्रातःकाल पूजन करता हूं, तुम मेरे निकट हो आपको नमस्कार है, इस श्रेष्ठ दमनको आपके निमित्त निवेदन करता हूं. हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें मेरे ऊपर प्रसन्न हो, आपको नमस्कार है, इस प्रकार देवकी स्तुति कर और पुष्पांजलि देकर अस्त्रसे वा चक्रमन्त्रसे रक्षा करे, फिर प्रभातकाल नित्य पूजाके उपरान्त देवताको पूजकर दूर्वा, गन्ध, अक्षतसे युक्त दमनको लेकर और मूलमंत्रको उच्चारण कर, हे देवदेव, हे जगन्नाथ हे वांछितफलके देनेवाले, हे कामेश्वरीके प्रिय ! मेरे हृदयकी इच्छा पूर्ण करो । और मेरे ऊपर कृपा करके इस दमनको स्वीकार करो हे भगवन् ! इस वर्ष दिनकी पूजाको पूर्ण करो ॥ इस मंत्रके अन्तमें फिर मूलमन्त्रसे देवताको अर्पण करे, फिर अंगदेवताओंको भी उस २ के मन्त्रसे देकर स्तुति करै. हे गरुडध्वज ! मणिमूँगेकी माला और मन्दारके पुष्पोंकी मालाओंसे की हुई ये वर्ष दिनकी पूजा आपकी हो, हे विष्णो ! जैसे वनमाला और कौस्तुभमणिको अपने हृदयमें सदा धारण करते हो इसी प्रकार यह दमन (अशोक) के फूलोंकी माला आप अपने हृदयमें धारण करो, जाने वा विना जाने जो आपकी पूजा न की हो हे रमापते ! वह सब आपकी प्रसन्नतासे पूर्ण हो. हे पुण्डरीकाक्ष ! हे विश्वके उत्पन्न करनेवाले ! हे हृषीकेश ! हे महापुरुष ! हे सबसे प्रथम प्रगट होनेवाले ! आपकी जय हो और आपको नमस्कार है. मन्त्र क्रियाविधिसे जो हीन हो वह सब पूर्ण हो इस मंत्रसे प्रार्थना और फिर पंचोपचार पूजाको

वीराज्य पारयेदिति ॥ दीक्षारहितानां तु नाम्नैव समर्पणम् ॥ अत्र च द्वादशीमतन्त्रीकृत्य पारणाहे ग्राह्यम् । "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ॥ तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे" इति तत्रैवोक्तेः ॥ गौणोपि काल उक्तस्तत्रैव "हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि । वैशाखे श्रावणे वापि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥ श्रावणावधिशुक्रास्ते कर्तव्यमिति नारदः ॥" इति पाठान्तरम् ॥ इदं च मलमासे न कार्यम् । 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति कालादर्शे मलमासवर्ज्येषु परिगणनात् । "उपाकर्म च हव्यं च कव्यं पर्वोत्सवं तथा । उत्तरे नियतं कुर्यात्पूर्वे तन्निष्फलं भवेत्" इति माधवीये प्रजापतिवचनाच्च ॥ शुक्रास्तादौ तु कार्यमेव पूर्वोक्तवचनात् ॥ "उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ॥ कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येपीति विनिश्चयः" इति ज्योतिर्निबन्धे वृद्धगार्ग्यवचनाच्च ॥ इति दमनारोपः ॥ अनङ्गव्रतनिर्णयः । चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगव्रतम् । हेमाद्रौ भविष्ये—"चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासे कामत्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम् । पत्न्या सहार्च्य पुरुषप्रवरोऽथ योषित्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात् ॥" तत्र सा पूर्वा ग्राह्या । 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः

पूर्ण करके पारणा करै, जिनको वेदोक्तदीक्षा नहीं वे नामसेही समर्पण करदें, इसकी पारणाका दिन द्वादशीके मतको स्वीकार करले कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, यदि पारणाके दिन घडीभर भी द्वादशी न मिलै तो त्रयोदशी लेनी, और गौणकाल भी वहांही लिखाहै कि, जो विघ्नसे चैत्रमें विष्णुका दमनारोपण न होय तो वैशाख वा श्रावणमें उसी तिथिमें दमनका आरोपण करना चाहिये । कारण कि, कालादर्शमें मलमासमें त्यागने योग्योंमें उपाकर्म उत्सर्ग पवित्र दमनार्पणको लिखाहै, और माधवग्रन्थम प्रजापतिका यह वाक्य है कि, उपाकर्म हव्य और कव्य पर्वके उत्सवको नियमसे उत्तर (शुद्ध) महीनेमें करै पूर्व (मल) मासमें किया हुआ निष्फल होताहै, और शुक्रास्त आदिमें पूर्वोक्त वाक्यसे अवश्य करना चाहिये । और विष्णुका शयन और परिवर्तनको शुक्र और बृहस्पतिके अस्तमें भी करना चाहिये, यह शास्त्रका निश्चय जानना चाहिये. यह ज्योतिर्निबन्धमें वृद्धगार्ग्यका कथन है । इति दमनारोपः ॥ चैत्रसुदी त्रयोदशीको अनंगका व्रत हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके इस वाक्यसे. लिखा है कि, सम्पूर्ण जगत्के मनको आनन्ददायक चैत्रके उत्सवमें त्रयोदशी. तिथिको वसंत और रतिसहित कामदेवको पूजकर पुरुष अथवा स्त्री सौभाग्यरूप सुखसे सदैव संयुक्त होती है, उस पूजामें पहली त्रयोदशी ग्रहण करनी कारण कि, दीपिकाके इस कथनमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशी, पहली

सिते' इति दीपिकोक्तेः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दशी पूर्वा ग्राह्या- "मधोः श्रावणमासस्य शुक्ला या तु चतुर्दशी । सा रात्रिव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन" इति हेमाद्रौ बौधायनोक्तेः ॥ परा पूर्वाह्णगामिनी इति वा पाठः । अत्र केचिद्यथाश्रुतमेवार्थं वर्णयन्ति ॥ "निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः । अतस्तत्र चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत् ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् हेमाद्रिमाधवादिलिखनमप्येवम् ॥ सम्प्रदायविदस्त्वाहुः-"चतुर्दशी तु कर्तव्या त्रयोदश्या युता विभो ॥" इति स्कान्दमुत्सर्गः । तदपवादश्च-"तृतीयैकादशी षष्ठी शुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता" इति नारदीयवचनम् । तदपवादश्च 'मधोः श्रावणमासस्य' इति तत्रापवादाभावे पुनरुत्सर्गस्य स्थितिरिति न्यायेन पूर्वविद्धैव ग्राह्येति सिध्यति ॥ ब्रह्मवैवर्तं तु सामान्यरूपमन्यत्र सावकाशमिति तेन पूर्वदिने मुहूर्तत्रयवेधे पूर्वा, अन्यथोत्तरेति ॥ चैत्रशुक्लपूर्णिमानिर्णयः ॥ चैत्रपूर्णिमा सामान्यनिर्णयात् परैव ॥ अत्र विशेषो निर्णयामृते विष्णुस्मृतौ-"चैत्री चित्रायुता चेत्स्यात्तस्यां चित्रवस्त्रप्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति' इति । तथा ब्राह्मे-'मन्दे वार्के गुरौ वापि वारेष्वेतेषु चैत्रिका ॥ तत्राश्वमेधजं पुण्यं स्नानश्राद्धादिभिर्लभेत्॥"

लिखी है ॥ चैत्र सुदी पहली लेनी कारण कि, हेमाद्रिमें बौधायनका यह कथन है कि, चैत्र और श्रावणमासकी जो शुक्लचतुर्दशी है वह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी और कदाचित् न लेनी अथवा यह पाठ है कि, परली वह लेनी जो पूर्वाह्णव्यापिनी हो, इसमें कोई वाक्यमें चतुर्दशीके सुननेके अनुसारही अर्थका वर्णन करते हैं कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणका यह वाक्य है कि, रात्रिमें भूतशक्तियोंके सहित महादेव विचरते हैं, इससे रात्रि चतुर्दशीमें ही उनका पूजन होताहै ॥ हेमाद्रि और माधवका कथन भी इस प्रकार है, सम्प्रदायके जाननेवाले तो यह लिखते हैं कि, त्रयोदशीसे युक्त चतुदर्शी करनी, यह उत्सर्ग है अर्थात् सिद्धान्त नहा ह । और इसका बाधकभी यह नारदका कथन है कि, तृतीया, एकादशी, षष्ठी और शुक्लपक्षकी चतुर्दशी ये पूर्व तिथिसे विद्धा नहीं लेनी, परतिथिसे संयुक्त करनी चाहिये, और इसका अपवाद पूर्वोक्त बौधायनका कथन है, तिसमें अपवादके अभावमें उत्सर्गकी स्थिति होती है इस न्यायसे पूर्वविद्धाही करनी यह सिद्धान्त होता है, सामान्यरूप ब्रह्मवैवर्तका वाक्य तो और स्थानमें चरितार्थ होजायगा, तिससे पहले दिन एक तीन मुहूर्तका वेध होय तो पूर्वा लेनी अन्यथा अगली लेनी चैत्रकी पूर्णिमा सामान्य निर्णयसे अगली ही लेनी, इसमें विशेष निर्णयामृत और विष्णुस्मृतिमें लिखाहै कि, जो चैत्रकी पूर्णिमा चित्रानक्षत्रसे युक्त होय तो उसमें चित्र विचित्र वस्त्रके दानसे सौभाग्य प्राप्त होता है, इसी प्रकार कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, यदि चैत्रकी पूर्णिमाको शनि, सूर्य, गुरुवार होय तो स्नान और श्राद्ध आदि करनेसे अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होताहै,

इति ॥ अत्र सर्वदेवानां दमनपूजोक्ता । तत्रैव वायवीये-"संवत्सरकृतार्चायाः साफल्यायाखिलान्सुरान् । दमनेनार्चयेच्चैत्र्यां विशेषेण सदाशिवम् " इति ॥ अत्र स्वीयतिथ्या समुच्चय इति केचित् । स्वीयतिथ्यामकरणेऽत्र दमनपूजनमित्यन्ये ॥ दीक्षिततदितरविषयत्वेन व्यवस्थेत्यपरे । इयं मन्वादिरपि सा च पूर्वमुक्ता ॥ चैत्रकृष्णत्रयोदशीनिर्णयः । चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां महावारुणीसंज्ञो योगो गौडेषु प्रसिद्धः । तदुक्तं वाचस्पतिकृतौ शूलपाणौ च स्कान्दे-" वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी ॥ गंगायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ॥ गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि । महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ ३ ॥ " तत्रैव ज्योतिषे-" चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे । योगे शुभे सा महती महत्या गंगाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या " इति ॥ त्रिस्थलीसेतौ ब्रह्माण्डपुराणे-" वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी । गंगायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा ". इति ॥ कल्पतरौ ब्राह्मे- "मधौ कृष्णत्रयोदश्यां शनौ शतभिषायुता । वारुणीति समाख्याता शुभे तु

और वहांही वायुपुराणके इस वाक्यसे सब देवताओंका दमनसे पूजन करना लिखा है कि, वर्षदिनमें की हुई पूजाकी सफलताके निमित्त सम्पूर्ण देवता और सदाशिवकी पूजा चैत्रकी पूर्णिमाको करै, इसमें कोई यह लिखतेहैं कि, अपनी २ तिथिका इसमें समुच्चय करना चाहिये और कोई यह कहते हैं कि, अपनी २ तिथिमें न किया होय तो चैत्रकी पूर्णिमाको करै, ये दोनों व्यवस्था दीक्षावाले और विना दीक्षावालोंके विषयमें जाननी यह मन्वादि भी है वह प्रथम लिख आये हैं ॥ चैत्रवदी त्रयोदशीको महावारुणीयोग गौडोंमें प्रसिद्ध है यही वाचस्पतिके बनाये और शूलपाणि ग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, शतभिषा नक्षत्रसे युक्त चैत्रकृष्णवारुणी त्रयोदशीको गंगास्नान मिलै तो सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य फल है । यदि शनिवारसंयुक्त होय तो महावारुणी होती है यदि उसमें गंगास्नान प्राप्त होय तो सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य फल होता है, यदि शुभयोग शनिवार शतभिषा नक्षत्र तीनोंका योग होय तो महामहा वारुणी होती है, वह गंगास्नानसे तीन कोटि कुलोंका उद्धार करतीहै. उसीमें ज्योतिषका वाक्य है कि, चैत्र कृष्ण त्रयोदशीको शतभिषा नक्षत्र शनैश्चरयुक्त शुभ योग होय तो वह महामहोवारुणी होती है वह गंगाजलमें सूर्यके कोटिग्रहणोंके तुल्य होती है, यह त्रिस्थलीसेतुमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रकृष्ण त्रयोदशी गंगामें मिलै तो सूर्यग्रहणके समान होतीहै । कल्पतरुमें ब्रह्मपुराणका वचन है कि, चैत्रकृष्ण त्रयोदशी शनिवारको शतभिषानक्षत्र युक्त होनेसे वारुणी

महती स्मृता " ॥ चैत्रकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां विशेषः पृथ्वीचंद्रोदये पुलस्त्यः–" चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ । न प्रेतत्वमवाप्नोति गंगायां तु विशेषतः " इति ॥ अत्र पूर्वा ग्राह्या ॥ कृष्णपक्षत्वात् ॥ गौडैस्त्वेतदेव शुक्लचतुर्दश्यामित्येवं देवलीयत्वेन पठितम् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमलाकरभट्टकृते कालनिर्णयसिंधौ चैत्रमासः ॥ वैशाखमासः । मेषसंक्रमनिर्णयः । मेषसंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्यकालः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् । अत्र धर्मघटादिदानमुक्तं पृथ्वीचंद्रोदये पाद्मे–" तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम् । दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥ माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम् ॥ " वैशाखस्नानम् । अथ वैशाखस्नानम् । तत्र पृथ्वीचंद्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः ॥ " तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विधीयते । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥ " इति सौरमास उक्तः ॥ अन्यत् पक्षद्वयमुक्तं तत्रैव पाद्मे–" मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः । पञ्चदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा ॥ वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया । मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्संकल्पपूर्वकम्" ॥ २ ॥ तत्र मंत्रः । "वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः । प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् । निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ॥ माधवे मेषगे भानौ

कहलाती है और महाशुभदायक है ॥ चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें पुलस्त्यके कथनसे लिखा है कि, चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको जो शिवके निकट स्नान करता है, वह प्रेत नहीं होता और गंगामें स्नान करे तो विशेष करके प्रेत नहीं होता, गौडोंने तो यही पुलस्त्यकावा क्य चैत्रशुक्ल चतुर्दशीको देवलीयत्वसे पाठ किया है ॥ इति श्रीरामकृष्णसूनुकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां चैत्रमासः ॥ मेषकी संक्रांतिमें प्रथमकी और पीछेकी दश २ घडी पुण्यकालकी होती है रात्रिमें मेषसंक्रांतिका पुण्यसमय तो प्रथम कह आये हैं, इसमें धर्मघट आदिका दान करना । पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तीर्थमें प्रतिदिन स्नान और तिलोंसे पितरोंका तर्पण, धर्मघट आदिका दान, भगवान्का पूजन मधुसूदनके प्रसन्न करनेवाले यह कृत्य वशाखमासमें करने चाहिये ॥ अब वैशाखस्नान वर्णन करते हैं, उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और पद्मपुराणके वचन हैं कि, तुला मकर मेष संक्रान्तिमें प्रभातस्नान करना, हविष्य अन्नका भोजन, और ब्रह्मचर्य करनेसे महापातक नष्ट होत हैं, सौरमास और दो पक्ष पहले लिख आये हैं वहांही पद्मपुराणका कथन है कि; चैत्रशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमा वा मेषसंक्रान्तिको हे वीर व्रत करके ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मधुसूदनका पूजन करके संकल्प पूर्वक वैशाखस्नानका नियम करे, उसका मंत्र यह है कि, वैशाखका सम्पूर्ण महीना और मेषकी संक्रांतिको नियमसे प्रभात समय ही स्नान करूंगा, इससे मधुसूदन प्रसन्न हो, मधुदैत्यके मारनेवाले हरिकी प्रसन्नता और ब्राह्मणोंकी कृपासे मरा

मुरारे मधुसूदन । प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् " ॥ इति ॥ तीर्थविशेषोपि तत्रैवोक्तः—" मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः । महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे ॥ देवखातेऽथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये । दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन् ॥ २ ॥ " इति संकल्पे च तत्तत्तीर्थनाम ग्राह्यम् । अज्ञाने तु विष्णुतीर्थमिति वदेत् ॥ " यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विजाः । तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं त्विति ॥ तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः " इति तत्रैवोक्तेः । तथान्योपि विशेषस्तत्रैव पाद्मे—" तुलसीकृष्णगौराख्या तयाभ्यर्च्य मधुद्विषम् । विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् " ॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योर्चयेन्नरः । त्रिसंध्यं मधुहंतारं नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ ३ ॥ तथा " प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रियम् । योऽश्वत्थमूलमासिंचेत्तोयेन बहुना सदा ॥ कुर्यात्प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः । पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम्॥योश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समंततः । कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः ॥ कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम् । कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयुः॥४॥तथा ।"एकभक्तमथो नक्तमयाचित-

प्रतिदिन वैशाखस्नान निर्विघ्नसे पूर्ण हो वैशाखमें मेषकी संक्रान्तिभर हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! हे पाप हरनेवाले ! मेरे प्रातःकालके स्नानका तुमही फल दो। तीर्थविशेषभी वहांहीं लिखा है मेषकी संक्रांति और वैशाखमासमें महानदी , नदी, तीर्थ, नद, सरोवर, झरने, देवताओंके खोदे सरोवरमें अथवा जैसा मिले वैसे जलस्थानमें डाबर कूप और बावडियोंमें सावधान होकर नारायणका स्मरण करता हुआ स्नान करे और संकल्पमें जहां न्हाय उसी तीर्थका नाम ले नामका ज्ञान न होय तो विष्णुतीर्थ कहना चाहिये कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, हे ब्राह्मणों ! यदि तीर्थका ज्ञान न होय तो वहां विष्णुतीर्थ यह उच्चारण करे, कारण कि सब स्थानमें तीर्थोंके देवता विष्णु हैं। इसमें संदेह नहीं इसी प्रकार वहां औरभी विशेष पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जो मनुष्य काली श्वेत तुलसीसे भगवान् मधुसूदनका अर्चन करता है वह, और विशेषकर वैशाखके महीनेमें पूजन करनेवाला नारायणका रूप होता है॥ जो मनुष्य वैशाखकी पौर्णमासीभर तुलसीसे मधुसूदनका त्रिकालमें पूजन करते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता तैसे ही प्रातःकाल विधिसे स्नानपूर्वक वैशाखमें जो मनुष्य पीपलके मूलमें बहुत जलसे भगवान्की प्रीतिके निमित्त सींचता है, और सब देवतारूपी पीपलकी प्रदक्षिणा करता है वह चर अचर पितर और मनुष्योंको तृप्त करता है। जो मनुष्य पीपलको चारों तरफ जलसे सींचते हैं वह दशसहस्र कुलोंको तारते हैं इसमें संदेह नहीं। गौकी पीठको खुजाने और स्नानके उपरान्त पीपलके नीचे तर्पण करके गोविन्दका पूजन करनेसे मनुष्यको दुर्गति नहीं होती, एकवार भोजन अथवा रात्रिमें

मतंद्रितः । माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥ वैशाखे विधिना स्नानं देवनद्यादिके बहिः । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः । व्रतं दानं दमो देवि मधुसूदनपूजनम् । अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम् ॥ ३ ॥ मदनरत्ने स्कांदे—"प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलंतिका । उपानद्व्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चंदनम् ॥ जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च । पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भफलान्यपि ॥ २ ॥ तिथितत्त्वे—"ददाति यो हि मेषादौ सक्तून्म्बुघटान्वितान् । पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते"॥ इति । तथा—"वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने । ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम् ॥" एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं वा स्नायात् ॥ तदुक्तं तत्रैव पाद्मे—"त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां वैशाख्यां वा दिनत्रयम् । अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोपि वा ॥ प्रातः स्नातः सनियमः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ मलमासेपि स्नाननिर्णयः । यदा तु वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्त्तव्याः । मासोपवासचांद्रायणादि तु मलमासे एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्-"नियतत्रिंशद्दिनत्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । मलिने मासोपवास-

---

भोजन अयाचित (विना मांगे मिले) व्रतको वैशाखके महीनेमें सावधानीसे करता है उसको सब मन इच्छित फल प्राप्त होते हैं । वैशाखमें विधिपूर्वक देव नदी आदिमें ग्रामसे बाहर विधिसे स्नान, हविष्य, भोजन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, नियमसे रहना, व्रत दान इन्द्रियोंका निग्रह मधुसूदनकी पूजा करना हे देवी यह सब सहस्र जन्मके किये हुए पापको नष्ट करते हैं । मदनरत्नमें स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, वैशाखमें प्याऊ लगानी, देवताको माला देनी, जूता, पंखा, छत्री, सूक्ष्मवस्त्र, चंदन, जलके पात्र, फूलोंके घर और जो कोई चित्र विचित्र पदार्थ मुनक्का केलेकी फली इन सबको देना चाहिये । तिथितत्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य मेषसंक्रांतिके आदिमें जलके घडे सहित सत्तुओंको पितरोंके निमित्त ब्राह्मणोंको देते हैं वह सब पापोंसे छूटते हैं इसीप्रकार जो मनुष्य भरे घडेको भोजन सहित ब्राह्मणको देता है हे सुरराजेन्द्र ! उसको परमगति प्राप्त होती है इसीप्रकार सम्पूर्ण वैशाखभर स्नान करनेकी सामर्थ्य न होय तो तीन दिन स्नान करे । यहीं वहां पद्मपुराणके वाक्यमें लिखा है कि, त्रयोदशी १३ चतुर्दशी १४ वैशाखकी पूर्णिमा इन तीनों दिन भली प्रकार विधि और नियमसे स्नान करनेसे स्त्री हो या पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ जब वैशाखमें मलमास होय तो उसमें काम्यकर्मकी पूर्त्तिके निषेधसे दोनों महीने स्नान और नियम करना चाहिये । मासव्रत और चान्द्रायण व्रतकी पूर्ति तो मलमासमें ही करदेनी चाहिये, सोई दीपिकामें लिखा है ३० दिनका नियम होनेसे अच्छे महीनेमें आरंभ करके मलमासमेंही मासोपवास

व्रतम्" इति ॥ अत्र दानविशेष उक्तोऽपरार्के वामनपुराणे-" गन्धाश्च माल्यानि तथा वैशाखे सुरभीणि च । देयानि द्विजमुख्येभ्यो मधुसूदनतुष्टये ॥ '" एवं स्नाने कृते तस्योद्यापनं कार्यम् । तदुक्तं तत्रैव-उद्यापनविधिनिर्णयः ।" मासमेवं बहिः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले ॥ एकादश्यां च द्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा ॥ उपोष्य नियतो भूत्वा कुर्यादुद्यापनं बुधः । मंडपं कारयेदादौ कलशं तत्र विन्यसेत् ॥ निष्केण वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः । शक्त्या वा कारयेद्देवं सौवर्णं लक्षणान्वितम् ॥ लक्ष्मीयुक्तं जगन्नाथं पूजयेदासने बुधः । भूषणैश्चन्दनैः पुष्पैर्दीपैर्नैवेद्यसंचयैः ॥ एवं संपूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत् । श्वोभूते कृतमैत्रोथ ग्रहवेद्यां ग्रहान्यजेत् ॥ होमं कुर्यात्प्रयत्नेन पायसेन विचक्षणः । तिलाज्येन यवैर्वापि सर्वैर्वापि स्वशक्तितः ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा । प्रतद्विष्णुरनेनैव इदंविष्णुरनेन वा ॥ व्रतसंपूर्तिसिद्ध्यर्थं धेनुमेकां पयस्विनीम् । पादुकोपानहौ छत्रं गुरवे व्यजनं तथा । शय्यां सोपस्करां दद्याद्दीपिकां दर्पणं तथा । ब्राह्मणान् भोजयेत्त्रिंशत्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ कलशाञ्जलसंपूर्णांस्तेभ्यो दद्याद्यवांस्तथा । एवं कृते माधवस्य चोद्यापनविधौ शुभे ॥ फलमाप्नोति सकलं विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् "॥एतावत्यशक्तौ तत्रैवोक्तम्-

व्रतकी समाप्ति कर दे । वैशाखमें दानका विशेष अपरार्कग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, गन्ध, सुगन्धित पुष्पमाला ये सब मधुसूदनकी प्रसन्नताके निमित्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये । इस प्रकार स्नान करनेके उपरान्त उद्यापन करना, सोई वहां लिखा है ॥ इस प्रकार ग्रामसे बाहिर नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके एकादशी, द्वादशी व पूर्णिमाको व्रत करके और सावधान हो बुद्धिमान् मनुष्य उद्यापन करै, मण्डप निर्माण करै और कलशको स्थापन करै । निष्कके आधे वा चौथाई सुवर्णकी मधुसूदन भगवान्‌की मूर्ति शक्तिके अनुसार बनाय और लक्ष्मीसहित जगत्पतिको आसनपर बैठाय भूषणसहित चन्दन, पुष्प, दीप, नैवेद्य इनसे पूजन करना चाहिये । और बुद्धिमान् मनुष्यको खीर तिल, घी, यवसे पृथक् २ वा संयुक्तकर अपनी शक्तिके अनुसार हवन करना चाहिये, १०८ एकसौ आठ अथवा एक सहस्र और २ हवन करै हवनका मन्त्र यह है कि, प्रतद्विष्णु[1] अथवा इदंविष्णुं[2] और व्रतकी पूर्तिके निमित्त एक दुधारी गौ, खडाऊं, जूता, वीजना, छत्र, सामग्री सहित शय्या, दीपक, दर्पण इन सबको गुरुके निमित्त दे और ३० ब्राह्मणोंको भोजन करावै, और उनको दक्षिणा, जलसे पूर्ण घट और यव देना चाहिये । इस प्रकार वैशाखकी श्रेष्ठ उद्यापनकी विधिके करनेसे सम्पूर्ण फल और विष्णुकी सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है । इतने करनेकी शक्ति

---

१ प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगारिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा य० अ० ५ मं० २०। २ इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदंसमूढमस्यपांसुरे ॥ यजु० ॥

"वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद्ब्राह्मणान् दश । कृसरं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः" ॥ इति ॥ वैशाखशुक्लतृतीयानिर्णयः । वैशाखशुक्लतृतीया अक्षय्यतृतीयोच्यते । सा पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेपि तद्व्याप्तौ परैव । तदुक्तं निर्णयामृते नारदीये–" वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणीयुता ॥ दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा ॥ रोहिणीबुधयुक्तापि पूर्वविद्धाविवर्जिता ॥ भक्त्या कृतापि मांधातः पुण्यं हंति पुराकृतम् ॥ गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता ॥ विनापि रोहिणीयोगात्पुण्यकोटिप्रदा सदा ॥ ३ ॥ इति ॥ युगादिनिर्णयः । इयं युगादिरपि सा चोक्ता रत्नमालायाम्–" माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी । तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः " इति ॥ यत्तु गौडाः–'माघस्य पौर्णमास्यां तु घोरं कलियुगं स्मृतम्' इति ब्राह्मोक्तेः ॥ "वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे । नभस्य मासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥" इति विष्णुपुराणे । चकारेण तमिस्रपक्षानुषङ्गेपि पूर्वानुरोधात् पौर्णमास्येव ज्ञेया । द्वे शुक्ले इत्यादिकं तु निर्मूलमित्याहुः ॥ तन्न ॥ 'दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्' इति भविष्यविरोधात् ॥ एतेन ब्राह्मानुसारात् पूर्णिमायामेव

न होय तो वहांही यह लिखा है कि, वैशाखकी पूर्णिमाको विधिसे स्नान करके ब्राह्मणोंको खिचडी जिमावै, तो सब पापोंसे रहित होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ वैशाखसुदी तृतीयाको अक्षयतृतीया होती है वह पूर्व दिनमें व्यापिनी ग्रहण करनी । यदि दोनों दिन पूर्वदिनमें होय तो अगली करनी यही निर्णयामृतग्रन्थमें नारदपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें रोहिणी बुधवार सोमवार युक्त तृतीया मिलनी दुर्लभ है, रोहिणी और बुधवारसे युक्त भी तृतीया द्वितीयासे विद्धा होय तो त्याज्य है. हे मान्धाता ! भक्तिसे की हुई भी वह प्रथम किये हुये पुण्यको दूर करती है और चतुर्थीसे युक्त तृतीया चाहे रोहिणी और बुधसे युक्त हो और चाहे रोहिणीसे रहित होय तोभी वह कोटि पुण्यकी देनेवाली है ॥ यह तृतीया युगादि भी है. यह रत्नमालामें लिखा है कि, माघवदी अमावस १५ श्रावणवदी १३ वैशाखवदी ३ और कार्तिकसुदी नवमी ९ ये चारों तिथि क्रमसे युगादि हैं. और जो गौड यह लिखते हैं कि, माघकी पूर्णिमाको घोर कलियुग प्रारंभ हुआ इस ब्रह्मपुराणके कथनसे वैशाख महीनेकी तृतीया, कार्तिकशुक्लकी नवमी श्रावणवदी त्रयोदशी तथा माघकी पूर्णिमा इस विष्णुपुराणके वाक्यमें चकारके बलसे कृष्णपक्षका भी सम्बन्ध है तो भी पूर्णमासीही जाननी कारण कि, शुक्लपक्षकी दो तिथि लेनी यह सब निर्मूल है यह गौडोंका कथन यथार्थ नहीं. कारण कि, माघकी अमावास्याको द्वापरयुग प्रवृत्त हुआ, इस भविष्यपुराणके वाक्यका इसमें विरोध होता है. इससे ब्रह्मपुराणके कथनानुसार पूर्णिमामेंही युगादि श्राद्धको वर्णन करते हुए शूलपाणि परास्त हुए ॥

युगादिश्राद्धं वदन् शूलपाणिः परास्तः । तेन कल्पभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् ॥ एतेन 'कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा' इति बृहन्नारदीये व्याख्यातम् ॥ निर्मूलत्वोक्तिनारदीयाज्ञानकृता ॥ तत्र श्राद्धनिर्णयः । अत्र श्राद्धमुक्तं मात्स्ये– "कृतं श्राद्धं विधानेन मन्वादिषु युगादिषु । हायनानि द्विसाहस्रं पितृणां तृप्तिदं भवेत्" इति ॥ भारतेपि–"या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु माधव । स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्" इति ॥ श्राद्धेपि पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । "पूर्वाह्णे तु सदा कार्याः शुक्ला मनुयुगादयः ॥ दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिका ॥" इति पाद्मोक्तेः ॥ "द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादीः कवयो विदुः ॥ शुक्ले पौर्वाह्णिके ग्राह्या कृष्णे चैवापराह्णिके ॥" इति हेमाद्रौ नारदीयवचनाच्च । दीपिकायामपि–" अथो मन्वादियुगादिकर्मतिथयः पूर्वाह्णिकाः स्युः सिते विज्ञेया अपराह्णिकाश्च बहुले" इति ॥ स्मृत्यर्थसारेपि–'युगादिमन्वादिश्राद्धेषु शुक्लपक्षे उदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या । कृष्णपक्षेऽपराह्णव्यापिनी' इति ॥ दिवोदासीये गोभिलः–"वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णंति कव्यं च पितरस्तथा" इति ॥ गोविन्दार्णवेप्येवम्–तेनेयं पूर्वाह्णव्यापिनी । दिनद्वये तत्त्वे परैवेति धर्मतत्त्वविदो हेमाद्र्यादयः ॥ अनन्तभट्टस्तु–"वैधृतिर्व्यतीपातो

तिससे कल्पभेदसे व्यवस्था करनी यही सिद्धान्त है इससे इस नारदपुराणके वाक्यकाभी यथार्थ अर्थ लगगया कि, कार्तिकशुक्ल नवमी और माघकी पूर्णिमा युगादि हैं, निर्मूल कहना नारदके वाक्यको विना जाने है ॥ अक्षयतृतीयाको मत्स्यपुराणमें श्राद्ध करनाभी लिखा है कि, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें अनुष्ठित श्राद्ध दो सहस्रतक पितरोंकी तृप्तिका करनेवाला होताहै, महाभारतमें भी लिखाहै कि, मन्वादि और युगादि मनुष्यको स्नान, हवन, जप, दानको करनेसे अनन्त फल मिलताहै, इसलिये श्राद्धमें पूर्वाह्णव्यापिनी तिथि लेनी. कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखा है कि; शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि सदा पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी अपराह्णमें या देव और पितृकर्ममें लेनी चाहिये । और हेमाद्रिमें नारदपुराणका यह लेख है कि, पण्डितोंने दो शुक्लपक्षकी और दो कृष्णपक्षकी युगादि लिखी हैं । शुक्ल पक्षकी पूर्वाह्णमें और कृष्ण पक्षकी अपराह्णमें करनी. हेमाद्रि और नारदके वचनसे दीपिकामें भी कहाहै कि, शुक्लपक्षकी मन्वादि और युगादि पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षकी अपराह्णमें करनी चाहिये । स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, युगादि और मन्वादि शुक्लपक्षकी उदय व्यापिनी और कृष्णपक्षकी अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी । दिवोदासीयग्रन्थमें गोभिलका वाक्य है कि, जो मनुष्य वैशाखकी तृतीयाको पूर्वविद्धा तिथि करता है उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर स्वीकार नहीं करते गोविन्दार्णवमें भी यही है इससे यह पूर्वाह्णव्यापिनी करनी और दोनों दिन पूर्वाह्णमें होय तो अपराह्णमें लेनी यह धर्मतत्त्वके जाननेवाले हेमाद्रि आदि लिखते हैं अनन्तभट्टने यह लिखा है कि, वैधृति और

युगमन्वादयस्तथा । सम्मुखा उपवासे स्युर्दानादावंतिमाः स्मृताः" इत्याह॥ दानादाविति श्राद्धसंग्रहः उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते ॥ हेमाद्रावप्येवम् ॥ माधवस्तु–'व्यतीपातः श्राद्धेपराह्णव्यापी ग्राह्यः इत्याह ॥ स्मृत्यर्थसारे तु 'कुतुपकालयोगी ' इत्युक्तम् ॥ यत्तु मार्कण्डेयः–"शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षापराह्णे हि रौहिणं तु न लंघयेत् ॥ रौहिणो नवमो मुहूर्तः ॥ अत्र शुक्लपक्षयुगादिश्राद्धं पूर्वाह्णे कार्यमिति शूलपाणिः ॥ निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शेऽमाश्राद्धमापराह्णिकमुक्त्वा-' एष मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णयः ' इत्युक्तत्वात् ॥ द्वे शुक्ल इत्यादिवचनं विष्णुपूजनाविषयम् । श्राद्धे त्वापराह्णिक्ये वेति व्यवस्थां जगदुः ॥ सेयं पूर्वोक्तानेकवचोविरोधात् ' पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात् ' इत्यादिवचनादेव सिद्धे वचनवैयर्थ्याच्च स्वाच्छंद्यविलसितमात्रमित्युपेक्षणीया ॥ किं च ! कालादर्शोक्तिर्न्यायमूलावचोमूला वा । नाद्यः–युगादिश्राद्धस्यामाश्राद्धविकृतित्वेन न्यायतोऽपराह्णव्याप्तावपि वचनेन तस्य बाधात् । नान्त्यः । अतिदेशादेवापराह्णप्राप्तेर्वचनवैयर्थ्यात् ॥ ' अप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् ' इति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धाजाड्येन समाधित्सा, तर्हि न्यायप्राप्तकृष्णपक्षयुगादिविषयत्वेन सा व्यवस्थापनीयेति दिक् ॥

व्यतीपात युगादि और मन्वादि तिथि व्रत उपवासमें पहली और दान आदिमें पिछली लिखी है । इसमें आदि पदसे श्राद्ध ग्रहण करना, व्रतको तो आगे लिखेंगे. हेमाद्रिआदिमेंभी यही लिखा है, माधव तो व्यतीपातश्राद्धमें अपराह्नव्यापी ग्रहण करते हैं । स्मृत्यर्थसारमें कुतुपकाल उपयोगी कहा है जो कि, मार्कण्डेयने लिखा है कि, बुद्धिमान् मनुष्य शुक्लपक्षके पूर्वाह्णमें और कृष्णपक्षके अपराह्णमें श्राद्ध करे । और नौमें मुहूर्तका लंघन न करे, इसमें शूलपाणिका यह कथन है कि, शुक्लपक्षमें युगादिका श्राद्ध पूर्वाह्णमें करना, निर्णयामृत आदितो कालादर्शमें यह लिखते हैं कि, अमावसके श्राद्धको अपराह्णमें कहकर और मन्वादि और युगादिके इस निर्णयको कहकर पूर्वोक्त (द्वे शुक्ले) इस नारदके वाक्यको विष्णुपूजाके विषयमें और श्राद्धको अपराह्ण तिथिमें मानना इस व्यवस्थाको लिखते हैं सो यह उनकी व्यवस्था अनेक कथनोंके विरोधसे और पूर्वाह्णमें देवकर्म करे इसी वाक्यसे सिद्धथी और वाक्यके व्यर्थ होनेसे अपनी इच्छाके विलास मात्रसे लेखहै, इससे यह व्यवस्था अमान्य है, और कालादर्शका कथन न्यायमूल है, अथवा वाक्यमूल है, न्यायमूलतो नहीं लिखसक्ते कारण कि, युगादि श्राद्धको अमावस्या श्राद्धका विकृति (अंग) होनेसे न्यायसे अपराह्णव्यापीमें भी वाक्यसे उसको बाधक है, और वाक्यमूलभी नहीं कह सकते, अतिदेश (कथन) सेही अपराह्णकी प्राप्ति थी, वाक्य व्यर्थ होजायगा. कि, जहां प्राप्त न हो वहां ही वाक्य सार्थक होताहै यही न्याय है । इससे किसीप्रकार श्रद्धाकी मूर्खतासे कालादर्शकी उक्तिके समाधान करनेकी इच्छा होय तो कृष्ण-

पूर्वाह्णस्तत्र द्वेधभक्तदिनपूर्वार्धः ' द्वेधा भक्तदिनांशकोऽत्र गदितः प्राह्णापराह्णौ ' इति दीपिकोक्तेः माधवादयोप्येवम् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तदैव च । गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ तस्यां कार्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् । यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् " ॥ २ ॥ तत्र दाननिर्णयः ॥ अत्र दानविशेषस्तत्रैव भविष्ये इमां प्रक्रम्य " उदकुंभान्सकनकान्सान्नान्सर्वरसैः सह । यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा ॥ ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते ." इति । देवीपुराणेपि–"तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षे प्रपूज्य तु । उदकुंभप्रदानेन शिवलोके महीयते ॥ " मन्त्रस्तु–" एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्तृप्यंतु पितरोपि पितामहाः ॥ गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम् । पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु " ॥ ३ ॥ इति । अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात्–" अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा । युगादिषु च सर्वेषु पिंडनिर्वपणादृते " ॥ इति हेमाद्रौ पुलस्त्यवचनात् ॥ अत्र रात्रिभोजने प्रायश्चित्तमृग्विधाने–"रात्रौ भुक्ते वत्सरे तु मन्वादिषु युगादिषु । अभिस्ववृष्टिं मन्त्रं च

पक्षका युगादि तिथियोंके विषयसे व्यवस्था करनी चाहिये यही, मार्गहै । यही संक्षेपसे कहा है दो प्रकार भक्त दिनका पूर्वार्धे पूर्वाह्ण है वही प्राह्ण अपराह्ण भी कहाता है, यह दीपिकामें कहा है माधवादिभी यही कहतेहैं इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखमें और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीयाको गंगाजलमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होताहै, और उसदिन यवोंसे हवन और यवोंसे विष्णुका अर्चन करै और ब्राह्मणोंको यव दे और स्वयंभी यवही भक्षण करे ॥ इससे दानका विशेषभी भविष्यपुराणके कथनसे हेमाद्रिमें लिखा है । सुवर्ण, अन्न, सम्पूर्ण रसों सहित जलके घडे, यव, गेहूं, चने, सत्तू भात और गरमीके उपकारी सम्पूर्ण वस्तु इस दानमें श्रेष्ट हैं. देवीपुराणमें भी कहाहै कि, वैशाखकी तृतीया और रोहिणी नक्षत्रमें जलके घडेको पूजकर दान करनेसे शिवलोकमें सत्कार पाता है, उसका मंत्र यह है कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप यह घडा मैंने दिया, इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्त हों ! गन्ध, जल, तिल, अन्न, फलोंसे युक्त घटको पितरोंके निमित्त देताहूं, उनको अक्षय मिलो ! इसमें श्राद्धभी पिंडरहित करना. कारण कि, हेमाद्रिमें पुलस्त्यका यह कथन है कि, दक्षिणायन और उत्तरायण तुला और मेषकी संक्रांति और सब युगादितिथियोंमें पिंडदानको त्यागकर श्राद्ध करे, इसमें रात्रिमें भोजन करनेका ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखा है, कि जो मनुष्य मन्वादि और युगादि तिथियोंमें रात्रिको भोजन करता है वह भोजनके पाप दूर करनेके

१- अभिस्ववृष्टिमदे अस्ययुध्यतोरघ्वीरिव प्रवणेसस्रुरूतयः । इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसाभिनद्वलस्य परिधींरिवात्रितः ऋ० १ । ४ । १२ ॥

जपेदशनपातके " इति ॥ अपरार्के यमः– " कृतोपवासाः सलिलं ये युगादिदिनेषु च । दास्यंत्यन्नादिसहितं तेषां लोका महोदयाः " इति ॥ वैशाखे मलमासे सति तत्रैव युगादिः कार्यः तथा च हेमाद्रौ ऋष्यशृंगः–" दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः" इति ॥ एतद्दशहरादिकं वृषादिसंक्रमे इष्टम् ॥ ' कन्याचंद्रे वृषे रवौ ' इत्यादि सौरमासोक्तिरित्यर्थः ॥ कालादर्शेपि–'अब्दोदकुंभमन्वादिमहालययुगादिषु ' इति मलमासकर्तव्येषु परिगणनाच्च ॥ महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः ॥ स्मृतिचंद्रिकायां तु मासद्वये कर्तव्यमित्युक्तम्–" यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपक्षिकम् । मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च " इति ॥ अपरपक्षः कृष्णपक्षः, न तु महालयः ॥ तस्य तत्र निषेधात् । मदनरत्नेपि मरीचिः–" प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि " इति ॥ प्रतिवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धमिति स एव व्याचख्यौ ॥ अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तम् । अत्र श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने–"न यस्य द्यावामन्त्रं च शतवारं तदा

निमित्त अभिस्ववृष्टि मंत्रको जपे अपरार्कग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंके दिन व्रत करके अन्नसहित जलदान करते हैं उनको उत्तम २ लोक प्राप्त होतेहैं यदि वैशाखही मलमास होजाय तो उसमेंही युगादि तिथि करनी, सोई: हेमाद्रिमें ऋष्यशृंगने कहा है कि, दशहरा और चारों युगादि और, उपाकर्म और उत्सर्गमें उत्कर्ष नहीं (शुद्धही मास लेना यह नियम नहीं) कारण कि, यह सब वृष आदिकी संक्रान्तिसे माने जाते हैं. कारण कि, कन्याके चन्द्रमा और वृषके सूर्य आदिसे सौरमास कहहै ॥ कालादर्शमें भी जलदान, जलका घडा, मन्वादि, महालय युगादि ये मलमासोंमें करने योग्य लिखे हैं, यहां महालय शब्दसे मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशी ग्रहण करनी । स्मृतिचन्द्रिकामें तो यह लिखा है कि, दोनों महीनोंमें करना. कारण कि, युगादि मासिक श्राद्ध और कृष्णपक्षके श्राद्ध और मन्वादि और तीर्थ श्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करने चाहिये । यहां अपरपक्षसे कृष्णपक्ष ग्रहण किया है. महालय नहीं. कारण कि, महालयमें कृष्णपक्षका निषेध है, मदनरत्नमें मरीचिका यह वाक्य लिखा है कि, प्रत्येक महीनेका श्राद्ध और प्रतिवर्ष क्षयाश्राद्ध मन्वादि और युगादिश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें होतेहैं, और उसनेही यह अर्थ लिखाहै, कि, प्रतिवर्ष करने योग्य कल्पादिश्राद्ध-प्रतिवर्ष कहाताहै ॥ इसम श्राद्ध न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखा है, जो मनुष्य युगादिश्राद्ध न करै वा कुछ न्यूनता श्राद्धमें होजाय तो नयस्यद्यावामत्रंका १०० बार जप करै,

१ न यस्य द्यावापृथिवी न धन्वनान्तरिक्षन्नाद्रयः सोमो अक्षाः यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वाळ्रुजांसीस्थिराणि ऋ० ८ । ४ । १९ ॥

जपेत् । युगादयो यदा न्यूनाः कुरुते नैव चापि यः " इति ॥ अत्र समुद्रस्नानं प्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये सौरपुराणे-" युगादौ तु नरः स्नात्वा विधिवल्लवणोदधौ । गोसहस्रप्रदानस्य कुरुक्षेत्रे फलं हि यत् । तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् " इति ॥ अयं निर्णयः सर्वयुगादिषु बोद्धव्यः । इति युगादिनिर्णयः ॥ परशुरामजयन्तीनिर्णयः । इयमेव तृतीया परशुरामजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं भार्गवार्चनदीपिकायां स्कांदभविष्ययोः-" वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ । निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः ॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते । रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्" ॥२॥ इति । दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा ॥ अन्यथा पूर्वैव । तदुक्तं तत्रैव भविष्ये-" शुक्लतृतीया वैशाखे शुद्धोपोष्या दिनद्वये । निशायाः पूर्वयामे चेदुत्तरान्यत्र पूर्विका " इति ॥ वैशाखशुक्लसप्तमीनिर्णयः । वैशाखशुक्लसप्तम्यां गङ्गोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-" वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा ॥ क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात् ॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम् " इति ॥ अत्र शिष्टाचारात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा युग्मवाक्यात् ॥ वैशाखशुक्लद्वादशीनिर्णयः । वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ ज्योतिः-

इसमें समुद्रका स्नान भी उत्तम है सोई पृथ्वीचन्द्रोयमें सौरपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य युगादि तिथियोंमें क्षारसमुद्रमें स्नान करता है वह उस फलको प्राप्त होता है जो सहस्र गौ और पृथ्वीके दानका फल कुरुक्षेत्रमें लिखा हैं, यह निर्णय सब युगादि तिथियोंमें जानना चाहिये । इति युगादि निर्णयः ॥ यही तृतीया परशुरामजयंती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी। यही मार्गवार्चनचंद्रिकामें स्कंद और भविष्यके वाक्यसे लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके प्रथम प्रहरके समय रामनाम हरिने रेणुकाके गर्भसे अवतार लिया, और उस समय उच्चके छःग्रह और मिथुनका राहु था, यदि दोनों दिन प्रदोष व्यापिनी होय वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी होय तो पिछली लेनी, नहीं तो प्रथमही ग्रहण करनी, सोई वहांही भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है, वैशाखशुक्ल तृतीया व्रतमें वह लेनी जो दोनोंदिन पवित्र हो यदि रात्रिके प्रथम प्रहरमें होय तो पिछली लेनी, न होय तो पहली लेनी ॥ वैशाखशुक्ल सप्तमीको गंगाकी उत्पत्ति हुई है. यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, वैशाख शुक्ल सप्तमीको जह्नुऋषिने क्रोधसे पीकर फिर दाहिने कर्णके छिद्रसे गंगाजी त्याग दीं, उस सप्तमीको आकाशकी मेखलारूप गंगादेवीकी पूजा करै, इसमें शिष्टोंके आचारसे मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी लेनी । यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा एक देशव्यापिनी होय तो प्रथम दोनों कथनोंसे लेनी ॥ वैशाखशुक्ल द्वादशीको हेमाद्रिमें विशेष योग इस ज्योतिःशास्त्रके

१ व्रतहेमाद्रिमें भी लिखा है कि, वैशाखशुक्ल तृतीयाको भगीरथब्रह्मलोकसे गंगाजीको ले आये ॥

शास्त्रे- " पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ॥ पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥ " इति ॥ पञ्चाननः सिंहः । पाशाभिधाना तिथिर्द्वादशी । करभो हस्तः ॥ वैशाखशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे-" वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे ॥ मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥ वर्षेवर्षे तु कर्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम् " इति ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तावंशतः समव्याप्तौ च परा । विषमव्याप्तौ त्वधिकव्याप्तिमती दिनद्वयेप्यव्याप्तौ परा । परदिने गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् पूर्वदिने च तदभावात् । यत्तु-' ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ॥ ' इत्युपक्रम्य 'परिधाय ततो वासो व्रतकर्म समारभेत् ' इति तत्रैवोक्तम् ॥ तत्संकल्परूपव्रतोपक्रमविषयम् ॥ नत्वेतावता मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति भ्रमितव्यम् ॥ पूर्वोक्तवचनविरोधात् " वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके ॥ अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः " इति टोडरानन्दे स्कान्दात् । 'कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायम्'

वाक्यसे लिखा है कि, बृहस्पति और मंगल सिंहके हों मेषका सूर्य और शुक्लपक्ष हो और हस्तनक्षत्रसे युक्त द्वादशी हो तो यह व्यतीपातयोग होता है । इस योगमें गौ, भूमि, सोना और वस्त्र इनके दानसे सब पापको नष्ट करके देवताभाव, इन्द्रत्व और रोगके अभावको और सब प्राणियोंकी मुख्यताको पुरुष प्राप्त होता है ॥ वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको नृसिंहजयन्ती होती है वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी, सोई हेमाद्रिमें नृसिंहपुराणके वाक्यसे कहा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षमें चतुर्दशीके दिन प्रदोषके समय मेरे जन्मका पवित्र व्रत सब पापोंको नष्ट करता है । मेरे संतोषका विधायक यह व्रत प्रतिवर्ष करना चाहिये । यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्यापिनी हो वा किसी अंशसे तुल्यव्यापिनी होय तो अगली लेनी. एक दिन न्यून एक दिन अधिक व्यापिनी ग्रहण करनी दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी न होय तो एकदिन अगली लेनी । कारण कि, अगले दिनमें गौणकालमें है, और पहिले दिन नहीं है. जो कहीं यह लिखा है कि, फिर मध्याह्नके समय नदीके आदिके निर्मलजलमें स्नान करनेके उपरान्त वस्त्रोंको धारण करके व्रतके कर्मोंका आरम्भ करै यह सब संकल्परूप व्रतके प्रारम्भके विषयमें है, इतनेसे यह भ्रम नहीं करना चाहिये । कारण कि, मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । कारण कि, इसमें पूर्वोक्त वाक्यका विरोध आता है, और टोडरानन्दमें भी स्कन्दपुराणका कथन है कि, वैशाखशुक्ल चतुर्दशीको चन्द्रवार, कृत्तिका नक्षत्र, प्रदोषके कालमें हे ब्राह्मणो ! नृसिंहका अवतार हुआ और पुराणसमुच्चयमें भी लिखा है, कूर्म, नृसिंह, बुद्ध, कल्की ये अवतार प्रदोषके समय

इति पूर्वोक्तपुराणसमुच्चयवचनाच्चेति केचित् ॥ तत्त्वं तु पूर्ववचसामनाकरत्वेन निर्मूलत्वात् हेमाद्रौ नृसिंहपुराणे–' मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ' इत्युपक्रम्य । " स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे तु मद्व्रतम् ॥ सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ एतदन्यतरे योगे मद्दिनं पापनाशनम् ॥ केवलेपि प्रकर्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम् ॥ अन्यथा नरकं यांति यावच्चन्द्रदिवाकरौ " ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वा 'ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ' इत्यादिना मध्याह्न एव व्रतविधानाच्चतुर्दश्युत्तरार्धे वणिजे करणे मध्याह्ने च स्पष्टं जन्म प्रतीयते सन्ध्यायां जन्म तु काप्यनुक्तेर्मौर्ख्यकृतम् ॥ तद्वशान्निर्णयश्च हेय एवेति ॥ इयमेव योगविशेषेणातिप्रशस्ता । तदुक्तं तत्रैव "स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्व्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनापि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोस्ति मद्व्रते । मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः ॥ तथा ' सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः '॥ तथा–" विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लंघयेत्पापकृन्नरः । स याति

हुए, यह कोई कहते हैं । सिद्धांत तो यह है कि, पहले कथनोंको सिद्धान्त ग्रन्थोंके न होनेसे निर्मूलता है, इससे नृसिंहपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें यह लिखा है कि, मेरे जन्मका पवित्र व्रत पापोंका नाश करता है, यह प्रारम्भ करके और यह कहे कि, स्वातीनक्षत्रका योग, शनिवार सिद्धियोग और वणिज करणके योगसे पुरुषोंके बडे सौभाग्य और दैवयोगसे मेरा व्रत प्राप्त होता है यदि पूर्वोक्त सब योग होयँ तो करोडों हत्याओंका विनाश होता है, और इनमें कोईसा योग होय तो भी पाप दूर करनेवाला होता है । और केवलभी मेरे दिनमें यह व्रत करना चाहिये और जो नहीं करता वह तवतक नरकमें रहता है, जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहैं, फिर मध्याह्नमें नदी आदिकें निर्मल जलमें स्नान करै इत्यादि वाक्यसे मध्याह्नमें ही व्रत करनेका विधान है, इससे चतुर्दशीके उत्तरार्द्ध और वणिजकरणमेंही मध्याह्नकालमें नृसिंहका जन्म स्पष्ट प्रतीत होता है । सन्ध्याके समय जन्म तो कहीं भी नहीं लिखा इससे मूर्खतासे किये उसके वशसे यह उनका निर्णय त्यागने योग्य है, यही चतुर्दशी योगविशेषसे अत्यन्त श्रेष्ठ है, यही नृसिंहपुराणमें लिखा है कि, स्वातीनक्षत्र वणिजकरण सिद्धियोग यदि इनका योग होय तो मेरा व्रत होता है यह पुरुषोंके बडे भाग्य और दैवयोगसे प्राप्त होता है, इस प्रकार कहा है कि, इन योगोंके विनाभी मेरा दिन सब पापोंको दूर करता है, इसीप्रकार मेरे व्रतमें सब वर्णोंको अधिकार है और मुझमें तत्पर मेरे भक्तोंको तो विशेषकर इस व्रतको करना चाहिये । और सोनेका सिंह मेरे सन्तोषके निमित्त दे और जो पापी मनुष्य मेरे दिनको जानकर उलंघन करता है वह

-नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ'' ॥ इदं च संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च ॥ तत्र विशेषः । अथात्र विशेषः । मध्याह्ने मृद्गोमयतिलामलकस्नानं कृत्वा ॥'' नृसिंह देव-देवेश तव जन्मदिने शुभे । उपवासं करिष्यामि सर्वभोगविवर्जितः ॥ इतिमन्त्रेण संकल्पं कृत्वा आचार्यं वृत्वा सायंकाले-''हैमी तु तत्र मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्यास्तथैव च । पलेन वा तदर्धेनतदर्धार्धेन वा पुनः ॥ यथाशक्ति तथा कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ '' इत्युक्तम्॥ नृसिंहमूर्तिं शक्त्या कृतं सुवर्णसिंहं च कलशोपरि संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः पुनः संपूज्य । '' नृसिंहाच्युत देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते । अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ''इत्याचार्याय दत्त्वा ।''मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे । तांस्त्वमुद्धर देवेश दुस्तराद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखांबुवारिभिः॥तीव्रैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलंबनं देहि शेषशायिन् जगत्पते । श्रीनृसिंह रमाकांत भक्तानां भयनाशन ॥ क्षीराम्बुधिनिवासिंस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन । व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव '' ॥ २ ॥ इति प्रार्थयेदिति संक्षेपः ॥वैशाखपूर्णिमायां विशेषः । वैशाखपौर्णमास्यां विशेषोपरार्के जाबालिः-'' शृतान्नमुदकुम्भं च वैशाख्यां च विशेषतः । निर्दिश्य धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥ सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च च ॥

चन्द्रमा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त नरकमें जाता है । यह व्रत योगोंके मिलने और न मिलनेसे भी काम्य है ॥ अब इसमें विशेष लिखते हैं कि, मध्याह्नमें मृत्तिका, गोमय, तिल, आँवलेसे स्नान करके हे नृसिंह ! देवताओंके देवताके भी ईश्वर ! तुम्हारे शुभ जन्मदिनमें सब भोगोंको त्यागकर व्रत करूंगा, इस मन्त्रसे संकल्प करके और किसीको आचार्य बनाकर सायंकालके समय मेरी और लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापन करै, वह पलभरकी वा आधे पलकी वा चौथाई पलकी होनी चाहिये । यह अपनी श्रद्धाके अनुसार करै, और इसमें धनका संकोच न करै यह लिखा है । और नृसिंहकी मूर्ति और शक्तिसे निर्माण किये हुए सोनेके सिंहकी मूर्ति कलशके ऊपर पूजा करके रात्रिमें जागरणकर प्रभातमें फिर पूजकर इस मन्त्रसे आचार्यको प्रदान करै कि, हे नृसिंह ! हे अच्युत ! हे देवताओंके ईश, हे लक्ष्मी और जगत्के पति ! इस पूजित मूर्तिके दानसे मेरे मनोरथ पूर्ण हों, इसप्रकार यह प्रार्थना करै कि, मेरे कुलमें जो मनुष्य उत्पन्न हुए हैं, और जो होंगे उनका तुम इस दुस्सह संसारसागरसे उद्धार करो और पापोंके सागरमें डूबे हुए और बडे कठिन व्याधि दुःखोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुए महान् दुःखरूपी मुझे हे शेषशायी ! हे जगत्पति ! हे नृसिंह ! हे लक्ष्मीपति ! हे भक्तोंके भयनाशक मुझे हाथका अवलम्बन दो आपका क्षीरसागरमें निवास है, आपके हाथमें चक्र है हे देवताओंके ईश्वर ! इस व्रतसे मेरी भुक्ति मुक्ति करो ऐसी प्रार्थना करै । इति संक्षेपः ॥ वैशाखकी पूर्णिमाको अपरार्कग्रन्थमें जाबालिऋषिने विशेष लिखा है कि, जो मनुष्य पकान्न जलका घडा धर्मराज निमित्त वैशाखकी पूर्णिमाको देता है, उसे गोदानका

तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति " ॥ २ ॥ इति उदकुम्भदानमन्त्रस्त्वक्षय्य-तृतीयाप्रकरणे उक्तः ॥ भविष्येपि-"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोतीव पूजिताः ॥ स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन " ॥ अत्र कृष्णाजिनदानं कार्यम् । तथा च विष्णुः-"कृष्णाजिने तिलान् कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् " इति ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टसूरिसूनुकमला-करभट्टकृते कालनिर्णयसिन्धौ वैशाखमासः समाप्तः ॥ ज्येष्ठमासः । वृषभसंक्रान्ति-निर्णयः । वृषसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ संक्रमे सति प्रागेवोक्तम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतनिर्णयः । ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भा-व्रतमुक्तं माधवीये भविष्ये-"भद्रे कुरुष्व यत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् । ज्येष्ठशुक्ल-तृतीयायां स्नाता नियमतत्परा " इति ॥ सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ " बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी । कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या संमुखी तिथिः " इति स्कान्दोक्तेः ॥ ज्येष्ठशुक्लदशमीनिर्णयः । ज्येष्ठशुक्लदशमी दशहरा । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे-"ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता " इति ॥ वाराहेऽपि "दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि

फल मिलता है, जो मनुष्य सुवर्ण और तिलयुक्त जलके पात्रोंसे पांच वा सात ब्राह्मणोंको तृप्त करता है उसकी ब्रह्महत्या दूर होती है । घटदानका मन्त्र तो अक्षय तृतीयाके प्रकरणमें लिख आये हैं, भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि-वैशाख, कार्तिक, माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजित है, हे पाण्डुनन्दन ! इनको स्नान और दानके बिना न विताना चाहिये, इसमें काले मृगचर्मका दान करना, सोई विष्णुने लिखा है कि, जो मनुष्य श्याममृगचर्म, काले तिल, सुवर्ण, शहत घी ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करताहै उसके सब पाप दूर होजाते हैं ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां वैशाखमासः समाप्तः । वृषकी संक्रान्तिमें प्रथमकी षोडश १६ घडीका पुण्यकाल है। रात्रिकी संक्रान्तिमें पुण्यकाल तो प्रथम लिख आये हैं ॥ ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको रम्भाका व्रत भविष्य और माधवके वाक्यसे लिखा है कि, हे भद्रे ! ज्येष्ठशुक्ल तृतीयाको नियममें तत्पर हुई स्त्री यत्नसे रम्भाके श्रेष्ठव्रतको करे, यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये । कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि बडी रम्भा सावित्रीका व्रत, पितरोंकी तिथि, कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी यह तिथि प्रथम ग्रहण करनी ॥ ज्येष्ठशुक्ल दशमी तिथि दशहरा कहाती है, वही ब्रह्मपुराणके वाक्यसे हेमाद्रिमें लिखा है कि, ज्येष्ठशुक्ला दशमी हस्तयुक्त दश प्रकारके पापोंको दूर करती है, तिससे दशहरा कहाती है । वाराहपुराणमें भी कहा है कि, ज्येष्ठशुक्ल

कुजेऽहनि । अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता ''। इति ॥ स्कान्दे तु दशयोगा उक्ताः। तथा–''ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ॥ व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते '' इति ॥ अत्र बुधभौमयोः कल्पभेदेन व्यवस्था । इयं च यत्रैव योगबाहुल्यं सैव ग्राह्या। योगाधिक्ये फलाधिक्यात् । ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या नतु शुद्धे। 'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति हेमाद्रौ ऋष्यशृंगोक्तेः । तथा स्कांदे–''यां कांचित्सरितं प्राप्य दद्यादर्घ्यं तिलोदकम् । मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः ॥ '' अत्र विशेषःकाशीखंडे–'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे प्राप्य प्रतिपदं तिथिम् ॥ दशाश्वमेधके स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ एवं सर्वासु तिथिषु क्रमस्नायी नरोत्तमः । आशुक्लपक्षदशमीं प्रतिजन्माघमुत्सृजेत् ॥ २ ॥ तथा–''लिंगं दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वा दशहरातिथौ । दशजन्मार्जितैः पापैस्त्यज्यते नात्र संशयः॥ '' तथा च भविष्योत्तरकाशीखंडयोः–''निशायां जागरं कृत्वा समुपोष्य च भक्तितः । पुष्पैर्गन्धैश्च नैवेद्यैः फलैश्च दशसंख्यया ॥ तथा दीपैश्च तांबूलैः पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः । स्नात्वा भक्त्या तु जाह्नव्यां दशकृत्वो विधानतः ॥

दशमी मंगलवार हस्त नक्षत्रको गंगाजी स्वर्गसे आई हैं, और दश पापोंको दूर करती हैं. इससे दशहरा कहाती है । स्कंदपुराणमें तो दश योग लिखे हैं कि, ज्येष्ठमासकी शुक्लपक्षकी दशमीको बुध, हस्त, व्यतीपात, गर, आनन्द, कन्याका चन्द्रमा, वृषका सूर्य इन दशयोगोंमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे रहित होता है यहां बुधवार और मंगलवारका कथन कल्पभेदसे समझना चाहिये । और यह वह दशमी माननी जिसमें योग बहुत हों. कारण कि, योगोंकी अधिकतामें फल अधिक होता है, यदि ज्येष्ठमें मलमास होय तो उसमेंही दशहरा करना; शुद्धमें न करना कारण कि, हेमाद्रिमें ऋष्यशृङ्गने यह लिखा है कि, चारों युगोंमें दशहरामें उत्कर्ष (श्रेष्ठ) का नियम नहीं, इसी प्रकार स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, चाहै जिस नदीको प्राप्त होकर तिल और जलसे अर्घ देनेसे महापातकोंके तुल्य भी दश पापोंसे मनुष्य मुक्त होता है इसमें विशेष काशीखण्डमें लिखा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा तिथिको दशाश्वमेधघाटमें स्नान करके सब पापोंसे छूटते हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण तिथियोंको शुक्लपक्षकी दशमी पर्यंतके स्नान करनेसे मनुष्यके जन्म २ के पाप दूर होते हैं, तैसेही दशहराके दिन दशाश्वमेधेश्वर लिंगका दर्शन कर दश जन्मके संचित पाप दूर होते हैं. इसमें संदेह नहीं है । तैसेही भविष्योत्तर और काशीखण्डमें कहा है, कि भक्तिपूर्वक रात्रिमें जागरण और व्रत करके पुष्प, गन्ध, नैवेद्य और दश फल, दीपक, पान, दश बार गंगामें भक्तिसे स्नान करके गंगाकी पूजा करै, और दश अंजलीभर तिल

दशप्रसृतिकृष्णांश्च तिलान् सर्पिश्च वै जले। सक्तुपिंडान् गुडपिंडान् दद्याच्च दश-संख्यया॥ ततो गंगातटे रम्ये हेम्ना रूप्येण वा तथा। गंगायाः प्रतिमां कृत्वा वक्ष्यमाणस्वरूपिणीम्॥ संस्थाप्य पूजयेद्देवीं तदलाभे मृदापि च। अथ तत्राप्य-शक्तश्चेल्लिखेत् पिष्टेन वै भुवि॥ वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्यात्पूजां विशेषतः"॥ "नारायणं महेशं च ब्रह्माणं भास्करं तथा॥ भगीरथं च नृपतिं हिमवन्तं नगेश्वरम्। गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्यथाशक्ति प्रपूजयत्॥ दशप्रस्थांस्तिलान् दद्याद्दशसंख्या गवीस्तथा"। प्रस्थः षोडशपलानि। पलं तु-'मुष्टिमात्रं पलं स्मृतम्' इति महार्णवे उक्तम्। "मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान्॥ हंसकारंडचक्र-कन्ककटिट्टिभसारसान्। कारयित्वा यथाशक्ति स्वर्णेन रजतेन वा॥ तदलाभे पिष्टमयानभ्यर्च्य कुसुमादिभिः। गंगायां प्रक्षिपेदाज्यदीपांश्चैव प्रवाहयेत्॥ पुष्पाद्यैः पूजयेद्गङ्गां मन्त्रेणानेन भक्तितः। ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै नमोनमः॥ इति मन्त्रं तु यो मर्त्यो दिने तस्मिन् दिवानिशम्। जपेत्पञ्चसह-स्राणि दशधर्मफलं लभेत्"॥ काशीखण्डे त्वन्यो मन्त्र उक्तः। "नमः शिवायै प्रथमं नारायण्यै पदं ततः। दशहरायै पदमिति गङ्गायै मन्त्र एव वै॥ स्वाहान्तः प्रणवादिश्च भवेद्विंशाक्षरो मनुः। पूजा दानं जपो होमोऽनेनैव मनुना स्मृतम्"॥ १४॥ इति। अत्र गंगास्तोत्रपाठमपि दशवारं कुर्यात्। तदुक्तं भविष्ये-"तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः। यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः॥ सोपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः" इति स्तोत्रं च प्रतिपदादिदश-

---

और घी, सत्तू और गुडके दश २ पिंड गंगाजलमें दे, फिर गंगाके मनोहर किनारेपर सोने वा चांदीकी वह प्रतिमा निर्माण करै, जिसका स्वरूप आगे लिखेंगे मूर्त्तिको स्थापन करके पूजा करै, सुवर्ण चांदी न मिलै तो मृत्तिकाकी निर्माण करनी चाहिये और उसके भी निर्माण करनेमें असमर्थ होय तो चूनसे भूमिपर लिखकर आगे लिखे मन्त्रसे विशेषकर पूजा करै॥ और नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ राजा, हिमवान् पर्वतकी भी गंध पुष्प आदिसे यथाशक्ति पूजा करै। और दश ब्राह्मणोंको दश प्रस्थ (१६ मुट्ठी) भर तिल देने चाहिये और दश प्रस्थ यव और दश गौ देनी। मत्स्य, कच्छप, मेंडक, मकर आदि जलके जीवोंकी सुवर्ण वा चांदीकी प्रतिमा बनावै इसमें समर्थ न हो तो चूनकी बनाकर और पुष्प आदिसे पूजनकर गंगाजीमें गिरादे और घृतके दीपकोंको भी बहादे, और पुष्प आदिसे गंगाजीका इस मंत्रसे पूजन करै कि, ॐ शिवा, नारायणी, दशहरा, गंगाको प्रणाम है। जो मनुष्य दिनमें वा रात्रिदिनमें पांच सहस्र उक्त मन्त्रको जपता है वह दश प्रकार धर्मके फलको प्राप्त होता है, काशीखण्डमें तो और मन्त्र कहा है ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै, गंगायै स्वाहा, यह बीस अक्षरका मंत्र है, इससे ही पूजन दान जप होम करना लिखा है, गंगाजलमें बैठकर दरिद्री वा धनी जो मनुष्य दशवार इस मंत्रको पढता है वह भी भक्तिसे गंगापूजनके फलको प्राप्त होताहै, और प्रति-

मीपर्यंतं दिनवृद्धिसंख्यया पाठनीयमिति शिष्टाः ॥ अत्र च सर्वोपि विस्तरः स्तोत्रादि च भट्टकृतत्रिस्थलीसेतोरवधेयः ॥ विस्तरभीतेस्तु न लिख्यते ॥ एवं कुर्वतः फलमुक्तं काशीखण्डे–" एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । उपवासी वक्ष्यमाणैर्दशपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।" इति च ॥ अस्यां सेतुबन्धनरामेश्वरस्य प्रतिष्ठादिनत्वाद्विशेषेण पूजा कार्या । तदुक्तं स्कांदे सेतुमाहात्म्ये–" ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः । गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचंद्रे वृषे रवौ ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिंगरूपधरं हरम् ॥ रामो वै स्थापयामास शिवलिंगमनुत्तमम् ॥ २ ॥" इति दशहरा ॥ ज्येष्ठशुक्लैकादशीनिर्णयः । ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला । तत्र निर्जलमुपोष्य विप्रेभ्यो जलकुंभान् दद्यादिति निर्णयामृते उक्तम्। मदनरत्ने स्कान्दे–" ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा । निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान् ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ ॥" ज्येष्ठशुक्लपूर्णिमायां सावित्रीव्रतनिर्णयः । ज्येष्ठपौर्णमास्यां सावित्रीव्रतम् ॥ तदुक्तं स्कान्दभविष्ययोः–' ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे' इत्युपक्रम्य । ' व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रिं स्थिरा भवेत्' इति अन्तेप्युपसंहृतम् ॥" ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम् ।

पदासे दशमीतक दिन वृद्धिक्रमसे स्तोत्रका पढना यह शिष्ट कहते हैं, इसका सम्पूर्ण विस्तार और स्तोत्र आदि भट्टनिर्मित त्रिस्थलीसेतुमें देखना चाहिये, विस्तारके भयसे हम नहीं लिखते, इस प्रकार करनेवालेका फल काशीखण्डमें लिखा है कि, धनका संकोच त्यागकर विधिसे इसप्रकार अनुष्ठान करके उपवास करनेवाले मनुष्यके दश पाप छूटते हैं, और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है, तथा मरकर ब्रह्ममें लीन होता है । इसको सेतुबंध रामेश्वरकी प्रतिष्ठाका दिन होनेसे उक्त रामेश्वरकी पूजा विशेषरूपसे करनी चाहिये,. सोई स्कंदपुराण सेतुके माहात्म्यमें लिखा है कि, ज्येष्ठ महीनेकी शुक्लपक्ष दशमी, बुध, हस्तनक्षत्र, गर, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याका चन्द्रमा, वृषके सूर्य इन दश योगोंमें सेतुमें लिंगरूपधारी महादेवकी रामचन्द्रने स्थापना की थी यह शिवलिंग सर्व श्रेष्ठ है ॥ इति दशहराविधिः ॥ ज्येष्ठशुक्ल एकादशी निर्जला होती है, उसमें व्रत करके ब्राह्मणोंको जलके घडोंका दान दे, यह निर्णयामृतमें लिखा है, मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, हे राजाओंमें श्रेष्ठ ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी शुभ एकादशीमें निर्जल व्रत करके खांड सहित जलके घडे ब्राह्मणोंको देकर विष्णुके निकट आनन्द भोगता है ॥ ज्येष्ठकी पूर्णिमाको सावित्रीव्रत होता है, यही स्कंद और भविष्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासकी शुक्ल द्वादशीको संध्याके समय यह (प्रथम कहकर) तीन रात्रिके व्रतके निमित्त रात दिन स्थिर रहे, और फिर अन्तमें जाकर पूर्ण भी करदिया है कि, ज्येष्ठमहीनेकी शुक्लपूर्णिमाका व्रत

---

१ यह स्थापनाका समय कल्पान्तरविषयक है ।

चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप ॥ " इति ॥ दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते ॥ एतच्चामावास्यायामप्युक्तं निर्णयामृते भविष्ये-" अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती । त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ॥ " मदनरत्ने त्विदं वाक्यम् ॥ ' पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे ' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामुक्तम् ॥ तथा" अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया । अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम् ॥ " इति ॥ तत्तु पाश्चात्त्या आद्रियन्ते ॥ हेमाद्रिसमयोद्द्योतादिषु तु भाद्रपदपूर्णिमायामुक्तम् । तत्तु नेदानीं प्रचरति ॥ गौडास्तु-" मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत् ॥ ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्चयन्ति याः ॥ वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः ॥" इति ॥ पराशरोक्तेश्चतुर्दश्यां प्रदोषे व्रतम् । दिनद्वये तद्व्याप्तौ परैवेत्याहुः । तन्निर्मूलम् ॥ अत्र पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये । " भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा ॥ वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तम् ॥ " इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ स्कान्देपि-"भूतविद्धा सिनीवाली न तु तत्र व्रतं चरेत् । वर्जयित्वा तु सावित्रीव्रतं तु शिखिवाहन " इति ॥ मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तेपि--"प्रतिपत्पञ्चमी भूतसावित्री वटपूर्णिमा । नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः " इति ॥ यदा त्वष्टादशघटिका चतुर्दशी तदा परा ग्राह्या । "पूर्वविद्धव सावित्रीव्रते पञ्चदशीतिथिः । नाड्योऽष्टादश भूतस्य स्युश्चेत्तत्र परेऽहनि ॥ " इति

बडी भक्तिसे मैंने प्रथम किया और हे नृप ! तुमसे वर्णन किया है और दक्षिणी ब्राह्मण इसकाही आदर करतेहैं, और यह निर्णयामृतमें भविष्यपुराणके मतसे अमावास्याको भी कहाहै कि, ज्येष्ठकी अमावास्याको वटके मूलमें सती स्त्रीको तीन दिन व्रत करना चाहिये । फिर इसी विधिसे पूजा करै मदनरत्नमें तो इस वाक्यको (पंचदश्यां तथा ज्येष्ठे) ऐसा पढकर ज्येष्ठकी पूर्णिमासीको भी व्रत लिखा है, इसी प्रकार जो यह लिखा है कि, अशक्त और जितेन्द्रिय स्त्री त्रयोदशीको रात्रि और चतुर्दशीको अयाचित पौर्णमासीको व्रत करै उसका पश्चिमके निवासी आदर नहीं करते हैं । हेमाद्रि समयोद्योत आदि ग्रन्थोंमें तौ भादोंकी पूर्णिमामें भी यह व्रत करना लिखा है, परन्तु उसका इन दिनों प्रचार नहीं है, गौड तो यह कथन करते हैं कि, मेष वा वृष राशिमें होनेवालेको सावित्री कथन करते हैं जो स्त्री सावित्रीका पूजन व्रत करके ज्येष्ठ शुक्ल १४ को वटकी मूलमें पूजन करती हैं वे विधवा नहीं होतीं, इस पराशरके कथनसे चतुर्दशीमेंही प्रदोपकालमें व्रत करै, यदि दोनों दिन प्रदोषमें होयँ तो अगले दिन करै यह गौडोंका कथन निर्मूल है । सावित्रीके व्रतको त्यागकर, अमावास्या और पूर्णिमा चतुर्दशीसे विद्धा अमावास्याको व्रत न करै, हे शिखिवाहन ! सावित्रीव्रतको त्यागकर और प्रतिपदा, पञ्चमी, चतुर्दशी, सावित्री वटपूर्णिमा नवमी दशमी परतिथिसे विद्धामें व्रत न करै, यदि १८ घडी चौदस होय तो दूसरे दिनमें करै, माधवने यह कहा है कि, सावित्रीके व्रतमें पूर्णमासी पहले दिन विद्धा है, यदि १४ चौदस अठारह घडी होय तो अगले दिन करै, सिद्धान्त

माधवः ॥ वस्तुतस्तु--' भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ' इत्यस्य व्रतांतरे सावकाशत्वाद्विशेषप्रवृत्तपूर्वविद्धाविधायकवचनेन तस्य बाधादष्टादशनाडीवेधेोपि पूर्वैवेत्ययं पन्थाः साधुः ॥ अत्र पूर्णिमानुरोधेनैव यथा त्रिरात्रिसम्पत्तिर्भवति । तथा त्रयोदश्यादि ग्राह्यम् । तस्याः प्रधानत्वात् ॥ अयं निर्णयोऽमायामपि ज्ञेयः । पारणं तु पूर्णिमांते कार्यम्॥अथ स्त्रीव्रतेषु विशेषः परिभाषायामुक्तः॥सावित्रीपूजाविधिः॥ अत्र विशेषो भविष्ये--"गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं युधिष्ठिर। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ॥ सावित्रीप्रतिमां कुर्यात्सौवर्णी वापि मृन्मयीम् । सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः ॥ रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुंकुमकेशरैः " । पूजयेदिति शेषः । रजनी हरिद्रा। कण्ठसूत्रं सौभाग्यतन्तुः ॥ "सावित्र्याख्यानकं चापि वाचयीत द्विजोत्तमैः । रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः ॥ तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ " मन्त्रस्तु--"सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती । ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम् ॥ व्रतेनानेन राजेन्द्र वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित् ॥ "इति ॥ ज्येष्ठपौर्णमास्यां विशेष आदित्यपुराणे--"ज्येष्ठे मासि तिलान् दद्यात् पौर्णमास्यां विशेषतः । अश्वमेधस्य यत्पुण्यं तत्प्राप्नोति न संशयः॥" विष्णुरपि--' ज्येष्ठीज्येष्ठायुताचेत्स्यात्तस्यां छत्रोपानत्प्रदानेन नराधिपत्यमाप्नोति 'इति ॥

तो यह है कि, चतुर्दशी १८ घडीसे अगली तिथिको दूषित करती है, यह वाक्य और व्रतोंके मध्यमें सावकाशहै, इससे विशेषकर पूर्वविद्धा सावित्रीके बोधक वाक्योंसे इसका बाध होनेसे १८ घडीके वेधमेंही प्रथम सावित्री करनी यही मार्ग उत्तमहै । यहां पूर्णिमाके अनुरोधसे जैसे तीन रात्र व्रत होसकै तैसे त्रयोदशीको श्रेष्ठ होनेसे त्रयोदशीको व्रत ग्रहण करै । यह निर्णय अमावास्यामें भी जानना चाहिये, पारणा तो पूर्णिमाके अन्तमें करनी चाहिये, इस सावित्रीव्रतमें स्त्रियोंके निमित्त परिभाषाग्रन्थमें लिखा है ॥ भविष्य पुराणमें यह विशेष लिखा है कि, हे युधिष्ठिर ! प्रस्थभर वालू वांसके पात्रमें लेकर दो वस्त्रोंसे लपेटकर सुवर्ण वा मृत्तिकाकी सावित्री साध्वी सत्यवतीकी मूर्ति निर्माण करै और फल, नैवेद्य, दीपक हल्दी, सौभाग्य सूत्र (लाल) कुंकुम केशरसे उसका अर्चन करै, और ब्राह्मणसे सावित्रीके इतिहासको श्रवण करै रात्रिको जागरण और प्रातःकालको निर्मल जलमें स्नानकर ब्राह्मणको मूर्ति देकर प्रणाम करके क्षमाकी प्रार्थना करै उसका मन्त्र यह है कि, ब्राह्मणकी प्रसन्नताके निमित्त यह सुवर्णसहित उत्तम सावित्री प्रदान की है, इसको तुम ग्रहण करो । हे राजेंद्र ! इस व्रतको करनेसे स्त्री कभी भी विधवा नहीं होती, ज्येष्ठकी पूर्णिमाको विशेष आदित्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठमासमें और विशेषकर पूर्णिमाको तिलका दान करके मनुष्यको अश्वमेधका पुण्य प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । विष्णुने कहाभी है कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे संयुक्त पूर्णिमा होय तो उसमें छत्र जूतेके दानसे मनुष्योंका अधिपति होता है ।

हेमाद्रौ ज्योतिषे-"ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्येष्ठी प्रकीर्तिता॥" इति॥ इयं मन्वादिरपि। सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या॥ विशेषस्तु चैत्र उक्तः॥ तथाऽपरार्के वामनपुराणे-"उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम्। त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु॥" इति॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ ज्येष्ठमासः समाप्तः॥ आषाढमासः। मिथुनसंक्रांतिनिर्णयः। मिथुनसंक्रांतौ पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः रात्रौ तु प्रागेवोक्तम्॥ आषाढशुक्लद्वितीयानिर्णयः। आषाढशुक्लद्वितीयायां रथोत्सवः। तदुक्तं तिथितत्त्वे स्कान्दे "आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता। तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून्॥" तथा-"ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्रासौ मम पुण्यदा॥" आषाढशुक्लदशमीनिर्णयः॥ आषाढशुक्लदशमी पौर्णमासी च मन्वादिः। सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्येति प्रागुक्तम्॥ आषाढशुक्लद्वादशीनिर्णयः। आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कुर्यात्। तदुक्तं भविष्ये-"आभाका सितपक्षेषु मैत्रश्रवरेवती। संगमे नहि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत्॥" अस्यार्थः-आषाढभाद्रपदकार्तिकशुक्लद्वादशीष्वनुराधाश्रवणरेवतीयोगे पारणं न कुर्यादिति॥ अत्र यद्यप्येतावदेवोक्तम्। तथाप्यनुराधाप्रथमपाद एव वर्ज्यः। तदुक्तं विष्णुधर्मे-"मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति॥

हेमाद्रिग्रन्थमें ज्योतिषका यह वचन लिखा है कि, ज्येष्ठका बृहस्पति वा चन्द्रमा होय और रोहिणी नक्षत्रपर सूर्य होय तो वह पूर्णिमा महाज्येष्ठी कही है, यह मन्वादिभी है, सो पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी इसका विशेष चैत्रके निर्णयमें लिखदिया है। अपरार्कमें वामनपुराणका कथन है कि, जलके घडे और जल, तालका फल और चन्दनको त्रिविक्रम भगवान्की प्रीतिके निमित्त देना चाहिये॥ इति ...कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां ज्येष्ठमासः॥ मिथुनकी संक्रांतिमें अगली सो १६ घडी पवित्र काल है, रात्रिमें संक्रान्तिका पुण्यकाल तो पहले लिखआये हैं आषाढशुक्ल द्वितीयाको रथयात्राका उत्सव होताहै यही तिथितत्त्वग्रन्थमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, पुष्यनक्षत्रसे युक्त, आषाढशुक्ल द्वितीयाको सुभद्रासहित मुझ रामको बठाकर यात्राका उत्सव करना चाहिये और बहुतसे ब्राह्मणको प्रसन्न करै लिखाभी है. कि, पुष्यनक्षत्र न होय तो तिथियोंमें ही मेरी प्रसन्नताके निमित्त रथयात्रा करनी चाहिये॥ आषाढ शुक्ल दशमी और पूर्णिमा मन्वादि है वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी यह पहले लिख आये हैं॥ अनुराधा नक्षत्रके योगसे हीन आषाढशुक्ल द्वादशीको पारणा करै, यही भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आषाढ, भाद्रपद, कार्तिककी शुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवतीका योग होय तो भोजन न करै। यदि भोजन करै तो द्वादश एकादशीका फल नष्ट होता है। यद्यपि इस वाक्यमें संपूर्ण अनुराधा लिखाहै तथापि अनुराधाका प्रथम चरणही वर्जित है, यही विष्णुधर्ममें लिखा है अनुराधाके प्रथम चरणमें विष्णु सोते हैं रेवतीके प्रथम चरणमें जागते हैं श्रवणके मध्यमें करवट

श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ॥ इति ॥ वस्तुतस्तु पूर्ववचनमिदं च निर्मूलम् ॥ तत्र विष्णुशयनोत्सवनिर्णयः । अत्रैव विष्णुशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ ब्राह्मे—"एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः । भुजंगशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ॥" इति ॥ कल्पतरौ यमः—" क्षीराब्धौ शेषपर्यंके आषाढ्यां संविशेद्धरिः । निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं क्षिप्रमेवं व्यपोहति । हिंसात्मकैस्तु किं तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः ॥ प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन केशवः" ॥ २ ॥ टोडरानंदेऽपि स्कांदे—'आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वप्नमहोत्सवम्' ॥ अयं द्वादश्यामप्युक्तः । " आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः । निशि स्वापो दिवोत्थानं संध्यायां परिवर्तनम् ॥ " अत्र पादयोगेपि द्वादश्यामेव कारयेत् " आभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च । द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥ " इति भविष्योक्तेः । "द्वादश्यां संधिसमये नक्षत्राणामसंभवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्तनादिकम् ॥"इति वाराहोक्तेश्च ॥ द्वादश्यामित्यत्रापि पारणाहोममात्रं विवक्षितम्॥ 'पारणाहे पूर्वरात्रे घंटादीन्वादयन्महः' इति रामा-

---

लेते हैं इससे सोना, जागना, करवट लेनेहीका भोजनके समयमें निषेध है, सिद्धान्तसे तो यह है कि, प्रथमका यह वाक्य निर्मूल है ॥ इसमेंही विष्णुशयनका उत्सव हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके मतसे लिखा है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको शेष शय्यापर भगवान् क्षीरसागरके जलमें निरन्तर शयन करते हैं । कल्पतरुग्रन्थमें यमराजका कथन है कि, आषाढकी एकादशीको भगवान् क्षीरसागरमें शयन करते हैं, और कार्तिकशुक्ल एकादशीको जागते हैं । इससे इन दोनोंमें जो मनुष्य विष्णु भगवान्का सदैव पूजन करते हैं उनके ब्रह्महत्यादि पाप सब दूर होते हैं । जो मनुष्य सोने और जागनेके दिन केशव भगवान्का पूजन करता है, उसको हिंसारूप यज्ञोंसे क्या प्रयोजन है, टोडरानन्दग्रन्थमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको विष्णुशयनका उत्सव करना चाहिये, यह उत्सव द्वादशीमें भी लिखा है. कारण कि, भविष्यपुराणका वाक्य है कि आषाढ, भाद्रपद, कार्तिकशुक्ल द्वादशीको क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्रोंके आदि, मध्य और अन्तके चरणोंमें क्रमसे सोने, करवट लेने और जागनेका उत्सव करै उनमें शयनका उत्सव रात्रिमें और जागनेका उत्सव दिनमें और करवट लेनेका उत्सव सन्ध्यामें करना चाहिये अन्य समयमी पूर्वोक्त चरणोंका होय तो भी पूर्वोक्त उत्सवको द्वादशीमें ही करना चाहिये. आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक आदि महीनोंमें और मिथुन आदिके सूर्यमें भगवान्के शयन आदिका उत्सव शुक्लद्वादशीको करना चाहिये । वाराहपुराणमें लिखा है कि, द्वादशीको सन्ध्याके समय जबतक नक्षत्रोंका उदय न हो तबतक आषाढ, भाद्रपद, कार्तिकमें विष्णुके शयन आदिका उत्सव करना यह द्वादशी पदसे पारणाका दिन ग्रहण करना, कारण कि,

चैनचन्द्रिकोक्तेः । अत्रैकादशीद्वादश्योर्देशभेदेन व्यवस्था ॥ इदं च मलमासे नं कार्यम् । 'ईशानस्य वलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् ' इति कालादर्शे निषेधात् । य-द्यपि—"एकादश्यां तु गृह्णीयात्संक्रान्तौ कर्कटस्य च । आषाढ्यां वा नरो भक्त्या चातुर्मास्यव्रतक्रियाम् ॥ " इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तम् ॥ तदपि मलमासे सति द्रष्ट-व्यम्॥ " मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत् । द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥" इति तत्रैव मोहचूलोत्तरोक्तेः । तत्र चातुर्मास्यव्रतनिर्णयः ॥ अत्रैव चातुर्मास्यव्रतारंभ उक्तो भारते—" आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपो-षितः । चातुर्मास्यव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः " इति ॥ अस्य नित्यत्वं तत्रै-वोक्तम् । " वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत् केनचिन्नरः । व्रतेन नो चेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम् ॥ असंभवे तुलार्केऽपि कर्तव्यं तत्प्रयत्नतः " इति । तेनाषा-ढशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां पौर्णमास्यां वारम्भः । समाप्तिस्तु कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेव । तदुक्तं हेमाद्रौ भारते—"चतुर्धा गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्" इति ॥ अस्यारंभः शुक्रास्तादावपि कार्यः ॥ "न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः । खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मा-स्यविधौ नरः" इति हेमाद्रौ वृद्धगार्ग्योक्तेः ॥ इदं च द्वितीयाद्यारम्भविषयकम् ।

रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है कि, पारणाके दिन पहली रात्रमें घण्टा आदिको वारम्वार वजावे, यहाँ एकादशी और द्वादशीकी व्यवस्था देशभेदसे जाननी चाहिये । इस उत्सवको मलमासमें न करना चाहिये, कारण कि, कालादर्शमें शिवकी वली और विष्णुका शयन और करवट लेना वर्जित है, और जो यह लिखा है कि, कर्ककी संक्रांति और आषाढकी -एकादशीको मनुष्य भक्तिपूर्वक चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करै, यह ब्रह्मवैवर्त्तका कहा मलमास होय तो जानना चाहिये ॥ कारण कि, उसी हेमाद्रिग्रन्थमें मोहचूडोत्तरका यह वाक्य है कि, जब मिथुनका सूर्य दो अमावास्याओंको स्पर्श करै, उसीको दो आषाढ कहते हैं, और विष्णु कर्ककी संक्रांतिमें शयन करते हैं ॥ इसी एकादशीको चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करना कहा है कि, आषाढशुक्ल एकादशीको व्रत करके मनुष्य सावधानीसे किसी न किसी चातुर्मास्यव्रतका आरम्भ करे और इस व्रतको नित्यत्व भी भारतमेंही लिखा है कि, मनुष्यको वर्षाके चार महीने किसी न किसी व्रतसे व्यतीत करने चाहिये, न करै तो वर्ष दिनके पापको प्राप्त होता है । अर्थात् वर्ष दिनका पाप नष्ट नहीं होता, वर्षामें न हो सकै तो तुलाकी संक्रांतिमें भी व्रतादि करना इससे आषाढशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करै, समाप्ति तो कार्तिकशुक्ल द्वादशीको करनी, यहाँ हेमाद्रिमें भारतका वाक्य है कि, मनुष्य चार प्रकारके चातुर्मास्यव्रतको ग्रहण करके कार्त्ति-कशुक्ल द्वादशीको पूर्ण करै, शुक्रके अस्त आदिमें भी इसका आरम्भ करदे. कारण कि, हेमाद्रिमें गर्गने कहा है कि, शुक्र और गुरुका बालक और अस्त और तिथिकी हानि इनकी चिन्ता मनु-

प्रथमारम्भस्तु न भवत्येव । आशौचमध्येऽपि द्वितीयाद्यारम्भो भवति । "अशुचिर्वा शुचिर्वापि यदि स्त्री यदि वा पुमान् । व्रतमेतन्नरः कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः" इति मार्गवार्चनदीपिकायां स्कान्दोक्तः । 'आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्' इति विष्णुवचनाच्च ॥ यत्तु—"असंक्रान्तं तथा मासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि । मलमासमशौचं च वर्जयेन्मतिमान्नरः" इति हेमाद्रौ चातुर्मास्यप्रकरणे भविष्यवचनम् तत् पुत्रानुमन्त्रवदसंबद्धं मध्ये पठितमिति ज्ञेयम् । अन्यथा पित्र्यस्य पूर्वोक्तस्य विवाहादेश्च चातुर्मास्यव्रते कः प्रसंगः । प्रकरणनिवेशेऽपि वा प्रथमारम्भविषयं ज्ञेयम् । केचित्तु प्रतिवर्षं चातुर्मास्यव्रतप्रयोगानां भिन्नत्वादाशौचादिपाते द्वितीयादिप्रयोगो न भवत्येव इत्याहुः ॥ तन्न " प्रतिवर्षं च यः कुर्यादेवं वै संस्मरन् हरिम् । देहान्तेऽतिप्रदीप्तेन विमानेनार्कवर्चसा ॥ मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाभूतसंप्लवम् ।" इति हेमाद्रौ भविष्यवचनादित्यास्तां विस्तरः ॥ तत्र शैवादीनामपि व्रतनिर्णयः । इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । "शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानौ वा गणनायके । कृत्वा व्रतस्य नियमं यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥" इति ब्रह्मवैवर्तात् ॥ व्रतग्रहणप्रकारस्तु हेमाद्रौ भविष्ये—"महापूजां ततः कुर्याद्देव-

---

चकको चातुर्मास्यके व्रतारम्भमें न करनी, यह भी दूसरे आरम्भमें है प्रथम आरम्भ तो शुक्रास्तमें नहीं हो सकता. मार्गवार्चनदीपिकामें स्कन्दपुराणका यह वाक्य लिखा है कि, अशौचके मध्यमें भी दूसरा आरम्भ होसकता है. अशुद्ध हो वा शुद्ध हो स्त्री हो वा पुरुष हो इस व्रतको करके मनुष्य सब पापोंसे छूटता है. विष्णुने भी कहा है, आरम्भ किये व्रतमें सूतक नहीं और जिसका आरम्भ न किया हो उसमें सूतक लगता है, और जो यह हेमाद्रिमें भविष्यका कथन है कि, संक्रांतिरहित महीने और मलमास और अशौचको बुद्धिमान् मनुष्य देव और पितृकर्ममें छोड दें, यह वाक्य चातुर्मास्यव्रतके प्रकरणमें पुत्रानुमन्त्रण मन्त्रके समान असंगत बीचमें पढदिये हैं, यह जानना. नहीं तो पूर्वोक्त पितृकर्म और विवाह आदिकका क्या प्रसंग था, और प्रकरण होभी तो प्रथमारम्भमें जानना. कोई यह कहते कि, प्रतिवर्ष चातुर्मास्य व्रतके करनेको पृथक् २ होनेसे अशौच आदि आपडै तो उनमें द्वितीय आदि कहना नहीं बनसक्ता, सो उचित नहीं है, जो मनुष्य हरिका स्मरण करता हुआ देवकर्मको प्रतिवर्ष करता है वह सूर्यके प्रकाश सदृश विमानमें बैठकर प्रलय पर्यन्त विष्णुके संग आनन्द भोगता है, यह हेमाद्रिमें भविष्यपुराणका वाक्य है, इतनाही विस्तार बहुत है ॥ शिवजीके भक्तोंको भी इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, शिवजी वा सूर्य वा गणेशकी भक्तिवाला मनुष्य होय तो इस व्रतको करके यथोक्त फलको भोगता है । व्रतके ग्रहण करनेका प्रकार तो हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा

देवस्य चक्रिणः । जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे च विबुद्ध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥ एवं तां प्रतिमां विष्णोः पूजयित्वा स्वयं नरः । प्रभाषेताग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि । इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ॥ निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव केशव ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं यदि मे भवेत् ॥ तदा भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे मृतो ह्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" ॥ ७ ॥ इति ॥ तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपरिचर्यायां च भविष्ये–" श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा । दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्" इति ॥ स्कान्देपि चातुर्मास्यकल्पे–" चत्वार्येतानि नित्यानि चतुराश्रमवर्णिनाम् । प्रथमे मासि कर्तव्यं नित्यं शाकव्रतं नरः ॥ द्वितीये मासि कर्तव्यं दधिव्रतमनुत्तमम् । पयोव्रतं तृतीये तु चतुर्थे निशामय ॥ द्विदलं बहुबीजं च वृन्ताकं च विवर्जयेत् । नित्यान्येतानि विप्रेन्द्र व्रतान्याहुर्मनीषिणः ॥ जम्बीरं राजमाषांश्च मूलकं रक्तमूलकम् । कूष्माण्डं चेक्षुदण्डं च चातुर्मास्ये त्यजेद्बुधः" ॥ ८ ॥ तथा–" विशेषाद्बदरीं धात्रीं कूष्माण्डं

है कि, फिर देवताओंके देव चक्रधारी भगवान्की पूजा करै और जुहीके फूलोंकी मालासे पूजन करै हे जगन्नाथ ! तुम जब शयन करते हो तब सम्पूर्ण जगत् सोता है और जब तुम जागते हो तब सब जगत् जागता है, इससे हे अच्युत ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो इसप्रकार विष्णुकी प्रतिमाका पूजन करके प्रातःकालके समय विष्णुके आगे कर जोडकर प्रार्थना करै कि, वर्षाके चार मास देवके उठने: पर्यंत इस व्रतको करता हूं, हे अच्युत ! मेरे व्रतको निर्विघ्न करो, यह व्रत मैंने आपके आगे ग्रहण किया है सो हे केशव ! आपकी कृपासे निर्विघ्न सिद्ध हो, यदि इस व्रतके ग्रहण करनेपर मेरा मरण हो जाय तो भी हे जनार्दन ! आपकी प्रसन्नतासे व्रत पूर्ण होजाय । हे देव ! यदि व्रतकी पूर्ति ग्रहण न होनेतक मैं मरजाऊं तौ भी हे जनार्दन ! आपकी कृपासे पूर्ण हो, यह सब भार्गवार्चनदीपिका और नृसिंहचर्य्यामें भविष्यपुराणके वाक्योंसे लिखा है । श्रावणमें शाक, भादोंमें दही और आश्विनमें दूध और कार्तिकमें द्विदल (दाल) इनको वर्जना चाहिये । स्कंदपुराणके चातुर्मास्य कल्पमें लिखा है कि, चारों आश्रम और चारों वर्णोंको ये चार नित्य जानने अर्थात् सदा करने चाहिये कि, प्रथम महीनेमें शाकव्रतको, दूसरेमें दधिव्रतको, तीसरेमें दूधव्रतको और चौथेमें द्विदल और बहुत बीजवाले बैंगन आदिको मनुष्योंको त्यागना चाहिये । हे विप्रेन्द्र ! बुद्धिमानोंने यह नित्यव्रत लिखे हैं, जम्बीरीनिम्बू, लोबिया, मूली और लालमूली (सलगम) काशीफल, गन्नेको चातुर्मास्यमें मनुष्य त्याग करै इसमें प्रमाण नहीं मिलता, इसीप्रकार विशेषसे बेर आंवला, काशीफल, इमली इनको वर्जे दे, जो

तिन्तिडीं त्यजेत्। जीर्णं धात्रीफलं ग्राह्यं कथंचित्कायशोधनम्'' इति ॥ तीर्थसौख्ये स्कांदे '' वार्षिकांश्चतुरो मासान् प्रसुप्ते वै जनार्दने। मंचखट्वादिशयनं वर्जयेद्भक्तिमान्नरः॥ अनृतौ वर्जयेद्भार्यां मांसं मधुपरौदनम्।पटोलं मूलकं चैव वृंताकं च न भक्षयेत्॥ अभक्ष्यं वर्जयेद्दूरान्मसूरं सितसर्षपम् । राजमाषान् कुलत्थांश्च आशुधान्यं च संत्यजेत् ॥ शाकं दधि पयो माषान् श्रावणादिषु संत्यजेत्'' ॥ ४ ॥ अत्र त्यजेदिति वर्जसंकल्परूपः पर्युदासो ज्ञेयः । व्रतोपक्रमात् ॥ अत्र केचित् 'शाकाख्यं पत्रपुष्पादि' इत्यमरकोशस्य शक्यतेशितुमनेनेति शाक इति क्षीरस्वामिना व्याख्यानात् व्यञ्जनमात्रस्य निषेधमाचक्षते ॥ अन्ये तु शाकशब्दस्य पत्रादिदशविधशाके योगरूढत्वात्, योगाच्च रूढेर्बलीयस्त्वात् सूपादीनामपि त्यागापत्तेश्च तत् प्रत्याचक्षते। तेन—'' मूलपत्रकरीराग्रफलकांडाधिरूढकाः। त्वक् पुष्पं कवकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम्'' ॥ इति क्षीरस्वामिनोक्तस्य शाकस्य निषेध इति ॥ अधिरूढकः अंकुरः ॥ वस्तुतस्तु—''तत्तत्कालोद्भवाः शाका वर्जनीयाः प्रयत्नतः । बहुबीजमबीजं च विकारि च विवर्जयेत्'' ॥ इति भविष्यवचनात्तत्कालोत्पन्नानां दशविधशाकानां निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवजातीयत्वं विवक्षितम् । तेनातपादिशोषितानां वर्षा-

---

किसीप्रकार देहकी शुद्धि (जुलाब) करनी होय तो पुराने आंवले ग्रहण करले तीर्थसौख्यमें स्कंदपुराणका कथन है कि, जनार्दनके शयन अर्थात् वर्षाके चार महीनेभर भक्तिमान् मनुष्य मञ्च और खट्वाको वर्जदे, और ऋतुकालको त्यागकर भार्या (स्त्री) को वर्ज दे । मांस, शहत पराया भात, पटोल, मूली बैंगन न खाय । अभक्षको त्याग दे, मसूर, श्वेतसरसों, कुलथी, आसूधान्य, (समा आदि) को त्याग दे और शाक, दधि, दूध, उडदको श्रावण आदि महीनेंमें त्याग दे, इसमें त्यागसे वर्जनेका संकल्प समझना, यहीं कोई शाकपदसे जिसके संग अन्न लगाकर खाया जाय इस अमरकोशकी व्युत्पत्ति और क्षीरस्वामीके व्याख्यानके व्यंजनमात्रका निषेध कथन करते हैं ॥ और तो यह कहतेहैं कि, पत्ते आदिकोंके बने हुए दश प्रकारके शाकमें शाकपद रूढ है और योगसे रूढी बलवान् है अन्यथा दाल आदिकोंका निषेध भी होजायगा । इससे पूर्वोक्त कथन सत्य नहीं तिससे मूल, पत्र करीर फल और डालियोंपर चढी बेल, त्वचा, पुष्प, छत्राक (ढाल) क्षीरस्वामीके कहे हुए दश प्रकारके शाकका निषेध है, डालोंपर चढी हुई बेलोंका जो दश प्रकारका शाक कहा है उसकाही निषेध है, अधिरूढ पदसे अंकुर ग्रहण करलेते हैं सिद्धान्त तो यह है कि, उस उस कालमें उत्पन्न हुए शाक यत्नसे वर्जने और बहुबीज बीजरहित और विकारीको भी त्याग देना चाहिये । इस भविष्यपुराणके वाक्यसे तिस कालमें उत्पन्न हुए दश प्रकारके शाकोंका निषेध है और वेभी उस कालमें उत्पन्न हुएके सजातीय लेने, न कि, उस कालमें उत्पन्न हुए, तिससे अन्य वर्षाऋतुमें उत्पन्न हुए और

न्तरोद्भवानामपि निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवत्वमात्रं विवक्षितं न तु तन्मात्रकालोद्भवत्वं गौरवात् । तेनान्यकालोद्भवानां तत्कालोद्भवानां च विंवादीनां निषेधः । अत्र तत्कालोद्भवा इति वीप्सावशात् स्वस्वकालोद्भवानां सर्वेषां निषेध इति निष्कर्षः । बहुबीजमित्यनेकबीजमिति केचित् । इतरावयवापेक्षया बीजावयवा यत्र बहवस्तदित्यन्ये ॥ अबीजं कन्दलादि ॥ वस्तुतस्तु । इदं महानिबन्धेष्वभावान्निर्मूलमेव ॥ आचारप्रदीपे—"वृन्ताकं च कलिङ्गं च बिल्वौदुम्बरभिस्सटाः । उदरे यस्य जीर्यते तस्य दूरतरो हरिः" ॥ तथापरार्के देवलः—" ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः" ॥ आमिषाणि चोक्तानि रामार्चनचंद्रिकायां पाद्मे—"प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बु जम्बीरं बीजपूरकम् । अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥ दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधामिषम् । रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं सुप्ते देवे विवर्जयेत्" ॥ २ ॥ पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये—"गोछागीमहिषीदुग्धादन्यदुग्धादि चामिषम् । धान्ये मसूरिकाः प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ॥ द्विजक्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा । ताम्रपात्रस्थितं गव्यं जलं पल्वलसंस्थितम् ॥ आत्मार्थे पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः" ॥ ३ ॥ तथा—"निष्पावान् राजमाषांश्च मसूरं

धूपमें सुखाये हुए शाकोंको भी त्यागना चाहिये । और उस कालमें उत्पन्न हुओंके सजातीयही शाक लेने चाहिये, कुछ उसी समय पैदा हुए ग्रहण न करने उनके लेनेमें गौरव है, और यहां उस उस समय उत्पन्न हुए वीप्सा (दो वार पढना) के वशसे अपने २ समयमें उत्पन्न हुए सब शाकोंका निषेध है यह सब सिद्धान्त है और कोई वहुवीज शब्दसे अनेक बीज ग्रहण करना कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि, दूसरे अवयवोंकी अपेक्षा, जिसमें अवयव बहुत हों उसे बहुवीज कहते हैं, और अबीज पदसे कन्द आदि ग्रहण करने, सिद्धान्त तो यह है कि, यह बडे २ ग्रन्थोंमें न मिलनेसे यह अप्रमाण है आचारदीपमें कहा है कि, बैंगन, कलिंग, बेर, गूलर ये जिसके उदरमें पचकर रहजांय उससे नारायण दूर रहते हैं. अपरार्कमें देवलने कहा है कि, व्रतोंमें ये चार व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ हैं कि, ब्रह्मचर्य, शौच, सत्य बोलना, मांसका त्याग रामार्चनचन्द्रिकामें पद्मपुराणके वाक्यसे इतने आमिष लिखे हैं, कि प्राणीके अंगका चूर्ण, चमडेका जल, जम्बीरी, बिजौरा, यज्ञसे नहीं शेष रहा अन्न, मसूर यह आठ प्रकारका आमिषही है उस उस देशमें मिलने योग्य और रोचक इनको देवके शयनकालमें त्याग देना चाहिये कार्तिकमाहात्म्यमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, गौ, बकरी, भैंसके दूधसे अन्य दूधभी आमिष कहाता है और अन्नमें मसूर और बासी अन्न तथा ब्राह्मणसे खरीदे हुए सम्पूर्ण रस और भूमिमें उत्पन्न लवण तांम्बेके पात्रमें स्थित गौका दूध, दही, घी छोटे सरोवरका जल अपने निमित्त पकाया अन्न यह सब पण्डितोंने आमिष कहे हैं ॥ और समा लोबिया, मसूर, सणका साग,

सन्धितानि च। वृन्ताकं च कलिंगं च सुप्ते देवे विवर्जयेत् ॥ " सन्धितानि लवण-शाकादीनि । तत्रैव विष्णुधर्मे-'चतुर्ष्वपीह मासेषु हविष्याशी न पापभाक् ' ॥ हविष्याणि तु पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्ये-" हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवा-स्तिलाः । कलायकंगुनीवारवास्तुकं हिलमोचिका ॥ षष्टिका कालशाकं च मूलं केमुकेतरत् । कंदः सैंधवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसा-म्रहरीतकी । पिप्पली जीरकं चैव नागरंगं च तिन्तिणी ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते " ॥२॥ इति ॥ सिता-स्विन्नम् अनग्निपक्वं धान्यं च तंडुलाः ॥ केमुकम् 'केमुत' इति प्राच्येषु प्रसिद्धः कंदः॥ ' कलायस्तु सतीनकः ' इत्यमरः ' बटुरी ' इति प्रसिद्धं धान्यम् । मदनरत्नेप्येवम्॥ अगस्त्यसंहितायाम् । हैमन्ताद्युक्त्वा-"नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा । आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी ॥ व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधाः "॥ अन्यान्यपि व्रतान्युक्तानि हेमाद्रौ भविष्ये-"स्त्री वा नरो वा मद्भक्तो धर्मार्थं सुदृ-ढव्रतः ॥ गृह्णीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकान् ॥ तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्क-र्तॄणां पृथक् पृथक् । मधुरस्वरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥ तैलस्य वर्जनाद्रा-जन् सुन्दरांगः प्रजायते । कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशः प्रजायते ॥ योगाभ्यासी भवेद्यस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् । तांबूलवर्जनाद्भोगी रक्तकंठश्च जायते ॥ घृत-

---

बैंगन, कलिंग इनको देवशयनमें त्याग देना । वहांही विष्णुधर्मका कथन है कि, जो मनुष्य चातुर्मास्यमें हविष्य भोजन करता है वह पापभागी नहीं होता, पृथ्वीचन्द्रोदयमें भविष्यपुराणके वाक्यसे हविष्य ये लिखे हैं कि, हेमन्तकी खांड, विना अग्नि पकाया अन्न, चावल, मूंग, यव, तिल, कलाय (सतीनक) जिसको मटर कहते हैं, कांगनी, नीवार, वथुवा, हिलमोचिका, शाठी, कालशाक, मूलीके मुकसे भिन्न कन्द, शैला, समुद्रझाग, दही, घी, गौका दूध, पनस (कटहल), हरड, पीपल, जीरा, नागरमोथा, इमली, केला, लवली, आँवले, गुडसे भिन्न इक्षुका विकार विना तेल पकाये हुए इनको मुनिजन हविष्य कहते हैं । मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है, अगस्त्यसंहितामें भी पूर्वोक्त हेमन्त आदिको कहकर यह कहा है कि, नारियल, केला, लवली, आम्र, आमला, पनस, हरड और अन्य व्रतोंमें प्रसिद्ध (ताल आदि) को भी पण्डितजनोंने हविष्य कहा है, और भी फल हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे इस प्रकार लिखे हैं कि, स्त्री वा मनुष्य मेरा भक्त दृढ संकल्प करके दन्तधावन (दतोन) करके इन नियमोंको ग्रहण करै, उनके करनेवालेके फलोंको भिन्न भिन्न कहता हूं कि, गुडके त्यागनेसे मधुरस्वरवाला राजा होता है तैलके त्यागनेसे सुन्दरवर्ण मिलता है, कडुवे तेल त्यागनेसे शत्रुनाश होते हैं, जो योगका अभ्यास करै वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है, ताम्बूलके त्यागनेसे भोगवान् और लाल-

त्यागाच्च लावण्यं सर्वस्निग्धतनुर्भवेत् ।शाकपत्राशनाद्रोगी अपकादोऽमलो भवेत्॥ भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत्॥ एकांतरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते॥ धारणान्नखरोम्णां च गंगास्नानफलं लभेत् । मौनव्रती भवेद्यस्तु तस्याज्ञास्खलिता भवेत् ॥ भूमौ भुंक्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् । प्रदक्षिणाशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ॥ हंसयुक्तविमानेन स च विष्णुपुरं व्रजेत् । अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान् धर्म्यान्विशेषतः ॥ षष्ठान्नकालभोक्ता यः कल्पस्थायी भवेदिति ॥ पर्णेषु यो नरो भुंक्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ॥ गुडवर्जी नरो दद्यात्तद्भृतं ताम्रभाजनम् ॥ सहिरण्यं नरश्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः ॥ सुप्ते देवे तु यो विष्णोः शिवस्याङ्गण-मर्चयेत् । पंचवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकैस्तथा ॥ स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात् " ॥ घृतांते दाननिर्णयः । अथैषां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि । एकभुक्तव्रते दंपती संपूज्य धेनुर्देया । नक्ते वस्त्रयुगम् । एकांतरोपवासे गौः । भूशयने शय्या । षष्ठकालभोजने गौः । व्रीहिगोधूमादित्यागे हैमव्रीह्यादि । कृच्छ्रे गोयुग्मम् । शाकाशने गौः पयोव्रते च । दधिमधुघृतव्रतेषु वासो गौश्च । ब्रह्मचर्ये स्वर्णमूर्तिः । ताम्बूलव्रते वासोयुगम् । मौने घृतकुम्भो वस्त्रयुगं घण्टा च॥

कण्ठ होता है, घृतके त्यागनेसे शोभी और चिकना शरीर होता है, पके हुए शाकोंके भोजनसे रोगी, और कच्चोंके खानेसे उज्ज्वल होता है, भूमिके बिछौनेपर सोनेवाला ब्राह्मण मुनियोंमें श्रेष्ठ होता है, एकान्तव्रत (तृतीयदिनभोजन) से ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है, नख और केशोंके धारणसे गंगास्नानका फल मिलता है, जो मौनव्रत धारण करते है, उसकी आज्ञा सब पालन करते हैं जो सदैव भूमिपर भोजन करता है, वह भूमिका पति होता है, और स्तोत्र-पाठ करता है वह भूमिका पति होता है और स्तोत्रपाठ करता हुआ जो सौ प्रदक्षिणा करता है, वह हंसोंके विमानमें बैठकर विष्णुके लोकमें गमन करता है, अयाचितके भक्षणसे धर्मवाले पुत्रोंको प्राप्त होताहै जो छठे समयमें भोजन करता है वह स्वर्गमें एक कल्पतक निवास करता है, जो मनुष्य पत्तोंमें भोजन करता है उसे कुरुक्षेत्र स्नानका फल मिलता है गुड त्यागनेवाला मनुष्य गुडसे भरे सोने सहित तांबेके पात्रको दान करै हे नरश्रेष्ठ ! लवणकी भी यही विधि है, देवशयनके समय जो विष्णु और शिवजीके आंगनकी ऐसी पूजा करता है, जिसमें पांच रंगके स्वस्तिक (पद्मके चिह्न) हों, वह रुद्रलोकमें जाकर गणोंका पति होता है ॥ इसके उपरान्त इन व्रतोंकी समाप्ति होनेपर कार्तिककी पूर्णमासीको दान कहते हैं, कि, नक्त व्रतमें दो वस्त्र, एकान्तर व्रतमें गौ, भूमिपर सोनेमें शय्या, छठे काल भोजनमें गौ, चावल और गेहूंके त्यागमें सोनेके तन्दुल आदि, कृच्छ्रव्रतमें दो गौ, शाकभोजन और दूधके व्रतमें गौ, मधु, दही, घीके व्रतमें वस्त्र, और गौ, ब्रह्मचर्यमें सोनेकी मूर्ति, ताम्बूलके व्रतमें दो वस्त्र, मौनमें

देवाग्रे रंगमालिककरणे धेनुर्हेमपद्मं च । दीपिकाव्रते दीपिका वासोयुगं च । भूमिभोजने च कांस्यपात्रं गौश्च । चतुष्पथदीपे गोग्रासे च गोवृषौ । प्रदक्षिणाशतें वस्त्रम् । अनुक्तेषु स्वर्णं गौश्च ॥ इत्यादि हेमाद्रौ ज्ञेयम् । तथा च भार्गवार्चनदीपिकायां पाद्मे–"शयनीबोधिनीमध्ये शमीदूर्वापमार्गकैः । भृंगराजेन देवांस्तु नार्चयीत कदाचन ॥ " हेमाद्रौ पाद्मे–"आषाढादिचतुर्मासानभ्यंगं वर्जयेन्नरः । समाप्तौ च पुनर्दद्यात्तिलतैलयुतं घटम् ॥ आषाढादिचतुर्मासं वर्जयेन्नखकृन्तनम् । वृंताकं गृञ्जनं चैव मधुसर्पिर्घटोचितम् ॥ कार्त्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्" ॥ ३ ॥ अन्यान्यपि केशकर्तनादिवर्जनसंकल्पानुरूपाणि पृथ्वीचन्द्रोदये ज्ञेयानि । टोडरानन्दे स्कांदे–" एकान्तरं द्व्यन्तरं वा कुर्यान्मासोपवासकम् । अनोदनं फलाहारं नक्तव्रतमथापि वा " ॥ तप्तमुद्राधारणनिर्णयः । अत्रैव तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायां भविष्ये–"शयन्यां चैव बोधिन्यां चक्रतीर्थे तथैव च ॥ शंखचक्रविधानेन वह्निपूतो भवेन्नरः ॥ इति । 'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते' इति ऋग्वेदात् । "स होवाच याज्ञवल्क्यस्तस्मात् पुमानात्महिताय हरिं भजेत् । सुश्लो-

घीका घट और दो वस्त्र और घण्टा, देवके आगे चित्राम करनेमें गौ और सोनेका पद्म दीपकके व्रतमें, दीवट और दो वस्त्र, भूमि और पत्तोंके भोजनमें कांसीका पात्र, और गौ, चौराहेमें दीपक और गोग्रासमें गौ और बैल, सौ प्रदक्षिणामें वस्त्र दे । जिनका दान नहीं कहा उनमें सोना और गौका दान करै इत्यादिक सब हेमाद्रिमें लिखा है, वहां देखलेना । तैसेही मार्गवार्चनदीपिकामें पद्मपुराणका वाक्य है कि, शयनी बोधिनी एकादशियोंके बीचमें मनुष्य शमी (जांड), दूब, चिरचिटा, भांगरा इनसे देवताओंका पूजन कदाचित् भी न करै, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, आषाढ आदि चार मासोंमें मनुष्य उवटना न लगावे और समाप्तिमें तिलके भरे घडेका दान करै आषाढ आदि चार महीनोंमें नखोंको न कटवावे और वैंगन गाजरको भी न खाय और कार्तिककी पूर्णिमाको मधु ओर घीसे युक्त सोनेका घडा ब्राह्मणको दे और भी संकल्पसे त्यागने योग्य पदार्थ पृथ्वीचन्द्रोदयमें लिखेहैं वो देखने चाहिये टोडरानन्दमें स्कन्दपुराणका लेख है कि, एकान्तर वा दो अन्तर वा दो महीनोंका व्रत, चावलका त्याग, फलाहार. नक्तव्रत इनको करै ॥ इसमेंही तप्तमुद्राका धारण रामार्चनचन्द्रिकामें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै, कि शयनी वा बोधिनीको और चक्रतीर्थमें शंखचक्रकी विधिसे मनुष्य अग्निसे पवित्र होजाय. और ऋग्वेदमें भी कहा है कि, जो तप्त शरीर नहीं वह मोक्षको प्राप्त नहीं होता, और

१ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समा शत । ऋ० । ३ । ८ ॥ सायनभाष्यम्–हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्य स्वामिन् सोम ते पवित्रं शोधकं अंगं विततं सर्वत्र विस्तृतं स प्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरंगाणि पर्येषि परिगच्छसि विश्वतः सर्वतः तव तत्पवित्रं अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असंतप्तगात्रः आमः अपरिपक्वो नाश्नुते न व्याप्नोति शृता स इत् शृता एव परिपक्वा एव वहन्तो यागं निर्वहन्तः तत्पवित्रं

कर्मौलेर्वर्माण्यग्निना संदधते " इति शतपथश्रुतेः ॥ "प्रतद्विष्णो अब्जचक्रे सुतप्ते जन्मांभोधौ तर्तवे चर्पणींद्राः ॥ मूले बाह्वोर्दधन्ये पुराणातु लिंगान्यंगेतप्तायुधान्यर्पयंतः " ॥ इति सामवेदात् ॥ "अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम् " इति पद्मपुराणाच्चेति ॥ " ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः । शंखमुद्रांकिततनुस्तुलसीमञ्जरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्तांगो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः" इति काशीखण्डात् ॥ तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकातो ज्ञेयः ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयादयस्तु–"यस्तु सन्तप्तशंखादि लिङ्गचिह्नतनुर्नरः । स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु॥द्विजं तु तप्तशंखादिलिंगांकिततनुं नरः । सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश" ॥२॥ इति बृहन्नारदीयोक्तेः ॥ शंखचक्राद्यंकनं च गीतनृत्यादिकं तथा । एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद्द्विजन्मनः ॥ शंखचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा । स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु। तथा चक्रांकितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः" ॥३॥

शतपथकी भी यह श्रुतिहै कि, याज्ञवल्क्य कहने लगे कि, तिससे पुरुप अपने हितके निमित्त हरिको भजन करै । और हरिके चक्रोंको अग्निसे तपाय अंगोंमें धारण करै, हे विष्णो ! भव-सागरके तरनेके निमित्त जो तुम्हारे शंख चक्रसे तपते हैं वे स्वर्गमें इन्द्र होतेहैं, भुजाओंके मूलमें जो तुम्हारे सनातन लिंगोंको धारण करतेहैं वह तुम्हारे भक्त होतेहैं, यह सामवेदका वाक्य है । और पद्मपुराणमें भी लिखा है कि, ब्राह्मणके निमित्त अग्निहोत्र वेदका पढना जैसे नित्य है तैसे तप्तमुद्रिकाका धारण करना भी नित्य है, और काशीखण्डमें भी लिखा है कि, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य शूद्र वा अन्यजाति जो मनुष्य शंख, चक्र, तुलसीकी मञ्जरी गोपीचन्दनको अपने अंगमें धारण करते हैं उनके पाप कहां ॥ शंख चक्र लेनेकी विधि तो रामर्चनचंद्रिकामें लिखी है, पृथ्वीचन्द्रोदय आदि तो यह कहते हैं कि अग्निसे तपाये हुये शंख चक्रसे अंकित शरीरवालेके संग सम्भाषण करनेवाला मनुष्य इतने समय रौरवनरकमें जाता है जबतक चौदह १४ इन्द्र भोगैं, यह बृहन्नारदस्मृतिमें लिखा है शंख चक्रसे अंकित होना, गाना और नाचना यह शूद्रका धर्म है, द्विजातियोंका नहीं है। जो मनुष्य मृत्तिकासे वा तपाये लोहेसे अपने शरीरपर शंख चक्र अंकित करते हैं, वह द्विजातियोंके सम्पूर्ण कर्मसे शूद्रके समान बाहर करने योग्य हैं । जैसे श्मशानकी भूमिका काष्ठ सब कर्मोंके अयोग्य हैं, इस प्रकार शंख चक्रसे अंकित ब्राह्मण भी कर्मके अयोग्य हैं, तैसेही आश्वलयानका कथन

समाशतं व्याप्नुवन्ति ॥ भावार्थः--हे मन्त्रके स्वामी सोम आपका पवित्र अंग सब ओर विस्तृत है समर्थ आप सबकी पालना करते हो आपके पवित्र स्वरूपको पयोव्रत ब्रह्मचर्यादिसे रहित अपरिपक आत्मावाला पुरुष नहीं प्राप्त होता और जो तपसे शुद्ध हैं वे तपका आचरण करते हुए उस शुद्धस्वरूपको भली प्रकार पाते हैं इस मन्त्रमें शरीर दगानेका कुछभी प्रसंग नहीं है ॥

तथा-" शिवकेशवयोरंकाञ्छूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेत मतिमान्वैदिके वर्त्मनि स्थितः " इति विष्ण्वाश्वलायनादिवचनात् ऋग्वेदादिश्रुतीनामन्यार्थत्वादन्यश्रुतीनां चासत्त्वात् चक्रादिधारणं शूद्रविषयमित्यूचुः नृत्यं चोदरार्थं निषिद्धमिति श्रीधरस्वामी । यद्यपि निषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वाद्विधिं विना च तद्योगादुपजीव्यविरोधेन 'न तौ पशौ करोति' इतिवद्विकल्पो युक्तस्तथापि एकजातेरयं धर्म इत्यनेन सामान्यवाक्यानामुपसंहरात् द्विजातिनिषेधो नित्यानुवाद इति तदाशयः ॥ अत्र शिष्टाचार एव संकटपाशनिःसरणसृणिरिति संक्षेपः ॥ आषाढशुक्लपूर्णिमायां कोकिलाव्रतविधिः । आषाढपौर्णमास्यां कोकिलाव्रतमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये-" आषाढपौर्णमास्यां तु सन्ध्याकाले ह्युपस्थिते । संकल्पयेन्मासमेकं श्रावणे प्रत्यहं ह्यहम् ॥ स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्यस्थिता सती । भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यं करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥" इति । अस्य नक्तव्रतत्वात् सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ तत्र शिवशयनोत्सवनिर्णयः । अत्रैव शिवशयनोत्सव उक्तो हेमाद्रौ वामनपुराणे-" पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे । वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहिवर्ष्मणा ॥ " मदनरत्नेप्येवम् । इयं च प्रदोषव्यापिनी ॥ व्यासपूजानिर्णयः । अत्रैव व्यासपूजोक्ता । तत्र त्रिमुहूर्ता चेत् परैवेति संन्यासपद्धतौ-'त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्व क्षौरप्रणामयोः' इति वचनात् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिनकरभट्टानुजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आषाढमासः समाप्तः॥

है कि, द्विज, शिव और विष्णुके शूल चक्र आदि अंक (चिह्न) को वैदिक कर्ममें स्थित और बुद्धिमान् होकर न करै, इससे पूर्वोक्त ऋग्वेद आदि श्रुतियोंका और ही अर्थ है औ॰ अन्यश्रुति नहीं है इससे चक्र आदिका धारण शूद्रोंके निमित्त है, श्रीधर स्वामीने किसीके कहने से निषेध कहा है, यद्यपि प्राप्तिके विना निषेध नहीं होसकता, उनको पशु नहीं करता, इसके समान विकल्प युक्त है, तथापि एक जातिका यह धर्म है, इससे सब सामान्य वाक्योंकी (पूर्ति) होनेसे द्विजातिको चक्रांकित होनेका निषेध नित्यानुवाद (अर्थात्सिद्ध) है इस संकट पाशके काटनेके निमित्त शिष्टाचारही अंकुश है, इति संक्षेपः ॥ आषाढकी पूर्णिमाको कोकिलाका-व्रत हेमाद्रिग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमाको संध्याकालके समय यह संकल्प करै कि, मैं नियमसे ब्रह्मचर्ययुक्त होकर प्रतिदिन स्नान, रात्रिमें भोजन, भूमिपर शयन, प्राणियोंपर दया करूंगी, इसको रात्रिव्रत होनेसे यह सायाह्नव्यापिनी करनी । इसी दिन शिवजीका शयन भी हेमाद्रिग्रन्थमें वामनपुराणके वाक्यसे कहा है कि, पौर्णमासीको शिवजी जटाभारको सांपके शरीरसे बांधकर व्याघ्रचर्मके विस्तरपर शयन करते हैं, मदनरत्नमें भी यही कहा है, यह भी प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी ॥ इस दिनही व्यासकी पूजा लिखी है संन्यासपद्धतिमें यह लिखा है कि, तीन मुहूर्त होय तो अगली लेनी. कारण यह है कि, पर्व क्षौर

अथ श्रावणमासः । कर्कसंक्रांतिनिर्णयः । कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशद्दंडाः पुण्यकालः सूर्योदयोत्तरं संक्रमे तु परत एव पुण्यं रात्रौ तु निशीथात् प्राक् परतश्च संक्रमे अपरार्कहेमाद्र्यनन्तभट्टादिमते पूर्वोत्तरदिनयोः पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । " धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमते रविः ॥ दिनान्ते पंचनाडयस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः । उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि " ॥ २ ॥ इति स्कान्दोक्तेः ॥ पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नसंक्रान्तिपरम् । वक्ष्यमाणवचोविरोधादित्युक्तं मदनरत्ने । तेनायमर्थः—रात्रौ पूर्वभागे मकरे उदये पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । रात्रावपरभागे कर्कटे दिनान्ते पञ्च नाड्यः पुण्यकालः । विषुवतोस्तु पूर्वदिने पश्चापरदिने च पंचेति वाक्यान्तरानुरोधात् । तेन हेमाद्रिमाधवयोः सर्ववचनानां चाविरोधः । माधवमते तु " अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा संक्रान्तौ दक्षिणायने । पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥ " इति वृद्धगार्ग्योक्तेः । "मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः । प्रभाते वा निशीथे वा तद्‍ पुण्यं तु पूर्वतः " इति भविष्योक्तेश्च पूर्वदिने एव पुण्यं दाक्षिणात्यास्त्वेतदेवाद्रियन्ते । अत्र रात्रावपि स्नानादि भवतीत्युक्त प्राक् । अत्र दानोपवासादि पूर्वमुक्तम् ।

और प्रणाममें तीन मुहूर्तसे अधिक तिथि लेनी चाहिये ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजदिन० कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाषाढमासः समाप्तः ॥ कर्ककी संक्रांतिमें पहली तीन घडीका पुण्यकाल है । सूर्योदयके पीछे संक्रांति होय तो अपरार्क हेमाद्रि अनन्तभट्ट आदिके मतसे प्रथम और पिछले दिन पांच घडी पवित्र काल है । कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, धनु, मीन, कन्या, मिथुनको त्यागकर रात्रिके प्रथम वा पिछले भागमें सूर्यकी संक्रांति होय तो पांच घडी दिनके पीछे और पांच घडी सूर्यके उदयमें, देवता और पितरोंके कर्ममें पुण्य कही है और रात्रिके प्रथम वा पिछले दिनमें यह वाक्य भी मकर और कर्कसंक्रांतिसे भिन्न संक्रांतिके विषयमें आगे कहे वाक्यके विरोधसे जानना. यह मदनरत्नमें लिखा है, तिससे यह अर्थ है कि, रात्रिके पूर्वभागमें मकरकी संक्रांति होय तो उदयकी पांच घडी और रात्रिके पिछले भागमें कर्ककी संक्रांति होय तो दिनके अन्तकी पांच घडी पवित्रकाल है और विषुव (तुला और मेष) संक्रांतियोंमें प्रथम दिन और पिछले दिन पांच घडी इस वाक्यान्तरका भी अनुरोध है तिससे हेमाद्रि, माधव और सब वाक्योंका कुछभी विरोध नहीं. माधवके मतमें तो अर्धरात्रि वा उसके पीछे उदयसे प्रथम दक्षिणायन होय तो पूर्व दिनही ग्रहण करना. यह वृद्धगर्गका कथन है । और यह भविष्यकाभी वाक्य है कि, मिथुनके उपरान्त यदि सूर्यकी कर्कसंक्रांति होय तो चाहे प्रभातकाल हो वा अर्द्धरात्रमें तो पुण्यकाल पूर्वदिनमें होता है दाक्षिणात्य भी इस वचनकाही आदर कथन करते हैं, इसमें रात्रिमें भी स्नान आदि करते हैं यह पहले कह आये हैं, इसमें दान और व्रत आदि प्रथम लिख आये हैं, तैसेही

११

तथा कर्के केशादिकर्तनं निषिद्धम् " कुम्भे कर्कटके वापि कन्यायां कार्मुके रवौ । क्षौरखण्डं गृहस्थस्य पितॄन् प्राशयते यमः ॥ इति सुमन्तुवचनादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥नदीनां रजोदोषनिर्णयः । अथ नदीनां रजोदोषः ॥ हेमाद्रावत्रिः– "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः।न स्नानादीनि कर्माणि तासु कुर्वीत मानवः॥" इदं च क्षुद्रनदीषु । "सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः । तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः " इति व्याघ्रोक्तेः । मात्स्ये त्वगस्त्योदयावधित्वमुक्तम् । "यावन्नोदेति भगवान् दक्षिणाशाविभूषणः । तावद्रजो महानद्यः करतोयाः प्रकीर्तिताः–" करतोया अल्पतोयाः । तथा कात्यायनः–" याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे कुसरितो भुवि । तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे ॥ " इदं चापदि । स्मृतिसंग्रहे–" धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते । न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ " महानदीषु विशेषः । महानदीषु तु भविष्ये उक्तम्–"आदौ तु कर्कटे देवि महानद्यो रजस्वलाः । त्रिदिनं च चतुर्थेह्नि शुद्धा स्युर्जाह्नवी यथा ॥ " महानदीनां नामानि । महानद्यश्च ब्राह्मे–"गोदावरी भीमरथी तुंगभद्रा च वेणिका।

कर्कमें केश आदिका कटवाना भी निषिद्ध है. कारण कि, सुमंतुने कहा है कि, कुंम्भ कर्क कन्या और धन संक्रांतियोंमें गृहस्थीके कटवाये बालोंको यमराज पितरोंको भोजन कराते हैं जीवत्पितृकनिर्णयमें गुरुओंने भी कहा है ॥ अब नदियोंके रजोदोषको कथन करतेहैं । हेमाद्रिमें अत्रिका वाक्य है कि, सिंह और कर्कके मध्यमें सम्पूर्ण नदी रजस्वला होती हैं उनमें मनुष्योंको स्नान आदि कर्म न करना चाहिये, यह निषेध क्षुद्रनदियोंमें है, इसका कारण व्याघ्रने लिखा है कि, सिंह कर्कके मध्यमें सब नदी रजस्वला होती हैं उनमें समुद्रमें जानेवाली नदियोंको त्यागकर स्नान न करै, मत्स्यपुराणमें तो अगस्त्यके उदय पर्यन्त लिखा है कि, इतने दक्षिणदिशाके भूषण भगवान् अगस्त्यका उदय न हो उतने कालतक नदियोंमें रज वहती है और अल्पतोय कहाती हैं. यहीं कात्यायनने लिखा है कि, जो निंदित नदी भूमिपर ग्रीष्मऋतुमें सूख जाती हैं उनमें वर्षाके समय इतने कालतक स्नान न करै, जबतक दश दिन पूर्ण न हों, यहभी आपत्कालमें है, स्मृतिसंग्रहमें कहा है कि, जिनका प्रवाह आठ सहस्र धनुषतक नहीं वह नदी नहीं किन्तु गर्त कहाती है ॥ महानदियोंमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, कर्ककी आदिसे हे देवि ! महानदी भी रजस्वला तीन दिन होती हैं चौथे दिन गंगाके समान शुद्ध होजाती हैं ॥ महानदी ब्रह्मपुराणमें लिखी हैं, गोदावरी, भीमरथी

---

१ धनकुम्भौ द्विधा कृत्वा पूर्वभागं यदि त्यजेत् । कर्कटस्यान्तिमं भागं कन्यां तु सकलां त्यजेत् ॥ धनकुम्भको दो भाग करके पूर्व भाग छोड दे कर्कका अन्तिम भाग और कन्याक सब भाग त्याग दे यह कहते हैं ॥

तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः ॥ भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती । विशोका च विहस्ता च विन्ध्यस्योत्तरसंस्थिताः ॥ द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसंभवाः" ॥ २ ॥ मदनरत्ने पुराणान्तरे- "महानद्यो देविका च कावेरी वंजरा तथा । रजसा तु प्रदुष्टाः स्युः कर्कटादौ त्र्यहं नृप ॥ "कात्यायनः-" कर्कटादौ रजोदुष्टा गोमती वासरत्रयम् । चन्द्रभागा सती सिन्धुः सरयूर्नर्मदा तथा॥" इदं गंगाद्यतिरिक्तविषयम् । "गंगा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती । रजसा नाभिभूयंते ये चान्ये नदसंज्ञिताः ॥ शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितवर्वराः । शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः" ॥ २ ॥ इति देवलोक्तेः ॥ यत्तु-"प्रथमं कर्कटे देवि त्र्यहं गंगा रजस्वला" इत्यादिवचनम् । तज्जाह्नवीभिन्नगोदावर्यादिगंगान्तरपरमिति मदनरत्ने । अन्ये त्वन्तर्गतरजोविषयम् । "गंगा धर्मद्रवः पुण्या यमुना च सरस्वती । अन्तर्गतरजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः ॥"इति निगमोक्तेः । तीरवासिनां तु रजोदोषो नास्ति । 'न तु तत्तीरवासिनाम्' इति निगमोक्तेः । रजोदुष्टमपि जलं गंगाजलयोगे पावनम् । 'गंगाम्भसा समायोगाद्दुष्टमप्यम्बु पावनम्' इति मात्स्योक्तेः ॥ नूतनकूपादौ तु योगियाज्ञवल्क्यः-"अजा गावो

तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी ये विंध्याचलके दक्षिण भागमें कही हैं, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, विहस्ता ये विंध्याचलके उत्तरभागमें स्थित हैं, देवता ऋषियोंके क्षेत्रोंसे उत्पन्न हुई ये बारह महानदी हैं । मदनरत्नमें और पुराणका वाक्य है कि देविका, कावेरी, वंजरा ये महानदी कर्क आदि संक्रांतिमें तीन दिन रजस्वला होती हैं, कात्यायनने कहा है कि, कर्कआदि संक्रांतिमें गोमती, चन्द्रभागा, सिन्धु, सरयू, नर्मदा ये तीन दिन रजसे दुष्ट होती हैं । यह गंगासे भिन्न नदियोंमें जानना कारण कि, देवलने कहा है-कि, गंगा, यमुना, प्लक्षजाता सरस्वती और जो नदसंज्ञक हैं इतनी रजसे दूषित नहीं होतीं, शोण, सिन्धु, हिरण्य, कोक, लोहित, वर्वर, शतद्रु, ये सात पवित्र करनेवाले नद कहाते हैं. जो यह वाक्य है कि, कर्कसंक्रांतिमें प्रथम तीन दिन गंगा रजस्वला होती है सो गंगासे भिन्न गोदावर्य्यादि गंगाके विषयमें है यह मदनरत्नमें लिखा है, कोई तो अन्तर्गत रजका दोष है यह कहते हैं गंगा धर्मद्रव और पवित्र है ऐसेही यमुना और सरस्वती है । यह अन्तर्गत रजोदोष होनेसे सब अवस्थाओंमें निर्मल हैं, और ये सब अवस्थाओंमें पवित्र हैं और निकटके वसनेवालोंको तो इस शास्त्रके वाक्यसे रजका दोष नहीं लगता कि, तटके वासियोंको रजका दोष नहीं लगता, रजसे दूषितभी जल गंगाजलके संयोगसे शुद्ध होता है कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, दूषितजलभी गंगाजलके योगसे शुद्ध होता है । नये कूपआदि जलमें तो योगी याज्ञवल्क्यका यह कथन है कि, बकरी, गौ, भैंस और प्रसूता ब्राह्मणी यह

भोहष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका । भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥" इति कचित्त्वदोषमाह व्याघ्रपादः–"अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम् । रजोदुष्टेपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति "॥ गौडास्तु–'अन्येनापि समुद्धृतः' इति द्वितीयपादे पाठः । तेनोद्धृते न दोषः । तथा च तासु स्नानं नेति प्रागुक्तमित्याहुः । वसिष्ठोपि–" उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते " ॥ इत्यलं विस्तरेण ॥ श्रावणशुक्लतृतीयानिर्णयः । श्रावणशुक्लतृतीया मधुस्रवाख्या । मधुस्रवा गुर्जरेषु प्रसिद्धा ॥ सा परयुता ग्राह्येति दिवोदासः ॥ श्रावणशुक्लचतुर्थीनिर्णयः । श्रावणशुक्लचतुर्थी पूर्वयुता 'मातृविद्धा गणेश्वरः' इत्यादिवचनात् ॥ श्रावणशुक्लपञ्चमी–(नागपञ्चमीनिर्णयः) । श्रावणशुक्लपञ्चमी नागपूजादौ परैवेति सामान्यनिर्णये उक्तम् ॥ चमत्कारचिन्तामणौ" पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका" ॥ इति ॥ " श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः" ॥ इति मदनरत्नेभिधानाच्च । तेन परैवेति । अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये–"श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप । द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः । पूजयेद्विधिवद्वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः । गन्धपुष्पोपहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरःसराः । न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित् " इति ॥ श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधि-

---

दशरात्रमें पवित्र होती हैं, और कहीं तो व्याघ्रपादने दोष नहीं लिखा कि, जहाँ कूप और बावडी न मिलैं और जिसका जल सदैव रहै ऐसी नदीके जलमें ग्रामका भोग दूषित नहीं होता, गौड तौ यह लिखते हैं कि, औरके लाये हुएमें दोष है, और स्वयं लानेमें दोष नहीं है तिससे उनमें न न्हाय यह प्रथम कथन कर आये हैं. वसिष्ठने भी कहा है कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, प्रेतका स्नान, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें रजका दोष नहीं लगता विस्तारसे अधिक प्रयोजन नहीं ॥ श्रावणसुदी ३ मधुश्रवा गुर्जरोंमें प्रसिद्ध है उसको परसंयुक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदासने कहा है ॥ श्रावणसुदी ४ गणेशजीका व्रत तृतीयाके वेधमें होता है, इस कथनसे पूर्वतिथिसंयुक्त लेनी ॥ श्रावणसुदी ५ नागपूजा आदिमें अगली लेनी यह सामान्यनिर्णयमें लिख आये हैं. चमत्कारचिन्तामणिमें लिखा है कि, नागपूजामें षष्ठीसे युक्त पञ्चमीव्रत करना चाहिये उसमें नाग प्रसन्न होतेहैं, और सब पञ्चमी चतुर्थीसे युक्त लेनी चाहिये । मदनरत्नमें भी लिखाहै कि, श्रावणशुक्ला पञ्चमी नागपंचमी लिखी है, उसे छोडकर और चतुर्थीसे युक्त श्रेष्ठ हैं, तिससे अगलीही लेनी इसका विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! श्रावणशुक्ल पञ्चमीको गृहके द्वारके दोनों ओर गोबरसे लीप सर्पोंको काढै और हे वीर ! दही, दूर्वा, कुशा, गन्ध, फूल, भेंट ब्राह्मणभोजनसे विधिपूर्वक उनका अर्चन करैं । जो मनुष्य भक्तिसे इस पञ्चमीको नागोंका पूजन करतेहैं, उनको कभी भी नागोंसे भय नहीं होता ॥ श्रावण शुक्लद्वादशीको दधिव्रत (दहीका निषेध) प्रथम कह

व्रतनिर्णयः। श्रावणशुक्लद्वादश्यां दधिव्रतं प्रागुक्तम्। तक्रादीनां त्वनिषेधः। तत्र दधिव्यवहाराभावादिति वक्ष्यते॥ पवित्रारोपणनिर्णयः। अत्रैव विष्णोः पवित्रारोपणमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये-"श्रावणस्य सिते पक्षे कर्कटस्थे दिवाकरे। द्वादश्यां वासुदेवाय पवित्रारोपणं स्मृतम्॥ द्वादश्यां श्रवणे वापि पञ्चम्यामथ वा द्विज। आनुकूल्येषु कर्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा॥" ॥ २ ॥ इति ॥ शिवे तु तत्रैव कालोत्तरे-"आषाढान्ते चतुर्दश्यां नभस्यनभसोस्तथा। अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोः समम्"॥ इति ॥ अन्यदेवतानां तु वक्ष्यते। अधिवासनं तु दीपिकायाम्- 'गोदोहान्तरिते काले पूर्वेद्युर्वाधिवासनम्' इति। गौणकालो रामार्चनचन्द्रिकायाम्-"पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि। कार्तिक्यवधि शुक्लास्ते कर्तव्यमिति नारद"॥ "हेमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः। कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः॥ कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत्। तत्रोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम्। साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत्॥ साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत्॥ उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम्। कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम्। षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद्द्वादशेति च केचन। चतुर्विंश-

---

आयेहैं, और मट्ठेमें दहीका व्यवहार न होनेसे तक्र (मट्ठा) का निषेध नहीं, यह लिखैंगे॥ इसी द्वादशीको विष्णुका पवित्रारोपण हेमाद्रि और विष्णुरहस्यमें लिखा है कि, श्रावणशुक्ल द्वादशी कर्कके सूर्यमें वासुदेवका पवित्रारोपण लिखा है, द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें अथवा पूर्णिमामें जब अपने योग्य बने तब पवित्रारोपण करै, शिवजीका पवित्रारोपण तो हेमाद्रिमें कालोत्तरके वाक्यसे लिखा है कि, आषाढके उपरान्त चतुर्दशी और श्रावण भाद्रपदकी दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको शिवजीका पवित्रारोपण तुल्य है और देवोंका पवित्रारोपण लिखैंगे। अधिवासन तो दीपिकामें लिखा है कि, गोदोहनके समय प्रथम दिन अधिवासन करै. रामार्चनचन्द्रिकामें गौणकालभी लिखा है कि, यदि श्रावणमें पवित्रारोपण विघ्नके कारण न होय तो कार्तिक तक शुक्रास्तमें भी करलेना यह नारदने कहा है. सोना, चांदी, तांबा, पाट, रेशम, पद्म, कुश, कुशा, काश, कपास और ब्राह्मणीका काताहुआ सूत इनका पवित्रारोपण शुभ है, सूतको तिगुना करके फिर तिगुना करे उनमें तीनसे साठ ३६० तारोंका उत्तम और २७० दोसौ सत्तरका मध्यम और १८० एकसौ अस्सी तारोंका निकृष्ट पवित्रा निर्माण करै और छोटी २ पवित्रा तीन २ सूतकी बनावै जिसमें १०० ग्रंथि होयँ वह उत्तम और पचासका मध्यम और ३६ का निकृष्ट होता है और कोई ३६ का उत्तम, २४ का मध्यम,

द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः " ॥ ९ ॥ हेमाद्रौ विष्णुरहस्ये त्वन्यथोक्तम्- "अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव वा । सप्तविंशतिरेवाथ ज्येष्ठमध्यकनीयसम् ॥ उत्तमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं द्वितीयकम् । प्रलम्बतो जानुमात्रं प्रतिमायां निगद्यते " ॥ २ ॥ शिवपवित्रं तु तत्रैव शैवागमे-"एकाशीत्यथ वा सूत्रैस्त्रिंशता वाष्टयुक्तया । पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम् ॥ द्वादशांगुलमानानि व्यासादष्टांगुलानि वा । लिङ्गविस्तारमानानि चतुरंगुलकानि च " ॥ २ ॥ इति ॥ पवित्रारोपणे अधिकारिनिर्णयः । अधिकारिणोपि तत्रैव विष्णुरहस्ये-"ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च । स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम् " ॥ तथा-"अतो देवेतिमन्त्रेण द्विजो विष्णौ निवेदयेत् । शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वा पूजयेद्धरिम् ॥ " एतच्च नित्यम्-" न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः । वर्षेवर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः " ॥ २ ॥ इति तत्रैवोक्तेः ॥ देवताविशेषे तिथयोपि तत्रैव-"धनदश्च रमा गौरी गणेशः सोमराड् गुहः । भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः ॥ चक्रपाणिरनङ्गश्च शिवो ब्रह्मा तथैव च । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः ॥ यथोक्ताः शुक्लपक्षे

---

१२ का निकृष्ट कहते हैं ॥ हेमाद्रिग्रन्थमें विष्णुरहस्यमें और प्रकार लिखा है कि, एकसौ आठ १०८ वा ५४ चौवन वा २७ सत्ताईस सूत्रोंसे क्रमसे उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रा बनावै उत्तम नाभिपर्यन्त, मध्यम जंघापर्यन्त, परन्तु जानुपर्यन्त निकृष्ट है, यह प्रमाणमें कहा है, शिवजीका पवित्रा तो हेमाद्रिग्रन्थमें शैवागमवाक्यसे लिखाहै कि, इक्यासी ८१ वा ३८ वा ५० सूत्रोंसे ऐसी पवित्री बनावै, जिसकी ग्रन्थि और मध्यभाग तुल्य हों, और जिसका प्रमाण बारह १२ वा ८ वा ४ अंगुल हो अथवा महादेवके लिंगके तुल्य हो हेमाद्रिग्रन्थमें कालोत्तर और युगधर्ममें यह लिखाहै कि, सतयुगमें मणि, त्रेतामें सुवर्ण, द्वापरमें पद, कलियुगमें कपासकी पवित्री कही है ॥ अधिकारी भी हेमाद्रिमें विष्णुरहस्यसे लिखे हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अपने धर्ममें स्थित हुए भक्तिसे पवित्री करैं इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों देव इस मन्त्रसे विष्णुको पवित्रा समर्पित करैं और शूद्र मूलमन्त्रसे अथवा जिस मन्त्रसे विष्णुकी पूजा करै उस मन्त्रसे निवेदन करै। यह नित्य विधान जानना चाहिये कारण कि, वहांही यह लिखा है कि हे मुनिश्रेष्ठ ! जो मनुष्य विधिसे पवित्रारोपण नहीं करता उसकी वर्षदिनकी पूजा निष्फल होती है इससे भक्तिमान् विष्णुके भक्त वर्षदिनमें विष्णुको पवित्रारोपण करैं देवता विशेषोंकी भिन्न २ तिथि भी उसी २ स्थलमें लिखी हैं कि, कुबेर, लक्ष्मी, गौरी, गणेश, चन्द्रमा, गुह, सूर्य, चण्डिका, अम्बा, वासुकि, ऋषि, चक्रपाणि, अनंग, शिव, ब्रह्मा ये देवता प्रतिपदा आदि तिथियोंमें पूज्य हैं, ये श्रावणके

तु तिथयः श्रावणस्य च " ॥ ३ ॥ इति ॥ यथा हेमाद्रौ कालोत्तरे-' चतुर्दश्या-मथाष्टम्यां सर्वसाधारणं तु तत् ' इति ॥ तत्प्रकारस्तु रामार्चनचन्द्रिकायां यथा-"ततस्तानि पवित्राणि वैणवे पटले शुभे । संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय पुरतो न्यसेत् ॥ अरत्निसंमितां वेणीं कुर्यात् षट्त्रिंशता कुशैः । क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम् । न मे विघ्नो भवे-द्देव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः । उपवा-सेन देव त्वां तोषयामि जगत्पते ॥ कामक्रोधादयोप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः ॥ अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् । तावद्रक्षा त्वया कार्या सर्वस्यास्य नमोस्तु ते " ॥ ६ ॥ इति देवं सम्प्रार्थ्य कुम्भं संस्थाप्य तत्र वंशपात्रे ॥ " ॐ सांवत्स-रस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः । विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोस्तु ते"॥ अनेन मूलेन वावाह्योत्तममध्यमकनिष्ठेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान् सत्त्वरजस्तमांसि वेदत्रयं वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान् ग्रन्थिषु क्रिया पौरुषी वीरा विजया ईशा अपराजिता मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिश्चेत्यावाह्य सम्पूज्य । " ॐ संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदोपि यत् । पवित्रारोपणायैतत्कुरु कुम्भर ते नमः ॥ विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् । सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारया-

---

शुक्लपक्षमें तिथि वर्णन की हैं, तैसेही हेमाद्रिके कालोत्तर प्रकरणमें लिखा है कि, चतुर्दशी और अष्टमीको सब देवताओंका तुल्य पवित्रारोपण होता है उसका प्रकार तो रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है, फिर उन पवित्रोंको बाँसके श्रेष्ठ दोनोंमें और शुद्ध वस्त्रमें लपेटकर देवताके आगे रक्खे, छत्तीस अंकुरोंकी बिलस्तभर वेणी करै, हे प्रभो ! कर्म लोप न करनेके निमित्त जो तुमने लिखा है, हे देव ! आपकी प्रसन्नताके निमित्त यह पवित्री मैंने की है, हे नाथ ! मेरे विघ्न न हो मुझपर दया करो, हे विष्णो ! सब प्रकारसे सम्पूर्ण समयमें तुम मेरी परमगति हो. हे देव ! हे जगत्पते ! व्रतसे आपको प्रसन्न करता हूं, काम क्रोध आदि भी मेरे व्रतको नष्ट न करैं, आजसे लेकर जबतक शेषका दिन हो, तबतक आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिये आपको प्रणाम है । इस प्रकार देवकी स्तुति और घटकी स्थापना करके उस घटपर वंशके पात्रमें 'ओं इस वर्ष दिनकी यज्ञकी सिद्धिके और पवित्र करनेके निमित्त विष्णुलोकसे इस पवित्रीमें आओ आपको प्रणाम है ॥ ' इस मन्त्रसे वा मूलमन्त्रसे आवाहन करके और उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ पवित्रोंमें क्रमसे विष्णु, ब्रह्मा, रुद्रोंका और सत्व, रज, तमका और तीन वेदोंका और वनमालामें प्रकृतिका आवाहन करके तीन सूत्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु रुद्रोंका और ग्रन्थियोंमें क्रिया, वीरा, विजया, ईशा, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्ति देवीका आवाहन और पूजन करके, ॐ वर्ष दिनमें सम्पादन की हुई पूजाके सम्पूर्ण फल देनेवाले उस पवित्रारोपणके निमित्त आप सफल करो हे कुधर ! आपको प्रणाम है, हे देव ! विष्णुके तेजसे उत्पन्न रमणीय सब पापोंके नाशक सब कामनाओंके दाता इस पवित्रको आपके अंगमें मैं धारण करता हूं, इस

म्यहम् " ॥२॥ इति देवकरे मंगलसूत्रं बद्धा देवं सम्पूज्य निमन्त्रयेत् । " आमन्त्रितोसि देवेश पुराण पुरुषोत्तम । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निधौ भव ते नमः ॥ निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत्पवित्रकम् ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे " ॥ ३ ॥ ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा रात्रौ जागरणं कुर्यादिति अधिवासनम् ॥ प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धदूर्वाक्षतयुतं पवित्रमादाय । " ॐ देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् । शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर " ॥ मूलसंपुटितेनानेन दत्त्वांगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य । मणिविद्रुममालाभिरित्यादिभिर्दमनारोपणोक्तमन्त्रैः प्रार्थयित्वा । गुरवे ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वा स्वयं धारयेत् । तथा- " मासं पक्षमहोरात्रं त्रिरात्रं धारयेत्तथा । देवे तं सूत्रसन्दर्भं देशकालविवक्षया " ॥ अकरणे तु तत्रैव " पवित्रारोपणं काले न करोति कथञ्चन । तदायुतं जपेन्मन्त्रं स्तोत्रं वापि समाहितः " इत्युक्तम् । इति पवित्रारोपः ॥ श्रावणशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । श्रावणशुक्लचतुर्दशी पूर्वयुता ग्राह्या ॥ अत्र वक्तव्यां

मन्त्रसे देवताके हाथमें मङ्गलसूत्रको बांधकर और देवकी पूजा करके निमन्त्रण करै कि, हे देवताओंके ईश ! हे पुराण पुरुषोत्तम ! हे केशव ! आपको मैं निमन्त्रण देता हूँ, प्रातःकाल आपका पूजन करूंगा, आप मेरे निकट हूजिये. हे विष्णो ! इस पवित्रेको प्रातःकाल आपको निवेदन करूंगा. हे विष्णो ! सब प्रकार सब कालमें आपको नमस्कार है । मेरे ऊपर प्रसन्न हो फिर पुष्पांजली देकर रात्रिको जागरण करै इति अधिवासनम् ॥ फिर प्रातःकाल नित्य पूजन करके गन्ध, दूर्वा, अक्षतसे युक्त पवित्रेका ग्रहण करै, हे .देवताओंके देव ! आपको नमस्कार है, इस पवित्रेको ग्रहण करो, जो पवित्र करनेके निमित्त वर्षदिनकी पूजाके फलका दाता है और जो मैंने पाप किया है उससे मुझे आज पवित्र करो, हे देवतोंके ईश्वर ! आपकी प्रसन्नतासे पवित्र होता हूं मूलमंत्रसे सम्पुट और इस मन्त्रसे पवित्रेको प्रदान कर. अंग देवताओंके नाम ले २ कर अर्पण करके और महानैवेद्यको देकर और आरती करके (मणिविद्रुममालाभिः) इत्यादि दमनारोपणमें लिखे हुए मन्त्रोंसे स्तुति करके गुरु और ब्राह्मणोंको पवित्रे देकर स्वयं भी धारण करै, उस सूत्रको मास, पक्ष, एकदिन वा तीन दिन, देवके देहमें धारण करै, न करै तो वहांही यह कहा है कि, जो किसी प्रकार समयपर पवित्रारोपण न करै, तब दश सहस्र मन्त्र और स्तोत्र सावधान होकर जपै, इति पवित्रारोपः ॥ श्रावणशुक्ल चतुर्दशी पूर्वतिथिसे युक्त लेनी, इसमें विशेष कहने योग्य चैत्रकी चतुर्दशीमें लिख

विशेषश्चैत्रचतुर्दश्यामुक्तः ॥ उपाकर्मनिर्णयः । अथोपाकर्म । तत्र बह्वृचानां प्रयोगपारिजाते शौनकः "अथातः श्रावणे मासे श्रवणर्क्षयुते दिने । श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते ॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम् । अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रोपासनवह्निना" ॥ इति ॥ अत्र पौर्णमास्ययुपसंहारन्यायेन यजुर्वेदिपरेति हेमाद्रिः ॥ अत्र हस्तयुक्ता पञ्चम्युक्ता। कारिकापि–" तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते" इति केवलपंचम्यां हस्तयुतेन्यस्मिन् दिने, इति तु हेमाद्रिः ॥ उपासनवह्निनेति तु कर्मद्वयमिदं केचिल्लौकिकाग्नौ प्रकुर्वत इति । कारिकोक्तलौकिकाग्निना विकल्पते ॥ तत्र–'अध्याप्यैरन्वारब्धः' इति सूत्रात् । सशिष्यत्वे तदधिकारिकस्याचार्याग्नौ–' नान्यस्यामावन्यो जुहुयादिति निषेधाल्लौकिक एव तदभावे तु स्मार्ते' इति निगर्वः । यद्यपि दीपिकायाम्–' वेदोपाकृतिरोषधिप्रजनने पक्षे सिते श्रावणे' इति शुक्लपक्षोपि सर्वेषां मुख्यकालत्वेनोक्तः । वक्ष्यमाणागार्ग्यवचनेन छन्दोगान् प्रति विहितस्य तस्याविरोधिनः सर्वान् प्रति प्रवृत्तिश्च । तथापि श्रावणमाससंबन्धस्य सूत्रोक्तत्वात् । कृष्णपक्षेपि कार्यमिति वृद्धाः । तथाच सूत्रम्–' अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन

चुकेहैं ॥ वहां बह्वृचोंका प्रयोगपारिजातमें शौनकके वाक्यसे लिखा है कि, इसके उपरान्त श्रावणके मासमें श्रवण नक्षत्रसे युक्त दिनमें अथवा श्रावणकी पूर्णिमाको वा हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमीको शास्त्रोक्तके अनुसार उपाकर्म करै पढे हुए वेदोंका उपाकर्म उपासनाकी अग्निमें करै. हेमाद्रि यह लिखतेहैं कि, इसमें पूर्णिमा उपसंहार समाप्तिमें लिखनेसे यजुर्वेदियोंके निमित्त है, इसमें जो हस्तनक्षत्रयुक्त पञ्चमी लिखी है उसमें यह कारिकाका वाक्य भी प्रमाण है कि, अथवा उस महीनेमें हस्तनक्षत्र युक्त पञ्चमीमें उपाकर्म इच्छित है, हेमाद्रि तो यह लिखते हैं कि, केवल पञ्चमीको वा हस्तनक्षत्रयुक्त अंत्य दिनमें भी उपाकर्म कर्म करना चाहिये ॥ उपासना अग्निमें करनी, इसमें तो इस कारिकाके वाक्यसे विकल्प आता है कि, कोई आचार्य लौकिक अग्निमें करते हैं, उसमें भी शिष्योंसहित गुरु उपाकर्म करै, इस सूत्रसे शिष्यसहित गुरुको उपाकर्मका अधिकार प्राप्त होनेसे आचार्यकी अग्निमें शिष्य भी कर ले, और दूसरेकी अग्निमें और कोई होम न करै, इस निषेधसे लौकिक अग्निमेंही करना वह न मिले तो स्मार्त्त अग्निमें करै यह सबका सिद्धान्त है यद्यपि औषधियोंके उपजनेपर श्रावणमें वेदोंका उपाकर्म करै इस दीपिकाके कथनसे शुक्लपक्ष सबका मुख्य समय लिखा है और छांदोगोंके निमित्त आगे कहना योग्य गर्गके वाक्यसे शुक्लपक्षकी प्रवृत्तिमें भी सबके निमित्त विरोध नहीं तो भी श्रावण महीनेका सम्बन्ध सूत्रमें लिखा है इससे कृष्णपक्षमें भी करना चाहिये । यह वृद्ध कहते हैं, सोई यह सूत्र है कि, इसके अनन्तर वेदोंका उपाकर्म औषधियोंके उत्पन्न होनेपर श्रवण-

श्रावणस्य पंचम्यां हस्तेन वा' । अत्र श्रवणो मुख्योऽन्ये गौणाः । तस्याहर्द्वययोगे हेमाद्रौ व्यासः–"धनिष्ठासंयुतं कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् । तत्कर्म सफलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ श्रवणेन तु यत्कर्म ह्युत्तराषाढसंयुतम् । संवत्सरकृतोऽध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ २ ॥ इति । गार्ग्योऽपि–"उदयव्यापिनी रवेव विष्णुर्क्षे घटिकाद्वयम् । तत्कर्म सकलं ज्ञेयं तस्य पुण्यं त्वनन्तकम् ॥" इति पूर्वेद्युरुत्तराषाढयोगे परेद्युः श्रवणाभावे घटिकाद्वयन्यूने वा पंचम्यादौ कार्यम् । न तु पूर्वविद्धायां संगवमात्रे । अपवादाभावात् ॥ किं च । परेद्युः संगवास्पर्शे निषिद्धपूर्वाग्रहणे किं मानम् । संगववाक्यं श्रवणवाक्यं चेति चेत् तर्हि व्रीहिवाक्यादश्वशफवाक्याच्च मापमिश्राणामप्युपादानं स्यादिति महत्पाण्डित्यं निषेधप्रवृत्तेर्नैरपेक्ष्यसाम्या नेति चेत् । इहापि तुल्यम् ॥ एतेन पर्वण्यौदयिकं व्याख्यातं निषेधप्रवृत्तेरुभयोरपि तुल्यत्वात् ॥ तत्र ग्रहणसंक्रान्त्यादौ निर्णयः । श्रवणयुतदिने संक्रान्त्यादौ तु–"उपाकर्म न कुर्वन्ति क्रमात्सामर्ग्यजुर्विदः । ग्रहसंक्रान्तियुक्तेषु हस्तश्रवणपर्वसु" इति हेमाद्रौ निषेधात् पंचम्यादयो ग्राह्याः । मदनरत्नेऽपि "यदि स्याच्छ्रावणं पर्व ग्रहसंक्रान्तिदूषितम् । स्यादुपाकरणं शुक्लपंचम्यां श्रावणस्य

नक्षत्र अथवा श्रावणकी हस्तनक्षत्रयुक्त पंचमीमें करना चाहिये, इसमें श्रवणका योग मुख्य कहा है और गौण है, उस श्रवणका योग दो दिन होय तो हेमाद्रिमें व्यासजीने यह लिखा है कि, श्रवणनक्षत्रका कर्म धनिष्टा नक्षत्रसे युक्त किया जाय तो उस उपाकर्मको सफल जानना चाहिये। यदि वह श्रावणमासका कार्य उत्तराषाढ नक्षत्रसे संयुक्त किया जाय तो वर्षदिनका किया वेदपाठ उसी क्षणमें नष्ट होताहै, प्रयोगपारिजातमें गर्गका कथन है कि, यदि सूर्योदयमें श्रवणकी दो घडी होय तो वह कर्म सफल जानना चाहिये, और उसका अनन्त फल जानना चाहिये । यदि प्रथम दिन उत्तराषाढ नक्षत्रका योग हो औरदूसरे दिन श्रवणका अभाव हो वा दो घडी न्यून होयँ तो पंचमी आदिमें उपाकर्म करना चतुर्दशीसे विद्धा पूर्णिमाको न करगा, संगवमें कोई निषेध नहीं मिलता है, और दूसरे दिन संगवका स्पर्श न हो तो निषिद्ध पहली तिथिके ग्रहणमें प्रमाण है । यदि संगववाक्यसे श्रवणवाक्य ग्रहण करोगे तो व्रीहिवाक्यसे अश्वशफ वाक्यसे मापयुक्त तिथियोंका भी ग्रहण होजायगा, यह तुम्हारा बडा पाण्डित्य होगा, इससे पर्वमें उदय कालको लिखा है कारण कि, निषेधकी प्रवृत्ति दोनोंमें समान है ॥ श्रवणयुक्त दिनमें संक्रांति आदि होय तो क्रमसे साम, ऋक्, यजुर्वेदी उपाकर्म नहीं करते. कारण कि, हेमाद्रिमें यह निषेध लिखा है कि, ग्रहण संक्रांतिसे युक्त हस्त श्रवण पूर्णिमामें न करना, इससे पंचमी आदि ग्रहण करनी, इसमें एक तो यह वाक्यार्थ है कि, ग्रहण और संक्रांतिके दिन उन सबको उपाकर्म करना चाहिये जिनको प्राप्त हो तिससे अथर्ववेदियोंको भी निषेध है, नहीं तो हस्त आदि तीनमें प्रत्येक ग्रहण वा संक्रांति होय तो छः वाक्योंकी कल्पना करनी पडेगी. मदनरत्नमें भी कहा है कि, यदि श्रवणनक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा

तु" ॥ स्मृतिमहार्णवे-" संक्रान्तिग्रहणं वापि यदि पर्वणि जायते। तन्मासे हस्तयुक्तायां पंचम्यां वा तदिष्यते" ॥ तत्रापि प्रयोगपारिजाते वृद्धमनुकात्यायनौ-"अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं तदा। उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत्" इति ॥ मदनरत्ने गार्ग्योपि-"यद्यर्धरात्रादर्वाक् तु ग्रहः संक्रम एव वा। नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेपि वा॥" एतेन ग्रहणसंक्रान्तिकाले श्रवणसत्त्वे निषेधो नार्वागिति मूर्खशंका परास्ता। ग्रहविशिष्टानां हस्तश्रवणपर्वणां प्रत्येकं निषेधे तद्युतोपाकर्मनिषेधे च विशिष्टोद्देशेः वाक्यभेदात्। पञ्चम्यां संक्रान्तौ निषेधाप्राप्तेश्च। तेनार्धरात्रात् पूर्वं ग्रहसंक्रमसत्त्वे एवोपाकर्मनिषेधो न तद्योगे एव॥ यत्तु-"प्रतिपन्मिश्रिते नैव नोत्तराषाढसंयुते। श्रवणे श्रावणं कुर्याद्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते" इति प्रतिपन्मिश्रनिषेधकं वचनं तन्निर्मूलम्। अत्र च-" वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ। उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके"। इति वचनं देशान्तरविषयम्। "नर्मदोत्तरभागे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके। कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे" इति बृहस्पतिवचनादिति प्रयोगपारिजातेनोक्तम् ॥

ग्रहण वा संक्रांतिसे दूषित होजाय, तो श्रावणशुक्ल पंचमीको उपाकर्म करना, स्मृतिमहार्णवमेंभी कहा है कि, जिस पर्वमें ग्रहण वा संक्रांति होजाय तो उस महीनेकी हस्तयुक्त पंचमीको उपाकर्म करना, प्रयोगपारिजातमें वृद्धमनु और कात्यायनका वाक्य है कि, अर्द्धरात्रिसे प्रथम संक्रांति ग्रहण होय तो उपाकर्म न करै, पीछे होय तो कुछ दोष नहीं ह करले ॥ मदनरत्नमें गर्गका कथन है कि, आधीरातसे प्रथम ग्रहण और संक्रान्ति होय तो पूर्णिमा श्रवणमें उपाकर्म न करना चाहिये, इससे यह शंका दूर हुई कि, ग्रहणके समय ही श्रवण होनेपर दोष है, प्रथम नहीं. कारण कि ग्रहणसे युक्त हस्त, श्रवण, पूर्णिमा भिन्न निषेध होगा और उनमें उपाकर्मका निषेध होगा तो सबके उद्देशमें वाक्यका भेद होजायगा, और पंचमीमें संक्रांति न होय तो निषेध प्राप्त होगा तिससे अर्द्धरात्रिके प्रथम ग्रहणके होनेपर उपाकर्मका निषेध है कुछ हस्त आदिके प्रयोगमें नहीं, और जो यह प्रतिपदाके मूलमें उपाकमक निषेधको कहा है कि उत्तराषाढसे युक्त. ग्रहण और संक्रांतिसे वर्जित श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म न करै, और प्रतिपदा युक्तमें भी उपाकर्म न करै, वह वाक्य निर्मूल है, कारण कि, हेमाद्रिमें शाखका यह वाक्य है कि, ग्रहणका योग गुरुको, संक्रांतिका योग शिष्यको, और उत्तराषाढका योग दोनोंको विष्णुके उपाकर्ममें नष्ट करते हैं, इसमें जो यह कथन है कि, वेदोंके उपाकर्मके समयमें सूर्य कर्कका होय तो उपाकर्म न करना चाहिये, सिंहकेमें करना यह वाक्य देशान्तरके निमित्त है . कारण कि प्रयोगपारिजातमें बृहस्पतिने यह कहा है कि, नर्मदाके

पराशरमाधवीयेप्येवम् । सामगानां सिंहस्थरवावुक्तेस्तद्विषय इदं पुरोडाशचतुर्धाकरणवदुपसंह्रियते । तेषामेव देशव्यवस्था न तु बह्वृचादिपरम् । तेषां सूत्रे चान्द्रश्रावणोक्तेः ॥ सौरे पञ्चम्ययोगात् इति तु वयं पश्यामः ॥ यत्तु कालादर्शे- "अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽर्को भवेद्यदि ॥ सहस्तशुक्लपञ्चम्यां वातग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रौष्ठपद्यां श्रवणेन व्यवस्थया" ॥ २ ॥ इति ॥ तन्मूलालेखनाच्चिन्त्यम् । श्रावणे सस्यानुद्गमादौ तु बह्वृचपरिशिष्टे—"अवृष्ट्यौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् । तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तदिष्यते" इति ॥ 'तत्राप्यनुद्गमे तु कुर्यादेव तद्वार्षिकमित्याचक्षते' इति सूत्रात् । वर्षर्तौ भवं वार्षिकम् ॥ एतच्च शुक्रास्तावपि कार्यम् । 'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्' इति दमनारोपे लिखितवचनात् । "नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते" इति प्रयोगपारिजाते संग्रहोक्तेः ॥ 'पर्वणि ग्रहणे सति पूर्वं त्रिरात्रादिवेधाभावं वक्तुमिदम् ।'

उत्तर तटमें, सिंहके सूर्यमें, और नर्मदा नदीके दक्षिण तटमें कर्कके सूर्यमें उपाकर्म करें; पराशर और माधवग्रंथमें भी इसी प्रकार कहा है हम तो यह जानते हैं कि, सिंहके सूर्यमें सामवेदियोंको उपाकर्म करना लिखा है उनके निमित्त पुरोडाशके चार प्रकार करनेके तुल्य यह वाक्य है कि, कालादर्शमें लिखा है कि, तैत्तरीय शाखावालोंको वेदोंका उपाकर्म श्रावणकी पूर्णिमाको बह्वृचोंको श्रवणनक्षत्रमें करना चाहिये । यदि सिंहका सूर्य हो और हस्तयुक्त श्रावण शुक्ला पंचमी हो पूर्णिमाको ग्रहण वा संक्रांति होय तो सिंहके सूर्य न होनेपर भाद्रपदकी पूर्णिमाको वा श्रवणमें व्यवस्थासे करना, इस वाक्यका कालादर्शमें मूल नहीं लिखा है, और इसमें सूत्रसे विरोध आता है, इससे वह वाक्य असंगत है । कारण कि, सूत्रमें श्रावणके नामद्वारा श्रवण कहनेसे चान्द्रमास ग्रहण किया है सौर नहीं. कारण कि, उसमें पंचमीका अभाव पडता है यदि श्रुति और लक्षणसे दोनों मास लो तो दो वृत्ति (अर्थ) माननेमें विरोध है, तिससे सिंहका सूर्य होय और कर्कमें ग्रहण या संक्रांति हो, तो सिंहके सूर्यको त्याग कर श्रावण शुक्लपंचमीको बह्वृच शाखावालोंको उपाकर्म करना चाहिये और तैत्तिरीयशाखावालोंको भाद्रपदकी पूर्णिमा करनी चाहिये । कारण कि, उनको सूर्य महीनेका नियम नहीं है, श्रावणमें सस्य उत्पन्न न होय तो बह्वृच परिशिष्टमें यह कहा है कि, यदि वर्षाके अभावसे श्रावणमें औषधी उत्पन्न न होंय तो भाद्रपदके श्रवणनक्षत्रमें उपाकर्म करना श्रेष्ठ है भाद्रपदमें भी उत्पन्न न होय तो उसको इस सूत्रके अनुसार वार्षिक लिखनेसे उसमें उपाकर्म कर देना कि भाद्रपदको वर्षाऋतुमें होनेवाला कहते हैं शुक्रके अस्त आदिमें भी उपाकर्म करना चाहिये कारण कि, दमनारोप प्रकरणमें यह वाक्य लिख आये हैं कि, उपाकर्म, उत्सर्जन, पवित्रा दमनका अर्पण ये शुक्रास्त आदिमें भी करने चाहिये । प्रयोगपारिजात हेमाद्रिमें संग्रहका कथन है कि, नित्य, नैमित्तिक, जप, होम, यज्ञ, क्रिया, उपाकर्म, उत्सर्गमें ग्रहोंका वेध नहीं मानना चाहिये, पर्वके दिन

तेन पर्वणि ग्रहणेपि चतुर्दश्यां श्रवणे कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ अस्ते प्रथमारम्भस्तु न भवति–"गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्द्धकेपि वा। तथाधिमाससंसर्पमलमासादिषु द्विजे ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाशकृत् ॥" इति तत्रैव काश्यपोक्तेः। अत्र प्रथमारम्भे वृद्धिश्राद्धं कुर्यादिति नारायणवृत्तौ ॥ एतच्चाधिमासे न कार्यम्। "उपाकर्म तथोत्सर्गः. प्रसवाहोत्सवाष्टकाः । मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥" इति ज्योतिःपराशरोक्तेः । "उत्कर्षः कालवृद्धौ स्यादुपाकर्मादिकर्मणि । अभिषेकादिवृद्धीनां न तूत्कर्षो युगादिषु ॥" इति कात्यायनोक्तेश्च॥ यत्तु– 'उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः' इति ऋष्यश्रृङ्गवचनम् । तत्सामगविषयम्। तेषां सिंहार्के एवोक्तेः ॥ एतच्चापराह्ने कार्यम्–'उपाकर्मापराह्ने स्यादुत्सर्गः प्रातरेव तु' इति । "अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्काले पराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥" इति च हेमाद्रौ गोभिलोक्तेः ॥ वस्तुतस्तु 'भवेदुपाकृतिः पौणमास्यां पूर्वाह्ण एव तु' इति प्रचेतसो वचनात् । पूर्ववाक्यं सामगविषयम् । तेषामपराह्ण एवोक्तेरित्यनुपदं वक्ष्यते ॥ दीपिकापि–' अस्य तु विधेः पूर्वाह्णकालः स्मृतः' इति ॥ याजुषास्तु पर्वणि कुर्युः ।

ग्रहण होय तो उसके पहले तीन दिन वेध नहीं मानना चाहिये इससे यह कथन है तिससे पर्वके दिन ग्रहण होनेमें तो श्रवणयुक्त चतुर्दशीमें उपाकर्म करना, यह हेमाद्रिका कथन है ॥ उपाकर्मका प्रथम आरम्भ न करै. कारण कि, हेमाद्रिमें कश्यपने कहाहै कि, गुरु और शुक्रके अस्तमें तथा बाल्य वृद्ध अधिकमास और मलमासमें प्रथम उपाकर्मको न. करै, करै तो नाश होता है. उपाकर्मके प्रथम आरम्भमें नारायणी श्राद्ध. करना यह नाराणवृत्तिमें कहा है और यह अधिकमासमें न करना. कारण कि, ज्योतिःपराशरमें लिखाहै कि, उपाकर्म, उत्सर्ग, जातकर्म, अष्टकाश्राद्ध ये सब मासवृद्धिमें परमासमें करने चाहिये, और पितृश्राद्धको त्याग दे, कालकी वृद्धि होय तो उपाकर्म आदि कर्ममें उत्कर्ष (श्रेष्ठका ग्रहण) होताहै. अभिषेक आदि वृद्धियोंमें और युगादि तिथियोंमें उत्कर्ष नहीं होता यह कात्यायनने लिखाहै और जो यह ऋष्यश्रृंगने कहा है कि उपाकर्म और उत्सर्गमें यह (श्राद्ध) वृष आदि संक्रान्तिसे ग्रहण है वह सामवेदियोंके निमित्त है. कारण कि, उनको सिंहके सूर्यमेंही लिखा है, यह पराह्नमें करना. कारण कि, हेमाद्रिमें गोभिलका कथन है कि, पराह्नमें उपाकर्म और प्रातःकाल उत्सर्ग होता है, वेदोंका उपाकर्म पराह्नकालमें करै, उत्सर्ग पूर्वाह्नकालमें करै, यह वेदके ज्ञाता मानते हैं. सिद्धान्त तो यह है कि उपाकर्म पूर्णिमाको पूर्वाह्नकालमें होताहै, इस प्रचेताके कथनसे प्रथम वाक्य सामगोंके निमित्त है कारण कि, उनको पराहही लिखाहै यह शीघ्रही कहेंगे, दीपिकामें भी लिखहै कि, इस उपाकर्म विधिका काल पूर्वाह्न यजुर्वेदियोंको तो पूर्णिमामें करना चाहिये और

त्त्वापस्तम्बैरौदयिकं ग्राह्यमन्यैस्तु पूर्ववत् । "पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणे तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते ॥" इति गार्ग्योक्तेः । "संप्राप्तवाञ्छ्रुतीर्ब्रह्मा पर्वण्यौदयिके पुनः । अतो भूतादिने तस्मिन्नोपाकरणमिष्यते ।" इति कालिकापुराणाच्च ॥ "अथ चेद्दोषसंयुक्ते पर्वणि स्यादुपाक्रिया । दुःखशोकामयग्रस्ता राष्ट्रे तस्मिन् द्विजातयः ॥" इति ॥ मदनरत्ने हेमाद्रौ गार्ग्येण दोषोक्तेः । अत्र शिंगाभट्टीये विशेषः । "श्रवणः श्रावणं पर्व संगवस्पृग्यदा भवेत् । तदैवौदयिकं कार्यं नान्यदौदयिकं भवेत् ॥" पराशरमाधवीयेपि गार्ग्यः–"श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात् परतो यदि । तदैवौदयिकी ग्राह्या नान्यदौदयिकी भवेत् ॥" उपाकर्मकालनिर्णयः । कर्मकालमाह कालादर्शे निगमः–" श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा प्रतिपत् षण्मुहूर्तकैः । विद्धा स्याच्छन्दसां तत्रोपाकर्मोत्सर्जनं भवेत् ॥" अत्र पौर्णमासी श्रवणहस्तयोरुपलक्षणम् । तेन तावपि संगवस्पृशौ । "उदये संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे । कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात् ॥" इति पृथ्वीचन्द्रः । तेनोदयसंगवोभयव्यापिनी मुख्या । परेद्युः संगवाभावे पूर्वेद्युरुभयाभावे चैकैकसत्त्वे पूर्वेद्युश्चतुर्दशीवेधनिषेधात्सामान्यवाक्यादौदयिकी कर्मपर्याप्ता ग्राह्या । न पूर्वा । संगवनिमित्तपूर्वविद्धाप-

---

आपस्तंब उदय समयको मानते हैं और दूसरे पूर्वको मानते हैं कारण कि, गर्गका कथन है कि, तैत्तिरीयशाखावाले रविके दिन उदयके समयमें और बहृच श्रवणके दिन उपाकर्म ग्रहण और संक्रांतिको त्याग दें. कालिकापुराणमें लिखाहै कि, पूर्णिमाको उदयके कालमें ब्रह्माजीको वेद प्राप्त हुए हैं, इससे चतुर्दशीके दिन उपाकर्म करना उचित नहीं. मदनरत्नमें गर्गने कहाहै कि, उपाकर्म किसी दोषसे युक्त होय तो उस राज्यके द्विजाति दुःख, शोक और रोगसे युक्त होते हैं. शिङ्गाभट्टीय ग्रन्थमें विशेष लिखाहै कि, श्रवण और श्रावणका पर्व इनमें संगवका स्पर्श होय तो उदयकाल लेना अन्यथा नहीं लेना. पराशरमाधवमें गर्गने लिखा है कि श्रावणकी पूर्णिमा संगवसे परे होय तो उदयकालकी ग्रहण करनी अन्यथा न लेनी ॥ कर्मका समय कालादर्शग्रन्थमें निगमने यह लिखा है कि, श्रावणकी वा भाद्रपदकी पूर्णिमा छः मुहूर्त भी प्रतिपदासे विद्ध होय तो उसमें वेदोंका उपाकर्म और उत्सर्ग होता है यहां पूर्णिमासे श्रवण और हस्तभी ग्रहण करना कारण कि उनमें भी संगवका स्पर्श होता ही है पृथ्वीचंद्रने यह लिखा है कि, यदि उदयके कालमें श्रवण और पर्वमें छः घडीका स्पर्श कर्कसंक्रांतिमें होय तो भाद्रपदमें ऋक्, यजु, सामवेदियोंको क्रमसे उपाकर्म करना चाहिये सो ठीक नहीं है ॥ इससे उदय संगवमें उभयव्यापिनी मुख्य है. कारण कि श्रवणनक्षत्रकी दो घडी इस पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है सामान्यवाक्यसे तो कर्मके योग्य उदयकालकी पूर्णिमा ग्रहण करनी, पहली न लेनी, संगवके

वादाभावात् । नान्यदौदयिकी इत्यस्य पूर्वविद्धापरत्वाभावात् । तेन श्राद्धादौ कालान्तरे स्यान्न तु निषिद्धे । न हि व्रीह्यलाभे निषिद्धमाषग्रहणं युक्तम् ॥ अत एव परेद्युः संगवव्याप्तौ पूर्वविद्धानिषेधः । तदभावे तु न इति मूर्खव्यवस्थाप्ययुक्ता विधिवैयर्थ्यात् । माषनिषेधेपि तथापत्तेश्च । पूर्वविद्धावचनसत्त्वे हि सा युज्यते । एवं श्रवणेपि ज्ञेयम् ॥ 'विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्' इति पूर्वोक्तविरोधात् । तेन प्राशस्त्यमात्रपरमिदम् । तत्त्वं तु--'एतच्छुद्धाधिकपरम् । तेन यथाग्निहोत्रादौ सायंप्रातःकालबाधे सामान्ये जीवनावच्छिन्नकाले दर्शादौ वानुष्ठानम् । यथा वा व्रीह्यश्वशफाद्यभावे यागाक्षिप्तनिषिद्धवर्जद्रव्येण । तथात्र संगवाभावे निषिद्धवर्जकर्मपर्याप्तौदयिके कालान्तरे वानुष्ठानं न तु कदाचिन्निषिद्धे ॥ अपवादाभावे उत्सर्गस्यैव प्राप्तेः । कात्यायनादीनां तु दिनद्वये पूर्वाह्णव्याप्तौ एकदेशस्पर्शे वा पूर्वैवेति हेमाद्रिः ॥ यदपि--"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति ब्रह्मवैवर्तम् ॥ 'तद्ब्रह्मपवित्रश्रवणकर्मादिदैवकर्मविषयम्' इति हेमाद्रिः ॥ अत एव वचनात् कुलधर्मव्रतादावपि पूर्वैव ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ मदनपारिजातेपि पूर्वविद्धायां श्रावण्यां वाजसनेयिनामुपाकर्मेत्युक्तम् ॥ मदनरत्ने

निमित्त पूर्वविद्धाका निषेध नहीं पाया जा सक्ता भाद्रपद आदि कालांतरमें होय तो उसका निषेध नहीं है, कुछ व्रीहिके न प्राप्त होनेपर निषिद्ध उरदोंका ग्रहण उचित नहीं, इससे यह मूर्खोंकी की हुई व्यवस्था खण्डित हुई कि, दूसरे दिन संगवव्यापिनी होय तो पूर्वका निषेध है न होय तो निषेध नहीं और विधिके वैयर्थ्यसे माषनिषेधमें भी इसी व्यवस्थाकी प्राप्ति होगी-- पूर्वविद्धामें कोई वाक्य होय तो वह युक्त होसक्ती है, इसी प्रकार श्रवणमें भी जानना चाहिये । यह वाक्य उस विषयमें है जहां शुद्धपूर्णिमा अधिक हो, इससे जैसे अग्निहोत्र आदिका सायंकाल और प्रातःकाल बाध होजाय तो सामान्य वाक्यके बलसे और समयमें अमावास्याके यज्ञका करना, और व्रीहि अश्वशफ (अश्वका खुर) आदिके अभावमें योग्य निषिद्धको त्याग श्रेष्ठ द्रव्यसे यज्ञ होता है. इसी प्रकार यहांभी संगवके अभावमें निषिद्ध भिन्न कर्मयोग उदय समयमें वा दूसरे समयमें उपाकर्म करै, जिस किसी निषिद्ध समयमें न करै. कारण कि, अपवादके अभावमें उत्सर्गकीही प्राप्ति होती है, तिससे प्रशंसाके निमित्त यह वाक्य है. कात्यायन आदिकोंको तो पूर्णिमा दोनों दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो वा एक देश व्यापिनी हो तो पहली ग्रहण करनी यह हेमाद्रिने कहा है, और जो यह ब्रह्मवैवर्तमें लिखा कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, होली, दुर्गाष्टमी, शिवरात्रि, वामनद्वादशी, यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी, यह वाक्य ब्रह्मपवित्रा, श्रवणकर्म, दैवकर्म, विषयमें कहा है यह हेमाद्रिमें कहा है । इसी वाक्यसे कुलधर्म व्रत आदिमें प्रथमही ग्रहण करनी, मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहा है. मदनपारिजातमें भी कहा है कि, वाजसनेयियोंको पूर्वविद्धा श्रावणीमें उपाकर्म करना लिखा है. मदनरत्नमें

तु-'पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः' इति बह्वृचपरिशिष्टात् बह्वृचान् प्रति कर्मविधानार्थप्रवृत्तेः । तत्र तैत्तिरीयककर्मविध्ययोगात् पूर्वोक्तकालिकापुराणादौ सामान्यत औदयिकपर्वप्राप्तेस्तन्निषेधेन बह्वृचानां श्रवणविधिना तैत्तिरीयकपदमनुवादत्वात् तस्य च प्राप्त्यधीनत्वात् प्राप्तेश्च यजुर्वेदिमात्रपरत्वात् सर्वयजुर्वेद्युपलक्षणार्थम् 'अवयुत्यानुवादो वा' न तु विधायकं येन विशेषविधिनोपसंहारः स्यात् । अनुवादत्वाल्लक्षणा न दोषः । अन्यथा त्वौदयिकपर्वविशिष्टोपाकर्मोद्देशेन कर्तृविधौ कर्तृविशिष्टे वा औदयिकपर्वविधौ वाक्यभेदापत्तेः ॥ तस्मात्तैत्तिरीयकपदाविवक्षया सर्वयजुर्वेदिनामौदयिकमेव पर्वेत्युक्तम् ॥ तन्न ॥ न तावत् परिशिष्टे बह्वृचान् प्रत्येव विधिः । 'धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तत्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम्' ॥ इत्यादितदुदाहृते एव परिशिष्टे वेदान्तरधर्मविधीनां दर्शनात् । नाप्यनुवादोयं कालिकापुराणात् बह्वृचादीनामपि तदापत्तेः । कुर्युरित्यस्य विधित्वेन तस्यैवार्थवादत्वेनैतत्प्राप्तानुवादित्वाच्च । न च तैत्तिरीयकाणां गृह्ये तद्विधिरस्ति । येनानुवादः स्यात् न च वाक्यभेदः । तैत्तिरीयकमात्रस्य कर्ममात्रस्य वा उद्देश्यत्वायोगेन हविरार्तिवदष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयीतेतिवच्चागत्याविशिष्टस्योद्देश्यत्वात् । अन्यथोत्तरार्धे

तो लिखा है कि, तैत्तिरीयशाखावाले पूर्णिमाको उदयके समय उपाकर्म करैं, बह्वृचपरिशिष्टग्रन्थमें बह्वृचोंकी कर्मविधिके निमित्त प्रवृत्ति होनेसे उसमें तैत्तिरीयशाखावालोंकी कर्मविधिका योग नहीं है, इससे पूर्वोक्त कालिकापुराण आदिके सामान्य वाक्योंसे उदयकालके पर्वकीही प्राप्ति है, इससे निषेधसे बह्वृचोंके श्रवणका विधान है, इससे तैत्तिरीयपद अनुवाद होनेसे संपूर्ण यजुर्वेदियोंका बोधक है, कारण कि, अनुवाद प्राप्तिके अधीन हुआ करता है, और प्राप्ति सम्पूर्ण यजुर्वेदियोंको आती है, अथवा मिलकर अनुवाद है, कुछ विधायक नहीं है, जिससे विशेष विधिसे उपसंहार होचुकै, अनुवाद होनेसे लक्षणाका भी दोष नहीं अ नहीं तो उदयकालके पर्वविशिष्ट (युक्त) कर्मके उद्देशसे कर्ताका विधान करोगे वा कर्ताविशिष्टमें उदयकालके कर्मका विधान करोगे तो वाक्यके भेदकी प्राप्ति होगी ॥ इससे तैत्तिरीयपदकी अविवक्षासे सब यजुर्वेदियोंके निमित्त पर्वके उदयकालका समयही है, यह मदनरत्नका कथन सत्य नहीं. कारण कि, परिशिष्टकी प्रवृत्ति कुछ बह्वृचोंके निमित्त नहीं है. कारण कि धनिष्ठा नक्षत्र, प्रतिपदा चित्रानक्षत्रसे युक्त समयमें भी इत्यादि उनकेही लिखे हुए परिशिष्टमें और वेदोंके धर्मोंकी विधियोंको देखतेहैं, और अनुवादभी यह नहीं. कारण कि, कालिकापुराणसे बह्वृचोंकोभी उसकी प्राप्ति आवैगी, कुर्यु (करै) इसको विधि न होनेसे उसकाही अर्थवाद होनेसे यह प्राप्तकाही अनुवाद जानना । यदि कोई कहै कि, तैत्तिरीयोंके गृह्यमें उसकी विधि है, जिससे अनुवाद होजायगा, यदि कहो वाक्यभेद होजायगा, सोभी नहीं,

बह्वृचपदस्याप्यविवक्षापत्त्या श्रवणस्य सर्वसाधारण्यापत्तेः । तस्माद्धेमाद्रिमतमेव युक्तम् ' इति दिक् ॥ इदं च ' शिष्यानध्यापयतः आवसथ्येऽग्नौ । अनध्यापयतो नाधिकारः ' इति कर्कः ॥ श्रावण्यामपि ग्रहणादिदुष्टायां कातीयभिन्नैः प्रौष्ठपद्यां कार्यम् । तैस्तु श्रावणपंचम्याम्-" संक्रान्तिर्ग्रहणं चापि पौर्णमास्यां यदा भवेत् । उपाकृतिस्तु पंचम्यां कार्या वाजसनेयिभिः " इति स्मृतिमहार्णवे वाजसनेयिग्रहणात् इति हेमाद्रिः ॥ इदं च सूत्रोक्तकालपरत्वात् बह्वृचपरमपि सांख्यायनैस्तु हस्ते कार्यम् । आपस्तम्बैराथर्वणैश्च प्रौष्ठपद्याम् ॥ यत्तु बौधायनः-'श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य' त्यूचे तत् प्रौष्ठपद्यामपि दोषे आषाढ्यां कार्यमित्येवमर्थम् । तच्छाखीयविषयं वा ॥ सामगास्तु श्रावणे हस्ते कुर्युः ' बह्वृचाः श्रवणे चैव हस्तर्क्षे सामवेदिनः' इति निर्णयामृते गोभिलोक्तेः । सोप्युत्तरः-" धनिष्ठाप्रतिपद्युक्तं त्वाष्ट्रऋक्षसमन्वितम् । श्रावणं कर्म कुर्वीरन् ऋग्यजुःसामपाठकाः ॥" इति मदनरत्ने परिशिष्टोक्तेः ॥ गार्ग्योपि-"सिंहे रवौ तु पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णेऽविवरे बहिः । छन्दोगा मिलिताः कुर्युरुत्सर्गं स्वस्वच्छन्दसाम् ॥ शुक्लपक्षे तु हस्तेन उपाकर्मा-

---

तैत्तरीयपदको वा सब कर्मोंको उद्देश्य न होनेसे हविःप्रदानके तुल्य वा आठ वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करै इसके तुल्य संयुक्तकाही उद्देश्य है, नहीं तो उत्तरार्द्ध (पिछले दो पद) में बह्वृचपदकी भी विवक्षा न होनेसे श्रावणही सबके निमित्त साधारणरीतिसे होजायगा, इससे हेमाद्रिकाही यह मत युक्त है, मदनरत्नका नहीं यह मार्ग है; इस उपाकर्मको वह घरकी अग्निमें करै जो शिष्योंको अध्ययन करता हो, और जो न पढाता हो उसको अधिकारही नहीं, यह कर्कका कथन है यदि श्रावणी ग्रहण आदिसे दूषित होजाय तो कातीय ब्राह्मणोंके विना और सबको भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म करना चाहिये । और कातीय तो श्रावणकी पञ्चमीको करैं, हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, जब पूर्णिमाको संक्रान्ति वा ग्रहण होय तो वाजसनेयीजनोंको पंचमीको उपाकर्म करना चाहिये, यह स्मृतिमहार्णवमें वाजसनेयी पदका ग्रहण है, इसको अपने सूत्रमें लिखे कालका बोधक होनेसे बह्वृचोंके निमित्तभी जानना, सांख्यायनको तो हस्तमें करना चाहिये आपस्तंब और आथर्वण भाद्रपदकी पूर्णिमाको करैं, जो बौधायनने लिखा है कि, श्रावण वा आषाढकी पूर्णिमाको उपाकर्म करै, वह बौधायनका कहना इस कारण है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको भी दोष होय तो आषाढकी पूर्णिमाको करना, अथवा उनकी शाखाकेही विषयमें वह वाक्यहै, सामवेदी तो श्रवणमें हस्तनक्षत्रमें करै. कारण कि, निर्णयामृतमें गोभिलने कहा है कि, श्रवणनक्षत्रमें बह्वृच और हस्तनक्षत्रमें सामवेदी करैं, वहभी श्रेष्ठ है-कारण कि, मदनरत्नमें परिशिष्टका यह वाक्य है कि, धनिष्ठा, प्रतिपदा, चित्रा नक्षत्रसे युक्त समयमें ऋक्, यजुः, सामवेदियोंको उपाकर्म करना उचित है, गार्ग्यका भी कथन है कि, सिंहका सूर्य, पुष्यनक्षत्र, ग्रहण आदिसे निर्दोष समयमें सम्पूर्ण वेदपाठीजनोंको मिलकर अपने २ वेदोंका उत्सर्ग ग्रामसे बाहिर तीर्थ आदिपर करना चाहिये, और शुक्लपक्षमें तो हस्तनक्षत्रसे

१२

पराह्णिकम्" इति ॥ अविवरे ग्रहादिदोषहीने । विपरेदिति पाठोऽज्ञानकृतः । पुष्यर्क्षे पूर्वाह्णे उत्सर्गः । आपराह्णिकमुपाकर्मेत्यन्वयः। अन्यस्तु विशेषः पूर्वमेवोक्तः। प्रयोगपारिजाते गोभिलः "उपाकर्मोत्सर्जनं च वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनाङ्गत्वाद्गृहिणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ उत्सर्जनं च वेदानामुपाकरणकर्म च । अकृत्वा वेदजप्येन फलं नाप्नोति मानवः "॥ सर्वथा लोपे तु कृच्छ्र उपवासश्च । 'वेदोदितानां नित्यानाम्' इति मनुनाभोजनोक्तेः । एवमुत्सर्गेपि ॥ उत्सर्जननिर्णयः ॥ अथ प्रसङ्गादत्रैवोत्सर्जनमुच्यते । तच्च पौषमासे रोहिण्यां तत्कृष्णाष्टम्यां वा कार्यम् । "पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा । जलान्ते छन्दसां कुर्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः" इति याज्ञवल्क्योक्तेः । श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां चोपाकृतौ क्रमेण पौषशुक्लप्रतिपदि वा कार्यम् । 'अर्धपञ्चमान्मासानधीयत 'इति तेनैवोक्तेः । अर्धः पञ्चमो येषु सार्धचतुर इत्यर्थः ॥ यत्तु हारीतः–' अर्धपञ्चमान्मासानधीत्योर्ध्वमुत्सृजेत् । पञ्चार्धषष्ठान्वा ' इति । तदाषाढ्युपाकर्मविषयम् ॥ बौधायनास्तु पौष्यां माघ्यां वा कुर्युः ' पौष्यां माघ्यां चोत्सृजेत्' इति तत्सूत्रात् ॥ तैत्तिरीयैस्तु–तैष्यां कार्यं 'तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेत्' इति तत्सूत्रात् । बह्वृचैस्तु माघ्यां कार्यम् ' अध्यायोत्सर्जनं माघ्यां पौर्णमास्यां विधीयते' इति कारिकोक्तेः ॥ कातीं-

पराह्णमें करै, यहां अविवरे यह पाठ है, जो विवरेत् यह पाठ करैं वह अज्ञानकृत है, और विशेष तो प्रथम कहआये हैं, प्रयोगपारिजातमें गोभिलने कहा है कि, वानप्रस्थ, गृहस्थी, ब्रह्मचारियोंको भी उपाकर्म इससे करना चाहिये कारण यह वेदोंकी धारणा और पढनेका अंग है, वेदोंके उत्सर्ग और उपाकर्मको न करनेसे मनुष्यको जपका फल प्राप्त नहीं होता, यदि इन दोनोंका सब प्रकार लोप होजाय तो कृच्छ्र और व्रत करै कारण कि, वेदमें लिखे नित्यकर्मोंके त्यागमें मनुजीने भोजनका अभाव लिखाहै, इसी प्रकार उत्सर्गमें भी जानना ॥ यहांही प्रसंगसे उत्सर्गको लिखतेहैं वह पौषमासके रोहिणीनक्षत्रमें वा पौषवदी अष्टमीमें करना चाहिये कारण कि, याज्ञवल्क्यमें यह लिखाहै कि, पौषमासकी रोहिणीनक्षत्र वा अष्टकाको जलके निकट ग्रामसे बाहर जाकर विधिसे वेदोंका उत्सर्ग करना चाहिये, श्रावणी वा भाद्रपदकी पूर्णिमाको उपाकर्म कियाहोय तो क्रमसे पौषशुक्ला वा माघशुक्ला प्रतिपदाको उत्सर्ग करै. कारण कि, उसनेही यह लिखाहै कि–साढेचार मास अध्ययन करै, इस कथनमें अर्द्धपंचका अर्थ यह है कि, आधा है पांचवाँ जिनमें ऐसे साढेचार. जो हारीतने यह लिखा है कि साढेपांच महीने पढकर फिर उत्सर्ग करै अथवा पांच हैं आधे जिसमें ऐसे वा षष्ठान् पढकर उत्सर्ग करै, यह हारीतका कहना आषाढकी पूर्णिमाको उपाकर्मके विषय जानना चाहिये. बौधायन तो यह लिखते हैं कि पौष वा माघकी पूर्णिमाको उत्सर्ग करै । कारण कि, यही उनका सूत्र है, तैत्तिरीयोंको तो पौषमें करना चाहिये कारण कि, पौषपूर्णिमा व रोहिणिनक्षत्रमें वेदाध्ययनका विराम करदे यही उनका सूत्र है बह्वृचोंको तो माघकी पौर्णिमाको करना चाहिये. कारण कि कारिकामें यह लिखा है कि, वेदपाठका त्याग माघकी पूर्णिमाको करना चाहिये, कातीयोंको

यास्तु भाद्रपदे कुर्युः । 'उत्सर्गश्चेति नन्दादितिथ्यां प्रौष्ठपदेपि वा' इति कात्यायनोक्तेः ॥ सामगास्तु सिंहार्के पुष्ये कुर्युः । तथा च 'सिंहे रवौ तु ' इति गार्ग्यवचनं पूर्वमुक्तम् । सर्वैरुपाकर्मदिने वा कार्यम् । 'पुष्ये' तूत्सर्जनं कुर्यादुपाकर्मदिनेऽथवा ' इति हेमाद्रौ खादिरगृह्योक्तेः । यदा सिंहस्थे सूर्ये सति तन्मध्यहस्तनक्षत्रात् प्राक् पुष्यः कर्कटस्थो भवति तदा तस्मिन् पुष्ये उत्सर्गं कृत्वा तदुत्तरहस्ते उपाकर्म सामगाः कुर्युः । " मासे प्रौष्ठपदे हस्तात्पुष्यः पूर्वो भवेद्यदा । तदा च श्रावणे कुर्यादुत्सर्गं छन्दसां द्विजः " इति तत्रैव परिशिष्टोक्तेः ॥ अत्र द्वावपि सौरौ मासौ ज्ञेयौ तेषां सौरस्यैवोक्तेः । अत्र विशेषमाह कार्ष्णाजिनिः " उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च । ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तर्पयेत्ततः " इति ॥ उपाकर्मण्युत्सर्गे च त्रिरात्रम् । 'पक्षिणीमहोरात्रं वानध्यायः' इति मिताक्षरायामुक्तम् ॥ अत्र नदीनां रजोदोषो नास्ति । ' उपाकर्मणि चोत्सर्गे रजोदोषो न विद्यते' इति गार्ग्योक्तेः ॥ रक्षाबन्धनम् । अत्रैव रक्षाबन्धनमुक्तम् । हेमाद्रौ भविष्ये–" संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये । स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम् । शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते ॥ उपाकर्मणि कर्तव्यं ऋषीणां चैव पूजनम् । ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम् ॥ कारयेद्-

तो भाद्रपदमें करना चाहिये, कारण कि कात्यायनने यह कहा है कि, पौषकी तिथि भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्याग करे, सामवेदियोंको तो सिंहके सूर्य पुष्यनक्षत्रमें करना चाहिये । तैसेही सिंह सूर्यमें करै यह गर्गका वाक्य प्रथम लिख आये हैं, अथवा सम्पूर्ण उपाकर्मके दिनही करै, कारण कि, हेमाद्रिमें खादिर गृह्यका वाक्य हैं कि, पुष्यनक्षत्रमें अथवा उपाकर्मके दिन त्याग करै. जब सिंहके सूर्यके मध्यमें वर्तमान हस्त नक्षत्रसे प्रथम पुष्य कर्कके सूर्यमें हो तब उस पुष्यमें उत्सर्ग करके उससे अगले हस्तमें सामवेदी उपाकर्म करै, कारण कि, हेमाद्रिमेंही परिशिष्टका कथन है कि, यदि भाद्रपदमासमें हस्तसे पहिले पुष्य हो तब ब्राह्मण श्रावणमें उत्सर्ग करै, इसमें दोनों सूर्यमास लेने कारण कि, सामवेदियोंको सौरमासही लिखा है, इसमें कार्ष्णाजिनने विशेष लिखा है कि, उपाकर्म और उत्सर्गमें शास्त्रोंमें कहे समयमें एकत्र होकर कुशाओंके ऋषि निर्माण कर पूजे और तर्पण करै, उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन दिन पक्षिणी (दोरात एक दिन) वा अहोरात्र (१ दिन रातका) अनध्याय मिताक्षरामें लिखा है, इसमें नदियोंके रजका दोष नहीं है. यह गार्ग्यने लिखा है कि, उपाकर्ममें रजका दोष नहीं है ॥ इसमेंही रक्षाबन्धन हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणकी पूर्ति होनेपर पूर्णिमाको सूर्योदयके समय श्रुति और स्मृतिकी विधिसे स्नान करना चाहिये और उपाकर्म ऋषियोंका तर्पण और पूजन करै, शूद्रोंका स्नान दान मंत्ररहित है । फिर अपराह्णके समयमें शुभ रक्षाकी पोटली इस प्रकार

क्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः ॥ ३ ॥ इति ॥ अत्रोपाकर्मानन्तर्यस्य पूर्णातिथौ वार्षिकस्यानुवादो न तु विधिः गौरवात् प्रयोगविधिभेदे च क्रमायोगाच्छूद्रादौ तदयोगाच्च ॥ तेन परेद्युरुपाकरणेपि पूर्वेद्युरपराह्णे तत्करणं सिद्धम् ॥ इदं भद्रायां न कार्यम् । "भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी " इति संग्रहोक्तेः । तत्सत्त्वे तु रात्रावपि तदन्ते कुर्यादिति निर्णयामृते ॥ इदं प्रतिपद्युतायां न कार्यम् ॥ " नन्दाया दर्शने रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते " इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥ भविष्ये-" उपलिप्ते गृहमध्ये दत्तचतुष्के न्यसे-त्कुम्भम् । पीठे तत्रोपविशेद्राजामात्यैश्च सुमुहूर्ते ॥ ततस्तु पुरोधा नृपते रक्षां बध्नीत मन्त्रेण ॥ " इदं रक्षाबन्धनं नियतकालत्वात् भद्रावर्ज्यग्रहणदिनेपि कार्यं होलिकावत् । ग्रहसंक्रान्त्यादौ रक्षानिषेधाभावात् । 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने' इति तत्कालमात्रनिषेधाच्च । " त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः " इति यो निषेधः सोप्य-नियतकालीनकर्मपर एव । नत्वन्यत्र । अन्यथा होलिकायां का गतिः ॥ अत एव-" नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते " इति ॥ नियतकालीने तदभाव इति दिक् ॥ उपाकर्मणि तद्दिनभिन्न-

बाँधे जो सुवर्णसे शोभित चावल और सरसोंसे युक्त हो, यहां अर्थात् सिद्ध उपाकर्मके उपरान्तका अनुवाद है विधान नहीं । कारण कि, विधि माननेमें गौरव आता है, प्रयोगविधिके भेदसे क्रमका अयोग होनेसे और शूद्र आदिमें उपाकर्मका योग न होनेसे विधि नहीं, इससे दूसरे दिनमें उपाकर्म होनेपरभी पहले दिनमें अपराह्णके समय रक्षाबन्धन करना सिद्ध है यह रक्षाबन्धन भद्रामें नहीं करना चाहिये इसका कारण संग्रहमें लिखा है कि, श्रावणी और होली ये दोनों भद्रामें न करनी चाहिये करे तो श्रावणी राजाको और होली ग्रामको दग्ध करती है, भद्रा होय तो भद्राके उप-रान्त रात्रिमें भी रक्षाबन्धन करले, यह निर्णयामृतमें कहा है । यह प्रतिपदामें न करनी नन्दामें दर्शन रक्षा बलिदान दशाओंमें और भद्रामें गोकुलक्रीडा देशनाशके निमित्त होती है, ऐसा मद-नरत्नमें ब्रह्मवैवर्तसे लिखा है । भविष्यमें है कि, घर लीपकर चौक पूर उसपर घट रक्खे, चौकी बिछाकर राजा और अमात्य शुभमुहूर्तमें बैठें फिर पुरोहित राजाके हाथमें रक्षाबन्धन करे । यह रक्षाबन्धन नियतकालमें होनेसे भद्राको छोडकर ग्रहणके दिन भी होलीकी समान करना, ग्रहसंक्रांति आदिमें रक्षाका निषेध न होनेसे सब वर्णोंको राहुदर्शनमें सूतक होता है इससे कालमात्रका निषेध करनेसे त्रयोदशीसे नौ दिनपर्यन्त चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें नौ दिन सब मंग-लकार्योंमें त्याग देने यह निषेध अनियत कालकर्मपर है । और जगह नहीं तो होलीकी क्या गति होगी ? इससे नित्य नैमित्तिक जप, होम, यज्ञक्रिया, उपाकर्म और उत्सर्गमें ग्रहवेध नहीं लगता है। इस प्रकार नियत कालमें उसका अभाव है; यह संक्षेपसे कहा, उपाकर्ममें उस दिनसे भिन्न-

परं तत्र तन्निषेधादित्युक्तं प्राक्.मन्त्रस्तु–" येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः । कर्तव्यो रक्षिताचारो द्विजान् संपूज्य शक्तितः " इति ॥ हयग्रीवोत्पत्तिः ॥. अत्रैव हयग्रीवोत्पत्तिः । तदुक्तं कल्पतरौ–" श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः । जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम् ॥ स्नात्वा संपूजयेत्तं तु शंखचक्रगदाधरम् ॥ श्रवणाकर्मनिर्णयः अत्राश्वलायनेन श्रवणाकर्मोक्तम् । 'श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म ' इति । तत्रास्तमययोगिनी ग्राह्या । ' अस्तमिते स्थालीपाकं श्रापयित्वा' इति सूत्रात् । अत एवाष्टौ निशीथे दर्शप्रयोगान्तःपातनियमात्तदङ्गैः प्रसङ्गसिद्धिरुक्ता द्वादशे । अन्यथा परेद्युः प्राप्तौ कः प्रसंगः प्रसंगस्य ॥ याज्ञिकास्तु पूर्णिमादर्शशब्दयोः पर्वान्त्यक्षणवदहोरात्रवाचित्वात्तत्रैव कर्मकालव्याप्तिर्ग्राह्येति विकृतित्वाच्छेषपर्वेच्छन्ति ॥ श्रावणकृष्णद्वितीयायामशून्यव्रतनिर्णयः । श्रावणादिमासचतुष्टयकृष्णपक्षद्वितीयासु अशून्यव्रतम् । तच्च चन्द्रोदयव्यापिनी । दिनद्वये सत्त्वे परेति निर्णयामृते ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ श्रावणमासः समाप्तः ॥ भाद्रपदमासः । सिंहसंक्रांतिनिर्णयः । सिंहे पराः षोडश घटिकाः पुण्यकालः । अन्यत् पूर्ववत् ॥ गोप्रसवे

पर है, वहां उसके निषेध होनेसे पहले कह दिया है । रक्षाका मन्त्र तो यह है कि, 'जिससे दानवोंका राजा महाबली बलिराजा बांधागया है. 'रक्षे' इस कारणसे तुझे बांधता हूं, तू चलायमान न होना, अचल रहना । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दूसरे मनुष्य यथाशक्ति ब्राह्मणोंको पूजकर रक्षाबंधनका आचार करें, 'इसी दिनही हयग्रीव अवतार हुआ है, यही कल्पतरुमें लिखा है कि, श्रावणीको श्रवणनक्षत्रमें प्रथम समयमें हयग्रीव भगवान् प्रगट हुए जिन्होंने सब पापोंका नाशक सामवेद उच्चारण किया इसमें स्नान करके उस शंख, चक्र, गदाधारीका पूजन करै ॥ आश्वलायनने श्रवण कर्म लिखा है, श्रावणकी पूर्णिमाको श्रवणकर्म करै, उसमें वह पूर्णिमा ग्रहण करनी जो अस्तकालमें हो कारण कि, सूत्रमें यह लिखा है कि, अस्तके कालमें स्थालीपाकको पकाकर, इसीसे रात्रिके यज्ञमें दर्श (अमावस) प्रयोगके मध्यमें प्राप्त हुओंके नियमसे अंगोंमें प्रसंगसिद्धि बारहमें कही है, नहीं तो परदिनमें प्राप्तिका कौनप्रसंग था. याज्ञिकोंका तो यह कथन है कि, पूर्णिमा और दर्शशब्दोंमें जो शब्द हैं वे पर्वके अन्त्यक्षणवाले अहोरात्रके वाचक होनेसे उस दिन रातमें कर्मकालकी व्याप्ति (करना) जाननी इससे विकृति होनेसे शेष पर्वकी इच्छा करते हैं ॥ श्रावण आदि चार महीनोंके कृष्णपक्षकी द्वितीयाओंमें अशून्य शयनव्रत लिखा है, यह चन्द्रोदयव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी होय तो परलीही लेनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है ॥ इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां श्रावणमासः समाप्तः । सिंहसंक्रान्तिमें अगली सोलह घडी पुण्यकाल है, और सब पूर्ववत् समझनी ॥ सिंहमें गौका

शान्तिः । अत्र गोप्रसवेऽद्भुतसागरे नारदः–"भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते । मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम् । प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः । आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ ३ ॥ व्याहृतिभिश्चायं होमः । 'सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्' इति ॥ "सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत् । पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा ॥ तदानिष्टं भवेत् किंचित्तच्छान्त्यै शांतिकं चरेत् । अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम् । मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम् ॥ श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः । मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा ॥ ग्रामे वा स्वगृहे वापि शान्तिकं पूर्ववद्दिशेत्" ॥४॥ एवं श्रावणे वडवाप्रसवो दिने निषिद्धः । तदुक्तमथर्ववेदिनां गार्ग्यपरिशिष्टे "माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा । सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायिकाः" इति ॥ अत्र तदुक्ताऽमृताख्या शान्तिः कार्या ॥ भाद्रपदकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञानिर्णयः । भाद्रकृष्णतृतीया कज्जलीसंज्ञा सा परा ग्राह्येति दिवोदासीये उक्तम् । वचनं हरितालिका प्रकरणे वक्ष्यामः ॥ भाद्रपदकृष्णचतुर्थीबहुलानिर्णयः । भाद्रकृष्णचतुर्थी बहुलाख्या मध्यदेशे प्रसिद्धा ॥ सा सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा ग्राह्या "गौर्याश्चतुर्थी वटधेनुपूजा

प्रसव होय तो उसका ६ महीनेमें मरण लिखा है इसमें सन्देह नहीं । जिससे शुभ होय उसकी शान्ति लिखते हैं प्रसूतागौको उसी समय ब्राह्मणको देदेना और श्वेत सरसोंमें घी मिलाकर फिर होम करै, और उन घृताक्त आहुतियोंको १०,००० दशसहस्र व्याहृतियोंसे दे फिर प्रयत्नसे व्रत करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे. इसी प्रकार सिंहके सूर्यमें जब गौ प्रसूता होय, और पौषमें महिषी और दिनमें घोडी प्रसूता हो तब उसको अनिष्ट होता है उसकी शांतिके निमित्त शांति करै (अस्य वाम) इस सूक्तसे अथवा (तद्विष्णोः) इस मन्त्रसे तिल और आज्यकी १०८ आहुति दे, और मृत्युञ्जयकी विधिसे दशसहस्र आहुति दे फिर श्रीसूक्त अथवा शांति-सूक्तसे स्नान करै रात्रिमें अथवा अपने घरमें जो गौ रम्भावे तो उसकी शान्ति पूर्ववत् करनी इसी प्रकार श्रावणके दिनमें घोडीका प्रसव निषिद्ध कहा है सोई अथर्ववेदियोंके गार्ग्यपरिशिष्टमें लिखा है कि माघ और बुधवारको भैंस, श्रावणको दिनमें घोडी, सिंहमें गौका व्याना होय तो यह स्वामीकी मृत्यु कहते हैं इसको परिशिष्टमें लिखी हुई अमृत शांति करनी । भादौं वदी ३ को कजली कथन करते हैं वह परली लेनी यह वचन हरितालिका प्रकरणमें कहेंगे दिवोदासीय ग्रन्थमें लिखा है कि भादौं वदी ४ बहुलानामसे मध्यदेशमें प्रचलित है वह पराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । दोनों दिन पराह्णव्यापिनी होय तो पहली लेनी, कारण कि, दिवोदासीयमें यह लिखा है कि, गौरी चतुर्थी, वटधेनु पूजा, दुर्गाका अर्चन, दुर्भरहोली, वत्सपूजा, शिवरात्रि

---

१ अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः । तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् । ऋ० २ । ३ । १४ ॥ २ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । य० अ० ६ मं० ५ ॥

दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिके च ॥ वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं सराष्ट्रम् " इति दिवोदासीयवचनात् ॥ अत्र वत्सपूजायाः पृथगुपादानाद्धेनुपूजा-शब्देन बहुलाख्या गृह्यते इति स एव व्याचख्यौ ॥ मदनरत्नेप्येवम् । अत्र गोपूजा यवान्नाशनं च तत्रैवोक्तम् ॥ भाद्रपदकृष्णहलषष्ठीनिर्णयः । भाद्रकृष्णषष्ठी हलषष्ठी सा सप्तमीयुतेति दिवोदासः ॥ भाद्रपदकृष्ण (शीतला) सप्तमी । भाद्रपदकृष्ण-सप्तम्यां शीतलाव्रतम् । तत्र पूर्वा ग्राह्येति हेमाद्रौ ॥ जन्माष्टमीनिर्णयः ॥ अथ जन्माष्टमी । सा च कृष्णादिमासेन भाद्रपदकृष्णाष्टमी । " तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे । अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः " इति कल्पतरौ ब्राह्मोक्तेः । अत्रेदं माधवमतम् । अष्टमी द्वेधा जन्माष्टमी जयन्ती चेति । तत्राद्या केवलाष्टमी । " ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । ते भवन्ति नराः प्राज्ञ व्याला व्याघ्राश्च कानने " इति स्कान्दात् । " दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रो-हिणी कला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् " इति पुराणान्तरात् । " श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः " इति भविष्योक्तेश्च । केवलाष्टम्यां एवोपोष्यत्वावगतेः सैव रोहिणीयुक्ता जयन्ती । " कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः " इति वह्निपुराणात् " अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्ष-संयुता । भवेत्प्रोष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता " इति विष्णुरहस्यादिवच-

परतिथिसे युक्त ये सब देश और राजको नष्ट करती हैं, यहां वत्सपूजाके भिन्न कहनेसे धेनु-पूजा शब्दसे बहुलापूजा लेनी यह अर्थभी दिवोदासीयनेही कहा है मदनरत्नमेंभी यही लिखा है इसमें गोपूजा और जौका भोजन भी दिवोदासीयमें कहा है ॥ भाद्रपदवदी षष्ठी हलषष्ठी कथन की है वह सप्तमीसे संयुक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदास लिखते हैं ॥ भादोंवदी ७ को शीतलाव्रत होता है वह पहली लेनी चाहिये. यह हेमाद्रिका कथन है ॥ वह कृष्णपक्ष आदि माससे भाद्रपदकी अष्टमी होती है. कारण कि, कल्पतरुग्रन्थमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, भादोंवदी कृष्णाष्टमीको देवकीजीके पुत्र यह कृष्ण २८ वें कलियुगमें उत्पन्न हुए, इसमें माधवका मत यह है कि, अष्टमी दो प्रकारकी है, जन्माष्टमी और जयंती उन दोनोंमें पहली केवल अष्टमी है, कारण कि, स्कंदपुराणका यह वाक्य है कि, जो जानकर कृष्णाष्टमीका व्रत नहीं करते वे वनमें सर्प, और व्याघ्र होते हैं । और किसी और पुराणकाभी वाक्य है कि, दिन वा रात्रिमें घडीभरभी रोहिणी न होय तो चन्द्रोदयके समय वर्तमान रात्रिकी अष्टमीको करे भविष्यपुराणका भी वाक्य है कि, श्रावणके शुक्लपक्षमें जो मनुष्य कृष्णाष्टमी नहीं करता वह क्रूर राक्षस होता है, केवल अष्टमीकोही व्रत करना लिखा है यदि वह रोहिणीयुक्त होय तो वह जयन्ती कही है उसका यत्नसे व्रत करे, ऐसा अग्निपुराणका वाक्य है और विष्णुरहस्य आदिका वाक्यभी है कि, यदि कृष्ण पक्षकी अष्टमी रोहिणीसे युक्त भाद्रपदमें होय तो वह जयन्ती नामकी

लाच्च ॥ ज्योतिरादिवत्संज्ञया कर्मभेदः ॥ रोहिणी योगश्चाहोरात्रं मुख्यः । निशीथमात्रे मध्यमः । दिवसादावधमः " अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसंपूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चेत्तामुपोषयेत् " इति वसिष्ठसंहितोक्तेः । अर्धरात्रे तु योगोयं तारापत्युदये सति । नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत् " इति विष्णुधर्मोक्तेः । " वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पापि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः " इति पुराणान्तराच्च । विशेषेणेति श्रुतेर्भाद्रपदेपीदम् । ' श्रावणे वा नभस्ये भवेद्ध्रुवम् ' इति वक्ष्यमाणात् ॥ गौडास्तु-निशीथ एव रोहिणीयोगे जयन्ती नान्यथेत्याहुः ॥ तन्न । ' वासरे निशायां ' इति विरोधात् ॥ योगविशेषाद्गुणात् फलमित्यन्ये । तेप्यकरणे दोषश्रुतेरुपेक्ष्याः ॥ तत्र व्रतनिर्णयः । तत्र जन्माष्टमीव्रतं नित्यं पूर्वोक्तवचनेषु अकरणे निन्दाश्रुतेः । " वर्षेवर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति महाप्राज्ञ व्याली भवति कानने " इति स्कान्दे वीप्साश्रुतेश्च । ' न करोति नरो यस्तु ' इति पूर्वमुक्तेरत्र स्त्रीलिंगमतन्त्रम् । मदनरत्ने स्कान्दे त्वत्र फलमप्युक्तम् । " जन्माष्टमीव्रतं ये वै प्रकुर्वन्ति नरोत्तमाः । कारयन्त्यथ वा लोकांल्लक्ष्मीस्तेषां सदा स्थिरा ॥ सिध्यन्ति

लिखी है, इसमें ज्योतिआदिके तुल्य संज्ञासे कर्मका भेद है रोहिणीका योग रातदिनमें मुख्य, अर्द्धरात्रिमें मध्यम और केवल दिनमें अधम होता है, कारण कि, वसिष्ठसंहिताका वाक्य है कि, यदि इस अष्टमी और रोहिणीका योग अहोरात्रमें पूर्ण न होय तो मुहूर्तमात्रमी अहोरात्रके योगमें उसका व्रत करै, विष्णुधर्मका यह वाक्य है कि चन्द्रोदयके समय अर्द्धरात्रमें रोहिणीके योगमें सावधान और शुद्धिसे स्नान करके पूजामें प्रवृत्त हो (लगे) पुराणांतरकाभी वाक्य है कि, दिनमें वा रात्रिमें अल्पभी रोहिणी होय तो बुद्धिमान् मनुष्य श्रावणमासमें उसीका व्रत करै इस वाक्यमें ' विशेषेण ' इस पदसे भाद्रपदमें भी यह होती है कारण कि, आगे श्रावण वा भाद्रपद दोनोंमें लिखेंगे, गौड तो यह लिखते हैं कि, अर्धरात्रिके समयही रोहिणीके योगमें जयन्ती होती है और तरह नहीं यह कथन करते हैं सो उचित नहीं, कारण कि, दिनमें हो वा रात्रिमें हो इस वाक्यका उसमें विरोध है योगविशेषके गुणसें फल होता है यह और कोई कहते हैं, न करनेमें दोष सुना है इससे वेभी वर्जने योग्य हैं ॥ इसमें जन्माष्टमी व्रत नित्य है कारण कि, पूर्वोक्त कथनोंसे न करनेमें निन्दा सुनी जाती है और स्कन्दपुराणके इस वाक्यमें वीप्सा (दो बार पढना) सुननेसे भी यह व्रत नित्य है कि, जो नारी साल सालमें इस जन्माष्टमीको नहीं करती वह हे महाप्राज्ञ ! वनकी सर्पिणी होती है इस वाक्यमें नारी यह स्त्रीलिंग अविवक्षित है, कारण कि, पहले जो नर नहीं करता इस वाक्यमें पुरुषको भी नित्य लिखा है, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे इसका फलभी लिखा है कि, जो मनुष्योंमें श्रेष्ठ जन्माष्टमी व्रतको करते वा कराते हैं, उनके यहां निरन्तर लक्ष्मी स्थिर रहती है और इस व्रतके करनेसे सबही कार्य सिद्ध होते हैं ।

सर्वकार्याणि कृते जन्माष्टमीव्रते " इति ॥ जयन्तीव्रतं तु नित्यं काम्यं च । "महाजयार्थं कुरु तां जयन्तीं मुक्तयेनघ । धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव ॥ ददाति वाञ्छितानर्थान् ये चान्येप्यतिदुर्लभाः" इति स्कान्दादौ फलश्रुतेः ॥ "शूद्रान्नेन तु यत्पापं शवहस्तस्य भोजने । तत्पापं लभते कुन्ति जयन्तीविमुखो नरः ॥ न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसंभवं व्रतम् । यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम् ॥ २ ॥ "इत्यकरणे निन्दाश्रुतेश्च । यदा च पूर्वेद्युः परेद्युर्वा रोहिणीयोगस्तदा जन्माष्टमी जयन्त्यामन्तर्भूता ज्ञेया । न तु जन्माष्टमी व्रतं पृथक्कार्यम् । विष्णुशृंखलवत् । तदुक्तं माधवेनैव– "यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्यो योगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादृक्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ मदनरत्ननिर्णयामृतगौडमैथिलमतेप्येवम् । हेमाद्रिस्तु–" रोहिणीसंयुतोपोष्या सर्वाघौघविनाशनी । अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं कलया वा यदा भवेत् ॥ जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी " इत्यग्निपुराणादर्धरात्र एव रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्यात् मुहूर्तमपि लभ्येतेत्यादीनां चार्धरात्रयोगेप्युपपत्तेर्न जयन्तीव्रतं भिन्नम् । तत्त्वं तु हेमाद्रिमतेपि जयन्तीव्रतं भिन्नमेव । 'उदये चाष्टमी' इत्यस्य तेन जयन्तीपरत्वोक्तेः ॥ किं च " रोहिण्यामर्धरात्रे च यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं

जयंतीका व्रत तो नित्य है, और काम्य है कारण कि, स्कंदपुराण आदिमें इसका यह फल श्रवण किया है कि, महाजय, मुक्ति, धर्म, काम, मोक्षके निमित्त जयन्ती व्रतको जो करतेहैं उनके अत्यन्त दुर्लभभी वांछित अर्थ इस व्रतके करनेसे सफल होतेहैं, और न करनेमें यह निन्दाभी श्रवण की है कि, जो मनुष्य जयंतीसे विमुख हुआ, विष्णुके जयंतीव्रतको नहीं करता है कुंती ! उसको वह पाप लगता है जो शूद्रान्नके और मुर्देके हाथके भोजनसे होताहै, और यमराजके वश होकर वह नरकके दुःखोंको प्राप्त होता है, अब प्रथम वा अगले दिन रोहिणीका योग होजाय तब जन्माष्टमी भी जयन्तीके मध्यमें आजाती है, तब जन्माष्टमीका व्रत पृथक् विष्णुशृंखलके तुल्य नहीं करना सोई माधवने लिखा है कि, जिस वर्ष जयन्तीका योग जन्माष्टमीमें होय तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी प्रशंसामें जाननी चाहिये । मदनरत्न निर्णयामृत ग्रन्थोंमें गौड मैथिलोंके मतमें भी इसी प्रकार लिखा है, हेमाद्रि तो रोहिणीसे युक्त सब पापसमूहके नाश करनेवाली जन्माष्टमी व्रतके योग्य कहते हैं, चाहे आधीरातसे प्रथम वा पीछे एक घडी होय वह जयन्ती सब पाप नाश करनेवाली कही है इस अग्निपुराणके कथनसे आधीरात्रिके समयही रोहिणीयोगकी प्रशंसासे पूर्वोक्त मुहूर्त मात्रभी रोहिणी मिले तो इत्यादि वाक्योंको अर्द्धरात्रके योगमें भी चरितार्थ होनेसे जयन्तीव्रत पृथक् नहीं है. सिद्धान्त तो यह है कि, हेमाद्रिके मतमें जयन्तीव्रत पृथक् है. कारण कि हेमाद्रिने उदयमें अष्टमी होय इस पूर्वोक्त वाक्यको जयन्तीव्रतके विषयमें वर्णन किया है और विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, आधीरातके समय रोहिणीमें यदि अष्टमी होजाय तो उसमें कृष्णका

त्रिजन्मजम् " इति विष्णुधर्मोक्तेः । "समायोगे तु रोहिण्यां निशीथे राजसत्तम । समजायत गोविन्दो बालरूपी चतुर्भुजः ॥ तस्मात्तं पूजयेतत्र यथा वित्तानुरूपतः " इति ॥ वह्निपुराणाच्चार्द्धरात्रस्य कर्मकालत्वमवसीयते ॥ अतः ' कर्मणो यस्य यः कालः' इत्यादिवचनात् पूर्वत्रैव प्राप्तेः परदिने सतोपि रोहिणीयोगस्य न प्रयोजकत्वम् । अन्यथा बुधवारादेरपि तत्त्वापत्तेः । किं च । जयन्तीशब्दो रात्रिविशेषवचनः । " अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी । मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः" इति ब्रह्माण्डपुराणात् । तेन तद्योगिरोहिण्यां गौणत्वान्न व्रतभेदः । यत्तु-'वासरे वा निशायां वा' इति तत्कैमुतिकन्यायेन निशीथयोगस्यैव स्तुत्यर्थं पूर्वदिनेर्धरात्रयोगाभावे प्राशस्त्यार्थम् । यद्यपि-" दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम् " इत्यनेन रोहिणीयोगाभावेऽर्धरात्रव्याप्तेर्ग्राह्यतोक्ता । तथापि यस्मिन् वर्षे जयन्तीयोगो नास्ति तत्र जयन्तीव्रतलोपे प्राप्ते अष्टमीमात्रेपि जयन्तीव्रतं कार्यम् । इत्येवंपरमिति तदाशयः । अत्र हि-" सत्रायापूर्य विश्वजिता यजेत । एषामसंभवे कुर्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः" इतिवद्रोहिणीयोगाभावे विधानात्तत्कार्यापत्तिः स्यात् ॥ अत एवोक्तम् । ' जयन्ती नाम शर्वरी' इति । यत्र स्कांदे-" उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी

पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होते हैं । अग्निपुराणमें लिखा है कि, राजाओंमें श्रेष्ठ ! आधीरातमें रोहिणीके योगमें बालरूपी चतुर्भुजी गोविन्द उत्पन्न हुए तिससे उस समय अपने धनके अनुसार गोविन्दका पूजन करै इस वाक्यसेभी आधीरातमें कर्मका काल प्रतीत होता है ॥ इससे जो जिस कर्मका काल उसमेंही उसको करना इत्यादि वाक्यसे प्रथम दिन प्राप्त होय तो रोहिणीमें परदिनमें रोहिणीका योग कुछ प्रयोजक नहीं है, अन्यथा बुधवार आदिभी प्रयोजक हो जायँगे और जयंतीशब्द रात्रिके शेषका कहनेवाला है. कारण कि, हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका कथन है कि, अभिजित् नाम नक्षत्र और जयन्ती नाम रात्रि, विजय नाम मुहूर्त है, इसमें कृष्णचन्द्र प्रगट हुए तिससे अष्टमीके योगवाली रोहिणीमें गौण होनेसे व्रतको भेद नहीं है, और दिनमें वा रात्रिमें रोहिणी हो यह पूर्वोक्त वाक्य कैमुतिकन्यायसे आधीरातमें योगकी प्रशंसाके निमित्त है अथवा पहले दिन अर्द्धरात्रमें योग न होय तो अगले दिन उसकी स्तुतिके निमित्त है. और तो यह कहते हैं कि, यद्यपि दिनमें वा रात्रिमें रोहिणीकी कला न होय तो चन्द्रोदयसे युक्त और रात्रिमें जन्माष्टमीयुक्त व्रतको विशेषकर करना चाहिये, इस वाक्यसे रोहिणीयोग न होय तो अर्द्धरात्रव्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनी लिखी है, तथापि जिस वर्षमें जयन्ती योग नहीं उसमें जयन्ती व्रतका लोप न होजाय इससे अष्टमीमात्रमें भी जयन्तीव्रत करना यही उसका आशय है । यह परपक्षकी निन्दा करके विश्वजित् यज्ञ करै, वह न होसकै तो द्विज वैश्वानरी यज्ञ करै इसके समान रोहिणीयोगके अभावमें उसकी विधिसे उसका करनाही स्पष्ट है, इसी कारण प्रथम जन्माष्टमीको जयन्तीनाम रात्रि लिखी है और जो स्कन्दपुराणमें कहा है कि, उदयमें कुछ भी अष्टमी हो और सम्पूर्ण दिन नवमी हो बुधवार और रोहिणी

सकला यदि। भवते बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते यदिवा न वा" इति ॥ यच्च पाद्मे "प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः ॥ यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता। किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" २॥ इति ॥ तद्दानादिविषयम् उपवासाश्रवणादित्यनन्तभट्टः। जयन्तीपरमिति हेमाद्रिः। उदये चन्द्रोदय इति केचित्। तन्न। चंद्रोदयसत्त्वसंदेहात् 'नवमी सकला' इत्ययोगात्मानाभावाच्च। तेन पूर्वेद्युः सप्तमीवेधे परदिने सूर्योदये घटिकापि ग्राह्या। 'पूर्वविद्धाष्टमी' इति पाद्मोक्तेः। इति युक्तम्। अतो न व्रतभेदो नाप्यन्तर्भाव इत्यूचिवान्॥ गौडास्तु-नवमीक्षयपरमिदं वचनम् 'नवमी सकला यदि' इति विशिष्योक्तेः। एतत्पूर्वदिने जयन्त्यभावपरमित्याहुः। जयन्त्यादिसर्वापवादोऽयमिति चूडामण्यादयः॥ वयं तु सत्यं व्रतभेदः। लोकास्तु जन्माष्टमीमेवानुतिष्ठन्ति ॥ जयन्तीनिर्णयः॥ न हि-"श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताष्टमी। यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता॥ श्रावणे न भवेद्योगो नभस्ये तु भवेद्ध्रुवम्" इति माधवीये वसिष्ठसंहितोक्तावपि भाद्रे जयन्ती केनापि क्रियते॥ अतः पूर्वेद्युरेवोपवासः॥

नक्षत्रका योग हो ऐसी जन्माष्टमी सौ १०० वर्षमें मिले वा न मिले अर्थात् महाउत्तम है. और जो पद्मपुराणमें कहा है कि, जिन्होंने श्रावणमें रोहिणी बुधवार और सोमवारयुक्त अथवा कोटि कुलोंकी मुक्ति देनेवाली नवमीयुक्त जन्माष्टमीका व्रत किया है वे प्रेतयोनिको प्राप्त हुए अपने पितरोंको भी प्रेतयोनिसे मुक्त करतेहैं। यह पद्मपुराणके वाक्य दान आदिके विषयमें जानो, कारण कि, इनमें व्रतपद नहीं लिखाहै, यह अनन्तभट्टका कथन है। और हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, यह वचन जयन्तीके विषयमें है, किन्हींका यह कथन है कि, उदयके समय चन्द्रोदय हो सो ठीक नहीं चन्द्रोदयके होनेपर असन्देहसे सम्पूर्ण नवमीका दिनमें होना अयुक्त है, और इसमें प्रमाण नहीं है, इस कारण प्रथम दिन सप्तमीका वेध होनेपर परदिनमें सूर्योदयमें घडी भरभी ग्रहण करनेयोग्य है, और पद्मपुराणमें सप्तमीविद्धा अष्टमी लिखी है, इससे न व्रतका भेद है और न जन्माष्टमीमें जयन्तीका अन्तर्भाव है। गौडोंका तो यह कथन है कि, नवमीके क्षय होजानेपर ऐसा लिखाहै कारण कि, जो सम्पूर्ण नवमी हो यह विशेष लिखाहै, इससे प्रथम दिन जयन्तीके अभावमें ही पूर्वोक्त वाक्य है, और आचार्यचूडामणि आदिका यह कथन है कि, जयन्ती आदि सम्पूर्ण व्रतोंका निषेधक यह वाक्य है हमारा तो यह कथन है कि, यह बात सत्य है, कि व्रतभेद है, परन्तु मनुष्य तो जन्माष्टमी व्रतको करते हैं॥ और श्रावण वा भाद्रपदमें रोहिणीयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी मिले तो उसका नाम जयन्ती लिखा है, श्रावणमें योग न होय तो भाद्रपदमें निश्चय होगा इस माधवग्रन्थमें वसिष्ठसंहिताकी लिखी हुई भाद्रपदकी

यद्वा गुणात्फलम् ॥ 'सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममुपनयेत्' इतिवदित्यन्ये ॥ तन्न । नित्यत्वानुपपत्तेः । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव मास इत्यन्ये ॥ तन्न । एकवाक्ये उभयनिर्देशे वा शब्दद्वयायोगात्॥ अतो जयन्तीव्रतस्यापि नित्यत्वादुपवासद्वयं कार्यमिति ब्रूमः ॥ अत एव हेमाद्रिमदनरत्नादौ जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नमुक्तम् ॥ भिन्नकालत्वात्सर्वथा तावदन्तर्भावो नेति सिद्धम् ॥ यदपि पूर्वा परा वाल्पापि रोहिणीयुतैव कार्येति ग्रन्थानां तत्त्वं प्रतीयते तदपि जयन्तीपरमेव । इदं च काम्यमेवेत्यनन्तभट्टः तद्दूषणं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ॥ नित्यं काम्यमिति तु बहवः । ननु यथा विष्णुशृंखलयोगेन श्रवणद्वादशीवामनजयन्त्यादिसर्वसिद्धिः । यथा वैकादशी स्वल्पापि परा । तथा-" कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता नहि " ॥ इत्यादिवचनादर्धोदयादिवद्योगाधिक्ये फलाधिक्यात् परैव जन्माष्टमी युक्तेति चेत् वार्तामात्रं न हि तत्र व्रतभेदो द्वयोर्नित्यत्वं द्वयोरकरणे दोषो वा श्रुतः । इह त्वेतैस्त्रिभिर्हेतुभिः संज्ञाभेदाद्धर्मभेदात्कालभेदाच्चोपवासभेदः स्पष्ट एव ॥ एकदैवत्याच्छ्रवणद्वादशीवन्न

जयन्तीको कोई नहीं करता और इससे पूर्वदिनमेंही उपवास करै अथवा ब्रह्मतेजकी कामनावाला सातवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करै अथवा ब्रह्मतेजकी कामनावा सातवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करै, इसके तुल्यगुणसे फल प्राप्त होता है इसी प्रकार यह वाक्य समझना यह दूसरे कहते हैं सो योग्य नहीं, कारण कि, यह व्रत नित्य न होगा यहां गौण और मुख्य चांद्रमासोंसे एकही मास दो महीनेका है, यह दूसरोंका कथन है, सो ठीक नहीं. एकवाक्यतासे दोका बोध होना तो दोवार शब्दोंका पढना अयुक्त था, इससे जयन्तीव्रतको भी नित्य होनेसे दो व्रत करनें चाहिये । यह हमारा निश्चय है इसीसें हेमाद्रि और मदनरत्न आदिमें जयन्ती और जन्माष्टमीका व्रत पृथक् २ लिखा है और पृथक् समयमें होनेसे उसका सर्वथा अन्तर्भाव नहीं होसकता, यह बात सिद्ध हुई । यद्यपि पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणी युक्तही करनी यही ग्रन्थोंका आशय विदित होता है वह भी जयन्तीके विषयमें जानना चाहिये, और अनन्तभट्टने तो इस व्रतको काम्यही लिखा है उसके दूषण हेमाद्रिमें लिखे हैं. और इस व्रतको नित्य और काम्य तो बहुत कहते हैं. कोई शंका करते हैं कि, जैसे विष्णुशृंखल योगसे श्रावणद्वादशी वामनजयन्ती आदि सबकी सिद्धि होती है, और थोडी भी एकादशी पर मानीजाती है. इसी प्रकार घडी, क्षण, मुहूर्त भी कृष्णाष्टमी तिथि नवमीयुक्त होय तो वही ग्रहण करनी चाहिये । सप्तमी युक्त नहीं, इत्यादि वाक्यमें अर्द्धोदय योगकी समान फल अधिक होता है, इससे प्रथमही जन्माष्टमी युक्त है यह उनका कहना ठीक है, परन्तु यहां व्रतका भेद दोनोंको नित्य वा न करनेमें दोष यह श्रवण नहीं किये हैं, यहां तो संज्ञाभेद, धर्मभेद, फलभेद इन तीनों कारणोंसे व्रतका भेद स्पष्टही)

पारणालोपदोषोपि ॥ तेन व्रतद्वयमेव युक्तम् । द्वयोरपि नित्यत्वात् ॥ केचित्तु "त्रेतायां द्वापरे चैव राजन् कृतयुगे तथा । रोहिणीसहिता चेयं विद्वद्भिः समुपोषिता ॥ अतः परं महीपाल संप्राप्ते तामसे कलौ । जन्मना वासुदेवस्य भविता व्रतमुत्तमम्" ॥ २ ॥ इति हेमाद्रौ वह्निपुराणात् कलौ जन्माष्टमीव्रतमेव, न जयन्तीव्रतमित्याहुः । तन्न ॥ 'तामसे कलौ' इत्युक्तेः परमश्रेयोहेतोरस्य कलौ पापिनां दुर्लभत्वमुच्यते ॥ तेन कलौ तामसा न करिष्यन्ति । किं तु धन्या एवेत्यर्थः । अन्यथा–' शूद्राश्च ब्राह्मणाचारा भविष्यन्ति कलौ युगे ' इत्यादौ विधिकल्पनापत्तेः ॥ अत्र निशीथवेध एव ग्राह्यः । पूर्वोक्तवचनेषु तस्यैव मुख्यकालत्वोक्तेः॥"अष्टमी शिवरात्रिश्च ह्यर्धरात्रादधो यदि। दृश्यते घटिका या सा पूर्वविद्धा प्रकीर्तिता" इति माधवीये पुराणान्तरात् । "अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत् । तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्" इति भविष्योक्तेः ॥ "अष्टमी रोहिणीयुक्ता निश्यर्धे दृश्यते यदि । मुख्यकाल इति ख्यातस्तत्र जातो हरिः स्वयम्" इति वसिष्ठसंहितोक्तेश्च ॥ तत्राष्टमी द्वेधा रोहिणीरहिता तद्युता च। आद्यापि चतुर्धा, पूर्वेद्युरेव निशीथयोगिनी परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्चेति । तत्राद्य-

---

और दोनों व्रतोंके एक देवता होनेसे श्रवणद्वादशीके तुल्य पारणाके लोपका दोष भी नहीं तिससे दोही व्रत युक्त हैं, और दोनोंकोही नित्य प्राप्ति है. -कोई यह कहते हैं कि, इस हेमाद्रिमें वह्निपुराणके, इस वाक्यसे कि, हे राजन् ! त्रेता, द्वापर, सतयुगमें रोहिणीसहित अष्टमीमेंही विद्वानोंने व्रत किया, हे महीपति ! इसके आगे तामस कलियुगके आनेपरभी वासुदेवके जन्मका उत्तम व्रत होगा, इससे कलियुगमें जन्माष्टमीव्रत है जयंतीव्रत नहीं है, सो कहना किसी प्रकार ठीक नहीं है. 'तामसे कलौ' यह कहनेसे कलियुगमें परमकल्याणका हेतु यह व्रत पापियोंको महाकठिन है, यह बात इससे कही, इससे कलियुगमें तमोगुणी न करैंगे और महात्मा मनुष्य करैंगे यह इसका अर्थ है। अन्यथा शूद्रभी कलियुगमें ब्राह्मणोंके समान आचरण करनेवाले होजांयगे इत्यादिमेंभी विधिकी कल्पना करनी पडेगी, इस व्रतमें आधीरातका वेधही ग्रहण करना चाहिये । कारण कि, पूर्वोक्त वाक्योंमें वही मुख्य समय कहा है ॥ माधवीयमें किसी पुराणका यह वाक्य भी लिखा है कि, अष्टमी वा शिवरात्रि आधीरात्रिसे प्रथम घडीभर ही दीखै तो पूर्वविद्धा कही है. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, यदि कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधीरातके समय रोहिणी होय तो उसमें कृष्णका पूजन करनेसे तीन जन्मके पाप दूर होते हैं. और वसिष्ठसंहितामें लिखा है कि, यदि रोहिणीयुक्त अष्टमी आधीरातको हो तो वही मुख्यकाल कहा है. कारण कि, हरि उसमें स्वयं प्रगट हुए हैं तिसमें अष्टमी दो प्रकारकी है, रोहिणीयुक्त और रोहिणीसे रहित, पहली चार प्रकारकी है, १ पहले दिन जो आधीरातमें हो, २ अगले दिन हो. ३ उभ

योरसन्देह एव कर्मकालव्याप्तेः । "जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्" इति भृगूक्तेश्च ॥ अस्मात्केवलरोहिण्युपवासोपि सिद्धः । अन्त्ययोः परैव । प्रातः संकल्पकालव्याप्तेराधिक्यात् । 'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी' इति ब्रह्मवैवर्त्ताच्च । एवमंशतः समव्याप्तावपि ॥ विषमव्याप्तौ त्वाधिक्येन निर्णयः । रोहिणीयुतापि चतुर्धा–पूर्वेद्युरेव निशीथे रोहिणीयुता परेद्युरेवोभयेद्युरनुभयेद्युश्च । अत्राप्याद्ययोरसंदेहः 'कार्या विद्धापि सप्तम्यां रोहिणीसहिताष्टमी' इति पाद्मोक्तेः ॥ 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इति गारुडाच्च । "सप्तमीसहिताष्टम्यां निशीथे रोहिणी यदि । भविता साष्टमी पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ" इति वह्निपुराणाच्च ॥ द्वितीये त्वसन्देह एव । तृतीयपक्षे परैव । "वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताष्टमी । सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तमीसंयुताष्टमी" इति ब्रह्मवैवर्तात् । चतुर्थ्यपि त्रेधा–'पूर्वेद्युर्निशीथेष्टमी परेह्नि रोहिणी परेह्न्यष्टमी पूर्वेह्नि रोहिणी ॥ उभयेद्युरुभयस्य निशीथसम्बन्धो वा इति ॥आद्ये परेद्युर्जयन्तीयोगस्य सत्त्वात् परैवेति माधवः ॥ तदुक्तं तत्रैव–"यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा । अन्तर्भूता जयन्त्यां स्या-

---

दोनों दिन आधीरात्रमें हो, ४ दोनों दिन अर्धरात्रमें न हो, इन चारोंमें प्रथम दोनोंमें कर्मकालव्यापिनी होनेसे सन्देह नहीं कारण कि, भृगुने लिखा है कि, जन्माष्टमी, रोहिणी, शिवरात्रि यह पूर्वतिथिसे विद्धाही करनी चाहिये, तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी इस वाक्यसे रोहिणीका व्रतही सिद्ध है । पिछली दोनोंमें पहलीही ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि, उसमें प्रातःकाल संकल्पकालव्यापिनी है, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, सप्तमीसंयुक्त अष्टमी प्रयत्नसे त्यागदेनी इस प्रकार अंशसे समानव्यापिनी होय तो कुछ डर नहीं न्यूनाधिक व्यापिनी होय तो अधिक व्याप्तिसे निर्णय करना चाहिये । रोहिणीसें युक्तभी चार प्रकारकी हैं. १ पहले दिन अर्ध रात्रिमें रोहिणीसे युक्त, २ अगले दिन, ३ वा दोनों दिन आधीरातमें रोहिणीसे युक्त, ४ वा दोनों दिन रोहिणीसे संयुक्त, इनमें भी पहली दोमें सन्देह नहीं कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, सप्तमी विद्धाभी अष्टमी रोहिणीयुक्त करनी चाहिये गरुडपुराणमें लिखा है कि, पूर्वविद्धा जन्माष्टमीमें व्रत करै वह्निपुराणमें लिखा है कि, सप्तमीयुक्त अष्टमीको आधीरातमें रोहिणी होय तो वह अष्टमी तवतक पवित्र है जबतक सूर्य चन्द्रमा हैं, दूसरे व्रतमें कुछ सन्देह नहीं । तीसरे पक्षमें अगली लेनी कारण कि, परदिनमें यत्नसे सप्तमीयुक्त अष्टमीको त्याग दे. ब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, रोहिणीयुक्त भी सप्तमीसे युक्त अष्टमीको न करना चाहिये, चौथी भी तीन प्रकारकी है १ पहले दिनसे आधीरातमें अष्टमी परदिनमें रोहिणी, २ अष्टमी परदिनमें पूर्वदिन रोहिणी, ३ दोनों दिन अष्टमी और रोहिणी दोनों आधी: रात्रमें नहों, पहलीमें परदिनमें जयन्तीयोग होनेसे अगली होती है, यह माधवका कथन है माधवने कहाहै कि, जिस वर्षमें

ऋक्षयोगप्रशस्तितः" इति ॥ "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने । मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साष्टमी भवेत् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तापि यदा कृष्णाष्टमीतिथिः । नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात्सप्तमीसंयुता न हि" ॥ २ ॥ इति पाद्मोक्तेश्च ॥ हेमाद्रिस्त्वाह-अष्टम्याः प्राधान्यात्तस्याश्च पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापित्वात् पूर्वैव । पाद्मं तु पूर्वेद्युर्हि निशीथेऽष्टम्यभावे ज्ञेयम् । अन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खदन्धणामात्रमिति ॥ अन्ये तु पूर्वविद्धाष्टमीवाक्येन जन्माष्टम्यां सूर्योदये सप्तमीवेधनिषेधात् । कलाघटीमात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'कार्या विद्धापि सप्तम्या' इति जयन्तीपरम् । 'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्' इत्येकवाक्यत्वात् । तत्रापि द्वयोर्नित्यत्वात्कालभेदाच्चोपवासद्वयं भवत्येव । यदा तु केवलाष्टमी शुद्धाधिका तदा त्यागहेतोः सप्तमीवेधस्याभावात् पूर्वैव । यदि वा विद्धन्यूना तदा परदिने ग्राह्यतिथेरभावात् पूर्वैव । एवं सर्वाण्यौदयिकवाक्यानि सप्तमीवेधपराणि । "जन्माष्टमीं पूर्वविद्धां सऋक्षां सकलामपि । विहाय नवमीं शुद्धामुपोष्य व्रतमाचरेत्" इति व्यासोक्तेर्विद्धायाः क्षये शुद्धनवम्यामुपवासः । दशमीवेधे द्वादश्युपवासवदित्याहुः ॥ ते निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः । 'मुहूर्तमपि संयुता' इति रोहिणीयोगे त्याज्यत्वोक्तेः । तिथ्यन्त

जयन्तीयोग हो तब जन्माष्टमी जयन्तीमें अन्तर्भूत नक्षत्रके योगकी स्तुतिसे जाननी चाहिये । पद्मपुराणमें लिखाहै कि, यदि पूर्वविद्धा अष्टमी नवमीके उदयकालमें मुहूर्तमात्रभी होय तो वह सम्पूर्ण अष्टमी होतीहै. घडी, कला, मुहूर्त मात्रभी, कृष्णाष्टमी नवमीसे युक्त स्वीकार करनी सप्तमीयुक्त न लेनी । कोई तो यह कहतेहैं कि, ऐसा पद्मपुराणमें लिखाहै हेमाद्रिमें अष्टमीकी प्रधानतासे और उसके पहले दिन कर्मकालव्यापिनी होनेसे पहलीही ग्रहण करनी, पद्मपुराणका कथन तो उस काल मानना जो प्रथम दिन आधीरातमें अष्टमी न हो, अन्तर्भावका कहना तो मूर्खोंका कामही है ॥ और तो यह कहतेहैं कि, पूर्वविद्धा अष्टमी इस वाक्यमें जन्माष्टमीको सूर्योदयके समय सप्तमीवेधका निषेध कहाहै कला घडी मात्रभी उदयकालकी अष्टमी लेनी और सप्तमीविद्धा भी जन्माष्टमी करनी यह वाक्य जयन्तीके विषयमें जानने. कारण कि, इस वाक्यके. साथ इसकी एकवाक्यता है कि; पूर्वविद्धा जयन्तीमें व्रत करै तिससे दोनोंको नित्य होनेसे और कालभेद होनेसे दोही व्रत होंगे और जब केवल अष्टमी शुद्ध हो वा अधिक होय तो सब त्यागके कारण वेधके अभावसे प्रथमही करनी और विद्धासे न्यून होय तो अगलीही ग्रहण करनी और अष्टमी तिथि न होय तो अगलीही करनी. इसी प्रकार सम्पूर्ण उदयकालके : वाक्य सप्तमीवेधके विषयमें जानने और जो यह कहतेहैं कि, सप्तमीसे विद्धा और रोहिणीसे युक्त और सम्पूर्ण अष्टमीको त्यागकर शुद्ध नवमीको व्रत करै, इस व्यासके वाक्यसे विद्धा अष्टमीके क्षयमें :दशमीसे विद्धा एकादशीके समान शुद्ध नवमीको व्रतका कथन है । उनका यह कथन अमूलक होनेसे त्यागने योग्य है कारण कि, मुहूर्तमात्रभी संयुक्त होय इस वाक्यसे रोहिणीयोगमेंही त्याग लिखाहै

पारणवाक्यानां निर्विषयत्वापत्तेः । न च जयन्तीपराणि शुद्धाधिकापराणि वा तानि । भृग्वाद्यैः पूर्वविद्धाष्टम्यामपि तिथ्यन्ते पारणोक्तेः । तेन 'कलाकाष्ठा' इति वाक्यान्तरवशाज्जयन्तीपरमेतत् । तत्त्वं तु अष्टम्याः कर्मकालव्याप्तेः । "दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला । रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्" इति पूर्वोक्तवाक्ये रोहिणीयोगाभावे ग्राह्यत्वोक्तेर्वचनात् कर्मकालव्यापिनीं त्यक्त्वा पूर्वापरा वाल्पापि रोहिणीयुता ग्राह्या । माधवमदनरत्ननिर्णयामृतानन्तभट्टगौडमैथिलग्रन्थादिष्वप्येवमिति ॥ युक्तं तु उपवासद्वयं कार्यम् । द्वयोर्नित्यत्वादिति तु वयम् ॥ अन्त्ययोः परैव । " सप्तमीसंयुताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम । प्राजापत्यं द्वितीयेह्नि मुहूर्तार्द्धं भवेद्यदि ॥ तदाष्टयामिकं पुण्यं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा " इति स्कान्दात् । " मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा साष्टमी भवेत् । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा " इति पाद्माच्चेति दिक् ॥ निम्बादित्योपासकास्तु जन्माष्टमीरामनवमीशिवरात्र्यादौ पूर्वेह्नि कर्मकालीनां तिथिं त्यक्त्वा त्रिद्विमुहूर्तां परैव तिथिर्ग्राह्या । " उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे । निम्बार्को भगवान्येषां वांछितार्थफलप्रदः " इति ॥ हेमाद्रौ मात्स्योक्तमुक्तिसप्तमीव्रते भविष्योक्तेरित्याहुः ॥ तन्न । " यदि द्वितीये दिवसे ऋक्षतिथ्योर्युतिः स्यान्न तदोपवासः । पूर्वे प्रकुर्या

और तिथिके अन्तमें जो पारणाके वाक्य हैं वे भी चारितार्थ न होसकैं.. यदि कोई कहै कि वह वाक्य जयन्तीके विषयमें हैं वा अधिक अष्टमीके विषयमें. हैं, सो ठीक नहीं. कारण कि, भृगु आदिने पूर्वविद्धा अष्टमीमें भी तिथिके अन्तमें पारणा लिखी है तिससे कला काष्ठा इस वाक्यान्तरके वशसे जयन्तीके विषयमेंही यह वाक्य जानने; तत्व तो यह है कि, अष्टमीको कर्मकाल व्यापिनी होनेसे दिन या रात्रिमें जो रोहिणीके कलामात्रभी न होनेसे रातमें स्थित अष्टमीको करै इस पिछले वाक्यमें रोहिणीयोगके अभावमें भी जन्माष्टमीको ग्रहण करना चाहिये; इस वाक्यसे कर्मकालव्यापिनीको छोडकर पहली वा पिछली अष्टमी रोहिणीयुक्तही जयन्तीमें ग्रहण करनी चाहिये । माधव, मदनरत्न, निर्णयामृत, अनन्तभट्ट, गौड, मैथिलग्रन्थोंमें भी इसी प्रकारसे लिखाहै, यथार्थ तो यह है कि, दोनोंको नित्य होनेसे दोनोंही व्रत करने यह हमारा कथन है, अन्त्य दोनोंमें परलीही करनी चाहिये, स्कंद और पद्मपुराणके ये वाक्य हैं कि, सप्तमीसंयुक्त अष्टमीको रोहिणीनक्षत्र होकर यदि दूसरे दिन आधी मुहूर्त्त भी होय तो अष्टप्रहरतक पुण्यकाल. व्यास आदिकोंने लिखाहै मुहूर्त्तमात्रसे युक्तभी अष्टमी संपूर्ण होती है और अनेक कुलको मुक्ति देनेवाली. नवमी युक्त होय तो क्या कहना है, ऐसा पद्मपुराणमें लिखाहै। निम्बादित्योपासकोंका तो यह कथन है कि, जन्माष्टमी रामनवमी शिवरात्रि आदिमें पहले दिन कर्मकालमें विद्यमान तिथिको छोडकर दो वा तीन मुहूर्त्ततक पहले दिनकीही लेनी. कारण

दिवसे द्वितीये दिनेशभक्तोथ तदा व्रताद्यम् " इति मात्स्यवाक्येन तत्रैव उपसंहारात्सवार्थत्वेन मानाभावात् ॥ ऋक्षतिथ्योर्हस्तसप्तम्योः । अन्यथा ऋषिपञ्चम्यादौ तदापत्तिः । शिष्टाचारान्नेति चेत् न । तस्य न्यायवचोविरोधेन हेयत्वात् । इदानीं क्वापि निम्बार्कोपासनाभावाच्चेति संक्षेपः ॥ जन्माष्टमीपारणम् । पारणं तु–" तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात्तिथिभान्ते च पारणम् " इति ब्रह्मवैवर्तात् । " तिथ्यर्क्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेऽथवा कुर्यात्पारणं त्वपरेऽहनि " इति हेमाद्रौ वचनाच्चार्धरात्रेप्युभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति मुख्यः पक्षः। 'सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते ' इति ब्रह्मवैवर्तं त्वन्यविषयम् । दिने मुख्यकाललाभेऽन्यतरान्ते वा ज्ञेयम् । गौडास्तु–" न रात्रौ पारणं कुर्यादृते वै रोहिणीव्रतात् । तत्र निश्यपि तत्कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम् " इति ब्रह्माण्डपुराणाद्रात्रौ सार्धप्रहरमध्ये कार्यमित्याहुः ॥ ' महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं मध्ययामयोः ।' तथा–'मध्यमप्रहरे मात्रे विज्ञेया तु महा-

---

कि, हेमाद्रिमें कहे हुए मत्स्यपुराणोक्त सप्तमीव्रतमें 'भविष्यपुराणका यह कथन है कि, निम्बार्क भगवान् जिनके मनोरथ देनेवाले हैं तिनके कुलमें व्रतमें उदयव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । यह निम्बार्कोंका कथन उचित नहीं. कारण कि हेमाद्रिग्रन्थमेंही मत्स्यपुराणके इस कथनसेही यह उपसंहार कियाहै कि, यदि दूसरे दिन नक्षत्र तिथिका योग होय तो उस व्रतको न करै, किन्तु निम्बार्कका भक्त प्रथम उत्तम दिनमें व्रत आदि करै सर्वार्थ होनेमें कोई प्रमाण नहीं नक्षत्र और तिथि हस्त और सप्तमी लेनी, अन्यथा ऋषिपंचमी आदिमें भी यही माना जायगा. यदि कोई कहै कि, शिष्टाचारसे नहीं माना जायगा सो उचित नहीं कारण कि, न्याय और वाक्यके विरोधमें शिष्टाचार त्यागने योग्य है और आजकल कहीं भी निम्बार्कको उपासना नहीं होती है । यह संक्षेपसे कहाहै ॥ पारणा तो इस ब्रह्मवैवर्तके कथनसे आठगुने पुण्यको तिथि और चौगुने पुण्यको नक्षत्र नष्ट करताहै इससे तिथि और नक्षत्र दोनोंके अन्तमें प्रयत्नसे पारणा करनी चाहिये और हेमाद्रिमें भी लिखाहै कि, तिथि और नक्षत्रकी जब हानि हो वा नक्षत्रका अन्त होय तो पहले दिन आधी रातमें पारणा करै, इससे आधी रातके समय दोनोंके अन्तमें वा एकके अन्तमें पारणा करै यही मुख्य पक्ष है । सब व्रतोंमें दिनमेंही पारणा श्रेष्ठ है यह ब्रह्मवैवर्तका कथन तो जन्माष्टमी छोडकर अन्य व्रतोंके विषयमें है, अथवा दिनमें मुख्य काल न मिले तो नक्षत्र वा तिथि इनमें एकके अन्तमें पारणा करनी, गौडोंका तो यह कथन है कि, रोहिणीव्रतको छोडकर रात्रिमें पारणा न करै, रोहिणीव्रतमें तो महानिशाको त्यागकर रात्रिमें भी पारणा करै, इस ब्रह्माण्डपुराणसे डेढ प्रहरके मध्यमें रात्रिमें करै, मध्यके दो प्रहरोंके मध्यको महानिशा वर्णन करतेहैं किसी और स्मृतिमें यह लिखा है कि,

निशा ' इति स्मृत्यन्तरात् ॥ कल्पतरौ मदनरत्ने चैवम् ॥ कामधेनौ गर्गस्तु- 'महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् ' इत्याह । वृद्धशातातपस्तु-'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः ' इत्याह ॥ वेदपाठपरमेतदित्यन्ये । ' महानिशाया-मन्यतरान्ते तृतीयदिने पारणम् । ' अपरेऽहनि ' इति पारणोत्तरदिनपरत्वात् । उभयान्तापेक्षणादित्याहुः ॥ तत्त्वं तु महानिशातोर्वागन्यतरान्तलाभे महानिशा-निषेधः । महानिशायामेव लाभे तत्रैव पारणमिति ॥ दिवोदासस्तु-" रजनीप्रहरं यावत्प्रवृत्तिः कर्मणो मता । पारणं तावदेवेष्टं प्रमादान्न भवेद्यदि " इति स्कान्दा-दूर्ध्वं निषेधमाह ॥ तन्निर्मूलम् । अशक्तौ तु वह्निपुराणे-' भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि शस्तं भारत पारणम् ' इति ॥ गारुडे विष्णुधर्मे च-" जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत् । तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम् ॥ " अशक्तौ तु- "तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥ " स एवोत्सवान्त इति कालादर्शोक्तेश्चेति संक्षेपः ॥ तत्र विशेषः । अष्टम्यां विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये-"ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले । सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम् ॥ तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्य-

बीचका एक प्रहर महानिशा जानना । कल्पतरु और मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखाहै काम-धेनु ग्रन्थमें गर्गका यह कथन है कि, मध्यके दो प्रहर महानिशा कहतेहैं. वृद्धशातातपका तो यह वचन है कि, रात्रिके मध्य दो प्रहरोंकी पिछली और आदिकी दो घडी महानिशा कहातीहैं कोई दूसरे वेदपाठके विषयमें लिखतेहैं, महानिशामें नक्षत्र और तिथि इनमें एकके. उपरान्तमें तीसरे दिन पारणा करै, कारण कि, अपरेहनि इसमें अपरशब्द उत्तरदिनका बोधक है और जयन्तीमें दोनोंकी अपेक्षा प्राप्त है तत्त्व तो यह है कि, यदि महानिशासे प्रथम दोनोंसे एकका अन्त न मिले तब महानिशाका निषेध जानना और महानिशामें अन्त मिलजाय तो उसीमें पारणा करलेनी, यह सब जयन्तीव्रतमें है. कारण कि, उसमें नक्षत्र और तिथि इन दोनोंके योगमें व्रत होताहै, जन्माष्टमी व्रतमें तो तिथिके उपरान्तमें पारणा करै, दिवोदास तो कहतेहैं रात जितने प्रहर हो तबतक कर्मकी प्रवृत्ति होती है जो प्रमाद न हो तो तबतक पारणा करलेनी यह स्कन्दसे ऊर्ध्व निषेध कहाहै सो निर्मूल है अशक्तिमें वह्निपुराणमें यह कहाहै कि हे भारत ! नक्षत्र वा तिथिके अन्तमें पारणा श्रेष्ठ है, गरुड और विष्णुधर्ममें यह लिखाहै कि, पूर्वविद्धा जयन्तीमें व्रत करै, और व्रतवालोंको तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करनी चाहिये असमर्थ होय तो तिथि वा नक्षत्रके अन्तमें पारणा जहां लिखीहै वहां साढे तीन प्रहरतक तिथि होय तो पारणा करले कारण कि, प्रातःकालही उत्सवका अन्त है. कालादर्शमें भी यही लिखाहै कि, व्रती तिथि वा उत्सवके अन्तमें पारणा करै इति संक्षेपः ॥ अष्टमीमें यह विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, फिर अष्टमीको नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करके श्रेष्ठस्थानमें देवकीका सूतिकागृह

ष्टविधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ॥ वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णकैर्लिखिताथ वा । सर्वलक्षणसंपूर्णां पर्यङ्के च पटावृते ॥ देवकीं तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे । प्रसुप्तां च प्रसूतां च स्थापयेन्मञ्चकोपरि ॥ मां तत्र बालकं सुप्तं पर्यङ्के स्तनपायिनम् । यशोदां तत्र चैकस्मिन् प्रदेशे सूतिकागृहे ॥ तद्वच्च कल्पयेत्पार्थ प्रसूतवरकन्यकाम् । कश्यपो वसुदेवोयमदितिश्चैव देवकी ॥ शेषो वै बलभद्रोऽयं यशोदा क्षितिरप्यभूत् । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः ॥ गोधेनुः कुञ्जरश्चैव दानवाः शस्त्रपाणयः । लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ॥ इत्येवमादि यत्किंचिच्छक्यते चरितं मम । लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः ॥ मन्त्रेणानेन कौन्तेय देवकीं पूजयेन्नरः ॥ गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादैः शृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरकृतकरैः किङ्करैः सेव्यमाना । पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी देवमाता जयति सुतनया देवकी कान्तरूपा ॥ पादौ संवाहयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके । निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै इति ॥ अर्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा । नाडीवर्धापनं

कल्पित करै, उसके मध्यमें प्रतिमाको स्थापन करै वह प्रतिमा आठ प्रकारकी लिखी है, कि सुवर्ण, चांदी, तांबा, पीतल, मट्टी, वृक्ष और मणि इनकी अथवा रंगोंसे लिखी गई सब लक्षणोंसे पूर्ण उस प्रतिमाको कपडोंसे ढके हुए पलंगपर रक्खे और एक स्थानमें शय्यापर ऐसी देवकीको स्थापन करै, जिसके स्तनोंसे दूध टपकता हो और जिसके प्रसव हुआहो और स्तन पीते और सोते हुए मुझ बालकको उसी शय्यापर पौढावे और हे पार्थ ! प्रगट श्रेष्ठ कन्यावाली यशोदाकी भी उसी सूतिकागृहके किसी देशमें कल्पना करै, यह वसुदेव कश्यप हैं और यह देवकी अदिति हैं यह बलदेवजी शेष हैं, यशोदा क्षिति, है नन्द दक्षप्रजापति हैं, गर्ग ब्रह्मा हैं, इनको लिखै और बछडे गौ आदि हाथी और शस्त्र हाथमें लिये दानवोंको लिखै, और यमुनाके कुण्डमें कालियकी मूर्ति बनावे इत्यादि मेरे चरित्रको जितना लिखसके उतना लिखकर भक्तिमें तत्पर हो मनुष्य प्रयत्नसे पूजा करै, और हे कौन्तेय ! इस मन्त्रसे मनुष्य देवकीकी पूजा करै, और जो गाते हुए किन्नरादिसे निरन्तर युक्त प्रवृत और वेणु, वीणा बजाते हुए: और शृङ्गार शीशा घट हाथमें लिये किन्नरोंसे सेवित और: भली प्रकार बिछे हुए पलंगपर भली प्रकार स्थित सुन्दर पुत्र और रूपवाली और देवमाता, देवकी जयवाली हो, देवकीके चरणोंके समीप चरणोंको दाबती हुई कमलपर बैठीहुई लक्ष्मीकी भी इस प्रकार पूजा करै, कि लक्ष्मीदेवीको प्रणाम है. पुष्प, कुशा, चन्दनसहित जलको शंखमें भरकर और गोडोंसे पृथ्वीको छू करके चन्द्रमाको अर्घ दे, गुड और घीसे आधीरातके समय वसोर्धारा दे, और मेरा नाल छेदन षष्ठी

षष्ठी नामादेः करणं मम ॥ ततो मन्त्रेण वै दद्याच्चन्द्रायार्घ्यं समाहितः । शंखे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम् ॥ जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् । क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम । ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते ॥ नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् । यथा पुत्रं हरिं लब्ध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा ॥ तामेव निर्वृतिं देहि सुपुत्रं दर्शयस्व मे " ॥ इति देवक्यर्घः ॥ "ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा यामे यामे प्रपूजयेत् । प्रभाते ब्राह्मणान् शक्त्या भोजयेद्भक्तिमान्नरः ॥ ॐ नमो वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा मां विसर्जयेत् " ॥२॥ इदं प्रतिमासकृष्णाष्टम्यामप्युक्तं मदनरत्ने वह्निपुराणे-" प्रतिमासं च ते पूजामष्टम्यां यः करिष्यति । मम चैवाखिलान् कामान् स सम्प्राप्स्यत्यसंशयम् ॥" तथा- "अनेन विधिना यस्तु प्रतिमासं नरेश्वर । करोति वत्सरं पूर्वं यावदागमनं हरेः ॥दद्याच्छय्यां सुसंपूर्णां गोभी रत्नैरलंकृताम् " ॥ इति जन्माष्टमीव्रतम् ॥ कुशग्रहणम् ॥ भाद्रामावास्यायां कुशग्रहणमुक्तं हेमाद्रौ हारीते च-"मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनःपुनः " ॥ नभाः श्रावणः । तेन दर्शान्तमासे जन्माष्टम्यनन्तरं दर्शो लभ्यते । मदनरत्ने तु-' मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः ' इति मरीचिवाक्यमुक्तम् ॥ नभस्यो भाद्रपदः ।

नामकरणको करे, फिर इस मन्त्रसे चन्द्रमाको सावधानतापूर्वक अर्घ्य दे कि, हे क्षीरसागरसे वा अत्रिके नेत्रसे प्रादुर्भूत हुए चन्द्रमा रोहिणीसहित ! मेरे इस अर्घ्यको आप स्वीकार करो. हे प्रकाश और ज्योतियोंके पति ! आपको प्रणाम है, और हे रोहिणीके पति ! मेरे इस अर्घ्यको ग्रहण करो, फिर इस मन्त्रसे देवकीको अर्घ्य दे कि, जैसे कृष्णरूप पुत्र प्राप्त होकर तुमको आनन्द हुआ है वही सुख मुझे दो, और श्रेष्ठ पुत्र दिखाओ, फिर पुष्पांजलि देकर प्रहर २ भरमें पूजन करे, फिर शक्तिसे भक्तिमान् मनुष्य प्रातःकाल ब्राह्मणोंको भोजन करावे, गो ब्राह्मणके हितकारी वासुदेवको नमस्कार है, मेरे शांति हो और कल्याण हो यह कहकर मेरा विसर्जन करे, यह व्रत प्रतिमास कृष्णपक्षकी अष्टमीकोभी मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जो मनुष्य प्रतिमहीनेमें अष्टमीको मेरी पूजा करताहै वह सब कामनाको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं हे नरोंके ईश्वर ! जो मनुष्य भगवान्के जन्मदिनतक सम्पूर्ण वर्षतक पूजा करताहै वह गौ और रत्नोंसे भूषित पूरी शय्याका दान करताहै वह सुखी होताहै । इति जन्माष्टमीव्रतम् ॥ भाद्रपदकी अमावस्याको कुशाओंका ग्रहण हेमाद्रिमें हारीतके वाक्यसे लिखा है कि, श्रावणके महीनेकी अमावस्याको कुशाका संग्रह लिखा है श्रेष्ठ कुशा बारंबार कर्मोंमें ग्रहण करने योग्य हैं, इस वाक्यमें नभाः पदसे श्रावण अमान्त मासका ग्रहण किया है तिससे जन्माष्टमीके उपरान्तकी अमावस्या ग्रहण करनी. मदनरत्नमें तो मरीचिका यह वाक्य लिखा है कि, नभस्य (भाद्रपद) महीनेकी अमावस्याको कुशाओंका संचय लिखा है

तेन महालयान्तर्गतदर्शो लभ्यते । अत्र गौणमुख्यचान्द्राभ्यामेक एव दर्श इत्यन्ये॥ हरितालिकाव्रतम् ॥ भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम् । तत्र परा ग्राह्या– "मुहूर्तमात्रसत्त्वेपि दिने गौरीव्रतं परे। शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्" इति माधवोक्तेः । चतुर्थीयुक्तायां फलाधिक्यं माधवीये आपस्तम्बः–" चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा । अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी" द्वितीयायोगे प्रत्यवायमाह स एव–" द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति विमोहिता । सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः " इति ॥ " आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका । चतुर्थीमिश्रितास्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ॥ तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता । भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका " ॥ २ ॥ इति दिवोदासोदाहृतवचनाच्च ॥ भाद्रपदशुक्लवरदचतुर्थी । भाद्रपदशुक्लचतुर्थी वरचतुर्थी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ' इति हेमाद्रौ भविष्ये । तत्रैव पूजोक्तेः ॥ मदनरत्नेप्येवम् । परदिने एकांशेन साकल्येन वा मध्याह्नव्याप्त्यभावे सर्वपक्षेषु पूर्वा ग्राह्या । तथा च बृहस्पतिः–"चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्या-

---

तिससे अमान्तमास होनेसे महालयके अन्तर्गत अमावस्या प्राप्त होती है कोई तो यह लिखते हैं कि, गौण और मुख्य चंद्रमासे एकही अमावस्या ग्रहण करनी चाहिये ॥ भाद्रपदशुक्ला ३ को हरतालिका व्रत होता है, उसमें अगली तृतीया ग्रहण करनी. कारण कि, माधवने कहा है कि, मुहूर्तमात्र होनेपर भी गौरीका व्रत परदिनमें करना चाहिये । माधवीयमें आपस्तम्बने चतुर्थीयुक्तका विशेष फल कहा है कि, चतुर्थीसहित तीज अधिक फल देती है यह स्त्रियोंको सौभाग्य करने और पुत्र पौत्रकी बढानेवाली है और जो मोहित होकर द्वितीयासे संयुक्त करती है वह वैधव्यको प्राप्त होती है ऐसा विद्वान् कहते हैं । और गणचतुर्थी, योगकी. प्रशंसासे शुद्ध और अधिकमें भी किसी प्रकार होती है, भाद्रकृष्ण तीजको, मधुश्रावणीका (कजली तीज) और शुक्लको हरितालिका कहते हैं, स्त्रियोंको उसे करना चाहिये, जो दिन वा रात्रिमें चतुर्थीसंयुक्त होय, श्रावणशुक्ल तृतीयाको मधुश्रावणीका और भाद्रपदकृष्णको कज्जली, और शुक्लको हरितालिका वर्णन करते हैं यह दिवोदासने कहा है ॥ भाद्रपदशुक्ल चतुर्थीको सिद्धिविनायकका व्रत होता है, वह मध्याह्नव्यापिनी करनी चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिमें, भविष्यपुराणके वाक्यसे मध्याह्नमें ही पूजा लिखी है कि, हे राजन् ! प्रातःकाल श्वेततिलोंसे स्नान करके मध्याह्नमें पूजन करे, मदनरत्नमें भी यही लिखा है । यदि परदिनमें अंशसे वा सम्पूर्णतासे मध्याह्नव्यापिनी न होय तो सब प्रकार सब पक्षोंमें पहिलीही करनी, यही बृहस्पतिने लिखा है कि, मध्याह्नव्यापिनी होय तो तृतीयाविद्धा गणेशचतुर्थी मध्याह्नमें होय तो तृतीयासे विद्धा उत्तम

ह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेहनि " इति ॥ " मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥ " इति माधवीये स्मृत्यन्तराच्च ॥ तत्र गणेशरूपं स्कान्दे-" एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् " इति । इयं रविभौमयोरतिप्रशस्ता । " भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥ " इति निर्णयामृते वाराहोक्तेः ॥ अत्र चन्द्रदर्शनं निषिद्धम् ॥ तथा चापरार्के मार्कण्डेयः-"सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा " इति ॥ चतुर्थ्यां न पश्येदित्यन्वयः ॥ प्रधानक्रियान्वयलाभात् । तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां न निषेधः । गौडा अप्येवमाहुः ॥ पराशरोपि-" कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम् । मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात्पश्येन्न तं सदा ॥ तद्दोषशांतये सिंहः प्रसेनमिति वै पठेत् " इति श्लोकस्तु विष्णुपुराणे-"सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः " इति ॥ भाद्रपदशुक्लऋषिपञ्चमीव्रतनिर्णयः ॥ भाद्रपदशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी । सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः ' इति माधवीये हारीतोक्तेः ॥ दिनद्वये सत्त्वे हेमाद्रिमते परा । ' सिता

होती है ऐसा माधवीयमें और स्मृतियोंका वचन है परे होय तो पंचमीसे विद्धा उत्तम होती है ॥ वहां गणेशजीका रूप इस स्कंदपुराणके वाक्यसे इस प्रकार लिखा है कि, एकदांत, शूर्पवत् कान सर्पोंका यज्ञोपवीत धारे, पाश, अंकुशधारी सिद्धिविनायक गणेशका ध्यान करै, सूर्य और मंगलवार इस व्रतमें अत्यंत श्रेष्ठ कहे गये हैं कारण कि, निर्णयामृतमें वाराहपुराणका कथन है कि, भाद्रपद शुक्लचतुर्थी मंगल वा रविवारसे युक्त होय तो बडी श्रेष्ठ है, उसमें विघ्नेश्वरका पूजन करके मनुष्य मनोवांछित फलको प्राप्त होता है, इसमें चन्द्रमाका दर्शन करना निषिद्ध है, यही अपरार्कमें मार्कण्डेयका कथन है कि, सिंहके सूर्यके शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, तिससे उस दिन चन्द्रमाका देखना अच्छा नहीं, प्रधान क्रियामें अन्वयसे चतुर्थीको न देखे ऐसे अन्वय करना इससे चतुर्थीमें उदय हुए चन्द्रमाको पंचमीमें देखना दोष नहीं करता. गौडोंने भी इसी प्रकार कहा है, पाराशरने भी कहा है कि, कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमाका दर्शन करनेसे मिथ्या दोष लगता है, इससे उस दिन चन्द्रमाको न देखना यदि देखे तो उसके दोषशांतिके निमित्त (सिंहः प्रसेनमवधीत्) इस श्लोकको जपै, कि सिंहने प्रसेनको मारा, और सिंहको जांववानने मारा, हे सुकुमार बालक ! तू मत रोवे, तेरीही यह स्यमंतक मणि है यह विष्णुपुराणमें लिखा है ॥ भाद्रपदशुक्ल ५ ऋषिपचमी होती है, वह मध्याह्नव्यापिनी लेनी. कारण कि, माधवीयमें हारीतका कथन है कि, सम्पूर्ण पूजा और व्रतोंमें तिथि मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, दोनों दिनमें मध्याह्नव्यापिनी होय तो हेमाद्रिके मतसे अगली लेनी.

ष्ठ्युता स्यात् पंचमी ' इति दीपिकोक्तेः ॥ माधवमते पूर्वा । ' सर्वत्र पंचमी पूर्वा ' इत्युक्तेः ॥ युग्मवाक्यान्निर्णयस्तु युक्तः ॥ ऋषिपञ्चमी षष्ठीयुतैवेति दिवोदासः ॥ अत्र ऋषीन् प्रतिमासु पूजयित्वाऽकृष्टभूमिजशाकेन वर्तनम् । एवं सप्तवर्षाणि कृत्वा सप्तकुम्भेषु प्रतिमासु सम्पूज्य परेह्नि तत्तन्मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तिलान् हुत्वा सप्त ब्राह्मणान् भोजयदिति निर्णयामृते ॥ भाद्रपदशुक्लसूर्यषष्ठीनिर्णयः ॥ भाद्रपदशुक्लषष्ठी सूर्यषष्ठी । सा सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः ॥ "शुक्लभाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम् । प्राशनं पंचगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम् " इति वचनात् ॥ कल्पतरौ भविष्ये-"येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ । योस्यां पश्यति गांगेयं दक्षिणापथवासिनम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥" गाङ्गेयः स्वामिकार्तिकेयः ॥ भाद्रपदशुक्लमुक्ताभरणसप्तमीनिर्णयः ॥ भाद्रपदशुक्लसप्तम्यां मुक्ताभरणव्रतम् । तत्र सप्तमी पूर्वयुता ग्राह्या । ' षण्मुन्योः ' इति युग्मवाक्यात् ॥ भाद्रपदशुक्लदूर्वाष्टमीनिर्णयः ॥ भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी । सा पूर्वा ग्राह्या-" श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी ॥ पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् " इति हेमाद्रौ बृहद्यमोक्तेः ॥ " शुक्लाष्टमीतिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत् । दूर्वाऽष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते " इति पुराणसमु-

---

कारण कि, दीपिकाका वाक्य है कि, शुक्लपक्षकी पंचमी परतिथिसे संयुक्त होतीहै माधवके मतमें पहली स्वीकार की है जिसमें दो ऋषियोंके वाक्य मिलें उससे निर्णय करना युक्त है, दिवोदास तो इस प्रकार कहते हैं कि, षष्ठीसे युक्त ऋषिपंचमी लेनी, इससे प्रतिमाओंमें ऋषियोंका पूजन करके विना जोते उत्पन्न हुए शाक (परवाह आदि) का भक्षग करे, इस प्रकार ७ वर्षतक करके ७ घडोंपर ७ प्रतिमाओंका अर्चन करके दूसरे दिनमें तिस तिस ऋषिके मंत्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर ७ ब्राह्मणोंको जिमावै यह निर्णयामृतमें लिखाहै । भाद्रपदशुक्ल ६ सूर्यषष्ठी होती है, वह सप्तमीसे युक्त लेनी कारण कि, दिवोदासने यह लिखाहै कि, भाद्रपदशुक्ल षष्ठीको स्नान और सूर्यका पूजन कर पंचगव्यके पीनेसे अश्वमेधसे भी अधिक फल प्राप्त होताहै, कल्पतरुमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, हे भरतश्रेष्ठ ! इस भादौं महीनेकी छठमें जो मनुष्य दक्षिण देशनिवासी गंगापुत्र कार्तिकेयका दर्शन करता है वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होता है इसमें संदेह नहीं ॥ भाद्रपद शुक्ल सप्तमीके मुक्ताभरणव्रत होताहै उसमें 'षण्मुन्योरिति' इस वाक्यसे पूर्वयुत सप्तमी लेनी ॥ भाद्रपद शुक्ला ८ अष्टमीको दूर्वाअष्टमी होती है वह पहली ग्रहण करनी. कारण कि, हेमाद्रिमें बृहद्यमने कहाहै कि, श्रावणी, दुर्गानवमी, दूर्वा, होली, शिवरात्रि, बलिका दिन यह सब पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये ॥ पुराणसमुच्चयमें लिखाहै कि, भाद्रपदमासकी शुक्लाष्टमी तिथि दूर्वाष्टमी है वह पिछली नहीं करनी

चर्याच ॥ यत्तु-" मुहूर्ते रौहिणेऽष्टम्यां पूर्वा वा यदि वा परा । दूर्वाष्टमी तु सा कार्या ज्येष्ठां मूलं च वर्जयेत् " इति तत्रैव परा कार्येत्युक्तम् । तत्पूर्वदिन ज्येष्ठादियोगे द्रष्टव्यम् ॥ 'दूर्वाष्टमी सदा त्याज्या ज्येष्ठामूलर्क्षसंयुता ॥ ' तथा-" ऐन्द्रर्क्षे पूजिता दूर्वा हंत्यपत्यानि नान्यथा । भर्तुरायुर्हरा मूले तस्मात्तां परिवर्जयेत् " इति तत्रैव तन्निषेधात् ॥ इदमगस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम् । " शुक्लभाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी । सिंहार्के एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन ॥ सिंहस्थे सोत्तमा सूर्येऽनुदिते मुनिसत्तमे " इति मदनरत्ने स्कांदोक्तेः । "अगस्त्ये उदिते तात पूजयेदमृतोद्भवाम् । वैधव्यं पुत्रशोकं च दश वर्षाणि पंच च " इति तत्रैव दोषोक्तेश्च । भाद्रपदशुक्लाष्टम्यामगस्त्योदये भाविनि सति पूर्वकृष्णाष्टम्यामेव कुर्यादिति हेमाद्रिः । दीपिकायामप्येवम् ॥ इदं च व्रतं स्त्रीणां नित्यम् । "या न पूजयते दूर्वां मोहादिह यथाविधि । त्रीणि जन्मानि वैधव्यं लभते नात्र संशयः ॥ तस्मात्संपूजनीया सा प्रतिवर्षं वधूजनैः " इति पुराणसमुच्चयात् । यदा ज्येष्ठादिकं विनाष्टमी न लभ्यते तदा तत्रैवोक्तम् । " कर्तव्या चैकभक्तेन ज्येष्ठामूलं यदा भवेत् । दूर्वामभ्यर्चयेद्भक्त्या न वन्ध्यं दिवसं नयेत् " इति ।

चाहिये जो किसीने यह लिखाहै कि, प्रातःकालके मुहूर्तमें अष्टमीको पूर्वा हो वा परा हो वह दूर्वाष्टमी करनी, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रको त्यागदेना चाहिये । और वहांही जो यह लिखाहै कि, दूसरी करनी यह कथन पहले दिन यदि ज्येष्ठा आदिका योग होय तो जानना चाहिये. कारण कि, वहांही इस वाक्यसे यह भी लिखाहै कि, ज्येष्ठा और. मूलनक्षत्रसे युक्त सदा त्याग देनी तैसेही वहांही यह निषेध है कि, ज्येष्ठानक्षत्रमें दूर्वा पूजन करनेसे सन्तानोंको और मूलमें पूजनेसे पतिकी अवस्थाको नष्ट करती है, तिससे मूलको वर्जदे, इस दूर्वाष्टमीको अगस्त्यके उदयमें और कन्याके सूर्यमें न करना कारण कि, मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका यह कथन है कि, भाद्रपद मासमें शुक्लाष्टमीका दूर्वा नाम है, वह सिंहके सूर्यमें करनी चाहिये, कन्याके सूर्यमें किसी प्रकार न करनी चाहिये. कारण कि, सिंहके सूर्यमें और अगस्त्यमुनिके उदय न होनेपर वह श्रेष्ठ होती है, और वहांही यह दोष लिखा है कि, अगस्त्यके उदय होनेपर जो स्त्री दूर्वाका पूजन करती है वह पन्द्रह वर्षतक वैधव्य और पुत्रके शोकको प्राप्त होती है. हेमाद्रिने तो यह लिखा है कि, जो भाद्रपद शुक्लाष्टमीको अगस्त्योदय होनेवाला होय तो कृष्णाष्टमीको दूर्वाष्टमी पूजन करै दीपिकामें भी इसी प्रकार लिखाहै, यह व्रत स्त्रियोंको नित्य करना चाहिये कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, जो स्त्री जगत्में विधिसे दूर्वाका पूजन अज्ञानतासे नहीं करती वह तीन जन्मतक निःसन्देह विधवा होती है इससे स्त्रीजनोंको दूर्वाका प्रतिवर्ष पूजन करना चाहिये जब ज्येष्ठा आदिके विना अष्टमी मिले तब वहांही यह लिखा है कि, जब ज्येष्ठा या मूल होय तब एक समय व्रत करके भक्तिसे दूर्वाका पूजन करै, और दिनको वृथा न वितावै वह पुराणस-

तत्र विधिः । अत्र विधिर्मदनरत्ने भविष्ये-" शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम । स्थाप्य लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत् ॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात्रिलोचने । दूर्वाशमीभ्यां विधिवत्पूजयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥ २ ॥ मन्त्रस्तु—" त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः ॥ सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले । तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरम् " ॥ २ ॥ इति ॥ अत्रानग्निपकं भक्षयेत् । " अनग्निपक्वमश्नीयादन्नं दधि फलं तथा । अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनान्वितम् " इति तत्रैव भविष्योक्तेः ॥ भाद्रपदेऽधिमासे सति निर्णयदीपे स्कांदे—" अधिमासे तु संप्राप्ते नभस्य उदये मुनेः । अर्वाग्दूर्वाव्रतं कार्यं परतो नैव कुत्रचित् ॥ ज्येष्ठापूजाव्रतम् ॥ अत्रैव ज्येष्ठापूजोक्ता माधवीये स्कान्दे—"मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता । रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् " इति ॥ इयं ज्येष्ठायोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या ॥ दिनद्वययोगे परा । पूर्वेद्युर्हि रात्रियोगे पूर्वैव । "नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी नात्र संशयः । मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुता ॥ रात्रिर्यस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् " इति तत्रैवोक्तेः ॥ अस्यापवादः—

मुत्रयमें लिखा है ॥ इसकी विधि मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है, कि, शुद्धदेशमें उत्पन्न हुई दूर्वाके ऊपर शिवलिंगको स्थापन करके हे ब्राह्मणोत्तम ! गन्ध, पुष्प, धूपसे पूजन करै, और दहीसे तथा चावलसे शिवजीको अर्घ्य दे. दूर्वा और शमीसे श्रद्धापूर्वक विधिसे पूजन करै, उसका मन्त्र यह है कि, हे दूर्वे ! तुम्हारा अमृतसे जन्म है देवता और राक्षस तुम्हारी वन्दना करते हैं मुझे सौभाग्य सन्तान दो मेरे सब कार्योंको पूर्ण करो, और जैसे तुम अपनी शाखाओं और प्रशाखाओंसे व्याप्त होती हो इसी प्रकार मुझे भी अजर और अमर सन्तानको दो, इसमें वह वस्तु भक्षण करै, जो अग्निसे पक न हो. कारण कि वहांही भविष्यपुराणका कथन है कि हे ब्रह्मन् ! अग्निसे नहीं पका अन्न दधि जिसमें क्षार और लवण न पडा हो मीठे सहित उसको भक्षण करै ॥ यदि भाद्रपद अधिकमास होजाय तो निर्णयदीपकग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, यदि भाद्रपद अधिक मास होय और अगस्त्यका उदय होजाय तो प्रथमही दूर्वाव्रत करले, परे अगले कदाचित् भी न करै ॥ इसीमें माधवग्रन्थमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे ज्येष्ठाकी पूजा लिखी है भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त रात्रि होय उसदिन ज्येष्ठाका पूजन करै, यह ज्येष्ठाके योगवशसे पहली वा अगली ग्रहण करनी दोनों दिन ज्येष्ठाका योग होय तो अगली लेनी और पहले दिन रात्रिमें हो तो पहले दिन लेनी, कारण कि, वहांही यह लिखाहै कि, नवमीसहित अष्टमी करनी, इसमें संशय. नहीं । और भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त रात्रि होय उसमें ज्येष्ठाका पूजन करना चाहिये, इसका अपवादभी

"यस्मिन् दिने भवेज्ज्येष्ठा मध्याह्नादूर्ध्वमंप्यणुः । तस्मिन् हविष्यं पूजा च न्यूना चेत्पूर्ववासरे" इति ॥ इदं केवलतिथौ नक्षत्रे चोक्तम् । तत्राद्यं केवलतिथौ कार्यम् । अन्त्यं केवलर्क्षे । तदुक्तं मात्स्ये,–'प्रत्याब्दिकं तिथावुक्तं यज्ज्येष्ठादैवतं व्रतम् ॥ प्रतिज्येष्ठाव्रतं यच्च विहितं केवलोडुनि ॥ तिथावेवाचरेदाद्यं द्वितीयं केवलर्क्षतः " इति ॥ अत एव मदनरत्ने भविष्ये नक्षत्रमात्रे उक्तम्–" मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठा यदा भवेत् । रात्रौ जागरणं कृत्वा एभिर्मन्त्रैश्च पूजयेत् " इति ॥ दाक्षिणात्यास्त्वृक्ष एव कुर्वन्ति । हेमाद्रौ स्कान्देपि–"मासि भाद्रपदे शुक्लपक्षे ज्येष्ठर्क्षसंयुते । यस्मिन्कस्मिन् दिने कुर्याज्ज्येष्ठायाः परिपूजनम् " इति ॥ तथा–"मैत्रेणावाहयेद्देवीं ज्येष्ठायां तु प्रपूजयेत् ॥ मूले विसर्जयेद्देवीं त्रिदिनं व्रतमुत्तमम् " इति । मन्त्रस्तु–"एह्येहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते । ज्येष्ठे त्वं सर्वदेवानां मत्समीपगता भव" इत्यावाह्य 'त मग्निवर्णाम्' इति संपूज्य । "ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं श्रेष्ठायै ते नमो नमः ॥ शर्वायै ते नमस्तुभ्यं शांकर्यै ते नमो नमः । ज्येष्ठे श्रेष्ठे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे सत्यवादिनि । एह्येहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्ण सरस्वति" ॥ २ ॥ इत्यर्घ्यम् ॥ भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कुर्यात् । 'आभाकासितपक्षेषु' इति दिवोदासोदाहृतवचनात् । "उपोष्यैकादशीं मोहात्पारणं श्रवणे यदि । करोति हंति तत्पुण्यं द्वादशद्वादशीभवम् " इति तत्रैव स्कान्दाच्च ॥ अस्य तत्रैव

है कि जिस दिन मध्याह्नसे परे ज्येष्ठा नक्षत्र कुछ भी होय उसी दिन हविष्य भोजन और पूजा करै, और मध्याह्नसे प्रथम होय तो पूर्वदिनमें करै, यह केवल तिथि वा केवल नक्षत्रमें लिखा है उनमें पहिला केवल तिथिमें करना वा केवल नक्षत्रमें करना सोई मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठादेवताका व्रत प्रतिवर्ष तिथिमें जिस प्रकार वर्णन किया है और ज्येष्ठाका व्रत जो केवल नक्षत्रमें लिखाहै इन दोनोंमें प्रथमको तिथिमें करै, और दूसरेको नक्षत्रमें करै, इसी निमित्त मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे केवल नक्षत्रमें व्रत लिखाहै कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षमें जब ज्येष्ठानक्षत्र होय तब रात्रिको जागरण करके इन मन्त्रोंसे पूजन करै, दाक्षिणात्य तो नक्षत्रमें ही करतेहैं, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका वाक्य भी है कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षमें ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त जिस किसी दिनमें ज्येष्ठाका अर्चन करै, तैसेही लिखा है कि, अनुराधामें देवीका आवाहन करै, ज्येष्ठामें पूजन और मूलमें विसर्जन करै । ये तीनों दिन श्रेष्ठ व्रत है, मन्त्र यह है कि, हे महाभागे ! हे, देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत सब देवताओंमें ज्येष्ठे ! तुम आओ मेरे निकटमें प्राप्त हो, इस मन्त्रसे अवाहन करके (तामग्निवर्णां) इस ऋचासे पूजन करके इस मन्त्रसे अर्घ्य दे, ज्येष्ठा (बडी) श्रेष्ठा (उत्तमा) तुमको नमस्कार है । शर्वाको नमस्कार है, और शांकरीको प्रणाम है. हे श्रेष्ठे ! ज्येष्ठे ! हे, तपोनिष्ठे हे ब्रह्मिष्ठे हे महाभागे हे सत्यवादिनि हे सरस्वति ! तुम आओ और अर्घ्यको ग्रहण करो भाद्रपदशुक्ल द्वादशीको श्रवणनक्षत्रका योग न होय तो पारणा करै. कारण कि, पूर्वोक्त (आभाकासितपक्षेषु) इस दिवोदासके लिखे हुए वाक्यसे श्रवणनक्षत्रके योगमें पारणाका

प्रतिप्रसवः। मार्कण्डेयः-"विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्धते यदि। तिथिक्षये न भोक्तव्यं द्वादशीं लंघयेन्न हि" इति। केचित्तु- यदा त्वपरिहार्यो योगस्तदा श्रवणनक्षत्रे त्रेधा विभक्ते मध्यमविंशतिघटिकायोगं त्यक्त्वा पारणं कार्यम्॥ तदुक्तं विष्णुधर्मे-"श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम्" इति॥ केचिच्चतुर्धा विभज्य मध्यपादद्वयं वर्ज्यमाहुः। अत्र मूलं चिन्त्यम्॥ परिवर्तनोत्सवनिर्णयः॥ अत्रैव विष्णुपरिवर्तनोत्सवं कुर्यात्। सन्ध्यायां विष्णुं सम्पूज्य प्रार्थयेत्। मन्त्रस्तु तिथितत्त्वे उक्तः "ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव। पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव" इति॥ शक्रध्वजोत्थापनम्॥ अत्रैव शक्रध्वजोत्थापनमुक्तमपरार्के गर्गेण।" द्वादश्यां तु सिते पक्षे मासि प्रौष्ठपदे तथा॥ शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे"॥ श्रवणद्वादशीनिर्णयः॥ इयमेव श्रवणद्वादशी। तत्रैकादश्यां द्वादशी श्रवणयोगे सैवोपोष्या। "एकादशी द्वादशी च वैष्णव्यमपि तत्र चेत्। तद्विष्णुशृंखलं नाम विष्णुसायुज्यकृद्भवेत्" इति विष्णुधर्मोक्तेः। नारदीयेपि-"संस्पृश्यैकादशीं राजन् द्वादशीं यदि संस्पृशेत्। श्रवणं ज्योतिषां श्रेष्ठं ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ द्वादशी श्रवणस्पृष्टा स्पृशेदेकादशीं

निषेध है, वहांहीं स्कंदपुराणका कथन है कि, जो मनुष्य एकादशीको व्रत करके मोहसे श्रवणमें पारणा करताहै वह बारह द्वादशीका पुण्य नष्ट करताहै, वहां ही इसका निषेध भी मार्कण्डेयपुराणके इस वाक्यसे है कि, हे महीपति! यदि श्रवण नक्षत्र बढजाय और तिथिका क्षय होजाय तो भोजन न करै, और द्वादशीका लंघन न करै, कोई तो यह कहते हैं कि, जब ऐसा योग होय कि, श्रवण नक्षत्र न हटसकै जब तीन प्रकारके भाग किये हुए श्रवण नक्षत्रके मध्यकी २० घडी छोडकर पारणा करै सोई विष्णुधर्ममें लिखाहै कि श्रवणके मध्यमें विष्णु करवट लेते हैं, और सोना जागना करवट लेनाही छोडने योग्य है, कोई यह कथन करतेहैं कि, श्रवणनक्षत्रके चार भाग करके मध्यके दो चरण त्याग दे, इसमें प्रमाण नहीं है॥ इसी दिन विष्णुके परिवर्तनका उत्सव करै कि, संध्याके समय विष्णुका अर्चन करके प्रार्थना करै, और उसका मन्त्र तिथितत्त्वमें यह लिखाहै कि, हे वासुदेव! हे जगत्के नाथ! हे माधव! यह आपकी द्वादशी आई इसमें करवट लो और सुखसे शयन करो॥ इसी दिन इन्द्रकी ध्वजाका उठानाभी अपरार्कग्रन्थमें गर्गके वाक्यसे लिखाहै कि, हे राजन्! भाद्रपदशुक्ल द्वादशीको इन्द्रध्वजाको उठावै यदि अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्र होवे तो इसीको श्रावणद्वादशी कहतेहैं, वह एकादशीको द्वादशी और श्रवणका योग होय तो उसी दिनही व्रत करै. कारण कि, विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, एकादशी और द्वादशी होय और श्रवणनक्षत्र भी वहां होय तो यह विष्णुशृंखल नाम योग विष्णुकी सायुज्य करनेवाला होता है. नारदपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन्! यदि ज्योतियोंमें श्रेष्ठ श्रवणनक्षत्र एकादशीका स्पर्श करके द्वादशीका भी स्पर्श करले

यदि । स एव वैष्णवो योगो विष्णुशृंखलसंज्ञितः" ॥२॥ इति हेमाद्रौ मात्स्योक्तेश्च । दिनद्वये द्वादशी श्रवणयोगेपि पूर्वा । निर्णयामृते त्वस्य पूर्वार्धमन्यथा पठितम् । 'द्वादशीं श्रवणर्क्षं च स्पृशेदेकादशी यदि ' इति ॥ तेन हेमाद्रिमते एकादश्याः श्रवणयोगाभावेपि तद्युक्तद्वादशीयोगमात्रेण विष्णुशृंखलं भवति ॥ निर्णयामृतमते तु-' श्रवणस्यैकादशीद्वादशीभ्यां योग एव विष्णुशृंखलं नान्यथेति । ' यदा निशीथानन्तरं सूर्योदयावधि द्विकलामात्रमपि श्रवणर्क्षं भवति तदापि पूर्वैव ॥ तदुक्तं तत्रैव नारदीये इमां प्रकृत्य-" तिथिनक्षत्रयोर्योगो योगश्चैव नराधिप। द्विकलो यदि लभ्येत स ज्ञेयो ह्यष्टयामिकः" इति ॥ "द्वादशी श्रवणस्पृष्टा कृत्स्ना पुण्यतमा तिथिः । न तु सा तेन संयुक्ता तावत्येव प्रशस्यते" इति मदनरत्ने मात्स्याच्च ॥ दिवोदासीये तु-"रात्रेः प्रथमपादे चेच्छ्रवणं हरिवासरे । तदा पूर्वामुपवसेत्प्रातर्भान्ते च पारणम् " इत्युक्तम् ॥ इदं तु निर्मूलत्वात्पूर्वविरोधाच्चोपेक्ष्यम् । इयं बुधवारेऽतिप्रशस्ता । "बुधश्रवणसंयुक्ता सैव चेद्द्वादशी भवेत् । अत्यन्तमहती सा स्याद्दत्तं भवति चाक्षयम् " इति हेमाद्रौ स्कान्दात् । यानि तु पठन्ति "उत्तराषाढसंयुक्ता श्रोणामध्याह्नगापि वा । आसुरी सैव तारा स्या-

तो नक्षत्रयाोगोंको दूर करताहै. हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणका वाक्य है कि श्रवणनक्षत्रसे मिली द्वादशी एकादशीका स्पर्श कर ले तो यह वैष्णवोंका विष्णुशृंखलयोग होताहै, दोनों दिन द्वादशी और श्रवणयोगमें भी प्रथमही ग्रहण करनी चाहिये निर्णयामृतमें तो पूर्वका आधा श्लोक और प्रकारसे पढा है कि, यदि द्वादशी और श्रवणनक्षत्र एकादशी स्पर्श करले, तिससे हेमाद्रिके मतमें एकादशीका श्रवणयोगके अभावमें भी श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशीके योग मात्रसे विष्णुशृंखल योग होताहै निर्णयामृतमें तो एकादशी और द्वादशी दोनोंमें श्रवणयोग होनेपर विष्णुशृंखलयोग होताहै अन्यथा नहीं जब आधी रातके पीछे सूर्योदयतक घडी मात्रभी श्रवणनक्षत्र हो तवभी पहलीही ग्रहण करनी, सोई वहांही नारदके वाक्यसे इसी तिथिके प्रकरणमें लिखाहै कि, हे राजन् ! तिथि और नक्षत्रका योग, योग कहाताहै यदि वह दो घडी भी प्राप्त हो तो आठ प्रहरका योग होताहै, योगपदसे शिवरात्रि आदिमें आर्द्रानक्षत्र आदि समझना चाहिये कृष्णपक्षकी द्वादशी श्रवणके स्पर्शसेही अत्यन्त पवित्र होती है । कुछ सम्पूर्णही श्रवण नक्षत्रसे युक्त पवित्र नहीं । यह मदनरत्नमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, दिवोदासीयमें तो यह लिखाहै कि, यदि एकादशीके प्रथम चरणमें श्रवणनक्षत्र होय तब पहिली, तिथिको व्रत करै और प्रातःकाल नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै ॥ यह तो निर्मूल और पूर्वसे विरुद्ध होनेसे त्यागने योग्य है. यह बुधवारमें अत्यन्त श्रेष्ठ होतीहै कारण कि, हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणका कथन है कि, बुध और श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशी होय तो वह अत्यन्त श्रेष्ठ होती है. उसमें दिया दान करजैसे अक्षय होताहै, जो इन वाक्योंको पढते हैं कि, उत्तराषाढनक्षत्रसे युक्त श्रवण मध्याह्नमेंभी

घ्नन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रोणा द्वादशिकायुता । विश्वर्क्षसं-युता सा च नैवोपोष्या शुभेप्सुभिः" ॥ २ ॥ इत्यादीनि विष्णुधर्मस्कान्दभवि-ष्यादीनि वचनानि तानि निर्मूलानि । यदपि स्मृत्यर्थसारे 'उदयव्यापिनी ग्राह्या' इत्युक्तम् । यच्च बृहन्नारदीये--'उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशीव्रते' इति ॥ तद्यदा शुद्धाधिका द्वादशी परदिन एवोदये श्रवणयोगः पूर्वेद्युश्च तदभिन्ने काल-योगस्तत्परम् ॥ दिनद्वये उदययोगे पूर्वैव । बहुकर्मकालव्याप्तेरित्युक्तं मदनरत्ने ॥ यदा त्वेकादश्येव श्रवणयुता न द्वादशी, तदापि पूर्वैव । "यदा न प्राप्यते ऋक्षं द्वादश्यां वैष्णवं क्वचित् । एकादशी तदोपोष्या पापघ्नी श्रवणान्विता" इति मदनरत्ने नारदीयोक्तेः ॥ यदा परैवर्क्षयुता तदा परा । तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् । "एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् । न चात्र विधिलोपः स्यादुभ-योर्दैवतं हरिः" इति भविष्योक्तेः ॥ यत्तु विष्णुधर्मे--"पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं व्रता-न्ते विप्रभोजनम् । असमाप्ते व्रते पूर्वे नैव कुर्याद्व्रतान्तरम्" इति ॥ तदेतद्भिन्नप-रम् । अत्र गौडाः--'शृणु राजन्परं काम्यं श्रवणद्वादशीव्रतम्' इति स्थूलशीर्ष-

---

होय तो वह आसुरी तारा पूर्व किये पुण्यको नष्ट करतीहै, द्वादशीसे युक्त श्रोणा उदयव्यापिनी ग्रहण करनी जो वह उत्तराषाढ नक्षत्रसंयुक्त होय तो कल्याणके अभिलाषी उसमें व्रत न करैं. इत्यादि विष्णुधर्म, स्कन्द, भविष्यके वाक्य निर्मूल हैं, और जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहा है कि, उदयव्यापिनी ग्रहण करनी, और जो बृहन्नारदीयमें लिखाहै कि, व्रतमें श्रवणद्वादशी उदय-व्यापिनी लेनी, वह तब है जब द्वादशी शुद्ध वा अधिक है, और परदिनमें उदयके समय श्रवण योग है, और पूर्वदिन उससे भिन्नकालमें श्रवणनक्षत्रका योग हो, दोनों दिन श्रवणयोग होय तो पूर्ण होनेसे प्रथमही ग्रहण करनी. श्रवणद्वादशीका व्रत तो श्रवणयुक्त द्वादशीके न मिलनेपर श्रवणयुक्त एकादशीमेंही करना कारण कि, मदनरत्नमें नारदका यह वाक्य है कि, यदि कभी द्वादशीको श्रवण नक्षत्र न मिले तो पापनाश करनेवाली श्रवणसे युक्त द्वादशीकोही सदा व्रत करै, यदि अगलीही नक्षत्रयुक्त होय तो अगलीही लेनी, ऐसे समयपर समर्थ मनुष्य दो व्रत करै, कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, एकादशीका व्रत करके द्वादशीका व्रत करै," इसमें विधिका लोप नहीं कारण कि, दोनों तिथियोंके देवता भगवान् हैं जो विष्णुधर्ममें यह लिखा है कि, पारणाके अन्ततक व्रत जानना चाहिये । और व्रतके अन्तमें ब्राह्मणभोजन होता है । और प्रथम व्रतके पूर्ण न होनेपर दूसरा व्रत न करै यह वाक्य इससे भिन्न व्रतोंमें सम झना चाहिये, इसमें गौड यह मानते हैं कि, हे राजन् ! श्रेष्ठ और काम्य श्रवण द्वादशीव्रतको श्रवण करो इस स्थूलशीर्षके वाक्यसे यह काम्यही है. तिससे अशक्त पुरुष नित्य एकादशी

वचनात् काम्यमेवेदम् । तेनाशक्तस्य नित्यैकादशीव्रतमेवेति मन्यते । "द्वादश्या-मुपवासेन शुद्धात्मा नृप सर्वशः ॥ चक्रवर्तित्वमतुलं सम्प्राप्नोत्युत्तमां श्रियम्" ॥ इति गौडनिबन्धे मार्कण्डेयोक्तेश्च । दाक्षिणात्यास्तु–"एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात् । व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" ॥ इति वाराहवामनपुराणोक्तेः श्रवणद्वादशीव्रतमेवेत्याहुः । भुक्त्वेति फलाद्याहारपरम् । न त्वन्नपरम् । 'अन्नाश्रितानि पापानि' इति निषेधात् । "उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि । प्रथमेह्नि फलाहारी निराहारोऽपरेहनि' इति दिवोदासीये भविष्योक्तेश्च । अशक्तौ तु गृहीतैकादशीव्रतो यस्तं प्रत्युक्तं मात्स्ये–"द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नक्षत्रं श्रवणं यदि । उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादश्यां पूजयेद्धरिम्" इति । पूजयेन्न तूपवसेदित्यर्थः । अगृहीतैकादशीव्रतश्चेदेकादश्यां भुक्त्वा द्वादश्यामुपवसेत् । "एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम्" इति नारदीयोक्तेः ॥ 'पारणं तूभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कुर्यात्' तिथिनक्षत्रनियमे तिथिभान्ते च पारणम्' इति स्कान्दात् । "तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत् । पारणं तु न कर्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः" इति नारदीयादिति हेमाद्रिः ॥ यद्यप्यत्र नक्षत्रमात्रान्तेपि पारणं प्रतिभाति तथापि तिथिमात्रान्ते ज्ञेयम् । न त्वृक्षान्ते तिथि-

---

व्रतको ही करै, गौड निबन्धमें मत्स्यपुराणका कथन है कि, हे नृप ! द्वादशीके व्रतसे सब प्रकार शुद्धमन मनुष्य उत्तम चक्रवर्ती राजा होता है, और महालक्ष्मीको प्राप्त होता है, दाक्षिणात्य तो यह लिखते हैं कि, मनुष्य एकादशीको भोजन और द्वादशीके व्रतको करके दो व्रतोंके सम्पूर्ण पुण्यको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं. इस वाराह वामनपुराणके कथनसे श्रवणद्वादशीका व्रतही है, इसमें भोजनपदसे फलाहार लेना और नहीं कारण कि, अन्नके आश्रयमें पाप होतेहैं इससे अन्नका निषेध है. कारण कि, दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका कथन है कि, यदि मनुष्य दो व्रत करनेको समर्थ न होय तो प्रथमदिन फलाहारी और परदिन निराहारी रहै, अशक्तिमें तो जिसने एकादशी व्रत ग्रहण कर रक्खा हो उसके प्रति मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, यदि शुक्लपक्षकी द्वादशीको श्रवण नक्षत्र हो तब एकादशीको व्रत करके द्वादशीको हरिपूजन करे, अर्थात् केवल पूजा करै व्रत न करै यदि एकादशीव्रत ग्रहण न कर रक्खा होय तो एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रत करना चाहिये, इसी प्रकार यह नारदका वाक्य है कि, एकादशीको भोजन करके द्वादशीको व्रत करै वह प्रथम दिनके समस्त पुण्यको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं पारणा तो दोनोंके वा किसी एकके अन्तमें करना, स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, तिथि और नक्षत्रके नियममें तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै, जब तिथि और नक्षत्रके संयोगमें व्रत हो तबतक पारणा न करै, जबतक एकका क्षय न हो यह नारदपुराणका वाक्य हेमाद्रिमें लिखाहै, यद्यपि यहां-नक्षत्रके अन्तमें भी पारणा प्रतीत होतीहै तो भी तिथिमात्रके अन्तमें जानना चाहिये, और तिथिके बीचमें नक्षत्रके अन्तमें

मध्येपि । "याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः । ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना श्रवणरोहिणीम" इति विष्णुधर्मे श्रवणान्तमात्रे पारणनिषेधात् ॥ रोहिण्यां तु–'भान्ते कुर्यात्तिथेर्वापि' इति वह्निपुराणात् तदन्तेप्यस्तु न त्वत्रैवमस्तीति न ऋक्षान्तोऽनुकल्प इति मदनरत्ने ॥ असंभवे तु 'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा ॥" इति ज्ञेयम् ॥ यत्तु मदनरत्ने -द्वादशीवृद्धौ श्रवणवृद्धौ वा श्रवणान्त एव पारणं कुर्यात् । "पारणं तिथिवृद्धौ तु द्वादश्यामुडुसंक्षयात् । वृद्धौ कुर्यात्त्रयोदश्यां तत्र दोषो न विद्यते ॥" इति वह्निपुराणादित्युक्तम् ॥ तत्प्रकरणादेतस्यामेव श्रवणयुक्तैकादश्यां विहितं विजयैकादशीव्रतपरम न तु श्रवणद्वादशीपरमिति मदनरत्ने ॥ गौडास्तु श्रवणद्वादशीपरमाहुः ॥ तत्र विधिः । अत्र विधिर्मदनरत्ने विष्णुधर्मे–'तस्मिन् दिने तथा स्नानं यत्र कचन संगमे' तथा "दध्योदनयुतं तस्यां जलपूर्णं घटं द्विजे । वस्त्रसंवेष्टितं दत्त्वा छत्रोपानहमेव च ॥ न दुर्गतिमवाप्नोति गतिमग्र्यां च विन्दति ॥ मन्त्रस्तु भविष्ये–घटे जनार्दनपूजामभिधाय "नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ प्रीयतां देवदेवेशो मम संशयनाशनः" ॥ वामनद्वादशीव्रतनिर्णयः ॥ वामनावतारनिमित्तोपवासस्तु व्रतहेमाद्रौ

न जानना चाहिये. कारण कि विष्णुधर्ममें श्रवणके अन्तमात्रमें पारणाका निषेध है कि, नक्षत्रके योगसे जो शुद्ध तिथि कही हैं उनमें श्रवण और रोहिणीको छोडकर नक्षत्रके अन्तमें पारणा करै इस वह्निपुराणके वाक्यसे तिथिके अन्तमें भी पारणाहै और यहांसे नहीं इससे नक्षत्रका अनुकल्प (गौण) है यह मदनरत्नमें कहाहै, असम्भव होय तो तिथि वा तिथिनक्षत्रकी पूर्तिमें पारणा जहां कथन कियाहै वहां यदि तिथि तीन प्रहरसे अधिक होय तो प्रातःसमयही पारणा जाननी चाहिये, जो मदनरत्नमें यह कथन है कि, द्वादशी वा श्रवण नक्षत्रकी वृद्धिमें श्रवणके अन्तमेंही पारणा करे. कारण कि, वह्निपुराणका वाक्य है कि, तिथिकी वृद्धि होय तो द्वादशीमें नक्षत्रके क्षय होनेपर पारणा करै, नक्षत्रकी वृद्धि होय तो त्रयोदशीको पारणा करै, यह वाक्य उस विजया एकादशीके व्रतमें है. जो इसी श्रवणयुक्त एकादशीमें कथन है कुछ श्रवणद्वादशीके व्रतमें नहीं, मदनरत्नमें गौड तो यह कहते हैं कि, श्रवणद्वादशीके विषयही यह वाक्य है यही विधि मदनरत्नमें विष्णुधर्मप्रकरणमें कथन कीहै, उसदिन जिस किसी संगममें स्नान करै और दही चावल इनसे युक्त जलसे भरे वस्त्रसे ढके घटको और छत्री जूता ब्राह्मणको देकर मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है, श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होताहै, मन्त्र तो भविष्यपुराणमें यह लिखाहै कि, घटमें भगवान्‌की पूजा करके कहै कि, हे गोविन्द ! आपको नमस्कार है, तुम बुध और श्रवणकी द्वादशीमें पापोंके समूहको नष्ट करके सम्पूर्ण सुख देनेवाले हो देवताओंके देवभी ईश्वर मेरे सन्देहके नाशक मेरे पापोंको दूर करो ॥ वामनावतारके निमित्त व्रत तो हेमाद्रिमें

भविष्ये-"द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर । सर्वपापप्रशमनः सर्वसौख्यप्रदायकः ॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा " ॥ २ ॥ इत्युपक्रम्य " अथ काले बहुतिथे गते सा गुर्विणी भवेत् । सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम् ॥ " इत्युक्त्वा "एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां युधिष्ठिर । तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः ॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्यां मया तव । पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता ॥ " इत्युपसंहारादेकादश्यामेव व्युष्टिः फलम् । भागवतेऽष्टमस्कन्धे तु द्वादश्यां वामनोत्पत्तिरुक्ता-"श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ " श्रोणायां चन्द्रे ॥ अभिजिच्छ्रवणप्रथमांशः ॥ गौडा अप्येवम् । अत्र कल्पभेदाद्व्यवस्था ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रौ वह्निपुराणे-" नदीनां संगमे स्नायादर्चयेदत्र वामनम् । सौवर्णवस्त्रसंयुक्तं द्वादशांगुलमुच्छ्रितम् ॥ " ततो विधिवत्संपूज्य । "हिरण्मयेन पात्रेण दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः । नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बाल वामनरूपिणे । नमः कमलकिंजल्कपीतनिर्मलवाससे ॥ महाहवरिपुस्कन्धघृष्ट-

---

भविष्यपुराणके वाक्यसे कहाहै कि, हे युधिष्ठिर ! श्रवणयुक्त द्वादशीकी सब पापोंकी नाशक सब सुखोंकी दायक विधि तुम्हारे आगे कही जब श्रवणयुक्त एकादशी हो वह भक्तोंको विजय देनेवाली होती है उसका विजया नाम है ॥ यह प्रारम्भ करके फिर बहुतकाल समाप्त होनेपर वह अदिति गर्भवती हो और नवमें मासमें वामनहरिको उत्पन्न करती हुई. यह कहकर यह समस्त हे युधिष्ठिर ! एकादशीको हुआ तिससे देवताओंके देवता वामनदेवको यह विजयातिथि इष्ट है मैंने तुझसे यह एकादशीका फल कहा और श्रवणनक्षत्रयुक्त द्वादशी तो पहलेही कथन करदी यह उपसंहार (समाप्त) करके एकादशीमेंही व्रत होता है । भागवतके अष्टमस्कन्धमें द्वादशीको वामनकी उत्पत्ति कथन करीहै. श्रवणनक्षत्रयुक्त श्रोणा द्वादशीको अभिजित् मुहूर्तमें भगवान् हुए, उनके जन्मको ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि दहिने करते हुए द्वादशीको सूर्य मध्यदिनमें स्थित रहे । जिसमें हरिका जन्म हुआ वह तिथि हे नृप ! विजया लिखी है श्रवणके चन्द्रमामें श्रवणके प्रथम पादको अभिजित् कथन करतेहैं, यहां कल्पभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये । इसकी विधि हेमाद्रिमें अग्निपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, नदियोंके संगममें स्नान करै, वस्त्रसहित बारह अंगुल ऊंचे सुवर्णके वामनका अर्चन करै, फिर विधिसे पूजन करके यत्नसे सुवर्णके पात्रसे अर्घ्य दे और इन मन्त्रोंसे स्तुति करै कि, नाभिमें पद्मवाले जलमें शयन करनेवाले आपको नमस्कार है, बालवामनरूपी आपको प्रणाम है आपको अर्घ्य देताहूं, बडे २ संग्राममें शत्रुओंके स्कन्धमें स्कन्ध रखनेवाले, कमलके किंजल्कोंके समान पीले वस्त्र धारे चक्र हाथमें

स्कन्धाय चक्रिणे । नमः शार्ङ्गसीरबाणपाणये वामनाय च ॥ यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमोनमः । देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः । एवं संपूजयित्वा तं द्वादश्यामुदये रवेः ॥ शृंगारसहितं तं तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् । वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते ॥ वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये " ॥ इति । अनन्तभट्टोप्याह । ' श्रवणैकादश्यां जनार्दननामा विष्णुः पूज्यते । श्रवणैकादश्यां वामनावतार ' इति । श्रवणयुतशुक्लैकादश्यलाभे तु दशमीविद्धापि श्रवणयुता कार्या। " दशम्यैकादशी यत्र सा नोपोष्या भवेत्तिथिः । श्रवणेन तु संयुक्ता सा चेत्स्यात्सर्वकामदा " इति वह्निपुराणादित्युक्तं मदनरत्ने ॥ पूजा च मध्याह्ने कार्या । ' अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ' इति पूर्वोक्तवचनात् ॥ दुग्धव्रतनिर्णयः ॥ अत्रैव दुग्धवतं संकल्पयेत् । तदुक्तम्—' दुग्धमाश्वयुजे मासि ' इति । अत्रेदं चिन्त्यते—दुग्धव्रते पायासादि वर्ज्यं नवेति । नेति केचित् । न हि प्रकृतिवर्जने विकारवर्जनं युक्तम् । दधिघृतादीनामपि वर्जनापत्तेः ॥ न च यत्र प्रकृतिरसोपलम्भस्तद्वर्जनमिति वाच्यम् ।; मांसविकारस्यौष्ट्रदध्यादेश्चावर्जनापत्तेः । तस्माद्दध्यादिकं पायसादि भक्ष्यमिति ॥ अत्र ब्रूमः । यत्र

लिये आपको अर्घ्य देता हूं, शार्ङ्गधनुषधारी हल बाण हाथमें लिये यज्ञके भोक्ता और फलके दाता वामनजीको प्रणाम है देवताओंके ईश्वर देवरूप देवताओंके उत्पन्न करनेवाले सब देवताओंके प्रकाशक वामनजीको प्रणाम है, इसप्रकार वामनकी पूजा करके द्वादशीको सूर्योदयके समय शृंगारसहित उस मूर्तिको ब्राह्मणके निमित्त दान करै और यह कहै कि, वामनही प्रतिग्रह लेते हैं और वामनही मैं देताहूं, सब प्रकार मंगलके दाता ब्राह्मणको मैं प्रदान करताहूं. अनन्तभट्टने भी लिखा है कि, श्रावणद्वादशीको जनार्दन विष्णुकी और श्रावण एकादशीको वामनदेवकी अर्चा होती है, यदि श्रवणयुक्त पवित्र एकादशी न प्राप्त हो तो श्रवणयुक्त दशमीविद्धा भी ग्रहण करनी. कारण कि, मदनरत्नमें वह्निपुराणके वाक्यसे यह लिखाहै कि, दशमीविद्धा एकादशी होय तो व्रत न करै, यदि वह श्रवणनक्षत्रयुक्त होय तो सब कामनाओंको प्रदान करती है । इसका पूजन मध्याह्नके समयमें करना. कारण कि यह वाक्य भागवतमें कहा है कि, दिनके मध्यमें वामन और दोनों राम प्रगट हुए हैं । इसमें दुग्धव्रतकामी संकल्प करै. सोई कहा है, आश्विनके महीनेमें दुग्धव्रत करना चाहिये इसमें यह कथन (विचार) करते हैं कि, दुग्धव्रतमें खीर आदिका निषेध है कि नहीं, कोई यह कहतेहैं कि, वर्जित नहीं हैं कारण कि, प्रकृतिके वर्जनमें विकारका वर्जना युक्त नहीं होय तो दधि घृत आदिकाभी त्याग होजायगा । यदि कोई यह कहै कि, जिसमें प्रकृतिका रस मिले उसीका त्याग है सो ठीक नहीं । मांसका विकार उष्ट्रके दही आदिका वर्जन नहीं होगा,. तिससे दहीके तुल्य पायस आदि भी भक्ष्य हैं, वर्जित नहीं इसमें हम यह लिखते हैं कि, जिस विकारमें उस प्रकृतिकी उपलम्भना हो वा सादृश्य

विकारे प्रकृतिरसोपलंभस्तत् प्रत्यभिज्ञा वा तत्र विकारस्यापि निषेधः । अस्ति च मांसविकारे मांसप्रत्यभिज्ञा मांसत्वानपायात् । यत्तु औष्ट्रदध्यादेरनिषेधापत्तिरिति । तन्न; औष्ट्रमिति विकारस्तद्धितेन निषेधात् तथा च विज्ञानेश्वरः-"औष्ट्रमेकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्" ॥ इत्यत्र औष्ट्रमिति विकारतद्धिताच्छकृन्मूत्रादीनामपि निषेध इत्याह ॥ नन्वेवं 'सन्धिन्यनिर्दशावत्सागोपयः परिवर्जयेत्' इति सन्धिन्यादिक्षीरनिषेधेपि दध्यादिग्रहणं स्यात् । सत्यं प्राप्तम् । वचनेन परं निषेधः । तदाहापरार्के शंखः-"क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः । सप्तरात्रं व्रतं कुर्यात्प्रयत्नेन समाहितः" इति ॥ व्रतं गोमूत्रयावकम् । तस्मात्पायसे दुग्धरसोपलम्भाद्वर्जनम् अत एवामिक्षायां दधिसत्त्वेपि माधुर्योपलम्भात् पयोरूपत्वमुक्तं मीमांसकैः । तदुक्तं-'पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते' इति ॥ दध्यादिषु तु तदभावादवर्जनमिति ॥ एवं दध्यादिव्रते न तक्रादीनां निषेधः । तक्रोभयहेत्वभावादिति केचित् । पूर्वोक्तशंखवचनात्सर्वविकारनिषेध इति युक्तं प्रतिभाति ॥ इति दुग्धव्रतम् ॥ भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतनिर्णयः । भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम् । तत्र त्रिमुहूर्ताप्यौदयिकी ग्राह्येति माधवः ॥ तदुक्तम् 'उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः' इति ॥ 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इति कथायां श्रवणात्,

हो वहां विकारका भी निषेध कहा है मांसके विकारमें मांसके न होनेसे मांसकी तुल्यता है. जो यह कहा है कि; ऊंटके दही आदिका निषेध न होगा सो भी उचित नहीं, वह औष्ट्रपदसे ऊंटके विकारकाभी निषेध है. कारण कि, विकारमें तद्धितका अण् प्रत्यय औष्ट्रपदमें है इससे उष्ट्रके विकारको औष्ट्र कहते हैं सोई विज्ञानेश्वरने लिखा है कि, ऊंट,. घोडा, स्त्री, वनके पशु इनके दूधको त्यागदे इस वाक्यमें विकारमें अणप्रत्यय होनेसे इनके मलमूत्र आदिका निषेध नहीं है, यदि कोई शंका करै कि, इसी प्रकार जो गौ गाभनभी दूध देती हो वा जिसको ब्याये दश दिन न हुए हैं, जिसका बछडा मृतक होगया हो उसके दूधको त्यागदे, यहांपरभी दही आदिका स्वीकार होगा यह शंका सत्य है कि, दही आदिका ग्रहण पाया तथापि दूसरे वाक्यसे निषेध है. यही अपरार्कमें शंखने लिखा है कि. भक्षण करने योग्य जो दूध हैं उनके विकारको भक्षण करै तो प्रयत्न और सावधानीसे सात दिन गोमूत्र यावक व्रत करे, तिससे खीरमें दूधके रस मिलनेसे निषेध है, इसीसे शिखरनमें दहीके होनेपर भी मधुरताके मिलनेसे मीमांसकोंने आमिक्षाको दूधरूप वर्णन किया है, सोई लिखा है (करंर) घनीभूत हुए दूधको भी आमिक्षा कहतेहैं, दही आदिमें दुग्ध आदिका रस नहीं मिलता इससे उसका त्याग नहीं होता, इससे दहीके निषेधमें तक्रका निषेध नहीं है, कोई कहते हैं दोनोंमें तुल्य हेतु है, पूर्वोक्त शंखके वचनसे सब प्रकारका निषेध प्राप्त है, यह हम जानते हैं भाद्रपदशुक्ल चतुर्दशीको अनन्तव्रत कहा है, वह तीन मुहूर्तभी हो तो उदयकाल ग्रहण करना यह माधवका मत है. सोई लिखा है कि, अनन्तव्रतमें उदयकी तीन मुहूर्तभी तिथि ग्रहण करनी, मध्याह्नमें भोजनके समय पूजन

उपरि हि देवेभ्यो धारयति' इतिवद्विधिकल्पनात् । 'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः' इति माधवीयवचनात् 'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या' इति तु दिवोदासः । प्रतापमार्तण्डेऽप्येवम् । इदमेव च युक्तम् । निर्णयामृते तु-'घटिकामात्राप्यौदयिकी' इत्युक्तम् । "तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम । पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्" इति भविष्योक्तेः ॥ "मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । संपूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम्" इति स्कान्दाच्चेति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् । द्व्यहे औदयिकत्वे पूर्णत्वात् पूर्वेति युक्तम् । तत्त्वं तु विध्यर्थवादयोर्भिन्नार्थत्वे एकवाक्यतायोगात् । संदिग्धेषु एकवाक्यत्वात् इति न्यायेन पूर्वा परा वा मध्याह्नव्यापिन्येव मुख्या ॥ माधवस्तु सामान्यवाक्यान्निर्णयं कुर्वन् भ्रान्त एव ॥ अनन्तव्रतस्य पुराणान्तरेष्वभावान्निबन्धान्तरेष्वभावाच्च वचनं निर्मूलमेवेति । अथागस्त्यार्घ्यः । तत्कालो व्रतहेमाद्रौ भविष्ये-"कन्यायामागते सूर्ये अर्वाग्वै सप्तमे दिने । कन्यायां समनुप्राप्ते ह्यर्घकालो निवर्तते" ॥ तेन उदयोत्तरमपि सप्तदिनमध्ये इत्यर्थः ॥ यत्पाद्मे-"आसप्तरात्रादुदयाद्यमस्य दातव्यमेतत्सकलं नरेण । यावत्समाः सप्त दशाथवा स्युरथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति

करे, यह कथामें लिखा है । और मध्याह्नसे ऊपर देवताओंको दे इसके तुल्य 'विधिकी कल्पनासे और सम्पूर्ण पूजाओंके व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी, इस माधवके कथनसे मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी, यह दिवोदासका मत है । प्रतापमार्तण्डमें भी इसी प्रकार लिखाहै. निर्णयामृतमें तो यह लिखा है कि, घडीभरभी उदयकालकी तिथि लेनी कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, भाद्रपदके अन्तमें और पूर्णिमाके योगमें हे द्विजोंमें श्रेष्ठ ! अनन्तव्रत करना, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदमें पूर्णिमामें मुहूर्त्तमात्रभी: चतुर्दशी होय तो उसको सम्पूर्ण जानना, और उसमें अविनाशी विष्णुका पूजन करना चाहिये । इन दोनों वाक्योंका मूल नहीं है, सिद्धान्त तो यह है कि, जहाँ विधिवाक्य और अर्थवाद वाक्योंका भिन्न २ अर्थ होय तो वहां एकवाक्यता नहीं होती है ॥ इससे और जहाँ शंका हो वहां वाक्यशेषसे निर्णय करना चाहिये, इस वाक्यसे प्रथम वा पिछली मध्याह्न व्यापिनी तिथिही मुख्य है, माधव तो सामान्य वाक्योंसे निर्णय करतेहुए यहां भ्रान्त हैं, और दूसरे पुराणों और ग्रन्थोंमें अनन्तका व्रत नहीं है इससे यह वाक्य अप्रमाण है, दोनों दिन उदयव्यापिनी होय तो पूर्ण होनेसे प्रथमहीकी ग्रहण करनी यही युक्त है ॥ अब अगस्त्यका अर्घ्य लिखतेहैं उसका समय व्रतहेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जबतक कन्याका सूर्य हो उससे सात दिन प्रथम अर्घ्य दे, और जब कन्याके सूर्य आजायँ तब अर्घ्यका समय निवृत्त हो जाताहै, तिससे अगस्त्योदयके पीछे सात दिनके मध्यमें अर्घ्य देना यही अर्थ है । यही पद्मपुराणमें कहाहै कि, अगस्त्योदयसे सात रात्रतक मनुष्यको अर्घ्य देना चाहिये और वर्ष पर्यंत दे और कोई यह कहतेहैं कि, उसके उपरान्त भी

केचित् "। यमस्यागस्त्यस्य । उदयकालश्च दिवोदासीये उक्तः । "उदेति याम्यां हरिसंक्रमाद्रवेरेकाधिके विंशतिमेत्यगस्त्यः । स सप्तमेऽस्तं वृषसंक्रमाच्च प्रयाति गर्गादिभिरभ्यभाणि "॥ अत्र विधिर्विष्णुरहस्ये-" काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्तिं तु वारुणेः । प्रदोषे विन्यसेत्तां तु पूर्णकुम्भे स्वलंकृताम् ॥ कुम्भस्थां पूजयेत्तां तु पुष्पधूपविलेपनैः । दध्यक्षतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥ २ ॥ " पूजा च वक्ष्यमाणार्घ्यमन्त्रेण कार्या । " प्रभाते तां समादाय यायात्पुण्यं जलाशयम् । निशावसाने तां पश्यञ्जलान्ते प्रतिमां मुनेः ॥ अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय भक्त्या सम्यगुपोषितः "॥ मात्स्ये तु-' अंगुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम् '। पूर्वं काशमयत्वमशक्तौ " चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय धान्यानि सप्तांकुरसंयुतानि । सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तं मन्त्रेण दद्याद्द्विजपुंगवाय ॥ धेनुं बहुक्षीरवतीं च दद्यात् सवस्त्रघंटाभरणां द्विजाय "॥ भविष्ये-' विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रनिधापितैः । सौवर्णरूप्यपात्रेण ताम्रवंशमयेन वा ॥ मूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्यां धरणीं गतः '॥ विष्णुरहस्ये-"अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुनेः । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय शूद्रे मन्त्रविधिस्त्वयम् ॥ काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसंभव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ विंध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह । रत्न-

दे, उदयका काल दिवोदासीय ग्रन्थमें कहा है कि, अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशामें सिंहसंक्रांतिसे इक्कीस २१ दिन उदय होते हैं, और वृषकी संक्रांतिसे सातवें दिनपर अस्त होजाते हैं यह गर्ग आदि मुनियोंने लिखा है इसकी विधि विष्णुरहस्यमें लिखी है । काशके फूलोंकी रमणीक अगस्त्यकी मूर्ति बनाकर प्रदोषके समय उसका अलंकार करके जलसे पूर्ण घटपर उसे स्थापन करै घडेपर रक्खी हुई उसको फूल, धूप, चन्दनसे अर्चन करै, दही और चावलकी बलि दे, रात्रिको जागरण करै, पूजा उस मन्त्रके अर्घ्यसे करै जो आगे लिखेंगे प्रातःकालके समय उसको लेकर पवित्र जलाशय (नदी आदि) में जाय, जलके निकट प्रभातके समय अगस्त्यमुनिकी प्रतिमाको दर्शन करता हुआ भली प्रकार व्रत कर अगस्त्यमुनिको अर्घ्य दे, मत्स्यपुराणमें तो यह लिखा है कि, अंगूठेके प्रमाणकी ऐसी सुवर्णकी मूर्ति बनावै जिसकी लम्बी भुजा हों चतुर्भुजी उस मूर्तिको घटपर रखकर सात दूबके अंकुर और अन्न, काश, फूल, चावल सीपिसे युक्त उस मूर्तिको ब्राह्मणके निमित्त दे पहिले काशकी मूर्ति जो कही वह शक्तिहीनतामें जाननी और वस्त्र, घण्टा भूषणसहित और बहुत दूध देती हुई गौ ब्राह्मणको दे, भविष्यपुराणमें कहा है कि, वंशपात्रमें रक्खे हुये सप्तधान्योंसे सुवर्ण वा चांदीके पात्रको मस्तकपर रखकर नम्र होकर गोडोंको पृथ्वीपर रखकर विष्णुरहस्यमें लिखे हुये इस (अगस्त्यः खनमान इत्यादि) वाक्यसे अगस्त्यको अर्घ्य दे कि, अगस्त्यको प्रणाम है यह मन्त्रविधि शूद्रके निमित्त है कि, काश फूलके तुल्य प्रकाशमान वह्निमारुतसे जन्म मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्यजीको प्रणाम हैं, हे विंध्याचलकी वृद्धिके क्षय करनेवाले, हे मेघजलोंके विषको दूर करनेवाले, हे रत्नोंके प्रिय, हे देवताओंके ईश्वर,

-वल्लभ देवेश लंकावास नमोस्तु ते ॥ वातापी भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा ॥ लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योसौ तस्मै नमोनमः ॥ येनोदितेन पापानि विलयं यांति व्याधयः । तस्मै नमोस्त्वगस्त्याय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥ अगस्त्यः खनमाने॰ विप्रोर्घ्यं विनिवेदयेत् । राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने ॥ लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् । दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या नमोऽगस्त्यमहर्षये । ऐहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे ॥ विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् । अगस्त्यो मे मनस्थोऽस्तु अगस्त्योस्मिन् घटे स्थितः ॥ अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः" ॥ १० ॥ दानमन्त्रः–" अगस्त्यः सप्तजन्मार्घं नाशयत्वावयोरयम् । अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने " ॥ प्रतिग्रहमन्त्रः विष्णुरहस्ये–" त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसम् । होमं कृत्वा ततः पश्चाद्वर्जयेन्मानवः फलम्" ॥ होमश्चार्घ्यमन्त्रेणाज्येन । भविष्ये–" दत्त्वार्घ्यं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव । ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदः क्षत्रियः पृथिवीपतिः ॥ वैश्ये च धान्यनिष्पत्तिः शूद्रश्च धनवान् भवेत् । यावदायुश्च यः कुर्यात्स परं ब्रह्म गच्छति " ॥ २ ॥ इत्यगस्त्यार्घ्यः ॥ भाद्रपौर्णमास्यां श्राद्धम् । भाद्रपौर्णमास्यां प्रपितामहात्परांस्त्रीनुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्ममार्कण्डेययोः–" नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ ।

हे लंकाके निवासी ! आपको प्रणाम हैं जिन्होंने वातापीको भक्षण किया, और पूर्वसमुद्रको शोष-लिया उन लोपामुद्राके पतिके निमित्त प्रणाम है, जिनके उदयसे पाप और व्याधि नष्ट होती हैं, शिष्य पुत्रोंसहित उनको नमस्कार है ॥ ' अगस्त्यः खनमान ' इस मन्त्रसे ब्राह्मण अर्घ्य दे, हे राजपुत्रि, हे महाभागे ! हे ऋषिपत्नी, हे लोपामुद्रे, हे सुमुखि ! आपको प्रणाम है मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करो. हे कुरुवंशी युधिष्ठिर ! इस प्रकार अर्घ्य दे और प्रणाम करके फिर विसर्जन करै, यथाशक्ति आपका मैंने पूजन किया महर्षि अगस्त्यको प्रणाम है इस लोक और परलोकके कार्योंकी सिद्धिको देकर आप गमन करैं. इस प्रकार अगस्त्यमुनिका विसर्जन करके ब्राह्मणको देना, दानका मन्त्र यह है कि, अगस्त्य मेरे मनमें स्थित हो, घटमें अगस्त्य स्थित हैं, अगस्त्यही द्विजरूपसे सत्कार पूर्वक ग्रहण करें अगस्त्य हम दोनोंके सप्तजन्मके पाप नष्ट करो. हे महामुने ! अतुल और निर्मल सुख दीजिये. यह प्रतिग्रहका मन्त्र है विष्णुरहस्यमें कहा है कि, अगस्त्यमुनिके निमित्त एक अन्न फल रसको त्याग देना और होमके पश्चात्से मनुष्य फलको त्यागै और होम अर्घ्यके मन्त्र और घीसे करै, भविष्यपुराणमें लिखा है कि, हे पांडव ! इस प्रकार सात वर्षतक अर्घ्य देकर ब्राह्मण चतुर्वेदी, क्षत्रिय राजा, वैश्य अन्नका अधिपति और शूद्र धनवान् होता है, और जो अवस्थाभर अर्घ्य दे उसको परब्रह्मकी प्राप्ति होती है । इति अगस्त्यार्घ्यः ॥ भाद्रपदकी पूर्णिमाको प्रपितामहसे अगले तीनका श्राद्ध करै, सोई

पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा" इति ॥ नान्दीमुखत्वं चोक्तं ब्राह्मे—"पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः ॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः । ते तु नांदीमुखा नांदी समृद्धिरिति कथ्यते" ॥ २ ॥ एतच्च 'प्रत्यब्दम्' इत्युक्तेः ॥ पक्षश्राद्धपक्षे सकृन्महालयपक्षे चावश्यकमिति प्रयोगपारिजाते ॥ अत्र मातामहा अपि कार्याः । 'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि' इति धौम्योक्तेः । पितृशब्दस्य च जनकपरत्वे बहुवचनविरोधेन पितृभावापन्नपरत्वात् । वार्षिके तु वचनान्निवृत्तिः । न च जीवत्पितृकस्यान्वष्टकायां मातृश्राद्धे तदापत्तिः । इष्टापत्तेः । अत एव स उक्तश्राद्धेषु स्वमातृमातामहयोर्दद्यादिति मदनरत्नकालादर्शौ ॥ एतज्जीवत्पितृकश्राद्धे वक्ष्यामः । केचित्तु— अजहल्लक्षणया पित्रादयो यत्र तत्र मातामहस्तेनात्र नेत्याहुः ॥ न चात्र नाम्ना नान्दीश्राद्धधर्मातिदेशः । वैष्णवादिशब्दवद्देवतापरस्य कर्मनामत्वाभावात् । नापि नान्दीमुखत्वं पितृविशेषणम् । पारिभाषिकत्वादिति दिक् । तथा निर्णयदीपे गार्ग्यः—"पौर्णमासीषु सर्वासु निषिद्धं पिण्डपातनम् । वर्जयित्वा प्रौष्ठपदीं यथा दर्शस्तथैव सा" इति ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाद्रपदमासः समाप्तः ॥

हेमाद्रिमें ब्रह्म और मार्कण्डेयपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वाराहके कथनानुसार कन्याराशिके सूर्यमें नान्दीमुख पितरोंका श्राद्ध पूर्णिमाको प्रतिवर्ष करना. ब्रह्मपुराणमें नान्दीमुख ये लिखे हैं कि, पिता, पितामह, प्रपितामह यह तीन पितर अश्रमुख लिखे हैं, इनसे पहिले जो तीन प्रजावाले और सुखसे वढे हैं, वे पितर नान्दीमुख कहे हैं जिसको नान्दी और समृद्धि कहते हैं । यह श्राद्ध प्रतिवर्ष कहनेसे, पक्षश्राद्धके पक्षमें एक वार और महालयमें करना आवश्यक है यह प्रयोग पारिजातमें लिखा है, इसमें मातामहोंका भी श्राद्ध करै, कारण कि, धौम्यऋषिने लिखा है कि, जहां पितरोंका पूजन है, वहां मातामहोंकाभी पूजन है, यदि पितृशब्दको जनकपरही मानोगे तो 'पितरः' यह बहुवचन नहीं वन सकैगा इससे पितृशब्द पितृत्वधर्मका बोधक है, वार्षिक श्राद्धमें तो वाक्यसे निवृत्ति है । यदि कोई शंका करै कि, जिसका पिता जीवता है उसके अन्वष्टका मातृश्राद्धमें भी निवृत्ति प्राप्त होजायगी, उसका उत्तर यही है कि, वहां भी निवृत्तिही इष्ट है, इसीसे मातृश्राद्ध लिखा है, श्राद्धोंमें अपनी माता और मातामहको देना और मदनरत्न और कालादर्शमें कहा है यह जीवत्पितृकश्राद्धमें कहैंगे जो कोई कहै कि, अजहल्लक्षणासे पित्रादिक जहां तहां मातामह हैं सोभी नहीं । यदि कोई सन्देह करै कि, यहां नामसे नान्दीश्राद्धके धर्मको मानेंगे सो भी उचित नहीं वैष्णव आदि शब्दके समान देवतावाची शब्द कर्मका बोधक नहीं होसकता और नान्दीमुख शब्द पितृशब्दका विशेषण भी नहीं होसकता कारण कि, नांदीमुख शब्द पारिभाषिक संकेत है सोई निर्णयदीपमें गर्गका कथन है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाको त्यागकर सब पूर्णिमाओंमें पिण्डदानका निषेध है वह तो अमावस्याके समान जानना चाहिये ॥ इति श्रीमीमांसकरामकृष्णभट्टात्मजकमला-

अथाश्विनमासः ॥ कन्यासंक्रांतिनिर्णयः ॥ कन्यासंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः ॥ शेषं प्राग्वत् ॥ अथ महालयनिर्णयः । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये वृद्धमनुः "आषाढीमवधिं कृत्वा पञ्चमं पक्षमाश्रिताः । कांक्षन्ति पितरः क्लिष्टा अन्नमप्यन्वहं जलम्॥" कन्यायोगे पुण्यतमत्वमाह शाट्यायनिः–'कन्यास्थार्कान्वितः पक्षः सोत्यन्तं पुण्यमुच्यते' इति ॥ अत्र विशेषमाह वृद्धमनुः–"मध्ये वा यदि वाप्यन्ते यत्र कन्यां व्रजेद्रविः । स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति" ॥ तथा ब्रह्माण्डमार्कण्डेययोः–"कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च । पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥" तथा तत्रैव षोडशदिनान्युक्तानि–"कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोडश । ऋतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत् ॥" अत्र हेमाद्रिः षोडशत्वं त्रेधा व्याचख्यौ । तिथिवृद्धया पक्षस्य षोडशदिनात्मकत्वे श्राद्धवृद्ध्यर्थमेकः पक्षः । भाद्रपदपूर्णिमया सहेति द्वितीयः । आश्विनशुक्लप्रतिपदा सहेति तृतीयः ॥ अन्त्य एव तु युक्तः । "अहः षोडशकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह । चन्द्रक्षयाविशेषेण सापि दर्शात्मिका स्मृता" इति देवलोक्तेः ॥ तत्र पञ्च पक्षाः । तदुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–"आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा" ॥ दिनेदिने इति पक्षपर्यन्तत्वमुक्तम् ॥ त्रिभागहीनमिति पञ्चम्यादिपक्षः । त्रिभागमिति दशम्यादिपक्षः । त्रिभागहीनमिति

करमङ्कृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां भाद्रपदमासः समाप्तः ॥ कन्याकी संक्रांतिमें अगली सोलह घडी पुण्यकाल है शेष पहली संक्रांतियोंके समान जानना ॥ अथ महालयका निर्णय लिखते हैं, उसमें पृथ्वीचन्द्रोदयमें वृद्धमनुने लिखा है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें पितर अन्न और जलकी प्रतिदिन इच्छा करते हैं, कन्याके योगमें शाट्यायनिमुनिने अत्यन्त पुण्य लिखा है कि, कन्याराशिके सूर्यसे युक्त पक्ष अत्यन्त शुद्ध लिखा है इसमें विशेष वृद्धमनुने लिखा है कि, मध्यमें वा अन्तमें जब कन्याका सूर्य प्राप्त हो तो सोलह श्राद्धोंके निमित्त सब पक्ष श्रेष्ठ है । इसी प्रकार ब्रह्माण्ड और मार्कण्डेय पुराणमें कहाहै कि, कन्याके सूर्यमें पन्द्रह दिनोंमें पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये तैसेही वहां सोलह दिन लिखे हैं कि, कन्याके सूर्यमें जो सोलह दिन लिखे हैं वे यज्ञोंके समान हैं यह नारायणदेवने लिखा है, इसमें हेमाद्रिने यह कहा है कि, सोलह तीन प्रकारके होते हैं कि, १ तिथिके बढनेसे पक्षके सोलह दिन होजायँगे तो १ श्राद्ध वृद्धिको प्राप्त होजायगा, २ भाद्रपदकी पूर्णिमाके मिलानेसे दूसरा प्रकार, ३ आश्विनशुक्ल प्रतिपदको मिलाकर तीसरा प्रकार, इन तीनोंमें तीसरा पक्ष युक्त है. कारण कि, देवलने कहा है कि, शुक्लपक्षकी प्रतिपदासहित सोलह दिन है. कारण कि, उसमें चन्द्रमाका क्षय होनेसे पडवामी अमावस्यारूप कही है, इसमें पांच पक्ष हैं यही हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करै वा त्रिभागहीन (पञ्चमीसे) में करै वा पक्षभर करै, वा त्रिभाग (दशमीसे) करै वा अर्द्ध (अष्टमीसे) करै. 'दिनेदिने' इससे पक्षपर्यन्त कहा है,

चतुर्दशीसहितप्रतिपदादिचतुष्टयवर्जनाभिप्रायेणेति कल्पतरुः ॥ अत्र दिनपदं तिथिपरं वीप्सया तत्पक्षीयतिथित्वं श्राद्धव्याप्यतावच्छेदकम् । तेन पञ्चदशतिथिष्वपि श्राद्धं सिद्ध्यति । तेन चतुर्दशीनिषेधोऽन्यकृष्णपक्षपर इति गौडाः ॥ तन्न ॥ ' श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये " इत्यादिविरोधात् ॥ यच्च कश्चित् पूरणप्रत्ययलोपेन तृतीयभागहीनं षष्ठ्यादिपक्षतृतीयभागमेकादश्यादि तदर्द्धं त्रयोदश्यादि उत्तरोत्तरं लघुकालोक्तेरिति ॥ तन्न । गौतमादिवचनेन मूलकल्पनालाघवात् । पक्षमित्यनन्वयापत्तेश्च । 'पञ्चम्यूर्ध्वं च तत्रापि दशम्यूर्ध्वं ततोप्यति' इति विष्णुधर्मोक्तेः । षष्ठ्याद्येकादश्यादिपक्षावपि ज्ञेयाविति तत्त्वम् ॥ कालादर्शेपि–" पक्षाद्यादि च दर्शान्तं पञ्चम्यादि दिगादि च । अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपाक्षिकम् ॥ " पक्षादिः प्रतिपत् । दिग्दशमी । दर्शांतमिति सर्वत्र । गौतमोपि–' अथापरपक्षे श्राद्धं पितृभ्यो दद्यात् पंचम्यादिदर्शांतमष्टम्यादिदशम्यादिसर्वस्मिंश्च' इति ॥ तथैकस्मिन्नपि दिने श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ नागरखंडे– "आषाढ्याः पंचमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे ॥ तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम् " इति ॥ अत्र शक्ताशक्तपरा व्यवस्थेति प्रांचः ॥ तन्न । तद्वाचकपदाभावात् त्रयोदश्यादिपक्ष एव नित्यः ।

त्रिभागहीन इससे दशमी आदि है. कल्पतरु तो यह लिखते हैं कि, त्रिभागहीनसे चतुर्दशी साहित प्रतिपदा आदि चार तिथियोंका त्यागन है यहां दिनपद तिथिपरत्व है वीप्सा (दिने २) से उस पक्षकी सम्पूर्णतिथि श्राद्धकी हैं यह सिद्ध हुआ तिससे पन्द्रहतिथियोंमें व्यापक (पूर्ण) श्राद्ध सिद्ध होता है, तिससे निषेध चतुर्दशीका और पक्षकी तिथिका है इसका नहीं यह गौडोंका मत है, सो ठीक नहीं, कारण कि, इसमें इस वाक्यका विरोध है कि, शस्त्रस मृतकका श्राद्ध महालयकी चतुर्दशीको होता है जो कोई यह कहते हैं कि, पूरणप्रत्ययके लोपसे तीसरे भागसे हीन षष्ठी आदि पक्ष और तृतीयभाग एकादशी आदि उसका अर्थ त्रयोदशी आदि पक्ष उत्तरोत्तर क्रमसे लघु लेना कहाहै सो ठीक नहीं । गौतम आदिके वचनसे और लाघवसे न्यूनकी कल्पना नहीं करसक्ते और इसमें पक्षकामी अन्वय यथार्थ नहीं होगा और विष्णुधर्ममें यह लिखाहै कि, पञ्चमी और दशमीसे उपरान्त श्राद्ध करके षष्ठी और एकादशी आदि भी पक्ष है यह निचोड है. कालादर्शमें भी कहाहै कि, प्रतिपदासे अमावस्यातक वा ५ पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक कृष्णपक्षमें श्राद्ध करै, गौतमने भी कहाहै कि, अपरपक्षमें पञ्चमी, अष्टमी, दशमीसे अमावस्यातक वा सम्पूर्ण दिनोंमें पितरोंको श्राद्ध देना तैसेही एक दिनभी श्राद्ध हेमाद्रिके नागरखण्डमें लिखाहै कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्ष और कन्याके सूर्यमें जो मनुष्य एक दिनभी श्राद्ध करताहै, उसके पितर एकवर्षतक निश्चय तृप्त होतेहैं इसमें प्राचीनोंने यह कहाहै कि, यह व्यवस्था समर्थ और असमर्थके भेदसे है सो ठीक नहीं, क्योंकि समर्थ और असमर्थका वाची कोई पद नहीं होता त्रयोदशी पक्षही नित्य है वहांही निन्दा न करनेमें श्रवण कियाहै ब्रह्मपुराणके वाक्यमें पढे हुए एवकारसे

तत्रैव निंदाश्रुतेः । ब्राह्मे—एवकारेण तस्यैव पंचमपक्षायोगव्यवच्छेदोक्तेरिति गौडाः ॥ तन्न । 'एकस्मिन्नपि' इति विरोधात् । तेन फलभूयार्थिनान्यानि कार्याणीति तत्त्वम् ॥ तत्र चतुर्दशीश्राद्धाभावे पञ्चम्यादिदशम्यादिपक्षौ तत्सत्त्वे षष्ठ्याद्येकादश्यादिकौ । एवं चतुर्दश्यभावे द्वादश्यादिः । तत्सत्त्वे त्रयोदश्यादिरिति व्यवस्था ॥ विधवाकर्तृकश्राद्धनिर्णयः । विधवायास्तु विशेषः स्मृतिसंग्रहे—"चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि । स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च ॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत् ॥" तथा—'श्वश्रूणां च विशेषेण मातामह्यास्तथैव च' इति ॥ अशक्तौ तु स्मृतिरत्नावल्याम्—"स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च । विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता ॥" विधवा स्वयं संकल्पं कृत्वान्यब्राह्मणद्वारा कारयेदित्युक्तं प्रयोगपारिजाते ॥ सकृन्महालये च वर्ज्यतिथ्याद्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदयप्रयोगपारिजातादिषु । वसिष्ठः—"नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु । एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात् ॥" जन्मभं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मानि ॥ वृद्धगार्ग्यः—"प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यर्क्षे भार्गवे तथा । यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति ॥" प्राजापत्यं रोहिणी । पौष्णं रेवती । पित्र्यं मघा । अन्यान्यपि प्रत्यरादीनि तत्रैव ज्ञेयानि ॥ केचित्तु—"नन्दाश्वकामरव्यारभृग्वग्निपितृकालभे ॥

उसकोही पांचवां पक्ष अयोग निश्चयसे लिखाहै यह गौडोंका कथन है सो उचित नहीं, इसमें एक दिन भी करै इस पूर्ववाक्यका विरोध है तिससे अधिक फलके अभिलाषी और श्राद्धोंको न करैं यही निचोड है तहाँ चतुर्दशी श्राद्धके अभावमें पंचमी आदि और दशमी आदि पक्ष ग्रहण करने, और चतुर्दशी श्राद्धभी होय तो षष्ठी एकादशी आदि ग्रहण करने इस प्रकार चतुर्दशीके अभावमें द्वादशी आदि और चतुर्दशी होय तो त्रयोदशी आदि पक्ष ग्रहण करने यही व्यवस्था है ॥ विधवाके निमित्त विशेष तो स्मृतिसंग्रहमें यह लिखाहै कि, विधवाको सदैव चार पार्वण लिखे हैं कि, अपने पति और श्वशुर आदिकोंका माता पिताओंका मातामहोंका श्राद्ध करै, और तैसेही श्वश्रू और नानीका श्राद्ध करै, सामर्थ्य न होय तो स्मृतिरत्नावलीमें यह लिखा है कि, अपने पति आदि तीन और अपने पिता आदि तीनके श्राद्धको आलस्य त्यागकर विधवाको करना चाहिये। अर्थात् आप संकल्प करके ब्राह्मणद्वारा श्राद्ध करवायदे प्रयोगपारिजातमें यही लिखाहै, महालयमें वर्जने योग्य तिथि आदि पृथ्वीचन्द्रोदय, माधव, प्रयोगपारिजात आदिमें लिखीहैं. वसिष्ठका वाक्य है कि, शुक्रवारकी नन्दाको और उस चतुर्दशीको जिसमें अपने जन्मका नक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे पहिला वा पिछला नक्षत्र हो गृहस्थी श्राद्ध न करै। करनेसे पुत्र तथा धनका क्षय होताहै. वृद्ध गार्ग्यने कहाहै कि, रोहिणी, रेवती, मघा, शुक्रवारको जो श्राद्ध करताहै उसका पुत्र नष्ट होताहै, और भी प्रत्यरा आदि नक्षत्र वहांही जानने ॥ कोई तो यह कहतेहैं कि, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी. सूर्य, मंगल, शुक्र, कृत्तिका, मघा, भरणी, गण्ड,

गण्डे वैधृतिपाते च पिण्डास्त्याज्याः सुतेप्सुभिः " इति संग्रहात् ॥ नन्दा प्रतिपत्षष्ठ्येकादश्यः । अश्वः सप्तमी । कामस्त्रयोदशी । आरो भौमः ॥ भृगुः शुक्रः । अग्निभं कृत्तिका ॥ कालभं भरणी । तत्र पिण्डास्त्याज्या इत्याहुः ॥ तत्र मूलं मृग्यम् । एतच्च सकृन्महालयविषयम् ॥ " सकृन्महालये काम्ये पुनः श्राद्धेऽखिलेषु च । अतीतविषये चैव सर्वमेतद्विचिन्तयेत् " इति पृथ्वीचन्द्रोदये नारदोक्तेः । अस्यापवादो हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदय च–" अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके । तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत् ॥ " पराशरमाधवीयमदनपारिजातादिषु चैवम् ॥ निर्णयदीपिकायां तु–' पितृमृताहे निषिद्धदिनेपि सकृन्महालयः कार्यः ' इत्युक्तम् ॥ " आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे । मृताहनि पितुर्यो वै श्राद्धं दास्यति मानवः । तस्य संवत्सरं यावत्संतृप्ताः पितरो ध्रुवम् " इति नागरखण्डोक्तेः ॥ " या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते । सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाशौचं यदृच्छया । पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि "॥ ३ ॥ इति कात्यायनोक्तेश्च ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ पक्षश्राद्धे नन्दादिषु न पिण्डनिषेधः । तथा पक्षश्राद्धकरणेपि न नन्दादिषु पिण्डनिषेध इत्याह पराशरमाधवीये कार्ष्णाजिनिः "नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिनेदिने । नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतु-

---

वैधृति, व्यतिपातमें पुत्रकी इच्छावालेको पिंड न देना चाहिये इन वाक्योंका मूल नहीं मिलता यह बातभी सकृत् (एकदिनके) महालयमें है. कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदय ग्रन्थमें नारदका यह वाक्य है कि, एक दिनके महालयमें काम्यश्राद्धमें और दुबारा श्राद्धमें और भूले श्राद्धमें इन सबकी चिन्ता करै, इसका अपवाद हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयग्रन्थमें कहाहै कि, अमापात, भरणी, द्वादशी, पक्षमध्यमें तिथि नक्षत्र और वारका विचार न करै, और पराशरमाधवीय, मदनपारिजात आदिमें भी इसी प्रकार लिखा है. निर्णयदीपिकामें तो यह कहाहै कि, पिताके मृत्युके दिन निषेध दिनमें भी सकृन्महालयको करै. कारण कि, नागरखण्डमें यह लिखाहै कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्ष, कन्याके सूर्यमें पिताके मरनेके दिन जो मनुष्य श्राद्ध करताहै उसके पितर वर्षदिनतक अवश्य तृप्त होतेहैं मनुष्यकी मृत्युके दिन मासकी जो तिथि हो वही तिथि पितृपक्षमें प्रयत्नपूर्वक पूजने योग्य है अशौचके विना उसका विच्छेद (न करना) अपनी इच्छासे न करै, पिंडश्राद्ध करै और विच्छेद न करै. कात्यायनने कहाहै कि जो असमर्थ मनुष्य पक्षके मध्यमें एक दिनही श्राद्ध करै उसका निषिद्ध दिनमें भी यथाविधि पिंडदान करना उचित है इस वाक्यका मूल नहीं मिलता ॥ पराशरमाधवीय ग्रन्थमें कार्ष्णाजिनिने पक्षश्राद्ध करनेमें नन्दा आदिका निषेध नहीं लिखाहै कि, भाद्रपदके अपरपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना उचितहै और इस नन्दा आदिका निषेध है और न चतुर्दशी निन्दित हैं, यहाँ श्राद्ध इस एकवाक्य और दिने २

दशी'' इति ॥ अत्र श्राद्धमित्येकवचनात् 'दिनेदिने' इति वीप्सावशाच्च सोमयागवदेकस्याभ्यासेनैकप्रयोगपरंदिनम् । अतः—'प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम्' इति याज्ञवल्कीयं प्रयोगभेदपरं न तु पञ्चम्यादिपक्षविषयम्। 'प्रतिपत्प्रभृतिषु' इति विशिष्योक्तेः। निर्णयदीपे पृथ्वीचन्द्रोदये मदनपारिजाते चैवम्॥ अन्यकृष्णपक्षपरं याज्ञवल्कीयम्। एतत्परत्वेनैव निन्द्या चतुर्दशी इति विराधादिति गौडाः॥ तन्न॥ 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' इति विरोधात्। तत्त्वं तु—''तिथिनक्षत्रवारादिनिषेधो य उदाहृतः। स श्राद्धे तन्निमित्ते स्यान्नानुषङ्गकृते ह्यसौ'' इति दिवोदासीये वृद्धगार्ग्योक्तेस्तन्निमित्ते पक्षांतरे च ज्ञेयः॥ सकृन्महालये तु वचनान्निषेधः। अन्यत्र कोपि न निषेधः। कार्ष्णाजिनिस्मृतेरिति। अतो नन्दादौ सपिण्डश्राद्धे पुत्रवतोप्यधिकारः। अत्रिरपि—''महालये क्षयाहे च दर्शे पुत्रस्य जन्मनि। तीर्थेपि निर्वपेत्पिण्डान्रविवारादिकेष्वपि॥'' पूर्वोक्तनन्दानिषेधस्तु मृताहातिक्रमे सकृन्महालये पौर्णमास्यादिमृतश्राद्धे तन्निमित्ते च ज्ञेयः॥ यत्तु स्मृत्यर्थसारे—''विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्'' इति। तस्यात्रापवादो दिवोदासीये बृहस्पतिः—''तीर्थे संवत्सरे प्रेते पितृयागे महालये। पिण्डदानं प्रकुर्वीत युगादिभरणीमघे॥ महालये

इस वीप्साके वशसे सोमयज्ञके तुल्य एक श्राद्धके अभ्याससे अनेकवार प्रयोग करनेवाला यह वाक्य है, इससे प्रतिपदासे लेकर एक चतुर्दशीको छोडकर श्राद्ध करै यह याज्ञवल्क्यका वाक्य प्रयोगभेद कहताहै पंचमीआदि पक्षविषयक नहीं है कारण कि, यह पृथक् कथन है कि, प्रतिपदा आदि तिथिमें श्राद्ध करै निर्णयदीप, पृथ्वीचन्द्रोदय, मदनपारिजातमें भी ऐसेही लिखा है॥ जो गौडोंका कथन है कि, याज्ञवल्क्यका वाक्य दूसरे कृष्णपक्षका बोधक है, इस पक्षका नहीं कारण कि, इसमें चतुर्दशी निन्द्य नहीं इसका विरोध है यह उनकी बात ठीक नहीं. कारण कि, शस्त्रसे मृतकका श्राद्ध महालयकी चौदशको करना इसमें इस वचनका विरोध है। सिद्धान्त तो यह है कि, तिथि, वार, नक्षत्र आदिका जो निषेध कियाहै वह तिस तिस निमित्तसे किये हुए श्राद्धका है प्रसंगसे किये हुए श्राद्धका नहीं है। दिवोदासीयमें लिखे इस वृद्धगार्ग्यके कथनसे उसके निमित्त श्राद्धमें और पक्षांतरमेंही निषेध जानना, सकृन्महालयमें तो वाक्यसे निषेध नहीं, महालयमें कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिसे कोई भी निषेध नहीं लिखा इससे नन्दाआदि तिथिमें पुत्रवान्को भी सपिण्डश्राद्धका अधिकारहै, अत्रिने भी कहा है कि, महालय, मरणदिन अमावस्या, पुत्रजन्म तीर्थ इनमें रविवार आदिको भी पिंडदान करै, पूर्वोक्त नन्दा आदि तिथियोंका निषेध तो मरनेके दिनके अतिलंघनमें पूर्णिमाके दिन मृतकके श्राद्धमें वा तन्निमित्तक श्राद्धमें समझना, जो स्मृत्यर्थसारमें यह कहाहै कि विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डनसे ६ महीनेतक वा तीन महीनेतक पिंडदान, मृत्तिकासे स्नान, तिलोंसे तर्पण न करै, इस वाक्यका यहां अपवाद दिवोदासीयग्रन्थमें बृहस्पतिके वाक्यसे लिखाहै कि, तीर्थ, सम्वत्सर, प्रेत, पितृयाग, महालय इनमें पिंडदान

–गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डनिर्वपणं सदा"॥ २॥ इति निर्णयदीपे तु नन्दानिषेधः प्रत्यहभिन्नश्राद्धविषयः । षोडशाहव्यापिश्राद्धप्र–योगकत्वे तु प्रत्यहं पिण्डदानं कार्यमेवेत्युक्तम् ॥ तदयमर्थः सम्पन्नः षोडशाहव्यापिश्राद्धैक्ये न पिण्डनिषेधः ॥ मृताहे सकृन्महालयेपि तथा इति केचित् । तत्रापि निषेधस्तु युक्तः प्रत्यहं श्राद्धभेदेपि व्यतीपातादौ तथा । अन्यमृताहातिक्रमे महालयातिक्रमे च पिण्डनिषेधः ॥ संन्यासिनां महालयनिर्णयः ॥ संन्यासिनां तु द्वादश्यां श्राद्धं कार्यम् । "यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः । द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः" इति पृथ्वीचन्द्रोदये संग्रहोक्तेः । अत्र पक्षे श्राद्धाकरणे गौणकालमाह हेमाद्रौ यमः—"हंसे कन्यासु वर्षास्थे शाकेनापि गृहे वसन् । पञ्चम्योरन्तरे दद्यादुभयोरपि पक्षयोः " ॥ आश्विनकृष्णशुक्लपञ्चम्योर्मध्ये इत्यर्थः । तत्राप्यसंभवे भविष्ये–"येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितॄणां वै महालये ॥" तत्राप्यसम्भवे, भारते–"यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः । शून्यं प्रेतपुरं तावद्वृश्चिके यावदागतः " ब्राह्मे—"वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निःश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं

युगादि, भरणी, मघा होय तो भी करै. महालय, गयाश्राद्ध, मातापिताका मरणदिन इनमें पिंड दान वह भी सदा करै जिसका विवाह हुआहो, निर्णयदीपमें तो नन्दा आदि तिथियोंका निषेध प्रतिदिन भिन्न श्राद्ध विषयमें लिखाहै, सोलह दिनतक रहनेवाले श्राद्धप्रयोगको एक मानो तो प्रतिदिन पिण्डदान करै. यह पहलेही लिख आयेहैं तिससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि, सोलह दिनतक श्राद्धके यज्ञमें पिण्डका निषेध नहीं है मृताह और सकृन्महालयमें भी निषेध नहीं। कोई यह कहते हैं, वहां भी निषेध तो युक्त है, और तैसेही प्रतिदिन श्राद्धभेदमें और व्यतीपात आदिमें निषेध है तथा श्राद्ध और मरणदिनके अतिक्रम (भूलना) में पिंडका निषेध है ॥ संन्यासियोंका श्राद्ध द्वादशीको करना चाहिये. कारण कि, पृथ्वीचन्द्रोदयमें संग्रहका वाक्य है कि, यदि वानप्रस्थ और विशेषकर वैष्णवको कृष्णपक्षमें और द्वादशीको विशेषकर श्राद्ध लिखा है। इस पक्षमें श्राद्ध करनेका गौणकाल हेमाद्रिग्रन्थमें यमने लिखा है कि, वर्षाकालमें जब कन्याका सूर्य होय तब गृहमें रहते हुए मनुष्यको आश्विनकी दोनों पञ्चमियोंके उपरान्त शाकसेभी श्राद्ध करना उचित है, उसमें भी न होसके तौ भविष्यपुराणमें यह कहा है कि, हे राजन् ! जो यह दीपयुक्त पञ्चदशी (दिवाली) पृथ्वीमें प्रसिद्ध है उस मनुष्यको उसमें पिंडदान करना चाहिये, जिसने महालयमें पितरोंको न दियाहो, उसमें भी न होसके तो भारतमें यह कहाहै कि, जबतक सूर्य कन्या और तुलापर रहै तबसे वृश्चिककी संक्रांतितक यमपुरी शून्य होजाती है, ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, वृश्चिकके समाप्त होनेपर श्राद्धादि न करनेपर देवताओंके सहित

दत्त्वा सुदारुणम्॥ यत्तु जातूकर्ण्यः–"आकांक्षन्ति स्म पितरः पञ्चमं पक्षमाश्रिताः। तस्मात्तत्रैव दातव्यं दत्तमन्यत्र निष्फलम्" इति ॥ तत्फलातिशयहानिपरम् ॥ 'कन्यां गच्छतु वा न वा' इति तुर्यपादे वा पाठः॥ तेन कन्यायोगे प्राशस्त्यमात्रम्। अतः श्राद्धविवेकोक्तं श्राद्धद्वयं हेयम्॥ इदं च श्राद्धमन्नेनैव कार्यं नामान्नादिना। "मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम्। आपन्नोपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्" इति स्मृतिदर्पणे गालवोक्तेः॥ तत्र देवतानिर्णयः। अथात्र देवताः संग्रहे–" ताताम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं सास्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरस्तत्स्त्रियः। ताताम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग्जायापिता सद्गुरुः शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे "॥ अस्यार्थः तातत्रयी पितृत्रयी। अम्बात्रयी च। स्मृत्यर्थसारेपि महालये मातृश्राद्धं पृथक् प्रशस्तमिति॥ अत्र विशेषः स्मृतिदर्पणे गालवः–"अनेका मातरो यस्य श्राद्धे चापरपक्षिके॥ अर्घ्यदानं पृथक्कुर्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत्। " जीवन्मातृकस्तु सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम्। श्राद्धदीपकलिकायां तु पार्वणमुक्तम्। 'अन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम्। पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद्भवेत्" इति

पितर श्वास लेकर दारुणशाप देकर फिर जाते हैं॥ और जातूकर्ण्यने यह लिखा है कि, पांचवें पक्षमें पितरोंको इच्छा होती है, तिससे उसी पक्षमें देना चाहिये, अन्यत्र दिया हुआ निष्फल होता है, वह अधिक फलकी हानिका कहनेवाला वाक्य है। अथवा जातूकर्ण्यके श्लोकमें चौथे चरणका यह अर्थ है, चाहै सूर्य कन्याका हो वा न हो तिससे कन्याके सूर्यमें बडाई मात्र लिखी है, इससे श्राद्धविवेकमें लिखेहुए दो श्राद्ध त्यागने चाहिये, इस श्राद्धको पक्कान्नसे करै कच्चेसे न करै. कारण कि, स्मृतिदर्पणमें गालवका कथन है कि, क्षयीश्राद्ध, सपिंडी गयाश्राद्ध महालयको मनुष्य आपत्तिमेंभी कच्चे अन्नसे न करै किन्तु पके अन्नसे ही करै। अब यहां संग्रहके वाक्यसे देवता लिखते हैं कि, पिता माता इनके तीन तीन माताकी सपत्न मातामह आदि तीन और उनकी स्त्री, स्त्री पुत्र आदि, पिताकी जननी, अपने भाई और उनकी स्त्री पिता माता और अपनी भगिनी और इनकी सन्तति और पति, जायापिता, श्रेष्ठगुरु, आप्त शिष्य ये महालयविधिमें, तीर्थमें तर्पणम पितर होते हैं. स्मृत्यर्थसारमें भी कहा है कि, महालयमें माताका श्राद्ध भिन्न करना अच्छा है, इसमें विशेष स्मृतिदर्पणमें गालवके वाक्यसे लिखा है कि, जिसके अनेक माता हों वह दूसरे पक्षके श्राद्धमें अर्घ्यदान भिन्नतासे करै और पिण्ड एक दे, जिसकी माता जीवित हो वह अपनी माताकी सौतका एकोद्दिष्ट श्राद्ध करै, पार्वण न करै। श्राद्धदीपकलिकामें तो पार्वण लिखा है कारण कि वृहन्मनुने यह लिखा है कि, अन्वष्टकाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, मातृश्राद्ध, महालय, माताकी सपत्नीका श्राद्ध इनको पार्वणके तुल्य करै, यद्यपि

बृहन्मनूक्तेः । सस्त्रीति मातामहानां सपत्नीकत्वेपि विभवे सति मातामहीनां पृथक्कार्यम् । " महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । ज्ञेयं द्वादशदैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च " इति निगमोक्तेः ॥ हेमाद्रिमते त्वत्र नवदैवत्यमेव । "महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च । नवदैवत्यमन्वेष्ट शेषं षट्पौरुषं विदुः " इति विष्णुधर्मोक्तेः । तातभ्राता पितृव्यः । जननीभ्राता मातुलः । तत्स्त्रियः पितृव्यस्त्री, मातुलानी, भ्रातृजायाः पितृष्वसृमातृष्वसृस्वभगिन्योपत्यभर्तृयुक्ताः । तेन सापत्न्यायै सधवायै इति प्रयोगो ज्ञेयः । एतासु सतीषु न तद्भर्त्रादिदानम् । द्वारलोपात् । जायापिता श्वशुरः श्वश्रूरप्यत्रोपलक्ष्या । अत्र मूलं स्मृतिचन्द्रिकायां ज्ञेयम् ॥ तत्र पार्वणैकोद्दिष्टादिव्यवस्था । अत्र पार्वणैकोद्दिष्टव्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ पुराणांतरे—"उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः । श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्च्छिष्यपोषकाः ॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः । पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा । सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये । एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥३ ॥ " इति इतरेषां पित्रादीनां पार्वणमर्थसिद्धम् ॥ अत्र क्रमान्यत्वेप्याचाराद्व्यवस्था ॥ तत्राशक्तौ निर्णयः । अशक्तौ तु पृथिवीचन्द्रोदये चतुर्विंशतिमते—"एकस्मिन् ब्राह्मणे सर्वानाचार्यादीन् प्रपूज-

---

मातामह आदि पत्नीसहित हैं, तोभी सपत्नीपदसे यह जताया है कि, जिसके पास धन होय तो वह नानी आदिका श्राद्ध भी पृथक् करै, कारण कि शास्त्रमें कहा है कि; महालय, गयाश्राद्ध वृद्धिश्राद्ध अन्वष्टकाश्राद्ध तीर्थ, भाद्रपद, मघाके श्राद्धोंमें द्वादश देवता होते हैं, हेमाद्रिके मतमें तो यहां नौ देवता हैं, कारण कि धर्मका कथन है कि महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धि अन्वष्टकामें नव देवता होते हैं, शेषोंमें छः पुरुषोंतक जानना, पिताका भाई पितृव्य, माताका भाई मातुल, उनकी पत्नी चाची और मामी पिता और माताकी भगिनी सब सन्तान, पतियोंसे युक्त ग्रहण करनी चाहिये, ये होंय तो इनके भर्ता आदिको पिण्ड न देना. कारण कि, इसमें द्वारका लोप है अर्थात् भर्ताके द्वारा पत्नीको प्राप्त होसकता है पत्नीके द्वारा पतिको नहीं मिल सकता । जायाका पिता श्वशुर और उससे श्वश्रू (सास) का ग्रहण करना इसका मूल स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है । इसमें पार्वण और एकोद्दिष्टश्राद्धकी व्यवस्था हेमाद्रिमें पुराणान्तरके वाक्यसे लिखी है कि, (पढानेवाला) गुरु, सास, चाचा, आचार्य, मामा, श्वशुर, भाई, भाईके पुत्र, पोते, ऋत्विक्, पालना करनेवाले शिष्य, भगिनी, स्वामी, पुत्री, जामाता, भानजे, पिताकी स्त्रियोंके पितर, पिता और माताकी बहन, मित्र, द्रव्यका दाता, शिष्य आदि ये सब महालय तीर्थमें एकोद्दिष्टकी विधिसे प्रयत्नसे पूजनके उचित हैं इनके सिवाय पित्रादिकोंका पार्वण सिद्ध है इसमें क्रमका भेदही है, तो भी कुलाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ अशक्तिमें तो पृथ्वीचन्द्रोदय और चतुर्विंशतिमतमें लिखा है कि, "एक ब्राह्मणमें सम्पूर्ण आचार्यादिकोंको

येत् । दश द्वादश वा पिण्डान् दद्यादकरणं न तु" ॥ एकोद्दिष्टस्वरूपं चाह याज्ञवल्क्यः "एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्" इति । अत्रैकपाको वैश्वदेवतन्त्रपिण्डं वर्हिश्चैकमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ पाणिहोमः । अत्र पाणिहोमः पिण्डाश्च द्विजान्तिक इत्याह प्रयोगपारिजाते आचार्यः--"काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम् । चतुर्ष्वेषु करे होमः पिंडाश्चात्र द्विजान्तिके" इति ॥ पार्वणैकोद्दिष्टयोः समानतन्त्रत्वे तु अग्निसमीप एव अत्र धूरिलोचनौ वैश्वदेवौ । 'अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये, च धूरिलोचनौ ।' इति हेमाद्रावादित्यपुराणात् । अत्र प्रतिदिनं भिन्नप्रयोगत्वाद्दक्षिणाभेदो वा प्रयोगैक्यादन्ते एव वा दक्षिणेति हेमाद्रौ उक्तम् ॥ एतच्च संन्यस्तपितृकादिना जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ॥ "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति । येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः । यत्तु कौण्डिन्यः--"दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलैस्तर्पणमेव च ॥" इति तत्संन्यस्तपित्राद्यतिरिक्तविषयम् । काम्यश्राद्धपरं वा ॥ अत्र बहु वक्तव्यं श्रीपितृकृतजीवत्पितृकनिर्णये ज्ञेयम् ॥ एतच्च जीवत्पितृकेण पिण्डरहित कार्यम् ।

पूजन करै, दश वा बारह पिण्ड दे, और न करनेको न करै, एकोद्दिष्टका स्वरूप याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, एकोद्दिष्टश्राद्धमें विश्वेदेवा नहीं होते, और एक अर्घ्य एक पवित्री होती है आवाहन अग्नौकरण नहीं होते, और अपसव्य युक्त स्मृत्यर्थसारमें यह लिखा है कि एकोद्दिष्टमें एक पाक, एक विश्वेदेवा, एक पिण्ड और एक वर्हि होती है ॥ प्रयोगपारिजातमें आचार्यको ब्राह्मणके हाथमें होम और ब्राह्मणके समीप पिण्डदान करना लिखा है । कारण यह लिखा है कि, काम्यश्राद्ध, अभ्युदयश्राद्ध, अष्टमीश्राद्ध, एकोद्दिष्टश्राद्ध इन चारोंमें हाथमें होम और ब्राह्मणके निकटही पिण्ड होता है, यदि पार्वण एकोद्दिष्ट एकवारही किये जाँय तो अग्निके निकटही पिण्ड होता है और इसमें धूरि और लोचन नामके विश्वेदेवा होते हैं, कारण कि हेमाद्रिमें आदित्यपुराणका कथन है कि, कन्यागत सूर्यमें और काम्यश्राद्धमें धूरिलोचन विश्वेदेवा कहे हैं महालयमें प्रतिदिन प्रयोगका भेद होनेसे दक्षिणाका भेद प्राप्त होता है, अथवा सोलह दिनका एक प्रयोग होनेसे अन्तमें दक्षिणा होती है, यह हेमाद्रिमें कहा है, यह श्राद्ध उसमें भी करना चाहिये; जिसका पिता जीवित हो वा संन्यासी होगया हो. कारण कि, कात्यायनने कहा है कि, वृद्धि तीर्थश्राद्धमें पिताके संन्यासी वा पतित होनेमें जिनको पिता पिण्डदान करै उनको पुत्रभी करै जो कौंडिन्यने यह कहा है कि, अमावास्याका श्राद्ध, और महालयश्राद्ध, गयाश्राद्ध इनको और तिलोंसे तर्पण उस मनुष्यको न करना चाहिये जिसका पिता जीताहो, यह वाक्य संन्यासीसे भिन्न पिताके विषयमें लिखे हैं । अथवा काम्यश्राद्धके विषयमें जानने जो हमें इसमें अधिक कहना है वह हमारे श्रीमत्पिताके किये जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें देखलेना, जीवत्पितृकमनुष्य इसको पिंडरहित करै, कारण कि, दक्षके इस कथनसे उसको पिण्डका निषेध है कि,

"मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च" इति दक्षेण तस्य पिण्डनिषेधात् ॥ अन्वष्टक्यमातृवार्षिकादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः ॥ तथा छागलेयः—"पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथश्चन । साङ्कल्पं तु तदा कार्यं नियमाद्ब्रह्मवादिभिः ॥" सांकल्पस्वरूपं च वक्ष्यते ॥ अत्र श्राद्धाङ्गतर्पणं पक्षश्राद्धे प्रतिदिनं श्राद्धोत्तरम् । सकृन्महालये तु परेह्नि कार्यम् । तदुक्तं नारदीये—"पक्षश्राद्धं यदा कुर्यात्तर्पणं तु दिनेदिने । सकृन्महालये चैव परेहनि तिलोदकम् ॥" गर्गोपि—'पक्षश्राद्धे हिरण्ये च अनुव्रज्य तिलोदकम्' इति ॥ तथा प्रयोगपारिजाते गर्गः—"कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् ॥ पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेपि तर्पणम् । सकृन्महालये श्वः स्यादष्टकास्वन्त एव हि ॥" इदं निषिद्धदिनेपि कार्यम् । 'तिथितीर्थविशेषेषु कार्यं प्रेते च सर्वदा' इति स्मृत्यर्थसारोक्तेः । "तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥" इति स्मृतिरत्नावल्यां वचनाच्च ॥ मलमासे श्राद्धनिषेधनिर्णयः । एतच्च श्राद्धं मलमासे न कार्यम् । तदाह भृगुः—"वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते ॥" इति । हेमाद्रौ नागरखण्डे—"नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत् । सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः ॥ एतच्च पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे कृताकृतम्"

मुण्डन ,पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको ये दोनों न करैं जिसका पिता जीवित हो और जो गर्भवतीका भर्ता हो अन्वष्टकाश्राद्ध और माताका वार्षिकश्राद्ध इनमें तो और वाक्यसे होता है यह आगे लिखेंगे सोई छागलेय ऋषिने कहा है कि, जहाँ किसी प्रकार मघा आदिमें पिंडकी निवृत्ति होजाय तो वहां ब्रह्मवादीको नियमसे संकल्प करना चाहिये ॥ संकल्पका स्वरूप आगे लिखेंगे यहां श्राद्धके अंगका तर्पण पक्षके श्राद्धमें प्रतिदिन श्राद्धके उपरान्त करै एक दिनही किसी दिन महालय करै, तो अगले दिन करै सोई नारदने ,लिखा है कि पक्षश्राद्ध करै तो प्रतिदिन तर्पण करै सकृन्महालयमें अगले दिन तिलांजली दे, गर्गने भी कहा है कि, पक्षश्राद्ध और सुवर्णश्राद्धमें पीछेसे तिलांजलिं देनी, तैसही प्रयोगपारिजातमें गर्गने कहा है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना होता है और निषिद्धदिनमें भी प्रतिदिन तर्पण होता है, और सकृन्महालयमें अगले दिन और निषिद्धदिनमें अगले दिन तर्पण करना चाहिये । तिथि तीर्थविशेषमें सर्वथा तर्पण करना चाहिये यह स्मृत्यार्थसारमें लिखा है स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है कि, तीर्थ और तिथिविशेषमें गया और प्रेतपक्ष (महालय) में निषिद्ध दिनमें भी तिलोंको मिलाकर तर्पण करे ॥ यह श्राद्ध मलमासमें न करना यही भृगुजीने लिखा है कि, वृद्धिश्राद्ध, सोमयज्ञ, अग्निका आधान, महालय, राजगद्दी ये मलमासमें न करनी चाहिये । हेमाद्रिके नागरखण्डमें भी कहा है कि, श्रावण वा भाद्रपदमें मलमास होजाय तो पितरोंका पक्ष सातवाँ पक्ष होता है, और अन्यत्र पांचवां होता है । त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें भट्टने तो यह लिखा है कि, माता पिताकी मृत्युपर प्रथम

इति त्रिस्थलीसेता भट्टाः ॥ इदं च नित्यं काम्यम् । "पुत्रानायुस्तथारोग्यमैश्वर्यमतुलं तथा । प्राप्नोति पंचमे दत्त्वा श्राद्धं कामान् सुपुष्कलान्" इति जाबाल्युक्तेः ॥ "वृश्चिके समतिक्रान्ते पितरो दैवतैः सह । निश्वस्य प्रतिगच्छन्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥" इति कार्ष्णाजिनिवचनात् ॥ महालयश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तम् । तदतिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने–"दुरो अश्वस्य मन्त्रं च दशमासं द्विमासयोः । महालयं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत् "॥ इति द्विमासयोः कन्यातुलयोर्महालयश्राद्धं यदा हीनमित्यर्थः ॥ भरणीश्राद्धनिर्णयः । अत्र भरण्यां श्राद्धमतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये मात्स्ये–"भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता । अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद्भवेत् ॥" पृथिवीचन्द्रोदये श्रीधरीये बृहस्पतिः–"नभस्यापरपक्षस्य द्वितीया यदि याम्यभे । तृतीया चाग्नितारािभः संहिता प्रीतिदा पितुः" ॥ एतत्पक्षे षष्ठी योगविशेषेण कपिलासंज्ञा । तदुक्तं वाराहे–"नभस्ये कृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतैः । युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता ॥ व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत् । कपिलां च

वर्षमें न किये श्राद्धके विषे यह कथन है यह श्राद्ध नित्य है और काम्यभी है कारण कि, जावालिने कहा है कि, पांचवें पक्षमें पितरोंके निमित्त देकर मनुष्य पुत्र, अवस्था, आरोग्य, उत्तम ऐश्वर्य और संपूर्ण श्राद्धोंकी कामनाओंको देता है, और कार्ष्णाजिनिने यह कहा है कि, वृश्चिक संक्रांतक बीतनेपर पितर श्वास लेकर और दारुण शाप देकर पितृलोकको चले जाते हैं ॥ यह श्राद्धके अवहेलनमें ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त लिखा है कि, जब वर्षदिनके दशमास और कन्या और तुलाकी संक्रांतिके दो महीनोंमें महालय श्राद्ध न्यून होजाय तो (दुरोऽश्वस्य) इस मन्त्रसे जप करनेसे वह सम्पूर्ण होजाता है, जो कुछ फलकी इच्छासे हो वह काम्य होता है, और जिसके न करनेमें कुछ प्रायश्चित्त हो वह नित्य होताहै ॥ महालयमें भरणीमें श्राद्ध करना अत्यन्त श्रेष्ठ है यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें मत्स्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, पितृपक्षमें भरणी बडी श्रेष्ठ कही है । इसमें जिसने श्राद्ध किया वह गयाश्राद्ध करनेके तुल्य होता है, श्रीधरके निमित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें बृहस्पतिका वाक्य है कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षकी द्वितीयाको भरणी नक्षत्र और तृतीयाको कृत्तिका नक्षत्र होय तो यह तिथि पिताको प्रीति देनेवाली कही है ॥ महालयपक्षमें षष्ठीकी योगोंकी विशेषतासे कपिलासंज्ञा लिखीहै, यही वाराहपुराणमें कहाहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षका छठको रोहिणी नक्षत्र, व्यतीपात, मंगलवार होय तो कपिलासंज्ञा है ॥ उसमें व्रत उपवास और नियमसे सूर्यका पूजन करै और ब्राह्मणको कपिला गौ देनेसे यज्ञका फल

---

१ दुराअश्वदुर इन्द्रगोरासिदुरोयवस्य वसुनइनस्पातिः । शिक्षानरः प्रदिवाअकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणामसि ॥ ऋ० १ ॥ ४ ॥ १९ ॥

द्विजाग्र्याय दत्त्वा क्रतुफलं लभेत्'' ॥ २ ॥ पुराणसमुच्चये-'' भाद्रे मास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते । पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत् ॥ '' अत्र दर्शांतत्वेन महालयो भाद्रपदकृष्णपक्षो ज्ञेय इत्युक्तं निर्णयामृते हेमाद्रौ च ॥ हस्तार्कस्तु फलातिशयार्थः । 'संयोगे तु चतुर्णां वै निर्दिष्टा परमेष्ठिना' इति तत्रैवोक्तेः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कांदे-'' देवदारुं तथोशीरं कुंकुमैलां मनःशिलाम् । पत्रकं पद्मकं यष्टि मधु गव्येन पेषयेत् ॥ क्षीरेणालोड्य कल्केण स्नानं कुर्यात्समंत्रकम् । आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम् । पंचगव्यकृतस्नानः पञ्चभंगैस्तु मार्जयेत् '' ॥ ३ ॥ पंचभंगैः पञ्चपल्लवैः । तथा-'' रत्नैर्नानाविधैर्युक्तं सौवर्णं कारयेद्रविम् । शक्तितस्तु पलादूर्ध्वं तदर्धं कर्षतोपि वा ॥ सौवर्णमरुणं कुर्याद्रौप्यां चैव तथा रथम् '' ॥तथा-'अल्पवित्तोपी यः कश्चित्सोपि कुर्यादिमं विधिम् ॥' प्रभासखंडे-''स्थापयेदव्रणं कुंभं चन्दनोदकपूरितम् । रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥ रथो रौक्मपलस्यैव एकचक्रः सुचित्रितः । सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्तिं सूर्यस्य कारयेत् '' ॥ २ ॥ ततः सूर्यं कपिलां च षोडशोपचारैः संपूज्य दद्यात् । '' दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा

मिलता है । पुराणसमुच्चयमें कहाहै कि, भाद्रपदके कृष्णपक्षमें जब हस्तनक्षत्रमें सूर्य होय तो व्यतीपात, रोहिणीनक्षत्र, मंगलवारका योग होय तो वह षष्ठी ''कपिला'' कहाती है यहां अमावस्यान्त मास लेनेसे महालय भाद्रपदका कृष्णपक्ष जानना चाहिये यह निर्णयामृत हेमाद्रिमें कथन किया है । हस्तका सूर्य तो अधिक फलके निमित्त है कारण कि, वहांही यह लिखा है कि, हस्तका सूर्य व्यतीपात योग, मंगलवार, रोहिणी नक्षत्र इनके योगसे परमेष्ठिने कपिलाषष्ठी लिखीहै इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, देवदारु, उशीर, चन्दन, कुंकुम, इलायची, मनशिल, पतरज, पद्माख, मुलहटी इनको शहत और पञ्चगव्यमें पीसै और दूधमें मिलाकर सबके कल्क (चूर्ण) से मिलाकर मन्त्रोंसहित स्नान करै कि, हे देवेश सूर्य ! तुम जलरूप हो और ज्योतियोंके स्वामी हो हे देव ! मेरे वाणी, मन, काया, कर्मसे किये पापको नष्ट करो पञ्चगव्यसे स्नान करो तैसेही यह कहाहै कि, नानाप्रकारके रत्नोंसे युक्त सुवर्णका सूर्य निर्माण करै शक्ति होय तो एक पलका वा उसका आधा बनावै वा कर्ष (चांदी) का बनावै और सोनेका अरुण सारथि और सोना चांदीका रथ बनावै, थोडा धन हो तो भी मनुष्य इस विधिको करै, प्रभासखण्डमें कहाहैं कि, चन्दन और जलसे भरेहुए ऐसे घडेको स्थापन करै जिसमें छेद न हो, और जो लालवस्त्रसे ढका, और तांबेके पात्रसे युक्त हो, जिसमें एक चित्र हो ऐसा पलभर चांदीका रथ बनाव, और पलभर सुवर्णकी सूर्यकी प्रतिमा निर्माण करै, फिर सूर्य और कपिलाका षोडशोपचारसे पूजन कर भक्तिसे दान करै, और इस प्रकार प्रार्थना करै कि, हे सूर्य ! तुम दिव्यमूर्ति जगत्के नेत्र हो, तुम्हारे बारह रूप हैं दिनके

दिवाकरः। कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यस्मात्त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी । प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव" ॥ २ ॥ इति ॥ विशेषांतरं तत्रैव ज्ञेयमिति दिक् ॥ चन्द्रषष्ठीनिर्णयः । इयमेव चन्द्रषष्ठी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । उभयत्र तथात्वे पूर्वा । तदुक्तं भविष्ये- " तद्वद्भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे । चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात्पूर्ववेधः प्रशस्यते ॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे चापरेऽहनि । चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ २॥इति माध्यावर्षसंज्ञश्राद्धनिर्णयः । अष्टम्यामाश्वलायनेन मघावर्षसंज्ञं श्राद्धमुक्तम् । एतेन माध्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे इति । इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहस्सु कार्यमिति नारायणवृत्तिः । हरदत्तस्तु मघायुक्तवर्षासु भवं त्रयोदशीश्राद्धमिति व्याचख्यौ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये ब्राह्मे-" आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे गया माध्यष्टमी स्मृता । त्रयोदशी गजच्छाया गयातुल्या तु पैतृके ॥ महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः ॥ आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीव्रतम् । तत्र निर्णयामृते पुराणसमुच्चये-" श्रियोर्चनं भाद्रपदेऽसिताष्टमीं प्रारभ्य कन्यामगते च सूर्ये । समापयेत्तत्र तिथौ च यावत् सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्या" इति ॥ तत्रैव-"कन्यागतेर्के प्रारभ्य कर्तव्यं न श्रियोर्चनम् । हस्तप्रान्तदलस्थेर्के तद्व्रतं न समापयेत् ॥ पूजनीया गृहस्थानामष्टमी

करनेवाले हो प्रकाशरूप हो कपिलासहित तुम मुझको मुक्ति दो, हे कपिले ! तुम पवित्र हो और सब जगत्‌की पवित्र करनेवाली हो जिससे सूर्यके साथ दान कीहुई मुझे मुक्ति दो अन्यविशेष हेमाद्रिमें ही जानना यही मार्ग है ॥ इसकोही चन्द्रषष्ठी कहतेहैं वह दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिये दोनों दिन चंद्रोदयव्यापिनी होय तो पहली ग्रहण करनी सोई भविष्यपुराणमें लिखा हैं कि, तैसेही भाद्रपदमासकी कृष्णपक्षकी षष्ठीकी चन्द्र षष्ठीका व्रत करना चाहिये, उसमें पूर्वतिथिका वेध श्रेष्ठ है, पहले दिन वा परले दिन जो चन्द्रोदयके समय षष्ठी हो वहही भाद्रपदके कृष्णपक्षकी चन्द्रषष्ठी होती है, उसीको प्रयत्नसे व्रत करै ॥ अष्टमीको आश्वलायन ऋषिने मघावर्षश्राद्ध लिखाहै कि, भाद्रपदके प्रथम पक्षमें अष्टमीको माध्यावर्ष श्राद्ध होताहै, यह सप्तमी आदि तीन तिथियोंमें करना चाहिये, यह नारायणवृत्तिमें लिखाहै, हरदत्तने तो मघानक्षत्र युक्त वर्षामें होनेवाली त्रयोदशी श्राद्धको माध्यावर्ष कहाहै यह व्याख्या की है । पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आषाढकी पूर्णिमासे पांचवें पक्षमें माध्याष्टमी गयाकी समान कही है, त्रयोदशी और गजच्छाया पितृश्राद्धमें गयाके तुल्य है ॥ आश्विनकृष्णाष्टमीको महलक्ष्मीका व्रत होताहै । निर्णयामृतमें पुराणसमुच्चयका कथन है कि, भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीको लक्ष्मीके पूजनका प्रारम्भ करके जबतक कन्याका सूर्य प्राप्त न हो तबतक समाप्त करदे, अथवा जबतक उस तिथिमें सूर्य कन्याके पूर्वार्द्धमें हो तबतक पूर्ण करै, वहांही यह लिखाहै कि, कन्याके सूर्यमें प्रारंभ करके लक्ष्मीका पूजन करै, और जब हस्तनक्षत्रके चौथे चरणमें सूर्य हो तबतक लक्ष्मीके व्रतको पूर्ण न करै, गृहस्थीको वर्षा-

प्रावृषि श्रियः । दोषैश्चतुर्भिः संयुक्ता सर्वसंपत्करी तिथिः " ॥ २ ॥ तथा--"पुत्रसौभाग्यराज्यायुर्नाशिनी सा प्रकीर्तिता । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्याज्या कन्यागते रवौ ॥ विशेषेण परित्याज्या नवमी दूषिता यदि " इति ॥ दोषचतुष्टयं तत्रैवोक्तम् । "त्रिदिने चावमे चैव अष्टमीं नोपवासयेत् । पुत्रहा नवमी विद्धा स्वघ्नी हस्तोर्ध्वगे रवौ" इति ॥ त्रिदिनावमदिनलक्षणं च रत्नमालायाम्-"यत्रैकः स्पृशति तिथिद्वयावसानं वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमार्यैः । यः स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्नां त्रिद्युस्पृक्कथितमिदं द्वयं च नेष्टम्"॥ एते च सर्वे निषेधाः प्रथमारंभविषयाः मध्ये तु सति संभवे ज्ञेयाः । व्रतस्य षोडशाब्दसाध्यत्वेन मध्ये त्यागायोगात् । इयं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । तत्रैव पूजाद्युक्तेः ॥ परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव कार्या । अन्यथा पूर्वैव ॥ "पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा । त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी ·" इति मदनरत्ने निर्णयामृते च संग्रहोक्तेः । "अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः । तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा" इति वचनाच्चेति संक्षेपः ॥ इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णयः । अन्वष्टकाश्राद्धनिर्णयः । अथ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धम् । तत्र कात्यायनः-"अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहांतकम् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये ब्रह्माण्डे-"पितृणां प्रथमं

ऋतुमें लक्ष्मीका अष्टमीको पूजन करना चाहिये । यह अष्टमी संपदा करनेवाली है कि, जिसमें चार दोष नहीं हैं, तैसेही पुत्र, सौभाग्य, राज्य, आयु नष्ट करनेवाली वह अष्टमी कहीहै तिससे सम्पूर्ण यत्नसे कन्याके सूर्यमें त्यागने योग्य है, और नवमीसे दूषित होय तो विशेषकर त्यागने योग्य है, अष्टमीके चार दोष वहांही लिखेहैं. तीन दिनमें और अवममें व्रत न करे नवमीसे विद्धा अष्टमी पुत्रको मारती है आधे हस्तनक्षत्रपै जब सूर्य होय तब अष्टमी धनको नष्ट करता है त्रिदिन और अवमका लक्षण रत्नमालामें यह लिखाहै कि, जहां वार एकवार दो तिथियोंके अन्तका स्पर्श करे वह त्रिदिन कहाहै, ये दोनोंही श्रेष्ठ नहीं हैं, यह सब निषेध महालक्ष्मीव्रतके प्रथम प्रारम्भके विषयमें लिखे हैं, मध्यमें तो संभव होय तो जानने कारण कि. यह व्रत सोलहवर्षतक होताहै, उसके बीचमें त्यागना नहीं चाहिये, यह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी कारण कि, चन्द्रोदयके समयही पूजा आदि लिखी हैं, यदि परदिनमें चन्द्रोदयके उपरान्त तीन मुहूर्त व्यापिनी होय तो अगली लेनी, अन्यथा पहलीही लेनी, कारण कि, मदनरत्न और निर्णयामृतमें संग्रहका वाक्यहै कि, पहली या पर विद्धा होय तो चन्द्रोदयके समयकी हीं लेनी यदि चन्द्रोदयके उपरान्त तीन मुहूर्त होय तो वहहीं पूजन योग्य है, यहभी लिखाहै कि, आधीरातके पीछे अगली तिथि वर्तै तो उस तिथिमें महालक्ष्मीका व्रत निरन्तर करै । इति संक्षेपः । इति महालक्ष्मीव्रतनिर्णय ॥ अब नवमीको अन्वष्टकाश्राद्ध लिखतेहैं कि, उसमें कात्यायनने यह लिखा कि, अन्वष्टकामें नव पिंडोंसे श्राद्ध लिखाहै, पिता आदि ३, माता आदि ३, मातामह आदि ३, पृथ्वीचन्द्रोदयमें ब्रह्माण्ड-

दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः" ॥ श्राद्धहेमाद्रौ छागलेयः" केवलास्तु क्षये कार्या वृद्धावादौ प्रकीर्तिताः । अन्वष्टकासु मध्यस्था नान्त्याः कार्यास्तु मातरः " ॥ दीपिकायां तु मातृश्राद्धमादौ कार्यमित्युक्तम् । मातृयजनं त्वन्वष्टकास्वादितः इति ॥ हेमाद्रौ ब्राह्मेपि–'अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते ' इति । अत्र शाखाभेदेन व्यवस्थेति पृथ्वीचन्द्रोदयः । जीवत्पितृकविषयमिति निर्णयदीपः । इदं च जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । तदुक्तं निर्णयामृते मैत्रायणीयपरिशिष्टे " आन्वष्टक्यं गयाप्राप्तौ सत्यां यत्र मृतेहनि । मातुः श्राद्धं सुतः कुर्यात्पितर्यपि च जीवति " ॥ यद्यपि जीवत्पितृकस्य पञ्चान्वष्टका अवश्यं कर्तव्याः । तथाप्यशक्तस्येयमावश्यकी ॥ ' प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ' इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः । "सर्वासामेव मातॄणां श्राद्धं कन्यागते रवौ । नवम्यां हि प्रदातव्यं ब्रह्मलब्धवरा यतः " ॥ इति सूतेनावश्यकत्वोक्तेश्च । अत्र सर्वासामित्युक्तेः स्वमातरि जीवन्त्यामपि सपत्नमातृभ्यो दद्यात् । तन्मरणे सति तस्यै ताभ्यश्च दद्यादित्युक्तं जीवत्पितृकनिर्णये गुरुभिः ॥ अत्र सर्वासां नामनिर्देशेनैको ब्राह्मणोर्घ्यः पिण्डश्च । नामैक्ये तु द्विवचनादि-

---

पुराणका यह कथन है कि, पहले पितरोंको दे उसके पीछे माताआदिको और उसके पीछे मातामहादिको देना यह अन्वष्टका श्राद्धमें क्रम लिखा है ॥ श्राद्धहेमाद्रिमें छागलेयका कथन है कि, क्षयीश्राद्धमें केवल माताओंका पूजन करै, वृद्धिश्राद्धमें आदिमें, और अन्वष्टकाश्राद्धमें मध्यमें, और अन्तमें कभी न करै. दीपिकामें तो यह लिखा है कि, मातृश्राद्ध आदिमें करना. कारण कि यह कथन है कि–मातृओंका पूजन अन्वष्टकामें आदिमें करे, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, अन्वष्टकाओंमें क्रमसे मातृपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये । यहां शाखाभेदसे व्यवस्था जाननी चाहिये । यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै. निर्णयदीपमें यह कहा है कि, जीवत्पितृकही मातृपूर्वक श्राद्ध करै, यह श्राद्ध जीवत्पितृकको भी करना चाहिये । सो निर्णयामृतके परिशिष्ट मैत्रायणीयशाखामें लिखाहै कि, गयाकी प्राप्तिके समयमें अन्वष्टकाश्राद्ध और मरनेके दिनका क्षयीश्राद्ध करना, इस माताके श्राद्धको पुत्र पिताके जीवतेभी करै, यद्यपि जीवत्पितृकको पांचों अन्वष्टकाश्राद्ध अवश्य कर्तव्य हैं, तथापि असमर्थ मनुष्यको यह आन्वष्टका श्राद्ध अवश्यक है कारण कि, हेमाद्रिमें पद्म पुराणका लेख है कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, इस वाक्यसे सूतनेभी इसको आवश्यक लिखा है कि, कन्याके सूर्यमें सब माताओंका श्राद्ध नवमीको करना, जिससे उनको ब्रह्माका वर प्राप्त है, इस वाक्यमें सब माताओंका कहनेसे अपनी माताके जीवते हुए भी माताकी सपत्नीको देना माताकी मृत्यु होनेपर और माताकी सपत्नीको दे, यह बात जीवत्पितृकनिर्णयमें हमारे गुरुने लिखी है ॥ यहां सबका नाम लेकर एक ब्राह्मण, एक अर्घ्य और एक पिण्ड दे, दो माताओंका एक नाम

प्रयोगे इत्युक्तं नारायणवृत्तौ ॥ अन्वष्टकाश्राद्धं तद्यागश्च गोभिलीयानां मध्यमायामेव, न सर्वासु । 'अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ' इति छान्दोगपरिशिष्टात् ॥ अत्र भर्तृमरणोत्तरं पूर्वमृतमातृश्राद्धं न कार्यमिति केचिदाहुः पठन्ति च । 'श्राद्धं नवम्यां कुर्यात्तन्मृते भर्तरि लुप्यते' इति तदेतन्निर्मूलत्वान्मूर्खप्रतारणमात्रम् । श्राद्धदीपकलिकायां ब्राह्मे-"पितृमातृकुलोत्पन्ना याः काश्चित्तु मृताः स्त्रियः । श्राद्धार्हा मातरो ज्ञेयाः श्राद्धं तत्र प्रदीयते" इति ॥ अत्र देशाचाराद्व्यवस्था । इदं चानुपनीतेनापि कार्यम् । तदुक्तं श्राद्धशूलपाणौ मात्स्ये-'अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च' इत्यभिधाय "एतच्चानुपनीतोपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ भार्याविरहितोप्येतत्प्रवासस्थोपि नित्यशः" ॥ "शूद्रोप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः" ॥ इति तेन साग्नेरेवेदमिति परास्तम् अन्वष्टकातः पृथगेवेदं मातुः श्राद्धमित्यपि परास्तम् । लाघवेन मूलैक्यादष्टकापदाविशेषाच्च । तेनान्यत्रान्वष्टकाश्राद्धस्यांगस्याप्यत्र प्रधानत्वं वचनात् । अवेष्टेरिव राजसूयांतर्गतायाः । एतयान्नाद्यकामं याजयेत् इति फलार्थत्वम् । अत्र अष्टकान्वष्टका पूर्वानुरोधात् । तथाग्निपुराणे-

होय तो द्विवचन आदि प्रयोग करै, यह नारायणवृत्तिमें कहा है. अन्वष्टका श्राद्ध और उसका त्याग गोभिलियोंको मध्यमामें है सब तिथियोंमें नहीं है कारण कि, छांदोग्यपरिशिष्टका यह लेख है कि, अन्वष्टकाश्राद्ध मध्यमामें करना यह गोभिल और गौतम कहते हैं, यहां पतिके मरनेके उपरान्त पहले मृतक हुई माताका श्राद्ध न करना चाहिये, यह कोई कहते और पढते भी हैं माताका श्राद्ध नवमीको करना और भर्ता मृतक होजाय तो उसका लोप होजाता है, सो यह सब निर्मूल होनेसे मूर्खोंको वंचनामात्र है सिद्धान्त नहीं जानना । श्राद्धदीपकलिकामें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, पिता और माताके कुलमें उत्पन्न हुई जो स्त्री मरी हों, वह सब श्राद्धके योग माता जाननी चाहिये उनको श्राद्ध नवमीको दिया जाता है इसमें देशके आचारसे व्यवस्था जाननी उचित है । यह श्राद्ध उसको भी करना चाहिये कि, जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो, श्राद्ध तो शूलपाणिने मत्स्यपुराणसे लिखा है कि, अमावस्या, अष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीको कहकर लिखा है कि, सब पर्वोंमें यज्ञोपवीत नहीं होनेपर भी इसको करै सब कामना और फलके देनेवाले साधारण श्राद्धको भार्यारहित परदेशमें स्थितको भी नित्य करना चाहिये ॥ और मन्त्रोंके विना बुद्धिमान् शूद्रभी इसी प्रकारसे करै इससे इस बातका निषेध हुआ कि, अग्निहोत्रीही इस श्राद्धको करै, और अष्टकासे भिन्नही यह मातृका श्राद्ध है, यहभी निषेध हुआ कारण कि, इसमें लाघव आता है और सबका मूल एक है और अष्टकापदसे कुछ विशेष नहीं इससे और श्राद्धोंमें अंग (अप्रधान) अन्वष्टका श्राद्धको यहां वाक्यसे प्रधानता प्राप्त है, राजसूययज्ञके भीतर अवेष्टिके समानकी अवेष्टीयज्ञ उसे कराना चाहिये, जिसको अन्न आदिकी इच्छा हो, यहां पूर्ववाक्यके अनुरोधसे अष्टकासे अन्वष्टका ग्रहण करनी सोई अग्निपुराणमें कहा है कि,

"अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥" आपस्तम्बानां-'त्वष्टकासु च वृद्धौ चेत्' इति भाष्यकारैः पाठादष्टकायां मातृकाश्राद्धम्। छान्दोगैस्त्वत्र मातृमातामहश्राद्धे न कार्यं किन्तु त्रिपुरुषमेव। "न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते। कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम्॥ प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः॥" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। अन्वष्टकासु तेषां कर्षूविधानादिति शूलपाणिः॥ यत्तु-"तमिस्रपक्षे नवमी पुण्य भाद्रपदे हि या। चत्वारः पार्वणाः कार्याः पितृपक्षे मनीषिभिः" इति तद्देशाचारतो व्यवस्थितं ज्ञेयम्। इदं जीवत्पितृकेणापि सपिण्डं कार्यम्। हेमाद्रौ विष्णुधर्मोत्तरे-'अन्वष्टकासु च स्त्रीणां श्राद्धं कार्यं तथैव च' इत्युपक्रम्य 'पिण्डनिर्वपणं कार्यं तस्यामपि नृसत्तम' इति वचनं श्राद्धविधिना पिण्डदाने प्राप्ते पुनस्तत्कीर्तनं यस्य जीवत्पितृकगर्भिणीपतित्वादिना पिण्डदानं निषिद्धं तस्य तत्प्राप्त्यर्थमिति श्रीतातचरणाः। तत्र सुवासिनीभोजननिर्णयः। अत्र सुवासिनीभोजनमुक्तं मार्कण्डेयपुराणे-"मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम्। सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति शातातपोऽब्रवीत्"॥ 'भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता। तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह सुवासिनीम्॥ तत्रैव मदालसावा-

---

अन्वष्टका, वृद्धि, गया और क्षयीश्राद्धमें माताका पृथक् श्राद्ध होता है, औ अन्यत्र पतिके संग होता है, आपस्तम्बोंके मतमें तो (अष्टकासु वृद्धौ चेत्) यह भाष्यकारोंके पाठसे अष्टकामें भी मातृश्राद्ध होता है. छन्दोगोंका तो यह कथन है कि, अष्टकामें माता और मातामहके श्राद्ध न करने चाहिये, किन्तु तीन पुरुष पर्यन्त करने कारण कि, छन्दोगपरिशिष्टमें लिखा है कि, मृत्युके दिनको त्यागकर स्त्रियोंको पृथक् न दे, कर्षूसे युक्त श्राद्धको त्याग दे उसमें सोलह श्राद्ध होते हैं। शूलपाणिका यह मत है अष्टकामें उनके भी कर्षूकी विधि है जो यह किसीका कथन है कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी नवमी पवित्र है उसमें पितृपक्षके चार पार्वण बुद्धिमान् मनुष्यको करने चाहिये, यह देशाचारकी व्यवस्थासे जानना उचित है, इसको जीवत्पितृकभी सपिण्ड करै, हेमाद्रिके विष्णुधर्मोत्तरमें कहा है कि, इसी प्रकार अन्वष्टकाओंमें स्त्रियोंका श्राद्ध करै यह प्रारम्भ करके यह कथन है कि, हे नृपोत्तम! उसमें भी पिण्डदान करै, श्राद्धविधिसे पिण्डदान प्राप्तही था. फिर उसका कथन इस कारण है कि, जिसको पिताके जी आर गर्भिणी स्त्री आदिसे पिंडदान निषेध ...सको भी पिंडदानका अधिकार है यह हमारे पिताजीके चरण कहते हैं॥ यहां सुहागिनको भोजन करना मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, माताके श्राद्ध आनेपर ब्राह्मणोंके संग सुवासिनियोंको भी भोजन देना यह शातातपने लिखा है, जो स्त्री पतिके आगे मृतक हुई हो वा सती हुई हो उसके स्थानमें ब्राह्मणोंके संग सुवासिनीको भी युक्त करना, वहांही

क्यम्–" स्त्रीश्राद्धे पुत्र देयाः स्युरलंकाराश्च योषिते । मञ्जीरमेखलादामकर्णिका-कंकणादयः " इति ॥ अशक्तौ श्राद्धकरणे निर्णयः । अत्राशक्तावनुकल्पमाहाश्वलायनः–' अनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदपामेष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात्' इति । हेमाद्रौ पितामहः–" अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते " ॥ अकरणे प्रायश्चित्तनिर्णयः । अकरणे च प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने–" एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने । अन्वष्टक्यं यदा शून्यं संपूर्णं याति सर्वथा " इति ॥ एतत्पक्षे द्वादश्यां विशेषः पृथिवीचन्द्रोदये वायवीये– ' संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि । महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं तु तत्" इति ॥ मघात्रयोदशीश्राद्धनिर्णयः । अथ त्रयोदशीश्राद्धम् । तत्र चन्द्रिका–"त्रयोदशी भाद्रपदी कृष्णा मुख्या पितृप्रिया । तृप्यंति पितरस्तस्यां वर्षं पञ्चशतं समाः ॥ मघायुतायां तस्यां तु जलाद्यैरपि तोषिताः । तृप्यंति पितरस्तद्वद्वर्षाणामयुतायुतम्" ॥ २ ॥ प्रयोगपारिजाते शंखः– " प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा । नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छंति पितामहाः ॥ २ ॥ "

मदालसाने कहा है कि, स्त्रीके श्राद्धमें स्त्रीको भूषण, मञ्जीर, मेखला, कर्णिका कंकण आदि देना उचित है ॥ इसमें शक्ति न होय तो आश्वलायनने अनुकल्प लिखा है कि, आठवें प्रहरमें बैलके निमित्त घास लावे, वा अग्निसे तृणको जलावै, इनसेभी अष्टकाश्राद्ध होता है । हेमाद्रिमें पितामहने कहा है कि, अमावस्या, व्यतीपात, पौर्णमासी, अष्टकामें श्राद्ध न करनेसे नरकमें जाना होता है । न करनेमें प्रायश्चित्त भी ऋग्विधानमें लिखा है कि, जब अन्वष्टकाश्राद्ध न होसके तब उसदिन (एभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौवार जपना चाहिये तो अवश्य पूर्ति होती है, इस पक्षकी द्वादशीमें विशेष पृथ्वीचन्द्रोदयमें वायुपुराणके वाक्यसे कहा है कि, पुत्रको संन्यासीपिताका भी वार्षिक श्राद्ध देना चाहिये और महालयमें जो द्वादशी श्राद्ध है वह पार्वण है ॥ इसमें त्रयोदशीश्राद्ध होता है, उसमें चन्द्रिकाका कथन है कि, भाद्रपदमें कृष्णपक्षकी त्रयोदशी मुख्य और पितरोंको प्रिय है, उसमें पितर श्राद्धसे पांचसौ वर्षतक तृप्त होते हैं और मघानक्षत्रसे युक्त उसको पानीय आदिसे भी प्रसन्न किये पिता लक्षों वर्षतक तृप्त होते हैं, प्रयोगपारिजातमें शंखका वाक्य है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके वीतनेपर मघायुक्त त्रयोदशीको मधु और पायससे श्राद्ध करना चाहिये तो इच्छित प्रजा, यश, स्वर्ग, आरोग्य उनको प्रसन्न हुए पिता-

---

१ एभिर्द्युभिः सुमनाएभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिंगोभिरश्विना इन्द्रेणदस्युदरयन्तइन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषारभेमहि ऋ० १ । ४ । १९ ॥

एतन्नित्यमपि पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे—"प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी" इत्युक्त्वा॥ "एतांस्तु श्राद्धकालान्वै नित्यानाह प्रजापतिः। श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते" इत्युक्तेः॥ एतच्चाविभक्तैरपि पृथक्कार्यम्॥ तथा च हेमाद्रौ— "विभक्ता वाविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक् सुताः। मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना" इति॥ तत्र गजच्छायानिर्णयः। अपरार्के वायवीये—"हंसे हस्तास्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी। तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु॥" अत्र च। "अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥" इति विष्णुमनुवचने॥ केवलत्रयोदशीश्रुतेर्मघागुण इति कल्पतरुः॥ शूलपाणिस्तु—केवलवाक्यानामर्थवादत्वाद्विधौ च मघायोगश्रुतेर्विधिलाघवात् विशिष्टमेव निमित्तमित्याह॥ वस्तुतस्तु—"मधुमांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च। एष नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च"॥ इति॥ वसिष्ठवचने केवलमघाश्रुतेर्विनिगमकाभावादुभयं भिन्ननिमित्तम्। पूर्वोक्तवचनाच्च योगाधिक्ये फलाधिक्यम्॥ अत एव याज्ञवल्क्यः—'तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः' इति॥ त्रयोदशीश्राद्धं नित्यम्। अन्यत्काम्यम्। अत्र त्रयोदश्यां बहुपुत्रा युवमारिणस्तु भवंतीत्यापस्तंबोक्तेर्युवमारित्वमपत्यदोषं सहिष्णोरपत्यमात्रार्थिनः स्मृत्यन्तरोक्तधनार्थिनो वाधिकार इति कल्पतरुः॥ अपत्यनिंदया तदर्थिनां नाधिकारात्। 'फलान्तरकामस्यैवाधिकारः' इति हलायुधः। एतत् पिण्डरहितं

मह देते हैं। पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें यह नित्यभी लिखा है कि, भाद्रपदकी पूर्णिमाके उपरान्त कृष्णपक्षकी त्रयोदशी है यह लिखकर कहा है कि, श्राद्धके इतने नित्यकाल ब्रह्माने कहे हैं इनमें श्राद्ध न करनेसे नरक होता है, इसको इकट्ठे रहते भी भ्राता भिन्न २ करें. सोई हेमाद्रिमें लिखा है कि, विभक्त हों वा इकट्ठे हों पुत्र मघानक्षत्रमें भिन्न २ श्राद्ध करे अन्यत्र भिन्न २ अधिकार नहीं है॥ अपरार्कमें वायुपुराणका वाक्य है कि, हस्तके सूर्यमें मघायुक्त त्रयोदशी वैवस्वती नाम तिथि है और गजच्छाया है, और हमारे कुलमें जो वह हो तो उसमें और गजकी प्राक्छायामें मधु और घीसे युक्त पायस देनी इस मनुवाक्यमें त्रयोदशी लिखी है इससे मघा गौणपक्ष है यह कल्पतरुमें कहा है शूलपाणिने तो यह लिखा है कि, केवल तिथि वाक्योंको अर्थवाद होनेसे और विधिमें मघायोगके सुननेसे और विधिमें लाघवसे, मघा और त्रयोदशी दोनोंही श्राद्धमें निमित्तभूत हैं॥ सिद्धान्त तो यह है कि, मधु, घी, दूध, पायससे यह पुत्र हमको वर्षा और मघानक्षत्रमें श्राद्ध देगा इस वसिष्ठके कथनमें केवल मघाही श्रवण कियाहै विनिगमनाके अभावसे और पूर्वोक्त वाक्यसे दोनों भिन्न २ ही निमित्त हैं. कारण कि, प्रयोगकी अधिकतासे फल भी अधिक मिलताहै, इसीसे याज्ञवल्क्यने कहाहै कि, तैसेही वर्षा त्रयोदशी और विशेषकर मघामें श्राद्ध देना, त्रयोदशीका श्राद्ध नित्य है, और श्राद्ध काम्य हैं, इस त्रयोदशीमें उसको अधिकार है जिसके निर्दोष बहुतसे पुत्र हों, इस आपस्तम्बके कथनसे जो संतानके दोषको सहसकै और संतानमात्रकी इच्छावाला वा केवल धनकी इच्छावाला है. हलायुधमें तो यह कहाहै कि, संतानकी निंदासे संतानार्थीका अधिकार नहीं है और फलकी

कार्यम् । " मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः । ससंतानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः " इति बृहत्पराशरोक्तेः । इदं मलमासेपि कार्यम् । " मघात्रयोदशी श्राद्धं प्रत्युपस्थितिहेतुकम् । अनन्यगतिकत्वेन कर्तव्यं स्यान्मलिम्लुचे ॥ " इति काठकगृह्योक्तेः । यानि तु अंगिराः-" त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः । पंचत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥" वामनपुराणे-"त्रयोदश्यां तु वै श्राद्धं न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ' इत्यादीनि वचनानि, तानि पुत्रवद्विषयाणि वा महालयस्य भिन्नत्रयोदशीविषयाणि वा काम्यश्राद्धविषयाणि वा सपिण्डकश्राद्ध-विषयाणि वात केचित् ॥ हेमाद्रिप्रमुखास्त्वेकवर्गश्राद्धविषयाणि-"श्राद्धं नैवैकव-र्गस्य त्रयोदश्यामुपक्रमेत् । न तृप्तास्तत्र ये यस्य प्रजा हिंसंति तस्य ते ॥ " इति कार्ष्णाजिनिस्मृतेः ॥ यद्यपि-'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि' इति धौम्योक्तेर्न केवलपितृवर्गस्य प्राप्तिस्तथापि व्यामोहादिप्राप्तनिषेधोयमित्याहुः ॥ वयं तु पश्यामः । पुत्रवद्विषयाण्येवेति । " असंतानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता-त्रयोदशी । संतानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत् ॥" इति हेमाद्रौ नागर-खण्डोक्तेः । पूर्ववाक्यमप्यसंतानस्यैवैकवर्गनिषेधकमिति ॥ अत्र मघात्रयोदशी-महालययुगादिश्राद्धानां तन्त्रेण प्रयोगः ॥ न तु प्रसंगसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥

कामनावालेका अधिकार है। यह श्राद्ध पिंडरहित करना चाहिये. कारण कि, बृहत्पराशरने कहा है कि, मघायुक्त त्रयोदशीको सन्तानसहित ब्राह्मण पिण्डदान न करे यह नित्य कविजन जानते हैं. इसको मलमासमें भी करना कारण कि, काठकगृह्यमें लिखा है कि, मघात्रयोदशी श्राद्धमें प्रत्युपस्थिति (मिलना) ही कारण है इससे अनन्यगति होनेसे मलमासमें भी श्राद्ध करना, जो ये अंगिरा आदिके वाक्य हैं कि, जो मनुष्य त्रयोदशी कृष्णपक्षमें श्राद्ध करता है, उसके ज्येष्ठ पुत्रका निश्चय मरण जानना. वामनपुराणमें लिखाहै कि, पुत्रवाला गृहस्थी त्रयोदशीको श्राद्ध न करै, ये वाक्य पुत्रवाले गृहस्थीके वा महालयसे भिन्न त्रयोदशीके काम्यश्राद्धके वा सपिण्डक श्राद्धके विषयमें है, कोई यह कहते हैं कि, हेमाद्रि आदिका तो यह कथन है कि, एकवर्गके श्राद्ध विषयमें कारण कि, कार्ष्णाजिनिकी स्मृतिमें लिखा है कि, त्रयोदशीमें एकवर्गके श्राद्धका प्रारम्भ न करै, कैर तो तृप्त न होनेसे पितर उसकी प्रजाकी हिंसा करतेहैं, यद्यपि जहां पितरोंका पूजन होताहै वहां माता-महोंका भी होताहै इस धौम्यकी उक्तिसे केवल पितृवर्गकी प्राप्ति नहीं तथापि व्यामोह (भ्रम) से प्राप्तका यह निषेध है। किन्हींका यह कथन है. हम तो यह कहते हैं कि, पुत्रवाले गृहस्थीके विषयमें है. कारण कि, हेमाद्रिमें नागरखण्डका वाक्य है कि, जिसके सन्तान न हो उसके श्राद्धमें त्रयोदशी लिखीहै और जो सन्तानयुक्त करै तो उसके कुलका क्षय होताहै, पूर्व वाक्य भी सन्तानहीनकोही हो एकवर्गका निषेधक है, इसमें मघा, त्रयोदशी, महालय युगादि श्राद्धको एकतन्त्रसे (इकट्ठे) कर क्रमसे नहीं (इत्यन्यत्र विस्तरः) इसका और जगह विस्तार है ॥

कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रादिहतानां श्राद्धनिर्णयः । अथ चतुर्दशी–पृथ्वीचन्द्रोदये प्रचेताः– " वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः । नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी ॥ " ब्राह्मे–"युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः । तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता ॥ " नागरखण्डे–"अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा । श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप ॥ " एतच्च– 'प्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्बन्धनप्रपतनैश्चेच्छताम् ' इति गौतमोक्तदुर्मरणोपलक्षणम् एकयोगनिर्देशात् । " सर्वेषां तुल्यधर्माणामेकस्यापि यदुच्यते । सर्वेषां तत्समं ज्ञेयमेकरूपा हि ते स्मृताः " इत्युशनसोक्तेश्च ॥ तच्च कृतक्रियाणामेवेति वक्ष्यामः । मरीचिः–"विषशस्त्रश्वापदाहितिर्यग्ब्राह्मणघातिनाम् । चतुर्दश्यां क्रियाः कार्या अन्येषां तु विगर्हिताः " ॥ अत्र ब्राह्मणघाती तेन हतो, न तु ब्रह्महा । तस्य पतितत्वादिति शूलपाणिः ॥ अत्रोद्देश्यविशेषणस्याविवक्षितत्वात् । स्त्रीणामपि शस्त्रादिहतानामेकोद्दिष्टं कार्यं, न पार्वणमिति श्रीदत्तोपाध्यायः ॥ ' इदं विषादिहतानामेव न प्रसवादिमृतानाम् ' इति वाचस्पतिः ॥ यत्तु शाकटायनः– "जलाग्निभ्यां विपन्नानां संन्यासे वा गृहे पथि । श्राद्धं कुर्वीत तेषां वै वर्जयित्वा चतुर्दशीम्" इति ॥ तत्प्रायश्चित्तार्थजलादिमृतविषयमित्याकरे उक्तम् ॥ अत

पृथ्वीचन्द्रोदयमें प्रचेताका कथन है कि, जो मनुष्य वृक्षपर चढनेसे, लोह, बिजली, जल, विष, अग्नि, नख और दाढवाले जीवोंसे मरेहों उनके श्राद्धमें चतुर्दशी श्रेष्ठ है. ब्रह्मपुराणमें लिखाहै कि, जिसके युवा पितर मरेहों वा शस्त्रसे मरेहों उनकी तृप्तिकी इच्छा करता हुआ मनुष्य उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करै. नागरखण्डमें लिखाहै कि, जिनकी अपमृत्यु या शस्त्रसे मृत्यु हुई है राजन् ! उनका श्राद्ध चतुर्दशीको करना, यह पूर्वोक्तकथन गौतमके कहे इन दुर्मरणोंके भी उपलक्षणवाला है कि, अनशनव्रत, शस्त्र, अग्नि, विष, जल, बंधन, वृक्षआदिसे गिरना जानकर जो इनसे मरेहों, कारण कि एक योग (इकडे) से सब लिखेहैं, और उशनाने भी लिखाहै कि समानधर्मवाले सबके बीचमें एकको भी जो कहाजाय वह सबको तुल्य जानना, कारण कि, सब लिखेहैं वह उनकाही होताहै जिनकी क्रिया होचुकीहै, वह आगे लिखैंगे. मरीचिने कहाहै कि, विष, शस्त्र, भेडिया, तिर्यग्योनि, ब्राह्मणसे जो मरेहोंय उनकी क्रिया चतुर्दशीको करनी इनसे अन्योंकी निंदित है, इस श्लोकमें ब्राह्मणघाती पदसे ब्रह्महत्यारेका ग्रहण नहीं है कारण कि, वह पतित है यह शूलपाणिने कहाहै, यहां उद्देश्यके विशेषण पुँल्लिंगकी अविवक्षासे शस्त्रआदिसे मृतक हुई स्त्रियोंका भी एकोद्दिष्ट करना, पार्वण न करना. यह श्रीदत्तोपाध्यायका कथन है, विषआदिसे मृतक हुई स्त्रियोंका यह श्राद्ध करे और जो जननसे मृतकस्त्री हों उनका नहीं यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है. जो शाकटायनने यह लिखाहै कि, जल, अग्नि, संन्यास धरसे जो मरेहों उनका श्राद्ध चतुर्दशीको त्याग कर करे, यह प्रायश्चित्तके निमित्त जलआदिसे मृतक हुओंके निमित्त है, यह आकरमें कथन है, इसी प्रकार हेमाद्रिने लिखाहै कि

एव वैधत्वात् सहगमनेपि न कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ एतच्च दैवयुक्तमेकोद्दिष्टं कार्य मित्युक्तं प्रयोगपारिजाते–"प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः । दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः । एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत् " ॥ २ ॥ भविष्येपि–" समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च । चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये ॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते । एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः ॥ २ ॥" इति ॥ संवत्सरप्रदीपे हारीतः–"विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयित्वादितोऽमलान् । ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतंद्रितः ॥ " अत्रैकोद्दिष्टवचनानां निर्मूलत्वम् । समूलत्वेपि पार्वणाशक्तपराणि ॥ विष्ण्वादिवचनैः प्रकरणात् कृष्णपक्षीयपार्वणावगतेरिति शूलपाणिः ॥ तन्न । वाक्येन प्रकरणस्य बाधात् । पित्रादीनां पार्वणं भ्रात्रादीनामेकोदिष्टमिति गौडार्वाश्चः ॥ तन्न ॥ पितुरित्यनेन विरोधात् ॥ विशेषवाक्यवैयर्थ्यापत्तेश्च । अत्र शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यामिति नियमो, न तु चतुर्दश्यामेव शस्त्रहतस्येति । 'श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां महालये' इति कालादर्शात् वार्षिकादीनामकरणापत्तेश्च । तेन महालये एव दिनांतरे पार्वणं मातामहादि-

---

सतो हानम शास्त्रोक्त होनेसेभी न करे यह श्राद्ध विश्वेदेवाओंसे युक्त एकोद्दिष्ट करना चाहिये । यह प्रयोगपारिजातमें लिखा है, मनुनेभी लिखे है कि, यदि वह श्राद्ध दैवहीन होय तो पुत्र, दारा, धनका क्षय करता है, प्रेतपक्षकी चतुर्दशीको विधिसे दैवयुक्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे तो पितरोंको अक्षय प्राप्त होताहै, एकोद्दिष्ट दैवयुक्त होताहै । भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, समताको प्राप्त हुए और शस्त्रसे मृतक हुए पिताका महालयकी चतुर्दशीको एकोद्दिष्ट करे सपिंडी करनेके पीछे चतुर्दशीमें जो श्राद्ध है वह एकोद्दिष्टविधिसे उसका करना जो शस्त्रसे मृतक हुआ हो सम्वत्सरप्रदीपमें हारीतने कहा है कि, वहांभी निर्मल विश्वेदेवाओंकी पूजा करके जो शस्त्रसे मरेहैं उनका आलस्यको त्यागकर श्राद्ध करे, इसमें एकोद्दिष्टश्राद्धके बोधक वाक्य निर्मूल हैं. और मूलसहित भी मानो तो उसके निमित्त हैं जो पार्वणश्राद्ध करनेमें समर्थ नहीं है, कारण कि, विष्णुआदिके वाक्याके प्रकरणसे कृष्णपक्षमें पार्वणही प्रतीत होता है यह शूलपाणिका कथन है, सो उचित नहीं, कारण कि वचनसे प्रकरणका बाध होजाता है पिछले गौड तो यह लिखते हैं कि पिताआदिकोंका पार्वण, भ्राता आदिकोंका एकोद्दिष्ट होता है सो उचित नहीं ॥ कारण कि (पितुः) इस पूर्वोक्तवाक्यसे विरोध है, और विशेषवाक्यभी व्यर्थ हो जाँयगे. यहां शस्त्रसे मृतककाही चतुर्दशीको करना यह नियम है, और चतुर्दशीकोही शस्त्रसे मृतकका यह नियम नहीं. कारण कि, महालयमें शस्त्रहतकाही चतुर्दशीको श्राद्ध करना कहा है,

तृप्त्यर्थं कार्यमेव । पितामहोपि शस्त्रहतश्चेदेकोद्दिष्टद्वयं कार्यम् । तदुक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे-'एकस्मिन् द्वयोर्वैकोद्दिष्टम्' इति । त्रिशस्त्रहतेषु पार्वणमेव कार्यम् । यत्तु देवस्वामिनोक्तं त्रिष्वपि शस्त्रहतेषु पृथगेकोद्दिष्टत्रयं कार्यम् । न तु पार्वण-माहत्य वचनाभावादिति । तदयुक्तम् । "पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रैर्यातास्त्वनुक्र-मात् । स भूते पार्वणं कुर्यादाब्दिकानि पृथक्पृथक् ॥ " इति बृहत्पराशरोक्तेः ॥ एकस्मिन्वा द्वयोर्वापि विद्युच्छस्त्रेण वा हते । एकोद्दिष्टं सुतः कुर्यात्त्रयाणां दर्श-वद्भवेत् ॥ " इति स्मृत्यन्तराच्चेति पृथ्वीचन्द्रोदये उक्तम् ॥ अपरार्क हेमाद्रौ चैवम् ॥ यस्तु अत्रैव शस्त्रादिना हतस्तस्य वार्षिकमेव पार्वणमेकोद्दिष्टं वा कार्यं न तु श्राद्धद्वयम् । प्रसङ्गसिद्धेरिति पृथ्वीचन्द्रोदये ॥ श्राद्धाकरणे निर्णयः । अत्र श्राद्धा करणेऽग्रिमापरपक्षे दिनान्तरे पार्वणेनैव कार्यमिति तत्रैवोक्तम् । यद्यपि-"शस्त्रविप्रहतानां च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः । आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ " इति छागलेयाद्यैः शस्त्रादिहतानां श्राद्धं निषिद्धम् । तथापि प्रमा-दमृतानां श्राद्धार्हत्वात् कार्यम् । वृद्धादिभिन्नबुद्धिपूर्वमृतानां तु न कार्यम् ॥ यत्तु-'चतुर्दश्यां तर्पणीया लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ' इति ब्राह्मे ॥ तद्गौणामिति शूल-

---

पितामह भी यदि शस्त्रसे मरा होय तो दो एकोद्दिष्ट करे, सोई हेमाद्रिमें किसी स्मृतिका वाक्य है कि, एक तिथिमें दोकाभी एकोद्दिष्ट होता है, यदि तीन शस्त्रसे मृतक हुए होंय तो पार्वणही करना, जो देवस्वामीमें लिखा है कि, यदि तीन शस्त्रसे मरे होंय तो तीन दिन एकोद्दिष्ट भिन्न २ करे पार्वण न करे कारण कि, कोई भिन्नवाक्य नहीं है, सो उचित नहीं जिसके पिताआदि तीन शस्त्रसे मरे हों वह चतुर्दशीको पार्वण करै, और प्रतिवर्ष क्षयाके श्राद्ध भिन्न २ करै यह बृहत्पाराशरने लिखा है, और यह अन्यस्मृतिका भी कथन है कि, एक वा दो विजली वा दो विजली वा शस्त्रसे मर होंय तो पुत्र एकोद्दिष्ट करै, और तीनका अमावस्याके तुल्य पार्वणश्राद्ध करै, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कथन किया है, अपरार्क और हेमाद्रिमें भी इसी प्रकार लिखा है, जो किसीने यह लिखा है कि, इसी तिथिमें जो शस्त्र आदिसे मृतक है उसका वार्षिकमें पार्वण वा एकोद्दिष्ट करना और प्रसंगसे दो श्राद्ध न करने यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहाहै ॥ यदि इस तिथिमें श्राद्ध न हो सके तो अगले कृष्णपक्षम वा और दिनमें पार्वणही करै. यह यहांही लिखा है यद्यपि शस्त्र, ब्राह्मण, सींगवाले, और दाढवाले, सर्पसे जो मृतक हुए हैं और जिन्होंने शरीरका स्वयं त्याग किया हैं उनका श्राद्ध न करे, यह छागलेय आदि ऋषियोंने शस्त्रआदिसे मृतक हुओंका श्राद्धमें निषेध किया है । तथापि प्रमादसे जो मृतक हुए हैं उनको श्राद्धकी योग्यता है इससे करना. वृद्धआदिसे भिन्न जो जानकर मरे हैं उनका न करना जो ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, चतुर्दशीमें मरोंका तर्पण करे, और पिंडदान न करे, यह गौणपक्ष है. यह

पाणिः ॥ लक्षणायां मानाभावात् । "पतितेनापि कर्तव्यं कर्तव्यं पतितस्य च ॥ इति गयादिवद्विशेषविधिबलात् पतितानामपि कार्यमिति नव्यगौडाः । तत्त्वं तु समत्वमागतस्य इत्यादिवशात् कृतक्रियाणां कार्यं नान्येषामिति वयं प्रतीमः ॥ यत्तु मनुः—"न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्विधीयते " इति ॥ अत्र पूर्वार्द्धं हेतुत्वेनोक्तम् । तद्यथाश्रुतमेव मन्वते पृथ्वीचन्द्रोदयादयः । आहिताग्नेः पिण्डपितृयज्ञकल्पेन श्राद्धनिषेधार्थमिदं न तु साकल्यादेरपीत्यस्मद्गुरवः ॥ कृष्णपक्षश्राद्धमन्यदिनेषु प्राप्तमाहिताग्नेर्दर्शे नियम्यत इति तु वयम् । दर्शेन पार्वणेन विना श्राद्धं न ॥ तेन क्वापि वार्षिकादावेकोद्दिष्टं नेति हरिहरः ॥ इति चतुर्दशी ॥ आश्विनकृष्णामावस्यायां गजच्छाया निर्णयः । अमायां विशेषमाहापरार्के यमः—"हंसे करस्थिते या तु अमावस्या करान्विता । सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत् ॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत् । गजच्छाया सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥" भारते- "अजेन सर्वलोहेन वर्षासु नियतव्रतः । हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ॥" श्राद्धं दद्यादिति शेषः ॥ आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रश्राद्धनिर्णयः ।

शूलपाणिका कथन है, लक्षणामें प्रमाणका भाव नहीं है, इससे पतितभी श्राद्ध करे, और पतितकाभी करना इस कथनसे गयादिके समान विशेष विधिके बलसे पतितोंका भी करना यह गौडोंका कथन है. सिद्धान्त तो यह है कि, समताको प्राप्त हुए (संन्यासी) इत्यादि वाक्यके वशसे जिनकी क्रिया हो चुकी हो उनका श्राद्ध करना औरोंका नहीं यह हम जानते हैं जो मनुने यह लिखा है कि पितृयज्ञका होम लौकिकअग्निमें नहीं करै और अमावास्याके विना अग्निहोत्रीका श्राद्ध न करे. इस मनुके कथनमें पूर्वार्द्ध हेतु लिखा है तिससे मेरे मतमें पृथ्वीचन्द्रोदयका कथन यथाश्रुत है, हमारे गुरुजीका तो यह कथन है कि अग्निहोत्रिकोपिंड पितृयज्ञकी विधिसे श्राद्ध निषेधके निमित्त यह कथन है, संकल्पके निमित्त नहीं ॥ हमारा तो यह कहना है कि, अग्निहोत्रीकी कृष्णपक्षका श्राद्ध जो और दिनोंमें प्राप्त है वह अमावस्याकोही करना चाहिये, यह इस वाक्यसे नियम करते हैं. हरिहरका तो यह कहना है कि, दर्शपदसे पार्वणका ग्रहण है तिससे अग्निहोत्रीको पार्वणही करना, एकोद्दिष्ट वार्षिक आदि कर्म भी न करने ॥ इति चतुर्दशी ॥ अपरार्कमें यमने अमावस्याको विशेष लिखा है कि, हस्तनक्षत्रके सूर्यमें जो हस्तनक्षत्रसंयुक्त अमावस्या है वह गजच्छाया जाननी यह बौधायनने लिखा है, वनस्पतिमें प्राप्त चन्द्रमामें जो छाया पूर्वमुखी हो वह गजच्छाया लिखी है उसमें श्राद्ध करना भारतमें लिखा है, कि, अज और सर्वलोहसे वर्षाके दिनोंमें सावधान होकर गजच्छायामें विधिसे वीजनेसे वायु करके श्राद्ध दे ॥ आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको दौहित्र मामाके जीवित होतेभी आश्विनशुक्ल १ को मातामहका श्राद्ध

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रस्य मातामहश्राद्धमुक्तम्। हेमाद्रौ संग्रहे च-"जातमात्रोपि दौहित्रो विद्यमानेपि मातुले। कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सित॥" इति॥ इयं संगवव्यापिनी ग्राह्येति निर्णयदीपे उक्तम्। "प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम्। श्राद्धं मातामहं कुर्यात्सपिता संगवे सद॥ जातमात्रोपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले। प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद्भवेत्" ॥ २॥ इति वचनात्। अत्र समूलत्वं विमृश्यम्॥ इदं च मलमासे न कार्यम्। "स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले" इति निषेधात्॥ इदं च जीवत्पितृकेणैव कार्यमिति शिष्टाः॥ इदं च शिष्टाचारात्सपिंडकं कार्यमिति केचित्॥ पिंडरहितं तु युक्तं जीवत्पितृकस्य-"मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च॥"इति दक्षेण पिण्डनिषेधात् आन्वष्टक्यवद्विशेषवचनाभावाच्चेति संक्षेपः। इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ महालयनिर्णयः॥ अथ नवरात्रारंभस्तन्निर्णयः। अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि नवरात्रारम्भस्तन्निर्णयः॥ तत्र भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे सुमेधा उवाच-"शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि चंडिकापूजनक्रमम्। आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सुशुभे दिने" इत्युपक्रम्योक्तम्। "शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्यं प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी। आद्यास्तु नाडिकास्त्यक्त्वा षोडश द्वादशापि वा॥ अपराह्णे च कर्तव्यं शुभसंततिकांक्षिभिः।" इदं चापराह्णयो-

करै, यह संगव व्यापिनी लेनी, यह निर्णयदीपमें लिखाहै कारण कि, यह कथन है कि आश्विन शुक्ल १ प्रतिपदाको दौहित्र १ एक पार्वणश्राद्ध मातामहका संगव कालमें सदैव करै, उत्पन्न हुआभी दौहित्र मामाके होते भी प्रातःकाल और संगवके मध्यमें प्रतिपदामें श्राद्ध करै, इसमें मूल नहीं मिलता, यह मलमासमें न करना चाहिये, कारण कि, यह निषेध है जहां मासविशेषका नाम स्पष्ट हो उसको मलमासमें त्यागदे, इसको जीवत्पितृकही करै यह शिष्टोंका कथन और शिष्टोंके आचारसे यह पिण्डसहित करना। कोइ यह कहते हैं कि, पिण्डरहित करना तो युक्त है, कारण कि, जीवत्पितृकको इस दक्षके वाक्यसे पिण्डका निषेध है और अन्वष्टका श्राद्धके तुल्य कोई विशेष वाक्य नहीं कि, मुण्डन, पिण्डदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीका पति न करै, यह संक्षेपसे कहाहै॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां महालयनिर्णयः। इसके पीछे आश्विनशुक्ल प्रतिपदाको नवरात्रका आरम्भ और उसका निर्णय कथन करते हैं, सोई भार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणमें सुमेधाका कथन है कि, हे राजन्! सुनो चण्डिकाके पूजनका क्रम वर्णन करतेहैं आश्विनके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा और शुभदिनमें यह प्रारम्भ करना चाहिये. प्रारम्भ करके लिखाहै कि, शुद्धतिथिमें करना जब प्रतिपदा ऊर्ध्वगामिनी होय तो प्रथम सोलह और बारह घडियोंको छोडदे और शुद्धसन्तानकी इच्छावालेको अपराह्णमें करनी चाहिये, यह

गिन्याः प्राशस्त्यं द्वितीयदिने प्रतिपदाभावे ज्ञेयम् । तथा तत्रैव देवीपुराणे डामरतंत्र च देवीवचः—"अमायुक्ता न कर्त्तव्या प्रतिपत्पूजने मम। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ॥ आद्याः षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः। कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥ २ ॥" मार्कंडेयदेवीपुराणयोः—"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी। नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता। देशभंगो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं चोपजायते। नंदायां दर्शयुक्तायां यत्र स्यान्मम पूजनम् ॥२॥" इति। स्कांदेपि—"प्रतिपद्याश्विने मासि सा शुद्धा शुभदा भवेत्॥भाद्रपत्रदर्शी कृष्णा तथा युक्ता न शस्यते॥ विरुद्धफलदा सा हि पुत्रदारभयावहा" इति ॥ तथा— "वर्जनीया प्रयत्नेन अमायुक्ता तु पार्थिव। द्वितीयादिगुणैर्युक्ता प्रतिपत्सर्वकामदा॥" तथा देवीपुराणे—"यो मां पूजयते नित्यं द्वितीयादिगुणान्विताम् । प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमव्ययम् ॥ यदि कुर्यादमायुक्तां प्रतिपत्स्थापनं मम। तस्य शापायुतं दत्त्वा भस्मशपं करोम्यहम् ॥ आग्रहात्कुरुते यस्तु कलशस्थापनं मम। तस्य संपद्विनाशः स्याज्ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यति ॥ अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चंडिकार्चने। धनार्थिभिर्विशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥ न दर्शकलया युक्ता प्रति-

---

वाक्य उस प्रतिपदामें जानना जो सन्ध्या समय श्रेष्ठ हो और दूसरे दिन प्रतिपदा न हो इस प्रकार वहांही देवीपुराणमें डामरका वाक्य है कि, मेरे पूजनमें अमावस्यायुक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और द्वितीया आदि गुणोंसे युक्त मुहूर्त्तमात्रभी ग्रहण करनी जो मनुष्य प्रथम सोलह घडीमें कलशको स्थापन करताहै उसको अवश्य अरिष्ट होताहै, मार्कण्डेय और देवीभागवतमें लिखा है कि, आश्विन शुद्धप्रतिपदा पूर्वविद्धामें शुभकी इच्छावाले मनुष्यको व्रत न करना चाहिये, अमावस्यासे युक्त नन्दामें जहां मेरी पूजा होतीहै वहां देशका भंग और दुर्भिक्ष होताहै । स्कन्दपुराणमें भी लिखाहै कि, आश्विनमासकी प्रतिपदा शुद्ध होय तो शुभ फलदायक होतीहै और भाद्रपदकी अमावस्या प्रतिपदासे युक्त होय तो उत्तम नहीं. कारण कि, वह विपरीत फलकी दाता और पुत्र और स्त्रीको भयदायक होती है. इसी प्रकार कहा है कि, जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा प्रयत्नसे छोड दे और द्वितीयाआदि गुणोंसे युक्त प्रतिपदामें जानकर पूजा करताहै वह अविनाशी सुखको भोगता है जो मनुष्य अमावस्यासे युक्त प्रतिपदाको मेरी पूजा करताहै, उसको मैं सहस्रों शाप देकर भस्म करदेती हूं, जो आग्रहपूर्वक मेरे कलशको स्थापन करताहै उसकी सब सम्पदा नष्ट होजाती है और ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु हो जातीहै, चण्डिकाके पूजनमें अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा धनके. अर्थियोंको विशेषकर न करनी. कारण कि, वंशकी हानिभी होती है, और द्रव्य भी नष्ट होजाताहै, चण्डिकाके पूजनमें अमा० (३०)

पत्रंडिकार्चने । उदये द्विमुहूर्तापि ग्राह्या सोदयदायिनी ॥ इति ॥ देवीपुराणे— "या चाश्वयुजि मासे स्यात्प्रतिपद्भद्रयान्विता । शुक्ला ममार्चनं तस्यां शतयज्ञफलप्रदम् ॥" रुद्रयामले—" अमायुक्ता सदा चैव प्रतिपन्निंदिता मता । तत्र चेत्स्थापयेत्कुंभं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम् ॥ प्रतिपत्सद्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि " इति ॥ यद्यपि रुद्रयामलं डामरं च निर्मूलं तथाप्यविरोधात् प्रचाराच्च तद्वचनानि लिख्यन्ते तिथितत्त्वे देवीपुराणेपि—" प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् " ॥ तत्रैव—" शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ॥ सा कार्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता " । तथा " कुहूकाष्ठोपसंयुक्तां वर्जयेत्प्रतिपत्तिथिम् । राज्यनाशाय सा प्रोक्ता निंदिता चाश्वपूजने " इति॥ एषु वचनेषु कलशस्थापनग्रहणात् तदेव प्रथमदिने निषिध्यते । न तूपवासादि । तस्य—' प्रतिपद्यप्यमावास्या ' इति युग्मवाक्यात् । ' शुक्ला स्यात् प्रतिपत्तिथिः प्रथमतः ' इति दीपिकोक्तेः ॥ ' शुक्लपक्षे दर्शविद्धा ' इति माधवोक्तेश्च । पूर्वदिने प्राप्तस्य बाधे मानाभावादिति केचित् । वस्तुतस्तु पूर्वोक्तवाक्येषु चण्डिकार्चनपूजाग्रहणादुपवासादेश्चाङ्गत्वात् प्रधानदेवीपूजादावपि परेति युक्तम् ॥ कलश-

की कलासे भी युक्त प्रतिपदा न ग्रहण करनी और उदयकालमें दो मुहूर्त्त भी होय तो ग्रहण करनी ॥ देवीपुराणमें लिखाहै कि, द्वितीयासे युक्त आश्विनशुक्ल प्रतिपदामें जो मेरा पूजन करताहै उसको सौ १०० यज्ञका फल प्राप्त होताहै. रुद्रयामलमें लिखाहै कि, अमावास्यासे युक्त प्रतिपदा सदा निंदित मानीहै, उसीमें घटका स्थापन करै तो अवश्य दुर्भिक्ष होताहै, द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा घटस्थापनमें उत्तम है, यद्यपि रुद्रयामल और डामर ये दोनों ग्रन्थ निर्मूल हैं तथापि अविरोधसे और प्रचारसे उनके वाक्य लिखतेहैं ॥ तिथितत्त्व और देवीभागवतमें लिखा है कि, प्रातःकाल देवीका आवाहन करै, और प्रातःकालही प्रवेश करै और प्रभातही पूजन करके विसर्जन करै. वहांही कहा है कि, शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा की जाता है वह उदयकालकी तिथिमें करनी चाहिये । उसमें दो तिथिके योगका नियम नहीं है. कहा भी है कि, अमावस्याकी एक घडीसे युक्तभी प्रतिपदा तिथिको त्याग दे. कारण कि, वह राज्यनाशके निमित्त कथन की है इससे अश्वोंके पूजनमें निन्दित है इन वाक्योंमें कलश स्थापनके ग्रहणसे घटस्थापनकाही प्रथमदिन निषेध है, व्रत आदिका नहीं, कारण कि, व्रतकी प्रतिपदामें भी अमावस्या होय तो इस युग्मवाक्यसे और व्रतमें शुक्लकी पहली तिथि होती है, यह दीपिकाके कथनसे है ॥ और शुक्लपक्षमें अमावस्यासे विद्धा प्रतिपदा ग्रहण करनी, इस माधवके कथनसे पूर्वदिनमें प्राप्त उस व्रतके न करनेमें प्रमाण नहीं है यह कोई लिखते हैं. सिद्धान्त तो यह है कि, पूर्वोक्त वाक्योंमें चंडिकाके पूजनका ग्रहण है, और व्रतभी पूजनका अंग है, इससे प्रधान देवीपूजा आदिमें भी अगली लेनी यह युक्त है, घटके स्थापनका ग्रहण तो उप-

स्थापनग्रहणं तूपलक्षणम् । अत एव देवलः–"व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् । सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके" इति ॥ अत्र घटिका मुहूर्त इति । गौडाः ॥ यदा तु पूर्वदिने सम्पूर्णा शुद्धा च भूत्वा परदिने वर्धते तदा सम्पूर्णत्वादमायोगाभावाच्च पूर्वैव ॥ यानि च द्वितीयायोगनिषेधकानि वचनानि केचित् पठन्ति तान्यपि शुद्धाधिकानिषेधपराणि । परदिने प्रतिपदोत्यन्तासत्त्वे तु दर्शयुतापि पूर्वैव ग्राह्या । तदाह लल्लः–' तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणं तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम्' इति ॥ यानि तु–' अमायुक्ता प्रकर्तव्या ' इत्यादीनि नृसिंहप्रसादे वचनानि तानि समूलत्वे सत्येतद्विषयाणि । अत्रेदं तत्त्वम् । पूर्वोक्तवाक्यानां सर्वेषां हेमाद्र्याद्यलिखितत्वेन निर्मूलत्वात्तैश्चान्यनिर्णयस्यानुक्तेः सामान्यनिर्णयात् । पूर्ववत् प्राप्तावपि गौडनिबन्धेषु विशेषनिर्णयादौदयिकी ग्राह्या ' तत्रापि 'घटिका' इत्यस्य द्विमुहूर्तस्तुतित्वोक्तेर्द्विमुहूर्ता ग्राह्या । ' उदिते दैवतं भानौ ' इत्यत्र ' द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च ' इति औदयिक्या द्विमुहूर्तत्वनियमात् तेन 'उदये द्विमुहूर्तापि' इत्या[illegible]रोपि 'मुहूर्तमात्रा कर्तव्या' इति द्विमुहूर्तस्तुतिः अन्यथा द्विमुहूर्तविधिवैयर्थ्यात् । केचित्तु–'मुहूर्तमात्रा' इति वचनात्ततो न्यूनत्वे परा नेत्याहुः ॥ गौडा

लक्षण है इसीसे देवलने लिखा है कि, व्रत और उपवासके नियममें जो एक घडी भी हो वह तिथि उस दिन पूजने योग्य है, और इससे विपरीत पितृकर्ममें पूज्य है, यह घटिकाके मुहूर्त्तसे ग्रहण करना यह गौडोंका कथन है, जब प्रथम दिन सम्पूर्ण और शुद्ध होकर पर दिनमें प्रतिपदा बढजाँय तब सम्पूर्ण होनेसे अमावस्यायोगके न होनेसे पहलीही ग्रहण करनी, और जा कोई द्वितीया योगके निषेध करनेवाले वाक्योंको पढते हैं वे भी शुद्धासे अधिकके निषेध करनेवाले हैं, यदि दूसरे दिनमें प्रतिपदा सर्वथा न होय तो अमावस्यासे युक्त प्रथमही लेनी. कोई लल्लने लिखा है कि, शरीर, कारण, साधन, प्रमाण, तिथिही है और जो अमावस्यासे युक्त प्रतिपदा करनी इत्यादि न्रासहप्रसादके वाक्य हैं वेभी समूल होंय तो उसी प्रतिपदाके विषयमें हैं, यहां यह तत्व है कि, पूर्वमें कहे सब वाक्योंको हेमाद्रिआदिमें न लिखनेसे निर्मूल होनेसे और उन्होंने भी और निणय नहीं करा इससे सामान्य निर्णयसे पहलेके समान प्राप्ति होय तोभी गौडग्रन्थोंमें विशेष निर्णयसे उदयकालकी ग्रहण करनी, और वहांभी एक घडी हो उसे द्विमुहूर्त्त कहना चाहिये । यह स्तुतिके निमित्त है, इससे द्विमुहूर्त ग्रहण करनी कारण कि, सूर्यके उदयपर देवकर्म करना, यहां दिनके दो मुहूर्त लेनी इससे दो मुहूर्त्तका नियमहै इसमे उदयमें दो मुहूर्त्त लेनी इसका भी अनुसार है, मुहूर्तमात्र करनी यह तो दो मुहूर्त्तकी प्रशंसा है, अन्यथा दो मुहूर्त्तकी विधि व्यर्थ पडैगी. कोई तो यह कहते हैं कि, मुहूर्त्तमात्र हो इस कथनसे इससे न्यून होय तो अगली न करनी, गौडोंका भी यह कथन ह ॥ यह

अप्येवम् ॥ अत्र देवीपूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वंगम् । "अष्टम्यां च नवम्यां च जगन्मातरमम्बिकाम् । पूजयित्वाश्विने मासि विशोको जायते नरः" इति हेमाद्रौ भविष्ये तस्या एव फलसंबन्धात् । 'नवमीतिथिपर्यंतं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्' इति तत्रैव देवीपुराणात् । 'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी' इति मार्कण्डेयपुराणाच्च । पूर्ववचनादष्टमीपूजैव प्रधानमन्यत्सर्वमंगमिति गौडाः ॥ एकाहपक्षोऽपि कालिकापुराणे–"यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यामथ साधकः । पूजयेद्वरदां देवीं महाविभवविस्तरैः" इति ॥ तत्त्वं तु–राजसूयेन्ययागैः समप्रधानाया संहिताया अप्यवेष्टेः एतयान्नाद्यकामं याजयेदित्येकत्वान्मध्ये विधानाच्च यथा फलार्थो वहिः प्रयोगस्तथा नवरात्रमध्यस्थाया अष्टम्या नवम्या वा फलार्थः पृथक् प्रयोगः ॥ रूपनारायणधृतदेवीपुराणे–"महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिका ॥ सर्वेषु वत्स वर्णेषु तव भक्त्या प्रकीर्तिता ॥ कृत्वाप्नोति यशोराज्यपुत्रायुर्धनसंपदः"॥ सा च काम्या नित्या च । "एवमन्यैरपि तथा देव्याः कार्यं प्रपूजनम् । विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम्" इति ॥ "यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे । न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यत्र भैरव । क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै" इति कालिकापुराणे फलनिन्दाश्रुतेः ।

देवीकी पूजाही प्रधान है, व्रत आदि उसके अंग हैं, कारण कि, हेमाद्रिमें इस भविष्यपुराणके कथनमें पूजाकाही सम्बन्ध है कि, अष्टमी वा नवमीमें जगत्‌की माता अंबिकाका पूजन करके मनुष्य शोकसे रहित होता है, देवी और मार्कण्डेय पुराणमें लिखा है कि, नवमी तिथि पर्यंत वृद्धिसे पूजा और जप आदि करना शरत्कालमें जो मेरी वार्षिकपूजा कीजाती है प्रथमके वाक्यसे अष्टमी वा नवमीमें पूजा करनाही प्रधान है और सब अंग हैं, यह गौडोंका कथन है । एक दिनकी पूजाका पक्षभी कालिकापुराणमें लिखा है । साधक मनुष्य अष्टमी वा नवमीको वरकी दात्री देवीका अपने धनके अनुसार पूजन करै ॥ सिद्धान्त तो यह है जैसे राजसूययज्ञमें और यज्ञोंके तुल्य और प्रधानअवेष्टि यज्ञका अन्नकी इच्छावाला अवेष्टियज्ञ करै, इस वाक्यसे एकवाक्यता और मध्यमें विधि होनेसे फलके निमित्त प्रयोग है तैसेही नवरात्रमें अष्टमी नवमीका फलके निमित्त पृथक्‌प्रयोग है, रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका कथन है कि, हे पुत्र ! सब कामनाओंकी दायक यह पूजा भक्तिसे तुमसे वर्णन कीहै इसको करके यश, राज्य, पुत्र, आयु, धन, सम्पदाको प्राप्त होताहै, यह व्रत काम्य और नित्य जानना कारण कि, कालिकापुराणमें इन वाक्योंसे फल और निन्दा दोनों सुनीहैं कि, इसी प्रकार और मनुष्यभी अतुलधनके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी दाता देवीके पूजनको नवरात्रमें करे जो मनुष्य मोह, आलस्य, दंभ, द्वेषसे महोत्सवमें देवी दुर्गाका पूजन नहीं करता, तो उसपर क्रुद्ध हुई भगवती उसके मनोवांछित कार्योंको नष्ट करतीहै, तिथितत्वमें देवीपुराणका कथन है कि, वर्षवर्षमें

' वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च विसर्जनम्' इति तिथितत्त्वे देवीपुराणाच्च॥ तत्रोपवासादिनिर्णयः ॥ अत्रोपवासादिकमुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये–"एवं च विंध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः।एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे॥ गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः" ॥१॥ इति ॥ यत्तु रूपनारायणीये भविष्ये–'एवं नानाम्लेच्छगणैः पूज्यते सर्वदस्युभिः ' इति ॥ तत्तामसपूजापरम् । ' विना मन्त्रैस्तामसी स्यात्किरातानां तु संमता' इति तत्रैवोक्तेः ॥ मदनरत्ने देवीपुराणेपि–"कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ॥ अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाम्बुदः । भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा। वस्त्रालंकारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम् ॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत् । त्रिकालं पूजयद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः ॥ ३ ॥ " इति नन्दिका प्रतिपत्तिथिः इति मैथिलाः । षष्ठीति गौडाः ॥ रात्रौ पूजानिर्णयः । तच्च पूजनं रात्रौ कार्यम् । " आश्विने मासि मेघान्ते महिषासुरमर्दिनीम् । निशासु पूजयेद्भक्त्या सोपवासादिकः क्रमात् " इति देवीपुराणात् ॥ संग्रहेपि–"आश्विने मासि मेघान्ते प्रतिपद्या तिथिर्भवेत् । तस्यां नक्तं प्रकुर्वीत रात्रौ देवीं च पूजयेत् ॥

देवीका स्थापन और विसर्जन करे ॥ इसमें व्रत आदिभी हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखेहैं कि,इसी प्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रतसे एक वार भोजन रात्रिभोजन अथवा अयाचितभोजनसे स्थान २, पुर २, घर २, ग्राम २, वन २ में शक्तिमान् प्रसन्न और आनन्द हुए ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे संयुक्त म्लेच्छ और दूसरेभी मनुष्य देवीका पूजन करें, जो रूपनारायणीयग्रन्थमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, इसी प्रकार देवीको सम्पूर्ण म्लेच्छोंके गण और सब चौर पूजतेहैं वह वाक्य तामसीपूजाके विषय जानना कारण कि, वहांही लिखाहै कि, मंत्रोंके विना तामसी पूजा होतीहै, वह भीलोंके योग्य है, मदनरत्नमें देवीपुराणका वाक्य है कि, हे. इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लपक्षकी नन्दासे लेकर विना मांगे प्राप्त हुए अन्नको भोजन कर एकवार भोजन, रात्रिभोजन अथवा जलपान करै । भूमिपर सोवे, न्योतकर कुमारियोंको आनन्दसे भोजन करावे और उनको वस्त्र, अलंकार देकर प्रतिदिन प्रसन्न करना चाहिये, और भात, उर्द, मांसकी प्रतिदिन बलि दान करे, जप और स्तुति करता हुआ, त्रिकाल देवीका पूजन करे, इन वाक्योंसे नन्दासे: प्रतिपदा मैथिल ग्रहण करतेहैं और गौड षष्ठी ॥ यह पूजन रात्रिमें करना कारण कि, देवीपुराणमें लिखाहै कि, आश्विनमास और वर्षाके अन्तमें महिषासुरमर्दिनी देवीका व्रत करके भक्तिसे रात्रिमें पूजन करै, संग्रहमें भी लिखाहै कि, आश्विनमास और वर्षाके पीछे जो प्रतिपदा तिथि है उसमें रात्रिव्रत करे । और रात्रिमें देवीकी पूजा करै, कारण कि, देवी-

रात्रिरूपा यतो देवी दिवारूपो महेश्वरः । रात्रिव्रतमिदं देवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वकामप्रदं नृणां सर्वशत्रुनिबर्हणम् । रात्रिव्रतमिदं तस्य रात्रौ कर्तव्यतेष्यते ॥ नक्तव्रतमिदं यस्मादन्यथा नरके गतिः ॥ " इत्यादिवचनाच्च रात्रिव्रतत्वमेवाभिप्रेत्य माधवेनोक्तम्—तस्य नक्तव्रतत्वादिति ॥ न तु रात्रिभोजनात् ॥ ननु—"मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रे विशेषतः । संपूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात्समाहितः ॥ नवरात्राभिधं कर्म नक्तव्रतमिदं स्मृतम् । आरंभे नवरात्रस्य " इत्यादिस्कान्दात् माधवोक्तेश्च नक्तमेव प्रधानमिति चेन्न ॥ ' नवरात्रोपवासतः ' इत्यादेरनुपपत्तेः । तेन पाक्षिकनक्तानुवादोयम् । नित्यानित्यसंयोगविरोधात् । न ह्यग्निहोत्रे दशमपक्षे प्राप्तस्य दध्ना जुहोतीत्यस्येंद्रियकामहोमेनुवादो घटते । नित्यवदनुवादायोगादित्युक्तं वार्तिके तथात्रापि । तेनात्र तद्वदेव गुणात् फलमिति ज्ञेयम् ॥ ननु रात्रेः कर्मकालत्वे तद्व्यापिनी पूर्वैव प्रतिपत् प्राप्नुयात् ॥ मैवं न्यायतः प्राप्तावपि पूर्वोक्तवचनैर्बाधात् । यथा पूर्वेद्युः कर्मकालव्यापिनीमपि त्यक्त्वा स्वल्पापि परैव रामनवमीति प्रागुक्तम् । यथा वा निशीथे सतीमपि पूर्वां जन्माष्टमीं त्यक्त्वा रोहिणीयुक्ता परैवेति माधवेनोक्तं तथात्रापि । वस्तुतस्तु रात्रेः कर्मकालत्ववचसां हेमाद्र्याद्य-

---

रात्रिरूप है और महेश्वर दिनरूप है, हे देवि ! यह रात्रिका व्रत मनुष्योंके सब शत्रुओंको और सब पापोंको नष्ट करताहै, और सब कामनाओंको प्रदान करताहै, जिससे यह रात्रिव्रत है तिससे यह रात्रिमें करै, यदि न करै तो नरकमें पडे, रात्रि व्रतको ही जानकर माधवने यह रात्रिव्रत लिखाहै कुछ रात्रिभोजनसे नहीं । यदि कोई शंका करै कि, आश्विन मासके शुक्लपक्षमें विशेषकर नवरात्रमें नवदुर्गाकी पूजा करके सावधानीसे रात्रिव्रत करै यह नवरात्रका कर्म नवरात्रके प्रारंभमें नक्तव्रत मानाहै, इस स्कन्दपुराणके वाक्यसे और माधवके कथनसे रात्रिही प्रधान है व्रत नहीं सो ठीक नहीं. कारण कि, नवरात्रका व्रत करै. इत्यादि वाक्यसे असंगत होजायँगे, यदि कोई कहे कि, पाक्षिक (कभी) नक्तव्रतका यह अनुवाद है, सो उचित नहीं । नित्य और अनित्यके संयोगका विरोध है जैसे अग्निहोत्रके दशमपक्षमें (दशदिनका) दहीसे भोजन करके इन्द्रियोंकी इच्छावाला हवन करै इसका अनुवाद नहीं घटताहै सोई वार्तिकमें लिखाहै कि, नित्यके तुल्य अनुवादका योग नहीं है इसी प्रकार यहां भी जानना तिससे यहां उसी प्रकार गुणसे फल होता है, यह जानना यदि कोई शंका करै कि, रात्रिही यदि कर्मका समय है तो रात्रिव्यापिनीही प्रतिपदा प्राप्त होगी सो उचित नहीं । कारण कि, न्यायसे प्राप्त भी है तोभी पूर्वोक्तवाक्योंसे इसका बाध होता है जैसे प्रथम दिन कर्मकालव्यापिनीको भी छोडकर थोडी भी पहलीही नवमी पहिले कही है, और जैसे अर्धरात्रव्यापिनी जन्माष्टमीको छोडकर रोहिणीसे युक्त अगलीही माधवने लिखी है तैसेही यहांभी जानना चाहिये. सिद्धान्त तौ यह है कि, रात्रिको कर्म कालके वाक्य

लिखनात् । समूलत्वं विमृश्यमेव । 'त्रिकालं पूजयेत्' इत्यादिपूर्वविरोधाच्च माधवोक्तिस्तु पाक्षिकनक्तानुवाद इत्युक्तम् । तस्मात्सर्वपक्षेषु परैव प्रतिपदिति सिद्धम् ॥ अत्र केचिन्नवरात्रशब्दो नवाहोरात्रपरः. "वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां ह्रासेऽमाप्रतिपन्निशि । प्रारम्भो नवचण्ड्यास्तु नवरात्रमतोऽर्थवत्" इति देवीपुराणादित्याहुः । तन्न ।अतिह्रासवृद्ध्योर्न्यूनाधिकत्वापत्तेः । अत्र मूलाभावाच्च तेन तिथिवाच्येवायम् । तदुक्तं-"तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् । अष्टरात्रे न दोषोयं नवरात्रतिथिक्षये" इति ॥ स च नवरात्रशब्दः क्वचिल्लक्षणया कर्मवाची ॥ यथा-' प्रारम्भो नवरात्रस्य' इत्यत्रेति दिक् ॥ प्रतिपदि च वैधृत्यादियोगनिषेधो भार्गवार्चनदीपिकायां देवीपुराणे-" त्वाष्ट्रवैधृतियुक्ता चेत् प्रतिपच्चाण्डिकार्चने ॥ तयोरन्ते विधातव्यं कलशारोपणं गृह" इति ॥ चित्रावैधृतियुक्तापि द्वितीयायुक्ता चेत्सैव ग्राह्येत्युक्तम् ॥ दुर्गोत्सवे-" भद्रान्विता चेत्प्रतिपत्तु लभ्यते विरुद्धयोगैरपि सङ्गता सती । सैवापराह्णे विबुधैर्विधेया श्रीपुत्रराज्यादिविवृद्धिहेतुः" इति ॥ यदा तु वैधृत्यादिपरिहारेण प्रतिपन्न लभ्यते तदोक्तं तत्रैव कात्यायनेन-" प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद्वैधृतिचित्रयोः । आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम्" इति ॥

हेमाद्रि आदिमें नहीं लिखे इससे उनका मूल खोजना चाहिये । और त्रिकाल पूजा करै इत्यादि पूर्वोक्तवाक्योंसे इसका विरोध भी आता है, माधवका कथन तो पाक्षिक रात्रिका अनुवाद है यह प्रथम कह आये हैं तिससे सब पक्षोंमें पहलीही प्रतिपदा ग्रहण करनी यह सिद्ध हुआ, इसमें कोई इस देवीपुराणके वाक्यसे यह कहते हैं कि, यहां नवरात्रशब्द नौरातदिनका कथन करता है कोई तिथि बढजाय तो अष्टमीको व्रतकी पूर्ति करै और घटजाय तो अमावस्याको रात्रिमें प्रतिपदाके समय नवचंडीका प्रारम्भ करै, इसीसे नवरात्रशब्द सार्थक है सो उचित नहीं। कारण कि, अत्यन्त घटनेसे वा बढनेसे न्यूनता प्राप्त होजायगी, और इस वाक्यमें कोई मूलभी नहीं, तिससे नव तिथिके कहनेवाला यह नवरात्र शब्द है सोई लिखा है कि, तिथिकी वृद्धि वा घटनेमें नवरात्रशब्दका कुछ अर्थ नहीं । इससे नवरात्र तिथिके क्षयमें आठ तिथिका दोष नहीं. वह नवरात्रशब्द लक्षणासे कर्मका कथन करता है ॥ जैसे नवरात्रका प्रारम्भ करै यहां है, यही मार्ग है प्रतिपदामें वैधृति आदि योगका निषेध भार्गवार्चनदीपिकामें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, चण्डिकाके पूजनमें चित्रा और वैधृतिसे युक्त प्रतिपदा होय तो उनके उपरान्तमें घटस्थापन करे, चित्रा वैधृतिसे युक्त भी द्वितीयासहित होय तो वही ग्रहण करनी यह दुर्गोत्सवमें लिखा है कि, विरुद्ध योगोंसे भी युक्त द्वितीयासे युक्त प्रतिपदा मिलजाय तो बुद्धिमान्को लक्ष्मी, पुत्र, राज्य आदिके बढानेवाली है उसकोही अपराह्णमें करना चाहिये । जब वैधृति आदिके विना प्रतिपदा न प्राप्त हो उस समय वहांही कात्यायनने लिखा है कि, आश्विनमासकी प्रतिपदाको वैधृति, चित्रा होय तो आदिके दो चरण छोडकर नवरात्रका आरम्भ करै,

भविष्येपि- " चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद्भवेन्नृप । त्याज्या ह्यंशांस्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम्" इति ॥ रुद्रयामलेपि-" वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम् । तस्मान्न स्थापयेत्कुंभं चित्रायां वैधृतौ तथा ॥ सम्पूर्णा प्रतिपद्देव चित्रायुक्ता यदा भवेत् । वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यंदिने रवौ ॥ अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते " ॥ ३ ॥ इति चित्रादिनिषेधे मूलं चिन्त्यम् ॥ रात्रौ कलशस्थापननिषेधनिर्णयः । इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् ' न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्' इति मात्स्योक्तेः । " भास्करोदयमारभ्य यावन्न दश नाडिकाः । प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु" इति विष्णुधर्मोक्तेश्च । रुद्रयामले—" स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत् । शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम् ॥ यवान्वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् । तत्र संस्थापयेत्कुंभं विधिना मन्त्रपूर्वकम् ॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा" ॥ ३ ॥ इति ॥ अथ पूजाविधिनिर्णयः । स च जयन्तीमन्त्रेण नवाक्षरेण कार्यः । तदुक्तं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे—' कुर्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण पूजां क्षीरघृतादिभिः' इत्युक्त्वा—"जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ तु कारयेत्" इति ॥ " ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इति नवा-

---

भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि, हे राजन् ! चित्रा वैधृति पूर्ण प्रतिपदा होय तो आदिके तीन अंशको छोडकर चौथे अंशमें पूजन करै. रुद्रयामलमें भी कहा है कि, वैधृतिमें पुत्रका नाश, चित्रामें धनका क्षय होताहै, तिससे चित्रा और वैधृतिमें घटका स्थापन न करै इसी प्रकार यदि सम्पूर्ण प्रतिपदाही चित्रा वा वैधृतिसे युक्त होय तो मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्त्तमें घटस्थापन करना श्रेष्ठ है, चित्रा आदिके निषेधमें प्रमाण नहीं है ॥ यह कलशका स्थापन रात्रिमें न करै कारण कि, मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, रात्रिमें घटका स्थापन और पूजन न करै सूर्योदयसे १० घडीतक स्थापन और प्रारम्भमें प्रातःकालमेंही लिखाहै यह विष्णुधर्ममें कहा है, रुद्रयामलमें कहाहै कि, मांगलिक स्नान करके देवीकी पूजा करै, पहले शुभ मिट्टीसे वेदी निर्माण करै वहां गेहूंसे मिले यव बोवै, वहां मन्त्रोंसे विधिपूर्वक घटका स्थापन करै, वह घट सुवर्ण, चांदी, ताँवा वा मृत्तिकाका होना चाहिये ॥ वह जयन्ती मन्त्रसे वा नवाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये । सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, देवीके मन्त्रसे दूध वा घृत आदिसे देवीकी पूजा करै यह कहकर इस मन्त्रसे जप और होम करै, कि, जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, धात्री, स्वधा, स्वाहारूप आपको नमस्कार है " ॐ दुर्गेदुर्गेरक्षिणिस्वाहा " यह नवअक्षरोंके

श्वरः । तत्र प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा । देशकालौ सङ्कीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यनवच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजयसदभीष्टसिद्ध्यर्थं शारदनवरात्रप्रतिपदि विहितकलशस्थापनदुर्गापूजाकुमारीपूजादि करिष्ये" इति सङ्कल्प्य ॥ महीद्यौः इति भूमिं स्पृष्ट्वा । 'औषधयः सम्' इति यवान्निक्षिप्य । 'आकलशेषु' इति कुम्भं संस्थाप्य । 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य— 'गन्धद्वाराम्' इति गन्धम्, 'या ओषधिः' इति सर्वौषधीः— 'काण्डात् काण्डात्' इति दूर्वाः, 'अश्वत्थे' इति पञ्चपल्लवान् 'स्योना पृथिवि' इति सप्तमृदः,— 'याः फलिनीः' इति फलं, 'सहि रत्नानि' इति पञ्च रत्नानि, हिरण्यं क्षिप्त्वा । 'युवा सुवासाः' इति वस्त्रेणावेष्ट्य । 'पूर्णादर्विं' इति पूर्णपात्रं निधाय— तत्र वरुणं सम्पूज्य, जीर्णायां नूतनायां वा प्रतिमायां दुर्गामावाह्य पूजयेत् ॥ तद्यथा । पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा— 'आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि । पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ॥ सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम् । इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह ॥ दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । बलिं पूजां गृहाण त्वमष्टाभिः

मंत्र है, तथा प्रतिपदाके दिन अभ्यंगपूर्वक स्नान करके और देश और समयका संकीर्तन (संकल्प) करे कि मेरे इस जन्ममें दुर्गाकी प्रीतिसे सम्पूर्ण आपत्तियोंकी शान्ति हो, दीर्घआयु अवस्था, विपुलधन, पुत्रपौत्रआदिकी निरन्तर संतानकी वृद्धि, स्थिरलक्ष्मी, कीर्तिका लाभ, शत्रुका पराजय, श्रेष्ठ अभीष्टकी सिद्धिके निमित्त शरत्कालके नवरात्रोंकी प्रतिपदाको कहा घटस्थापन, दुर्गापूजा और कुमारीपूजाआदि करता हूं इस प्रकार संकल्प करे ॥ महीद्यौः० इस मंत्रसे भूमिको स्पर्श करे, ओषधयः सं० इस मंत्रसे यव बखेरकर, आकलशेषु० इस मन्त्रसे घटस्थापन करके, इमंमेगंगे० इस मंत्रसे घटको जलसे पूर्ण करके, गन्धद्वारां० इस मंत्रसे गंध, या औषधी० इस मंत्रसे सर्वौषधी, काण्डात् काण्डात्० इस मंत्रसे दूर्वा, अश्वत्थे० इस मंत्रसे पंचपल्लव, स्योनापृथिवी० इस मन्त्रसे सात स्थानोंकी मट्टी, याःफलिनी० इस मन्त्रसे फल, सहिरत्नानि० इस मंत्रसे पंचरत्न और सोना घडेमें डालकर, और युवासुवासाः० इस मन्त्रसे वस्त्रसे लपेटकर पूर्णादर्वि० इस मन्त्रसे घडेके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उस घटको, वरुणकी पूजा करके पुरानी वा नवीन प्रतिमामें दुर्गाका आवाहन करे उसका प्रकार यह है कि पूर्वोक्त मन्त्रको उच्चारण कर इस प्रकार आवाहन करै कि, हे वरदायक! दैत्योंके अभिमान खण्डन करनेवाली तुम आओ और पूजाको ग्रहण करो हे सुमुखि ! हे शंकरकी प्रिया ! तुमको प्रणाम है, सब तीर्थोंका इसमें जल है और सब देवता हैं, सब देवताओंके गणोंसहित तुम इसमें आकर टिको. हे देवि दुर्गे ! तुम इसमें: आओ और आठों शक्तियोंसहित बलिग्रहण करो इस प्रका

शक्तिभिः सह ” ॥ ३ ॥ इत्यावाह्य पूर्वोक्तमन्त्रेण षोडशोपचारैः पूजयित्वा । माषभक्तबलिं कूष्माण्डादिबलिं वा निवेदयेत् ॥ कुमारीपूजाविधिनिर्णयः । ततः कुमारीपूजा । तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे—“ एकैकां पूजयेत्कन्यामेकवृद्ध्या तथैव च । द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं तु वा ॥ ” तथा—“नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु । एकवृद्ध्या लभेत्क्षेममेकैकेन श्रियं लभेत् ॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत् । गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥ २ ॥ ” तेन द्विवर्षामारभ्य दशवर्षापर्यन्ता एव पूज्या न त्वन्याः । तासां च क्रमेण कुमारीका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा सुभद्रा इति नामभिः पूजा कार्या । आसां च प्रत्येकं पूजामन्त्राः फलविशेषाश्च तत्रैव ज्ञेयाः । सामान्यतस्तु—“मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ एवमभ्यर्चनं कुर्यात्कुमारीणां प्रयत्नतः । कंचुकैश्चैव वस्त्रैश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यैर्भोजयेत्पायसादिभिः ॥ २ ॥” तथा—“ग्रन्थिस्फुटितशीर्णाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम् । जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुरोमशाम् ॥ संत्यजेद्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् ॥ ” तथा—“ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् । लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् । दारुणे चान्त्यजातानां पूजयेद्विधिना नरः” इति ॥ तत्र वेदपारायण-

आवाहन करके और पूर्वोक्तमंत्रसे षोडशोपचार पूजन करके उरद और भात वा कूष्मांड और पेठेकी बलि देनी चाहिये ॥ इसके उपरान्त कुमारीपूजा करे, यही हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, एक २ कन्याकी पूजा करै, वा एक २ की वृद्धिसे करै, वा दूनी, वा तिगुनी, वा प्रतिदिन नवकी पूजा करे. कथनभी है कि, नौ कन्याओंसे भूमिलाभ, दूनीसे ऐश्वर्य, एकवृद्धिसे कुशल, एक २ से लक्ष्मी प्राप्त होतीहै, एक वर्षकी जो कन्या हो उसको पूजामें त्यागदे, कारण कि, उसको गन्धपुष्पफलआदिकी प्रीति नहीं है तिससे दो वर्षसे प्रारम्भ कर दशवर्षपर्यन्तकी कन्याही पूजनीय है और उनकी क्रमसे इन नामोंसे पूजा करे कि, कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा, सुभद्रा इन प्रत्येकोंकी पूजा मंत्र, फलविशेषसे वहांहीसे जाननी चाहिये । सामान्यसे तो ये हैं, कि मंत्रके अक्षररूप लक्ष्मी, मातृओंकी रूपधारिणी नवदुर्गारूप कन्याओंका मैं बुलाना कहताहूं नानाप्रकारके भक्ष्यभोज्यआदिसे भोजन करावे तैसेही यह कहाहै कि, ऐसी कन्याको त्यागदेना कि, जिसके ग्रंथि निकल रहीहों, जिसका अंग गिराहो, जो रुधिर, रादवाले व्रणसे युक्त, जो जन्मान्ध हो, जिसके नेत्र कायरे हों, कानी, कुरूपा, देहपर रोमवाली, जो रोगिणी हो, जो दासीसे उत्पन्न हो उसे न बुलावे. कहाभीहै कि, ब्राह्मणीको सब कामोंमें, जयके निमित्त क्षत्रियकी, लाभके निमित्त वैश्यकी, पुत्रके निमित्त शूद्रकी और मारणमें चाण्डालकी कन्याको विधिसे पूजन करै ॥ इसमें वेदका पारायण करनाभी रुद्रया-

निर्णयः । अत्र वेदपारायणमप्युक्तं रुद्रयामले-"एवं चतुर्वेदविदो विप्रान्सर्वान्प्र-सादयेत् । तेषां च वरणं कार्यं वेदपारायणाय वै" इति ॥ तथा-"एकोत्तराभि-वृद्ध्या तु नवमी यावदेव हि । चण्डीपाठं जपेच्चैव जापयेद्वा विधानतः ॥" तिथितत्त्वे वाराहीतन्त्रे-"प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत् । अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः ॥ आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं प्रजपेत्सुधीः । हस्तसंस्थापनादेव यस्माद्वै विफलं भवेत् ॥ स्वयं च लिखितं यच्च शूद्रेण लिखितं भवेत् । अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत् ॥ ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत्स्तोत्रंविचक्षणः । स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ॥ सर्वत्र पाठ्ये विज्ञेयस्त्वन्यथा विफलं भवेत् ॥५॥" एवं नवमीपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात् ॥ अत्र वि-शेषो हेमाद्रौ देवीपुराणे-"यदाद्ये दिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् । द्विगुणं तद्वि-तीयेहि त्रिगुणं तत्परेहनि ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम्" इति ॥ एतेन नवरात्रे पूजैव प्रधानम् । उपवासादि त्वङ्गमिति गम्यते । तिथिह्रासे तु तिथि-द्वयनिमित्तं पूजादि महालयश्राद्धवदेकदिने आवृत्त्या कार्यम् । वृद्धौ तद्वदेवावृत्तिः॥ ततो नवरात्रोपवासादिसङ्कल्पं कुर्यात् । स्वस्याशक्तावन्येन वा पूजादि कारयेत् । 'स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत्पूजयीत वा' इति तरङ्गिण्यां देवीपुराणात् ॥

मलमें लिखाहै कि, इसी प्रकार चार वेदोंके ज्ञाता सब ब्राह्मणोंको प्रसन्न करना चाहिये वेदपारा-यणके निमित्त उनका वरण करे, इसी प्रकार एकोत्तरवृद्धिसे नवमीपर्यन्त चण्डीको जपै, व विधिपूर्वक जपवावे. तिथितत्त्व और वाराहीतंत्रमें कहाहै कि, आदिमें ॐकार उच्चारण कर स्तोत्र वा संहितापाठ करै और अन्तमें प्रणवको दे यह आदिपुरुषने लिखाहै, पाट आदिके आधारपर पुस्तक रखकर बुद्धिमान् मनुष्यको बाँचना चाहिये । कारण कि हाथमें स्थापनसेही फलहीनता होतीहै, जो पुस्तक अपनी लिखी हो वा शूद्रकी लिखी वा ब्राह्मणसे भिन्नकी लिखीहो वह भी निष्फल है; बुद्धिमान् मनुष्य ऋषिछन्द आदिका न्यास करके स्तोत्रपाठ करे, जिस स्तोत्रका न्यास न हो वहां ॐकारका न्यास करे यह सब पाठोंमें जानना चाहिये । अन्यथा करनेसे निष्फल होताहै, इस प्रकार नवमीपर्यन्त प्रतिदिन पूजन करै इसमें विशेष हेमाद्रिमें देवी-पुराणके वाक्यसे लिखाह कि, जो चंडिकाकी पूजा आदि पहले दिनमें करे दूसरे दिन उससे दुगुनी, तीसरे दिन तिगुनी करै, इसी प्रकार नवमी तिथितक वृद्धिसे पूजा और जप आदि करना चाहय । इससे नवरात्रमें पूजाही प्रधान है, व्रत आदि अंग हैं यह जानागया, तिथिकी हानि होय तो दो तिथियोंका पूजन आदि महालयश्राद्धके समान एक दिनमेंही आवृत्तिसे करले, वृद्धिमें भी उसी प्रकार आवृत्ति करनी चाहिये । फिर नवरात्र आदिसे व्रत आदिका संकल्प करन चाहिये, अपनी शक्ति न होय तो दूसरेसे व्रत आदि करादेना. कारण कि, तरंगिणीमें देवीपुराणका वाक्य है कि, आप पूजा करे, वा दूसरेसे पूजा करावे ॥ यह देवीपूजन शुक्रास्त आदिमें भी

शुक्रास्तादावपि देवीपूजननिर्णयः । इदं च देवीपूजनं शुक्रास्तादावपि कार्यम् ॥ तदुक्तं धर्मप्रदीपे—"नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ । कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः" इति । मलमासे तु वचनाभावान्न भवति ॥ तत्राश्वपूजननिर्णयः । अत्र साश्वस्याश्वपूजनमुक्तं मदनरत्ने देवीपुराणे—"आश्वयुक् शुक्लप्रतिपत्स्वातीयोगे शुभे दिने । पूर्वमुच्चैःश्रवा नाम प्रथमं श्रियमावहत् ॥ तस्मात्साश्वैर्नरैस्तत्र पूज्योसौ श्रद्धया सह । पूजनीयाश्च तुरगा नवमी यावदेव हि ॥ शान्तिः स्वस्त्ययनं कार्यं तदा तेषां दिने दिने । धान्यं भल्लातकं कुष्ठं वचा सिद्धार्थकास्तथा ॥ पञ्चवर्णेन सूत्रेण ग्रन्थिं तेषां तु बन्धयेत् । वायव्यैर्वारुणैः सौरैः शाक्तैर्मन्त्रैः सवैष्णवैः ॥ वैश्वदेवैस्तथाग्नेयैर्होमः कार्यो दिने दिने ॥ ४ ॥" कल्पतरौ त्वेतदग्रेऽन्यदपि—"ज्येष्ठे योगे पुरा तत्र गजाश्चाष्टौ महाबलाः । पृथिवीमवहन्पूर्वं सशैलवनकाननाम् ॥ कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः । सुप्रतीकोञ्जनो नीलस्तस्मात्तांस्तत्र पूजयेत् ॥ शाक्राद्दक्षात्समारभ्य नवम्यन्तं च पूर्ववत् ॥ ३ ॥" अश्ववद्धोमादीत्यर्थः ॥ अथ प्रतिपदादिविशेषनिर्णयः ॥ अथ प्रतिपदादिषु विशेषो दुर्गाभक्तितरंगिण्यां भविष्ये—"केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात्प्रतिपद्दिने । पक्वतैलं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे । " पट्टादोरमिति गौडपादः ॥ " दर्पणं च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकं तथा । मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डनम् ॥ पञ्च-

---

करना यही धर्मप्रदीपमें लिखाहै कि, शुक्र वा बृहस्पति अस्तका हो वा सिंहका बृहस्पति हो तोभी कुलधर्मसे अपनी देवीका पूजन प्रतिवर्ष करना चाहिये । मलमासमें वाक्यके न मिलनेसे पूजा नहीं होती ॥ इसमें अपने घोडेकी पूजा मदनरत्नमें देवीभागवतके वाक्यसे लिखी है कि, आश्विनकी शुक्ल प्रतिपदा स्वाति नक्षत्रके योगसे अच्छे दिनमें प्रथम उच्चैःश्रवानाम अश्व लक्ष्मीको लाये थे, तिससे अश्ववाले मनुष्यको श्रद्धापूर्वक अश्वका पूजन करना चाहिये । जबतक नवमी हो तबतक घोडोंका पूजन करै, और प्रतिदिन उनकी शांति और स्वस्तिवाचन करै, और धनियां, भिलावा, कूठ, वच, सरसोंकी पचरंगे सूत्रसे घोडोंके ग्रंथी बांधै, और वायु, वरुण, सूर्य, देवी, विष्णुकी मन्त्रोंसे प्रतिदिन होम करना चाहिये, कल्पतरुमें इससे आगे और भी लिखाहै, प्रथम ज्येष्ठाके योगमें वहां आठ महाबली हाथी, पर्वत, वन, कानन सहित पृथ्वीको धारण करतेहैं. उनके नाम ये हैं कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतिक, अञ्जन, नील इस कारणसे इनकी इस स्थलमें पूजा करनी चाहिये, ज्येष्ठा नक्षत्रसे लेकर नवमीपर्यन्त पूर्वके तुल्य करे और अश्वके सदृश होम आदि करै ॥ अब प्रतिपदा आदि तिथियोंमें विशेष लिखतेहैं दुर्गाभक्तितरंगिणी ग्रन्थमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, प्रतिपदाके दिन संस्कारके द्रव्य दे, केशोंके थमनेके निमित्त पकाहुआ तेल द्वितीयाको देना, गौडोंने पक्व तैलके स्थानमें रेशम डोरा लिखाहै, दर्पण सिन्दूर लाखका रंग तीजको देना, मधुपर्क, तिलक, नेत्रोंका मण्डन

ऽप्यामङ्गरागं च शक्त्यालंकरणानि च । षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूजयेत् । उपोषणमथाष्टम्यामात्मशक्त्या च पूजनम् ॥ नवम्यामुग्रचण्डायाः पूजां कुर्याद्बलिं तथा । संपूज्य प्रेषणं कुर्याद्दशम्यां सारवोत्सवैः ॥ अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः । स्कन्दवत्पालयेद्देवी तं पुत्रधनकीर्तिभिः ॥ ९ ॥ " कृत्यतत्त्वार्णवे लैङ्गे–"कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभेपि वा । नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः ॥ शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोक्षणम् । प्रातरेव तु पञ्चम्यां स्नापयेत्सुशुभैर्जलैः ॥ षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम् । सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् ॥ पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः । विसर्जनं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमंगलैः ॥ ४ ॥ " अत्र नवम्यां बोधनासामर्थ्ये षष्ठ्यां बोधनमिति स्मार्ताः ॥ फलभूमार्थिनः समुच्चय इत्यन्ये । नवम्यां मन्त्रः कालिकापुराणे " इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रभे दिवा । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत्पूजां करोम्यहम् ॥" अत्र स्त्रीव्रते विशेषः परिभाषायां ज्ञेयः ॥ तत्राशौचनिर्णयः । अथाशौचे विशेषो निर्णयामृते विश्वरूपनिबन्धे–" आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके । शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः । सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः । देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं

चतुर्थीको देना, अंगका रंग और शक्तिअनुसार भूषण पञ्चमीको देना, षष्ठीको बेल वृक्षके नीचे और सन्ध्याकालमें जागरण करै, सप्तमीको प्रातःकाल आनकर घरमें पूजा करै, अष्टमीको व्रत और अपनी भक्तिसे पूजन करै, नवमीको उग्रचण्डीकी पूजा करे और बलि देनी चाहिये । और दशमीको श्रेष्ठ उत्सवोंमें पूजा करके प्रेषण करनी चाहिये । जो मनुष्य इस विधिसे देवीको पूजनेसे प्रसन्न करता है, उसकी पुत्र धन कीर्तिसे देवी कार्तिकेयकी तुल्य पालन करती है । कृत्यतत्त्वार्णवमें लिंगपुराणका वाक्य है कि, कन्याके कृष्णपक्षमें आर्द्रा नक्षत्रमें पूजा कर नवमीको बडे धनके विस्तारसे देवीका जागरण करै और शुक्लपक्षकी चतुर्थीको देवीके केश उतरवावे और पञ्चमीको प्रातःकाल श्रेष्ठ जलोंसे स्नान करावे, छठको सन्ध्याके समय बेलके वृक्षके नीचे सुवावे, सप्तमीको बेलपत्रसे पूजा और अष्टमीको व्रत करै, और नवमीको जागरण पूजन और विधिसे बलि देनी चाहिये, दशमीको विहारउत्साह मंगलसे विदा करै, यहां जागरणकी सामर्थ्य न होय तो छठको जागरण करै और कोई यह कथन करतेहैं कि, अधिकफलकी इच्छावाला समुच्चय करै, अर्थात् एक दिन दो कार्य करै, नवमीका मन्त्र कालिकापुराणमें कहाहै कि, आश्विनमासके कृष्णपक्षकी नवमीको आर्द्रा नक्षत्रमें जबतक तुम्हें बेलके वृक्षके नीचे बोधन करताहूं यहां स्त्रीके व्रतमें यह विशेष है ॥ अब अशौचमें विशेष निर्णयामृत और विश्वरूपनिबन्धमें कहा है कि आश्विनके शुक्लपक्ष नवरात्रके आरम्भमें मरणाशौच होजाय तो बुद्धिमान् मनुष्य किस प्रकार कर्म करै और सूतक वर्तमान होय

चैव विशेषतः ॥ देवीमुद्दिश्य कर्त्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते" ॥ ३ ॥ इति कालादर्शे विष्णुरहस्येऽपि—"पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः । तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनाविवर्जितम्" इति गौडनिबन्धे । तिथितत्त्वेप्युक्तम् । आश्विनकृष्णनवम्यादिशुक्लप्रतिपदादि, षष्ठ्यादि, सप्तम्यादि, चैकं कर्म । अतश्च मध्ये अशौचपातेपि न दोषः ॥ 'संकल्पो व्रतसत्रयोः' इति विष्णूक्तेरिति ॥ आरब्धं स्वयमेव कार्यम् । अनारब्धं त्वन्येन कारयेदिति दिवोदासः ॥ रजस्वला त्वन्येन कारयेदिति सूतकादिवद्विशेषवचनाभावात् ॥ स्त्रीणां च नवरात्रे ताम्बूलादिचर्वणं भवति ॥ तदुक्तं व्रतहेमाद्रौ गारुडे—" गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यंति दन्तधावनमञ्जनम्" इति ॥ एतत्सभर्तृकोपवासविषयम् ॥ अन्यश्चात्र विशेषः परिभाषायामुक्तः ॥ उपांगललिताव्रतनिर्णयः । आश्विनशुक्लपञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतं महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धम् ॥ तत्र यद्यपि कथायां कालविशेषो नोक्तस्तथापि—'रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवादित्रनिस्वनैः' इति रात्रौ जागरोक्तेः शक्तिपूजाया रात्रौ प्राशस्त्याच्च 'रात्रिव्यापिनी ग्राह्येति केचित् ॥ वस्तुतस्तु वचनं विना रात्रिपूजायां मानाभावात् जागरस्य

तो किस प्रकार करना सूतक उत्पन्न होय तो बुद्धिमान् मनुष्यको पशुयज्ञविधिसे देवीकी पूजा करनी चाहिये, सूतकके विषय पूजन और दान विशेष कर लिखा है वह देवीके निमित्त करनी उसमें दोष नहीं है, यह कालादर्शमें कहा है, विष्णुरहस्यमें भी कहा है कि, व्रतके नियमवालोंने जिस व्रतका प्रथम संकल्प करलिया है उस शुद्ध व्रतको मनुष्यको करना चाहिये, परन्तु दान और पूजन न करै, गौड निबन्ध और तिथितत्त्वमें भी लिखा है कि आश्विनकृष्ण नौमीसे वा शुक्लप्रतिपदा वा छठसे वा सातैंसे एक २ कर्म हैं, इनके बीचमें अशौच होजाय तो कुछ दोष नहीं है. कारण कि व्रतयज्ञका संकल्प होता है, यह विष्णुने लिखा है प्रारम्भ किये व्रत आदिको स्वयं करै और जो आप प्रारम्भ न किया होय तो औरसे करवाना चाहिये । यह दिवोदासने कहा है, रजस्वला आदि स्त्री सूतक आदिके तुल्य विशेष वाक्यके न मिलनेसे औरपै करवायदे स्त्रियोंको नवरात्रमें ताम्बूल आदिका चर्वण होता है सोई व्रत हेमाद्रिमें गरुडपुराणके वाक्यसे लिखा है कि गन्ध, भूषण, पान, पुष्पमाला, चन्दन, दँतौन, अञ्जन इनका इस व्रतमें दोष नहीं, यह सुहागिनके व्रतमें है और इसमें विशेष परिभाषामें लिखा है ॥ आश्विनशुक्लपंचमीको उपांगललिताका व्रत महाराष्ट्रोंमें विख्यात है यद्यपि कथामें उसका कोई समय नहीं लिखा तो भी गीत वादित्र शब्दोंसे रात्रिमें जागरण करे इस कथनसे रात्रिमें जागरण लिखा है और शक्तिकी पूजा रात्रिमें श्रेष्ट है इससे रात्रिव्यापिनी यह तिथि ग्रहण करनी, यह किन्हींका कथन है । सिद्धान्त तो यह है कि, वाक्यके विना रात्रिपूजामें कोई प्रमाण नहीं है और

–चाङ्गत्वाद्युग्मवाक्यात् । "भुक्त्वा जागरणे नक्ते चन्द्राद्यर्घ्यव्रते तथा । तारा-व्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते" इति कालहेमाद्रौ वचनाच्च पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ रात्रिशब्दः पूर्वविद्धावचन इति हेमाद्रिः । अस्य च भुक्त्वा जागरणरूपत्वादिति साधु प्रतीमः ॥ भुक्त्वा जागरणं यत्रेत्येकं पदं तस्मिन् व्रते इत्यर्थः ॥ अन्यथा भुक्त्वेत्यसङ्गतेः । दिवोदासीयेप्येवम् ॥ सरस्वत्यावाहननिर्णयः । आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे सरस्वतीस्थापनम् । यथोक्तं निर्णयामृते देवीपुराणे–" मूलेषु स्थापनं देव्या पूर्वाषाढासु पूजनम् । उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्" इति ॥ रुद्रयामलेपि–"मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद्वैष्णवमृक्षकम् ॥ नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥ २ ॥ संग्रहे–" आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् । मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्" मूलस्याद्यपादे आवाहनमिति शिष्टाः ॥ श्रवणाद्यपादे च विसर्जयेत् । "आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा भवेत् । सम्प्रेषणं तदा देव्या दशम्यां च महोत्सवः" ॥ इति चिन्तामणौ ब्रह्माण्डपुराणात् ॥ अथ षष्ठीनिर्णयः ॥ गौडनिबन्धे देवीपुराणे–"ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् । सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् । पूर्वाषाढा-

---

जागरण अंग है प्रधान नहीं युग्म (युग्मानि युग०) वाक्यसे और कालहेमाद्रिमें इस वाक्यसे कि रात्रिव्रत चन्द्रआदिका, अर्घ्य व्रत और सम्पूर्ण ताराव्रतोंमें भोजनके उपरान्त जागरणमें रात्रिका योग श्रेष्ठ है, इससे पूर्वविद्धाही ग्रहण करनी कारण कि, रात्रिशब्द पूर्वविद्धाका कथन करनेवाला है इससे और इसको भोजनके उपरान्त जागरण रूप होनेसे हमको उचित जान पडता है, अथवा जहां भोजन करके जागरण है उस व्रतमें यह एकपादका अर्थ है । अन्यथा भुक्त्वा (भोजनकरके) यह पद असंगत होजायगा, दिवोदासीयमें भी इसी प्रकार कहा है ॥ आश्विनके शुक्लपक्ष मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका स्थापन करना चाहिये, सोई निर्णयामृतमें देवी-पुराणके वाक्यसे लिखा है कि हे इन्द्र ! मूलनक्षत्रमें सरस्वतीका पूजन करना और श्रवणपर्यन्त पूजन करतारहे और विद्याका अभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ पुस्तकोंकी स्थापनाके पीछे न पढावे न लिखे न पढे संग्रहमें भी कहाहै कि, बुद्धिका अभिलाषी पुरुष आश्विनशुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रमें देवीका आवाहन करे, और श्रवणमें विसर्जन करै, शिष्ट तो यह कहतेहैं कि, मूलके प्रथमपादमें आवाहन और श्रवणके प्रथमपादमें विसर्जन करे कारण कि, चिन्तामणिमें ब्रह्माण्डपुराणका वाक्य है कि, जब श्रवणका प्रथमभाग रात्रिमें होय तो देवीका विसर्जन दशमीके मोहत्सवमें करना चाहिये ॥ गौडनिबंधमें देवीपुराणका वाक्य है कि, ज्येष्ठानक्षत्रसे युक्त छठको वेलको निमंत्रण देना मूलनक्षत्रसे युक्त सप्तमीको बिल्वपत्रका प्रवेश करना उचित है । पूर्वाषाढसे संयुक्त अष्टमीको पूजा, होम, व्रत–

-युताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् । उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥ श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ३ ॥" कालिकापुराणे—"बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् । जागरं च स्वयं कुर्याद्बलिदानं महानिशि ॥ प्रसूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत् । विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद्वै शारवोत्सवैः ॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥ ४ ॥" अत्र सर्वत्र तिथिनक्षत्रयोगादरो मुख्यः कल्पः । तदभावे तु तिथिरेव ग्राह्या । "तिथिः शरीरं देवस्य तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् । तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना ॥" इति विद्यापतिलिखितवचनात् । "तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् । योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि" इति तत्रैव देवलोक्तेश्च ॥ अत्र च पत्रीप्रवेशात्पूर्वेद्युः सायंकाले षष्ठ्यभावे तत्पूर्वदिनेऽधिवासनं कार्यम् । सायंकालेत्यन्तासत्त्वे त्वधिवासनलोपः—'षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत बिल्ववृक्षेऽधिवासनम्' इति पूर्ववचनादिति कल्पतरुः । सायंश्रुतिः फलातिशयमात्रार्था । न तु कर्मलोप इत्याचार्यचूडामणिः ॥ तत्र पूजाक्रमनिर्णयः । अत्र क्रमः ॥ बिल्वसमीपं गत्वा देवीं बिल्वं च सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥ तत्र मंत्रः—"रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च ।

आदि करे, फिर नवमीको बलिदानपूर्वक भवानीका पूजन करे, श्रवणयुक्त दशमीको नमस्कारयुक्त विसर्जन करे. कालिकापुराणमें लिखाहै कि, छठको बेलकी शाखा और फलोंमें देवीका बोधन करे, सप्तमीको बेलकी शाखाको छेदन कर पूजन करे, फिर अष्टमीको विशेषकर पूजा करे जागरण और आधीरात्रिको स्वयं बलिदान करे नवमीको विधिसे विशेषकर बलिदान करना दशमीको शरत्कालके उत्सव धूल और पंक फेकनेकी क्रीडा और आनन्दके मंगलसे विसर्जन करे । इन सब वाक्योंमें तिथि और नक्षत्रके योगको मानना मुख्य हेतु है, वह न मिले तो तिथिही ग्रहण करनी. कारण कि, विद्यापतिने यह वाक्य कहाहै कि, देवताका शरीर तिथि है, और तिथिमेंही नक्षत्र स्थित रहताहै, तिससे तिथिकी ही बडाई है और तिथिबिना नक्षत्रकी प्रशंसा नहीं है, वहांही देवलने कहाहै कि, तिथि और नक्षत्र दोनोंके योगमें दोनोंको माने, दोनोंका योग न होय तो देवीके पूजनमें तिथिही ग्रहण करनी, यहां बिल्वपत्रके प्रवेशसे प्रथमदिन सायंकालमें षष्ठी न होय तो अधिवासनका अभाव जानना चाहिये । प्रथम यह वाक्य कहआयेहैं कि, षष्ठीको सायंकाल बिल्ववृक्षके नीचेमें अधिवासन करे, यह कल्पतरु लिखतेहैं आचार्यचूडामणिका तो यह कथन है कि, सायंकालका सुनना अधिकफलके निमित्त है कुछ कर्मका लोप नहीं होसकता ॥ इसमें क्रम यह है कि, बेलके निकट जाकर देवी और बेलका पूजन करके इस मंत्रसे प्रार्थना करे कि, हे बेल ! रावणके मारने और रामचन्द्रके अनुग्रहके निमित्त असमयमें ब्रह्माने तुमसे देवीका बोधन

अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥ अहमप्याश्रितः षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः । श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः ॥ नेतव्योसि समागच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ॥२॥ " इति ॥ एवं देवीमधिवास्य परदिने निमन्त्रितबिल्वशाखापत्रीप्रवेशपूजां कुर्यात् ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ लैंगे–" मूलाभावे तु सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् । युग्माभ्यां नवबिल्वस्य फलाभ्यां शाखिकां तथा ॥ तथैव प्रतिमां देव्याः स्नात्वाभ्युक्ष्य प्रवेशयेत् ॥ अत्र चोपवासपूजादावौदयिकी सप्तमी ग्राह्या । न तु युग्मवाक्यात् पूर्वा । "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ॥ रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता " इति कृत्यतत्त्वार्णवोदाहृतवचनात् ॥ "भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः" ॥ इति तिथितत्त्वे नन्दिकेश्वरपुराणाच्च ॥ दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम् ॥ तत्रापि घटिकातो न्यूनत्वे परा न कार्या । 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेरिति गौडाः ॥ दाक्षिणात्यास्तु पूर्ववचनमदृष्ट्वा युग्मवाक्यात् पूर्वां कुर्वन्ति ॥ पत्रिकापूजानिर्णयः । पत्रिकापूजा च पूर्वाह्णे एव कार्या । न तु मूलानुरोधान्मध्याह्नादाविति कृत्यतत्त्वार्णवे उक्तम् । पत्रिकास्तु–"रंभा कची हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ । अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि नव पत्रिकाः॥"

कियाथा, इससे मैंभी संध्यासमय षष्ठीके दिन तेरे आश्रयसे देवीको बोधन करताहूं, श्रीशैलशिखरपै उत्पन्न; हे लक्ष्मीके मूल, इस स्थानसे तुझे अपने घर लेजाऊंगा तुम मेरे संग चलो मैं तुम्हारा दुर्गारूपसे पूजन करूंगा, इस प्रकार देवीका अधिवासन करके पहले दिनमें न्योतीहुई बिल्वशाखापत्रीका प्रवेश करके अर्चन करना, सोई हेमाद्रिमें लिंगपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, मूलनक्षत्र न होय तो केवल सप्तमीमें प्रवेश करे, नवीन दो बेलके फल और शाखा इसी प्रकार देवीकी प्रतिमाको स्नान कराय और जलसे छिडकाकर प्रवेशकरै ॥ यहां व्रत और पूजा आदिमें उदयकालकी सप्तमी ग्रहण करनी, और युग्मवाक्यसे प्रथम नहीं लेनी. कारण कि, कृत्यतत्त्वार्णवमें यह वाक्य लिखाहै कि, युगादितिथि, वर्षवृद्धि, पार्वतीकी प्रिया सप्तमी ये सूर्यके उदयको देखतीहैं इनमें दो तिथियोंका योग नहीं मानना, तिथितत्वमें नन्दिकेश्वरपुराणका वाक्य है कि, भगवतीके प्रवेशसे विसर्जनपर्यन्त जितने कार्य हैं वे सब बुद्धिमान् मनुष्यको उदयगामिनीतिथिमें करने चाहिये, वहांभी घटिकासे न्यून होय तो अगली लेनी, कारण कि, देवलने यह कहाहै कि, व्रत और उपवासके नियममें वह तिथि ग्रहण करनी जो एकभी घडी हो, दाक्षिणात्य तो पूर्ववाक्यको न देखकर युग्मवाक्यसे पहलीही करतेहैं ॥ पत्रिकाकी पूजा पूर्वाह्णमें करनी चाहिये, मूलके अनुरोधसे मध्याह्नमें न करनी, यह कृत्यतत्त्वार्णवमें लिखाहै पत्रिका तो यह यहांही लिखीहै कि, केला, कची, हलदी, जयंती, बेल, अनार, अशोक, मानवृक्ष,

इति तत्रैवोक्ताः ॥ देवीत्रिरात्रनिर्णयः । अस्यामेव सप्तम्यां देवीत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ ॥ प्रतिपदादिनवतिथिषु उपवासकरणासामर्थ्ये सप्तम्यादिदिनत्रये वा कुर्यात् ॥ तदाह धौम्यः—"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादि क्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम् । " अत एव हेमाद्रौ देवीपुराणे मङ्गलव्रते—"आश्विने वाथ वा माघे चैत्रे वा श्रावणेपि वा । कृष्णाष्टम्यादि कर्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरेः ॥ यावच्छुक्लाष्टमी शक्र उपोष्या तु विधानतः । दानं होमो जपः पूजा कन्या भोज्यास्तथान्वहम् ॥ महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराश्च ये । पूजनीया विशेषेण वस्त्रैर्ग्रामपुरादिषु ॥ ३ ॥ "इति मासचतुष्टयेऽभिधाय अन्यत्रापि—"अथवा नवरात्रं च सप्तमं च त्रिकं दिवा । एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपोषितैः क्रमात् " इति ॥ "पूजयेताश्विने शक्र यावच्छुक्लाष्टमी भवेत् । सर्वकार्याणि सिद्ध्यन्ति शक्र नास्त्यत्र संशयः " इत्युक्तं दिवेत्येकरात्रमुक्तम् । देवीपुराणे—"नवरात्रव्रते शक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम् । व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम् " इति ॥ तत्रापि सप्तम्याः पूजने पूर्वोक्तो निर्णयः ॥ अथ तिथियौगपद्ये तन्त्रेणोपवासः ॥ तिथिद्वयनिमित्तं पूजादिकं तु भेदेन ॥ तत्र विशेषः । अत्र विशेषो निर्णयामृते भविष्ये—" सप्तम्यां नव गेहानि दारुजानि नवानि च । एवं वा वित्तभावेन कारयेत्सुसमाहितः ॥ दुर्गागृहं प्रकर्तव्यं

धान्य आदि ये नव पत्रिका हैं ॥ इसी सप्तमीको देवीका त्रिरात्र हेमाद्रिमें लिखा है कि प्रतिपदा आदि नौ ९ तिथियोंमें व्रत आदि करनेकी शक्ति न होय तो सप्तमी आदि तीन दिनमेंही करै. यही धौम्यने लिखाहै कि, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे क्रमसे नवमीतक करै अथवा सप्तमीसे तीन रात्र करै. इसी कारण हेमाद्रिमें देवीपुराणके मङ्गलाव्रतमें लिखा है कि, आश्विन माघ, चैत्र वा श्रावणमें हे हरे ! कृष्णपक्षकी अष्टमीसे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक व्रत करै, और दान, होम, जप, पूजा, कन्याओंका भोजन प्रतिदिन करावे ग्राम और पुत्र आदिमें महाभैरवरूपसे जो अस्थियोंकी माला धारण करनेवाले हैं उनका विशेषकर वस्त्र आदिसे पूजन करना चाहिये । यह चार मासमें कहकर यह लिखा कि, अथवा नवरात्र सात पांच तीन अथवा एक दिन एक समय भोजन नक्त अयाचित व्रतके क्रमसे शुक्लअष्टमी पर्यन्त आश्विन मासमें पूजन करता रहै तो हे इन्द्र ! सब कार्यकी सिद्धि होती है इसमें किसी प्रकार सन्देह नहीं है । देवीभागवतमें लिखा है कि, जो शक्तिमान् भक्त तीनरात्रि वा एकरात्रि व्रत करताहै उसको मैं यथेच्छ देताहूं। तिनमें भी सप्तमीके पूजनमें पूर्वोक्त निर्णय जानना इसमें भी दो तिथि एकवार आन पडें तो तन्त्र (एक) से व्रत करै, और दो तिथियोंका पूजनादिक तो भिन्न २ करना ॥ इसमें विशेष तो निर्णयामृतमें यह कहाहै कि, सप्तमीको काठके नवीन नौ ९ घर अथवा अपने चित्तके भावसे सावधानीसे

चतुरस्रं सुशोभनम् । तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तां समां शुभाम् ॥ तस्यां सिंहासनं क्षौमं कम्बल जिनसंयुतम् । तत्र दुर्गां प्रतिष्ठाप्य सर्वलक्षणसंयुताम् ॥ भुजैश्चतुर्भी रुचिरैर्दशभिर्वा विभूषिताम् । तप्तहाटकवर्णाभां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ॥ अनेककुसुमाकीर्णां कपर्देन सुशोभिताम् । नितम्बबिम्बसन्नद्धकिंकिणीक्वाणनादिनीम् ॥ शूलचक्रदण्डशक्तिवज्रचापासिधारिणीम् । घण्टाक्षमाला॰रकपानपात्रलसत्कराम् ॥ तदग्रे छिन्नशिरसं माहिषं रुधिराप्लुतम् ॥ निःसृतार्धतनुं कण्ठनाले चर्मासिधारिणम् ॥ देवीधृतकरग्रीवं शूलेनोरसि ताडितम् । नागपाशेन विक्षिप्तं हर्यक्षेणापि विद्रुतम् ॥ वमद्रुधिरवक्त्रेण धुन्वतोर्ध्वं सटाच्छटा । सर्वतो मातृचक्रेण सेव्यमानां सुरैस्तथा ॥ ९ ॥" इति ॥ " तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा ॥ मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गे शूले च पूजयेत्" । वार्क्षी–दारुमयी देवी ॥ मूर्तिस्थापने निर्णयः ।मूर्तिस्थापने विशेषो दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां देवीपुराणे–"याम्यास्या शुभदा दुर्गा पूर्वास्या जयवर्धिनी । पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी ॥" प्रतिमाभावे निर्णयः । प्रतिमाभावे विशेषस्तत्रैव–"हेमराजतमृद्धातुशैलचित्रार्पितापि वा । खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥ यद्यद्यस्यायुधं प्रोक्तं तस्मिंस्तां

एक घर निर्माण करावै, यह दुर्गाका घर चौकोर सुन्दर निर्माण करै, और उसके मध्यमें चार हाथकी श्रेष्ठ वेदी निर्माण करै उसमें रेशमके वस्त्र, कम्बल, मृगचर्मसे युक्त सिंहासन निर्माण करै, सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त चार वा दशभुजाओंसे शोभित दुर्गाका स्थापन करके जिसकी कान्ति तपाये सुवर्णकी तुल्य हो जिसके तीन नेत्र चन्द्रमा मस्तकपर हो अनेक पुष्पोंसे आच्छादित हो और जटाजूटसे शोभित हो, और नितम्बपर कौंधनी बँधी हुई उसके शब्दसे शब्दायमान हो, और जो शूल, चक्र, दण्ड, शक्ति, वज्र, चाप, खड्गको धारे हाथमें घण्टा अक्षमाला लिये पानपात्रसे शोभित दुर्गाके आगे इस प्रकार भैंसा बनावै जिसका शिर कटरहा हो रुधिरसे भररहा हो आधा शरीर निकल रहाहो कण्ठके नालमें ढाल और तलवार लटक रहीहो जिसकी गर्दन भगवतीने हाथमें पकड रक्खी हो नागपाशसे फेंका हो सिंहद्वारा आक्रान्त और मुँहसे रुधिरको वमन करता हुआ गर्दनके बालोंको क्रोधसे कंपित करताहो और वहां देवीकी सुवर्ण वा चांदीकी मृत्तिका वा वृक्षकी सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मूर्ति निर्माण करै जिसके चारों ओर मातृ और देवता सेवा करतेहों, देवीके खड्ग और शूलका भी पूजन करना ॥ देवीकी मूर्तिके स्थापनमें दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यमें यह विशेष वर्णन किया है कि, दक्षिणको मुख किये दुर्गा शुभदा और पूर्वाभिमुखी दुर्गा जयवर्द्धिनी होती है, और पश्चिम ओर मुख किये सदा स्थापनके योग्य होती है, और उत्तरको मुख किये दुर्गा स्थापन न करनी ॥ प्रतिमा न होय तो वहांही विशेष यह लिखाहै सोना, चांदी, धातु, मृत्तिका, पाषाणकी अथवा चित्रमें लिखी हुई भी देवी खड्ग और शूलकी पूजा करनेसे सब मनोरथोंके फलको दान करती है, और जो २ शस्त्र

प्रतिपूजयेत् ॥ देवी भक्त्यार्चिता पुंसां राज्यायुः सुतसौख्यदा ॥ ३ ॥" कृत्यतत्त्वार्णवे कालिकापुराणे—"लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च । पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च ॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वापि पूजयेत् ॥ विल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः ॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ॥ भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः । भगलिङ्गक्रियाभिश्च प्रीणयेद्वरचाण्डिकाम् ॥ परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपत्यपि ॥ तस्य क्रुद्धा भगवती शापं दद्यात्सुदारुणम्" ॥ ४ ॥ चित्रमृन्मयादौ स्नानाद्यसंभवे तत्रैवोक्तम्—'अन्तिके स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेथ वा ' इति ॥ अथ सप्तमीपूजाविधिनिर्णयः । प्रतिपदुक्तविधिना फलसंकीर्तनान्ते नवपत्रिकामृन्मयदुर्गापूजाबलिदानानि करिष्ये इति संकल्प्य पूर्वनिमन्त्रितविल्वसमीपं गत्वा सम्पूज्य 'आगच्छ सर्वकल्याणि' इति पूर्वोक्तमंत्रं पठित्वा । "विल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं शङ्करप्रिय । गृहीत्वा तव शाखां च देवीपूजां करोम्यहम् । शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो ॥ गृहीत्वा तव शाखां च पूज्या दुर्गेति च स्मृतिः ॥ उत्तिष्ठ पत्रिके देवि सर्वकल्याणहेतवे । पूजां गृहाण सकलामस्माकं वरदा भव ॥ मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे

जिस २ देवका लिखा है उस २ में उसकी पूजा करै, भक्तिसे पूजन की हुई देवी राज्य, आयु, सुख, पुत्रको देती है, कृत्यतत्त्वार्णवमें कालिकापुराणका कथन है कि, लिंगमें स्थित देवीका पूजन करना अथवा मण्डल पुस्तक प्रतिमा चित्रमें त्रिशूल खड्ग जलमें भी स्थित देवीका पूजन करना, विल्वपत्र जातीके फूल नानाप्रकारके मालपुवे नैवद्य और मनोहर धूप दीपसे देवीकी अर्चा करनी, और भगके लिंगोंका कथन गान और कहनेसे श्रेष्ठ चण्डिकाको प्रसन्न करै, जिसकी कोई निन्दा न करे और जो किसीकी निन्दा न करै उसपर क्रुद्ध हुई देवी कठिन शाप देती है, चित्रमें और मृत्तिकाकी प्रतिमामें स्नान आदि न होसके तो वहांही यह लिखाहै कि, निकटमें रक्खे हुए खड्गमें अथवा दर्पणमें पूजन करै ॥ अब सप्तमीकी पूजा विधि लिखते हैं कि प्रतिपदामें की हुई विधिसे फल संकीर्त्तनके उपरान्त नवपत्रिकासे मृत्तिकाकी दुर्गाका पूजन करके हे सर्व कल्याणि ! तुम आओ इस पूर्वोक्त मन्त्रको पढकर यह स्तुति करै, हे विल्ववृक्ष ! हे महाभाग ! तुम सदा शंकरके प्यारे हो तुम्हारी शाखाको लेकर मैं देवीकी अर्चा करता हूं शाखाके काटनेसे हे प्रभो ! तुम्हें दुःख न करना चाहिये कारण कि, धर्मशास्त्रमें तुम्हारी शाखा लेकर दुर्गाकी पूजा करनी लिखी है. हे पत्रिके ! हे देवी ! तुम सर्व कल्याणके निमित्त उठो. और हमारी सब पूजाको ग्रहण करो और हमें वरके देनेवाली हो. हे श्रीफल (विल्व) वृक्ष ! तुम मेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमवान् पर्वतोंके शिख-

---

१ यह शब्द अश्लीलरूपसे उच्चारण नहीं हैं किन्तु प्रकृति पुरुषके द्योतक हैं ।

गिरौ । जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः" ॥ ४ ॥ इति, सम्प्रार्थ्य ॥ "ॐ हुं छिंधि फट् फट् । 'ॐ फट् स्वाहा इति छित्वा संपूज्य । ॐ चामुण्डे चल चल' इति वाद्यघोषेण देवीं तां च गृहं प्रवेश्य । "आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मय्यां श्रीफलेपि च । स्थिरा नितान्तं भूत्वा च गृहे त्वं कामदा भव ॥" इति स्थिरीकृत्य, रम्भादिपत्रिकाः पञ्चगव्येन च पञ्चामृतेन च स्नापयित्वा, वस्त्रेणावेष्ट्य स्थापयेत् । इतः पूर्ववत्संकल्पं कृत्वाऽक्षतानादाय देवीमावाहयेत् ॥ तत्र मन्त्रः— "आवाहयाम्यहं देवि मृन्मय्यां श्रीफले तथा । कैलासशिखराद्देवि विंध्याद्रेर्हिमपर्वतात् ॥ आगत्य बिल्वशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम् । स्थापितासि मया दुर्गे पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते । दुर्गे दुर्गस्वरूपासि सुरतेजोमयेऽर्चिते ॥ सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये । एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे ॥ भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते । पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः ॥ पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे । दुर्गे देवि इहागच्छ सांनिध्यमिह कल्पय ॥ यज्ञभागान्गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह" ॥ ६ ॥ ततो मूलमन्त्रेण इति । पाद्यादिगन्धान्तोपचारैः संपूज्य । ततः— "अमृतोद्भवं च श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम् । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि "इति बिल्वपत्रम् ॥ "ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रियम् । तत्ते

रोंपर उत्पन्न हुए हो और अंबिका तुमको निरन्तर प्यार करती है इस प्रकार प्रार्थना करके ॐ छिंधि फट् फट् ॐ हुंफट् स्वाहा इस मन्त्रसे छेदन और पूजन करके ॐ चामुण्डे चल २ इस मन्त्रसे बाजोंके शब्दसे देवी और शाखाका घरमें प्रवेश करके हे दुर्गे ! तुम मृत्तिका और श्रीफलपर स्थापित हो, घरमें निरन्तर स्थिर होकर मनोरथ देनेवाली हो इस मन्त्रसे स्थिर करके केले आदिके पत्तोंको पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय और वस्त्रसे लपेटकर स्थापना करै फिर पूर्वके सदृश संकल्प करके चावल लेकर देवीका आवाहन करै कि, हे देवि ! मैं मृत्तिका और वेलके फलपर आपका आवाहन करता हूं हे देवि ! कैलासके शिखर विन्ध्याचल हिमाचल पर्वतसे यहां आकर निकटमें आओ हे दुर्गे ! मैंने आपको स्थापन किया है मैं आपकी अर्चा करता हूं तुम प्रसन्न हो और अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्यको मेरे निमित्त दो आपको प्रणाम है, हे दुर्गे ! तुम दुर्गरूपा हो देवताओंका तेजरूप हो और सबसे पूजित हो पत्रोंमें स्थित हुई आपको वेलपत्र, फल और मनोहर पुष्पोंसे पूजन करता हूं मेरे ऊपर प्रसन्न हो, हे दुर्गे देवि ! यहां आओ, और यहां सन्निधि करो कोटियों योगिनी सहित आप यज्ञके भागोंको स्वीकार करो, फिर मूलमन्त्रसे पाद्य आदि गन्धके उपचार पर्यन्त पूजन करके, हे सुरेश्वरि ! अमृतसे उत्पन्न और महादेवको सदैव प्रिय यह वेलका वृक्ष है इस पवित्र बिल्वपत्रको देता हूं, इस मन्त्रसे बिल्वपत्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको द्रोणपुष्प सदा प्रिय है हे दुर्गे ! उसको सब कामना-

दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये" इति द्रोणपुष्पं निवेद्य । धूपादिदक्षिणान्तां पूजां मूलेन कृत्वा प्रार्थयेत् ॥ ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते । बिल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे " ॥ ३ ॥ 'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इति च सम्प्रार्थ्य पत्रिकाः पूजयेत् ॥ कदल्यां ब्रह्माणीम् ॥ दाडिमे रक्तदन्तिकाम् । धान्ये लक्ष्मीम् । हरिद्रायां दुर्गाम् । माने चामुण्डाम् । कचौ कालिकाम् । बिल्वे शिवाम् । अशोके शोकरहिताम् । जयन्त्यां कार्तिकीं चावाह्य सम्पूज्य दुर्गायै बलिं दद्यात् ॥ शस्त्रादिपूजानिर्णयः । अत्र शस्त्रादिपूजा वक्ष्यते ॥ ततः स्तुतिं पठेत् । तदुक्तं शिवरहस्ये–"दुर्गां शिवां शांतिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेत्रीं च प्रणमामि सदाशिवाम् ॥ मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम् । ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् ॥ विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम् ॥ ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम् । प्रणतोस्मि सदा दुर्गां

ओंकी सिद्धिके निमित्त आपको देता हूं, इस मन्त्रसे द्रोणपुष्प निवेदन करके, और धूप आदि दक्षिणा पर्यन्त पूजाको मूलमन्त्रसे करके इस प्रकार स्तुति करै ॥ कि, हे महिषासुरमर्दिनि ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! मुण्डमालावाली ! अवस्था, आरोग्य, ऐश्वर्य दीजिये. हे देवि ! आपको प्रणाम है, कुंकुम लगाये चन्दन लेपन किये बेलपत्रके गुच्छेसे युक्त हे दुर्गे ! आपकी मैं शरण हूं, रूप दो, यश दो, ऐश्वर्य दो, हे भगवती ! मुझे पुत्र दो, धन दो और सब कामना दो, सब मंगलोंकी तुम मंगलरूप हो इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करके पत्रिकाका पूजन करे, केलोंमें ब्रह्माणीका, अनारमें रक्तदंतिकाका, धान्यमें लक्ष्मीका, हरिद्रामें दुर्गाका, मानमें चामुण्डाका, केचिकापुष्पमें कालिकाका, बिल्वमें शिवाका, अशोकमें शोकरहिताका, जयन्तीमें कार्तिकीका आवाहन और पूजन करके दुर्गाको बलि देनी ॥ यहाँ शस्त्र आदिकी पूजा कहेंगे, फिर स्तुति पढे यह शिवरहस्यमें लिखा है कि, दुर्गा, शिवा, शांतिकरी, ब्रह्माणी, ब्रह्माकी प्रिया, सर्वलोकोंकी रचनेवाली सदा शिवाको मैं प्रणाम करता हूं. मंगला, शोभना, शुद्धा, निष्कला, परमकला, जगत्की ईश्वरी और माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करता हूँ; सब देवमयी सब रोगोंके भयनाशक ब्रह्मा, विष्णु शिवसे वंदित उमाको सदैव नमस्कार करता हूँ विन्ध्याचलमें स्थित, विन्ध्याचल स्थानवाली, दिव्य २ स्थानोंमें विलास करनेवाली योगिनी और योगकी माता चण्डिकाको मैं प्रणाम करताहूं, ईशानकी माता, देवी, ईश्वरी, ईश्वरकी प्रिया संसाररूप दुर्गके तारनेवाली दुर्गाको मैं निरन्तर

संसारार्णवतारिणीम् ॥ य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः ॥ स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह ॥ ६ ॥ महाष्टमीव्रतनिर्णयः । अथ महाष्टमी । सा च परयुता । " शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी ।। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता " इतिब्रह्मवैवर्तात् ॥ मदनरत्ने स्मृतिसंग्रहे—" शरन्महाष्टमी पूजा नवमीसंयुता सदा । सप्तमीसंयुता नित्यशोकसंतापकारिणी । जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी । इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी । वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकांक्षिभिः ॥ सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा । महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत् । तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ॥ ५ ॥ तथा—"पुत्रान्हंति पशून् हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम् । हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी ॥" तेन नात्र त्रिमुहूर्तवेधः । तदा घटिकामात्राप्यौदयिकी ग्राह्या । 'व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत्' इति देवलोक्तेः । गौडा अप्येवमाहुः । अत एवोक्तं भोजराजेन 'न च सप्तमी शल्यसमोपहता' इति ॥ इयं भौमेऽतिप्रशस्ता । " अष्टम्यामुदिते सूर्ये दिनान्ते नवमी भवेत् । कुजवारो भवेत्तत्र पूजनीया प्रयत्नतः" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ " सप्तमी-

---

प्रणाम करताहूं, जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढता है वा सुनता है वह सब पापोंसे छूटकर दुर्गाके संग आनन्द करता है ॥ अब महाअष्टमीका निर्णय कथन करते हैं वह परयुता ग्रहण करनी कारण कि, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखा है कि, शुक्ल पक्षकी अष्टमी और चर्तुदशी पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, परतिथिसे युक्त करनी, मदनरत्नमें स्मृतिसंग्रहका कथन है, कि, शरत्कालकी महाष्टमी निरन्तर नवमीसे युक्त पूजनी, सप्तमीसे संयुक्त तो नित्य शोक संतापदायक होती है जम्भने सप्तमीसे युक्त महाष्टमी पूजी थी तिससे उस दानवोंमें श्रेष्ठ जम्भको इन्द्रने मार दिया, तिससे सब प्रयत्नोंसे सप्तमीसे मिश्रित अष्टमीको शुभकी आकांक्षावाले मनुष्य प्रयत्नसे त्यागदें, सप्तमीरूप कांटेसे युक्त महाष्टमीको मोह वा अज्ञानसे जो करतेहैं, वह नरकमें जाते हैं जहां एककला सप्तमी हो और फिर अष्टमी हो तिससे यह कांटा पुत्र पौत्रोंका नाश करनेवाला लिखा है, इसी प्रकार पुत्र, पशु, देश, राज्य और उत्पन्न और न उत्पन्न हुओंको सप्तमीसहित अष्टमी मारती है, तिससे तीन मुहूर्तका वेध है तब घडीभरभी उदयकालकी ग्रहण करनी कारण कि, देवलने यह लिखा है, व्रत, उपवास, नियममें वह तिथि लेनी जो एक घडी भी हो गौडभी इसी प्रकार कथन करतेहैं, इसीसे भोजराजने लिखा है कि, सप्तमीरूप शल्यसे युक्त अष्टमीको करे, यदि यह मंगलवार हो तो अत्यन्त उत्तम है. कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखा है कि, अष्टमीमें सूर्योदय हो दिनके उपरान्तमें अष्टमी हो और मंगल होय तो वह प्रयत्नसे पूजनी चहिये । मदनरत्नमें स्मृतिसमुच्चयका कथन है कि, सप्तमीरूपशल्यसे विद्धा अष्टमी सदैव त्यागनी, जिसमें

शल्यसंविद्धा वर्जनीया सदाष्टमी। स्तोकापि सा महापुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत्'' ॥ इति मदनरत्ने स्मृतिसमुच्चयवचनात् ॥ 'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता' इति पाद्मवचनाच्च ॥ इयमेव मूलयुक्ता चेन्महानवमीसंज्ञा ॥ ''आश्वयुक्च्छुक्लपक्षे याष्टमी मूलेन संयुता। सा महानवमी प्रोक्ता त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा'' इति हेमाद्रौ स्कान्दात्। मूलयुक्तापि सप्तमीयुता चेत्त्याज्यैवेत्युक्तं निर्णयामृते दुर्गोत्सवे—'' मूलेनापि हि संयुक्ता सदा त्याज्याऽष्टमी बुधैः। लेशमात्रेण सप्तम्या अपि स्याद्यदि दूषिता'' इति ॥ महाष्टमी। पूर्वेद्युः पूर्वाह्णव्यापित्वे पूर्वा अन्यथा परैवेति निर्णयदीपमतम्। एतच्च तुच्छत्वादुपेक्ष्यम् ॥ रूपनारायणधृते देवीपुराणे—'' सप्तमीवेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी। पुत्रदारधनैर्हीना भ्रमन्तीह पिशाचवत् ॥'' यत्तु—''सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याष्टमी भवेत्। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि'' इति ॥ विश्वरूपनिबन्धवचनं तदाश्विनकृष्णाष्टमीविषयम्। ''कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वाष्टमीदिने। नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिःस्वनैः'' इति देवीपुराणे ॥ तत्रापि पूजोक्तेरिति हेमाद्रौ निर्णयामृते चोक्तम् ॥ यानि तु-'' भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया। तस्माद्वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधैः'' इति ॥ यच्च मोहचूलोत्तरे ब्राह्मे च-'' आश्विनस्य सिताष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती। भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता'' इति॥

सूर्योदय हो वह अल्प भी महापवित्र है, पद्मपुराणमें लिखाहै कि, अष्टमी नवमीसे युक्त हो और नवमी अष्टमीसे युक्त हो और यही अष्टमी मूलनक्षत्रसे युक्त होय तो उसकी महानवमी संज्ञा है, कारण कि, हेमाद्रिमें स्कंदपुराणका मत है कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी त्रिलोकीमें दुर्लभ महानवमी लिखी है, मूलयुक्तभी सप्तमीसे युक्त होय तो वही योग्य है, यह निर्णयामृतके दुर्गोत्सवमें लिखा है कि, जो सप्तमीके लेशमात्रसेभी दूषित हो मूलसे युक्तभी वह अष्टमी बुद्धिमानोंको सदा छोडने योग्य है, पूर्वदिनमें पूर्वाह्णमें होय तो महा-अष्टमी प्रथम भी लेनी, नहीं तो परली लेनी, यह निर्णयदीपका मत है, यह तुच्छ होनेसे छोडने योग्य है, रूपनारायणमें लिखा देवीपुराणका वाक्य है:कि, जिन्होंने सप्तमी वेधसे युक्त महाष्टमी की है वे पुत्र, स्त्री, धनसे हीन हुए पिशाचके तुल्य भ्रमण करते हैं, जो यह विश्वरूपनिबन्धका वाक्य है, कि सप्तमीमें सूर्योदय होकर फिर जो अष्टमी है उसमें दुर्गाका उत्सव करे परदिनमें न करे सो आश्विनकृष्णअष्टमीके विषयमें है, कन्याके सूर्य और कृष्णपक्षमें जो अष्टमी उस दिन पूजकर गीतवाजोंके शब्दोंसे नवमीके दिन अर्चा करे इस देवीपुराणके कथनसे उसमें भी पूजा लिखीहै यह हेमाद्रि और निर्णयामृतमें लिखा है. जो ये वाक्य हैं कि, भद्रा और भद्रकालीके मध्यमें पूजाकार्य होता है तिससे बुद्धिमान् मनुष्य सप्तमीविद्धा दुर्गाष्टमी करैं, जो मोहचूलोत्तरमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, आश्विनसुदी अष्टमीको आधीरात्रके समय पूर्वाषाढनक्षत्रमें, भद्रकालीरूपसे

तथा–"तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह" इति ॥ यच्च मदनरत्ने–" महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी ॥ सप्तम्यापि युता कार्या मूलेन तु विशेषतः" इति । तानि परदिनेऽष्टम्यभावविषयाणीति मदनरत्ने उक्तम् । यत्तु तत्रैव परदिनेऽष्टमीसत्त्वेपि पूर्वविद्धाविधायकं वचनम् "यदाष्टमीं तु संप्राप्य ह्यस्तं याति दिवाकरः । तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेहनि ॥ दुर्भिक्षं तत्र जानीयान्नवम्यां यत्र पूज्यते " इति ॥ तत् परदिने दशम्यां नवम्यभावविषयम् । " यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेहनि । तदाष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप" इति तत्रैव स्मृतिसंग्रहोक्तेः ॥ " उत्तरास्तिथयो यत्र क्षयं याति नराधिप । पूर्वाष्टमीं तदा कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत् " इति दुर्गोत्सवोक्तेश्चेति मदनरत्ने ॥ वस्तुतस्तु इदं वचनद्वयम् । अष्टमीनवम्योः सूर्योदयद्वयसंबन्धपरम् ॥ ' अत एव नवमी च ' इति चकारादष्टमी च ॥ तिथय इति बहुवचनादष्टमीनवमीदशम्युक्ता ॥ अन्यथा पूर्वोक्तविरोधादिति दिक् ॥ यत्तु–"अहं भद्रा च भद्राहं नावयोरन्तरं क्वचित् । सर्वसिद्धिं प्रदास्यामि भद्रायामर्चिता ह्यहम्" इति देवीपुराणे तद्विष्टिकरणमध्ये पूजाविधानार्थम् । "विष्टिं त्यक्त्वा महाष्टम्यां मम पूजां करोति यः । तस्य पूजाफलं न स्यात्तेनाहमवमानिता " इति तत्रैवोक्तेरिति.

पार्वती प्रगट हुई, तैसेही तहां दक्षयज्ञके नाश करनेवाली भद्रकाली.कोटियों योगिनीसहित महाघोररूपसे प्रगट हुईहै, जो मदनरत्नमें यह लिखाहै, कि आश्विनमहीनेके शुक्लपक्षकी कल्याणकारिणी महाष्टमी सप्तमीसे और विशेषकर मूलनक्षत्रसे युक्तभी करनी, ये सब वाक्य दूसरे दिनमें अष्टमीके न होनेके विषयमें हैं यह मदनरत्नमें लिखाहै,जो वहांही यह वाक्य परदिनमें अष्टमी होनेपर भी.पूर्वविद्धाका करनेवालाहै कि, जब अष्टमीमें सूर्यास्त हो उस दिन दुर्गोत्सव करे अगले दिन न करे, जहां नवमीमें पूजा हो वहां दुर्भिक्ष जाने यह वचन दूसरे दिनमें दशमी नवमीमें न होय तो तब जानना. कारण कि, वहांही स्मृतिसंग्रहका वाक्य है कि, हे राजन्! जब सूर्योदयकालमें परदिन नवमी न हो तब सप्तमी सहित भी अष्टमीको करे यह वहां स्मृतिसंग्रहका कथन है मणिरत्नमें दुर्गोत्सवका वचन है कि, हे राजन् ! जहां उत्तर तिथिका क्षय होजाय वहां पूर्वाष्टमीको करना अन्यथा अशुभ फल होता है, सिद्धान्त तो यह है कि, ये दोनों वाक्य उस समयके हैं जब अष्टमी और नवमीको दोनों दिन सूर्यका संबंध न हो, इसीसे (नवमी च) इस चकारसे अष्टमी और (तिथयः) इस बहुवचनसे अष्टमी, नवमी, दशमी तिथि लिखी हैं अन्यथा पूर्वोक्तका विरोध प्राप्त होयगा यही मार्ग है जो देवीपुराणमें यह लिखा है कि, मैं भद्रारूप हू और भद्रा मेरा रूप है, हम दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं है भद्रामें पूजी मैं सब सिद्धियोंको देती हूं, यह वाक्य विष्टिकर्णमें मध्यमें पूजाके निमित्त है. कारण कि, वहांही निर्णयामृतमें यह लिखा है कि, भद्राको त्यागकर जो महाष्टमीमें मेरी पूजा करता है, उसको पूजाका फल नहीं मिलता कारण कि, उसने मेरा तिरस्कार किया इसी प्रकार

निर्णयामृते ॥ तथा कालिकापुराणे-"सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणम् । पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः " इति ॥ पुत्रवतामष्टम्यामुपवासनिषेधनिर्णयः । अष्टम्युपवासश्च पुत्रवता न कार्यः । "उपवासं महाष्टम्यां पुत्री नात्र समाचरेत् । यथातथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत् " इति तत्रैवोक्तेः ॥ रूपनारायणीये ब्राह्मे-" अतोऽर्थं पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः । उपोषितैर्वस्त्रधूपमाल्यरत्नानुलेपनैः ॥ पशुभिः पानकैर्हृद्यै रात्रौ जागरणेन च । दुर्गागृहे च शस्त्राणि पूजितव्यानि पण्डितैः ॥ वाद्यभाण्डानि चिह्नानि कवचान्यायुधानि च" ॥ ३ ॥ तत्र विशेषः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ निर्णयामृते भविष्ये-"आश्वयुक्शुक्लपक्षस्य अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा ॥ कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता । मूलनक्षत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ॥ नवम्यां पूजिता देवी ददात्यभिमतं फलम् । सा पुण्या सा पवित्रा च सा धन्या सुखदायिनी ॥ तस्यां सदा पूजनीया चामुण्डा मुण्डमालिनी " सदेत्युक्तेर्नित्यतापि ॥" तस्यां ये ह्युपयुज्यंते प्राणिनो महिषादयः ॥ सर्वे ते स्वर्गतिं यान्ति घ्नतां पापं न विद्यते । यावन्न चालयेद्गात्रं पशुस्तावन्न हन्यते ॥ न तथा बलिदानेन पुष्पधूपविलेपनैः । यथा सन्तुष्यते मेषैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी ॥ एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभुक्तेन नक्तेन स्वशक्त्याऽयाचितेन च ॥ पूजनीया

कालिकापुराणमें लिखा है कि, सप्तमीको पत्रिकाकी पूजा, अष्टमीको व्रत और नवमीको पूजा, जागरण और विधिपूर्वक बलि देना चाहिये ॥ अष्टमीका व्रत पुत्रवाला न करे कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, अष्टमीको पुत्रवाला व्रत न करे जैसे तैसे पवित्र आत्मावाला व्रती देवीकी पूजा करे, रूपनारायणमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, इस निमित्त उस दिन व्रती पंडितजन वस्त्र, माला, रत्न, धूप, चंदन, पशु, मनोहर पानसे रात्रिमें जागरणपूर्वक देवीकी पूजा करें, और दुर्गाके घरमें शस्त्र, वाजे, पात्र, चिह्न, कवच, आयुधका भी पण्डित जन पूजन करें इसमें विशेष हेमाद्रि निर्णयामृतके वाक्यसे कहा है कि, आश्विनके शुक्लपक्षके मूलनक्षत्रसे युक्त अष्टमी महानवमी कही है, वह त्रिलोकीमें दुर्लभ कही है, कन्याके सूर्यमें कृष्णपक्षअष्टमीसे मूलनक्षत्रसे युक्त नवमी लिखी है नवमीमें पूजित देवी वांछित फलको देती है, वह पुण्य, पवित्र, धन्य, सुखदायिनी है, उसमें मुण्डमालिनी चामुण्डाका सदा पूजन करे इस कथनमें सदा कहनेसे यह व्रत नित्य भी है उस दिन भैंसेको आदि लेकर जिन प्राणियोंकी पूजा होती है वे सब स्वर्गमें गमन करते हैं और मारनेवालोंको दोष नहीं प्राप्त होता जबतक पशु अपने शरीरको न हिलावे तबतक उसे विशसन न करै । तैसे बलिदानसे पुष्प, धूप, चन्दनसे विन्ध्यवासिनी प्रसन्न नहीं होती जिस प्रकार मेष और भैंसोंके द्वारा प्रसन्न होती है, इससे विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रत एकभक्त, नक्त और अयाचितसे अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्य देवीका

जनैर्देवी स्थानेस्थाने पुरेपुरे। गृहेगृहे भक्तिपरैर्ग्रामेग्रामे वनेवने ॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टै-र्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः । वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः । स्त्रीभिश्च कुरुशार्दूल तद्विधानमिदं शृणु । जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म कारयेद्यावदष्टमी" ॥ १० ॥ इति ॥ लौहाभिसारिककर्मविधानं तत्रैवोक्तम् । "प्रागुदक्प्रवणे देशे पताकाभिरलंकृतम् । मण्डपं कारयेद्दिव्यं नवसप्तकरं परम्" ॥ षोडशहस्तमित्यर्थः ॥ "आग्नेय्यां कारयेत्कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् । मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्वत्थदलाभया ॥ राजचिह्नानि सर्वाणि शस्त्राण्यस्त्राणि यानि च । आनीय मण्डपे तानि सर्वाण्यत्राधिवासयेत् ॥ ततस्तु ब्राह्मणः स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥ ॐकारपूर्वकैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैर्जुहुयाद्धृतम् ॥ शस्त्रास्त्रमन्त्रैर्होतव्यं पायसं घृतसंयुतम्। हुतशेषं तुरंगाणां राजाननुपहारयेत् ॥ लौहाभिसारिकं कर्म तेनैव ऋषिभिः स्मृतम् । धृतपल्ययनानश्वान्गजांश्च समलंकृतान् ॥ भ्रामयेन्नगरे नित्यं वन्दिघोषपुरःसरम्। प्रत्यहं नृपतिः स्नात्वा संपूज्य पितृदेवताः । पूजयेद्राजचिह्नानि फलमाल्यविलेपनैः । यस्याभिसरणाद्राज्ञो विजयः समुदाहृतः॥ पूजामन्त्रान्प्रवक्ष्यामि पुराणोक्तानहं तव । यैः पूजिताः प्रयच्छन्ति कीर्तिमायुर्यशोबलम्"॥ अथ विष्णुधर्मोत्तरोक्ता मन्त्राः । छत्रस्य–"यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां

स्थान २ पुर २ घर २ में और ग्राम २ वन २ में स्नान करके प्रसन्न हुये ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजा, वैश्य, शूद्र और भक्तिसे युक्त म्लेच्छ और दूसरे मनुष्य और स्त्री हे कुरुओंमें श्रेष्ठ ! पूजन करैं, उसकी यह विधि तुम सुनो जयका अभिलाषी राजा प्रतिपदाके क्रमसे अष्टमी पर्यन्त लौहाभिसारिक कार्य करावे अर्थात् लोहेसे पशुओंको विशसन करे, लौहाभिसारिककर्मका विधान वहांही लिखा है कि पूर्व वा उत्तरको नीचे देशमें पताकाओंसे शोभित दिव्य नौ सात (सोलह) हाथका मंडप निर्माण करे उसमें आग्नेयदिशामें सुन्दर हाथभरका इस प्रकार कुण्डनिर्माण करे जिसमें तीन मेखला हों. और पीपलके पत्तेके तुल्य योनि हो और राजाके चिह्न जितने अस्त्र वा शस्त्र हैं उन सबको लाकर उस मंडपमें रक्खै, फिर ब्राह्मण स्नान करके श्वेतवस्त्र पहने, और शुद्ध होकर ॐकारपूर्वक ऐसे पशुलिंगके मन्त्रोंसे (जिनमें पशुपद हो) घृतका हवन करै, और घी मिली खीरसे होम करै, और होमसे बचेको तुरंगों (घोडे) के राजाको भोजन करावैं, तिससे यह लौहाभिसारिक कर्म ऋषियोंने लिखा है, लगाम लगे घोडे और अलंकृत हाथियोंको वन्दीजनोंके बाजे सहित नगरमें नित्य घुमावै, राजा नित्यप्रति स्नान करके पितर और देवताओंका पूजन करके फल, पुष्प, चन्दनसे राजाके चिह्नोंका पूजन करै, जिसके करनेसे राजाकी विजय होती है, पुराणोंमें लिखे पूजाके मन्त्रोंको मैं तुमसे कहता हूँ जिनके पूजन कियेके चिह्न कीर्ति, आयु, यश, बलको देते हैं ॥ (अथ मन्त्राः) विष्णुधर्ममें लिखा है छत्रका यह मंत्र है कि, जैसे मेघ कल्याणके निमित्त इस पृथ्वीको ढकते हैं, इसी प्रकार विजय, आरोग्य, वृद्धिके निमित्त

वसुन्धराम्। तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये॥"। चामरस्य-"शशाङ्ककरसंकाश क्षीरडिण्डीरपाण्डुर। प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ"॥ अश्वानां वृद्धयर्थं रेवंतपूजनमहं करिष्ये। "सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनंदन। शांतिं कुरु तुरंगाणां रेवन्ताय नमोनमः॥"। अनेन मन्त्रेण पूजा॥ अथाश्वस्य-"गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान्। तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा। रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च। स्मर त्वं राजपुत्रं त्वं कौस्तुभं च मणिं स्मर॥ यां गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा। भ्रूणहाऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः॥ सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यन्ति दुष्कृतम्। व्रजाश्च तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव॥ निष्कृतो यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरंगम। रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव"॥ ६॥ इति॥ अथ ध्वजस्य-"शक्रकेतो महावीर्य श्यामवर्णार्चयाम्यहम्। पत्रिराज नमस्तेस्तु तथा नारायणध्वज॥ काश्यपेयारुणभ्रातर्नागारे विष्णुवाहन। अप्रमेय दुराधर्ष रणे देवारिसूदन॥ गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि संनिहितो यतः। सारवन्त्यायुधान्यत्र रक्ष त्वं च रिपून् दह"॥ ३॥ अथ पताकायाः-"हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः

तुम राजाको ढको। (चमरका मन्त्र) चन्द्रमाकी किरणोंके तुल्य दूधके झागोंके तुल्य श्वेत, हे निर्मल और दुर्लभ चामर! शीघ्र पापको नष्ट करो, घोडोंकी वृद्धिके निमित्त मैं रेवंतका पूजन करता हूं हे सूर्यपुत्र! हे महाबाहो! हे छायाके हृदयके नन्दन घोडोंकी शांति कर रेवंतको प्रणाम है, इस मन्त्रसे पूजा करै॥ (अथ अश्वकी पूजा) हे अश्व! तुम गंधर्वकुलसे उत्पन्न हुए हो कुलको दूषित मत करियो, ब्रह्माके और चन्द्रमा वरुणके सत्यवाक्यसे और अग्निके प्रभावसे घोडोंकी तुम वृद्धि करो सूर्यके तेज, और मुनियोंके तप और रुद्रके ब्रह्मतेज, और पवनके बलसे युक्त तुम राजपुत्र हो उसका और कौस्तुभमणिका स्मरण करो, जिस गतिको ब्राह्मण माता, पिता, भ्रूण इनका हत्यारा, झूठा, पराङ्मुख क्षत्रिय प्राप्त होते हैं, सूर्य, चन्द्रमा, वायु इतने पापको देखते हैं, ये सब पाप शीघ्र न चलनेसे तुमको होंगे। हे अश्व! यदि तुम युद्धके शब्दको सुनकर तिरस्कारसे चलोगे तो ऐसा होगा इससे तुम शीघ्र चलो संग्राममें शत्रुओंको जीतकर अपने स्वामी सहित सुखी हो॥ (ध्वजाका मंत्र) हे इंद्रकी ध्वजा हे महावीर्य! हे श्यामवर्ण! मैं तुम्हारा पूजन करता हूं हे पितृराज! तुम्हें नमस्कार है, हे नारायणकी ध्वजा! हे अरुणके भ्राता, हे नागोंके शत्रु, हे विष्णुके वाहन, हे प्रमाणरहित, हे सहनेके अयोग्य, हे संग्राममें शत्रुनाशक, तुम गरुड हो वायुके तुल्य तुम्हारी गति है सारवाले शस्त्रोंकी तुम रक्षा और शत्रुओंका दाह करो॥ (पताकाका मंत्र) अग्नि, वसु, रुद्र, वायु, चंद्रमा, महान् ऋषि,

सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणग्रहाः ॥ प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितास्त्वयि ॥ प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समंततः ॥ पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा । हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा । कालनेमिवधे यद्वद्यद्वत्त्रिपुरघातने । शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर ॥ नीलाञ्छ्वेतानिमान्दृष्ट्वा नश्यंत्वाशु नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥ पूतना रेवती नाम्ना कालरात्रिश्च या स्मृता । दहत्वाशु रिपून्सर्वान् पताके त्वं मयार्चिता" ॥ ७ ॥ अथ गजस्य—"कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः । सुप्रतीकोंजनो नील एतेष्टौ देवयोनयः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनान्यष्टौ समाश्रिताः । मन्दो भद्रो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥ वनेवने प्रसूतास्ते यूथानि सुमहांति च । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः ॥ भर्तारं रक्ष नागेंद्र स्वामिवत्प्रतिपाल्यताम् । अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति नो व्रज ॥ श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोऽनिलात् । स्थैर्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् ॥ युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः । अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा " ॥ ६ ॥ इति ॥

नाग, किन्नर, गंधर्व, यक्षभूतोंके गण, ग्रह, प्रमथ, सूर्य, भूत, ईश, मातर इंद्र सेनाका पति स्वामिकार्तिक, वरुण ये सब तुम्हारेमें आश्रित हैं, यह सब शत्रुओंको हनते हैं, और राजाकी विजय हो जो शस्त्र चारों तरफसे शत्रुओंने फेंके हैं वे शत्रुओंके ऊपर पडते हुए तुम्हारे तेजसे नष्ट हों, हिरण्यकशिपुके युद्धमें, देवता असुरके युद्धमें, कालनेमिके मरनेमें और त्रिपुरके मरनेमें जैसी तुम्हारी शोभा हुई इसी प्रकार अब हमारी शोभा करो और हमें स्मरण कर, नील और श्वेत इन पताकाओंको देखकर शीघ्र राजाके शत्रु नष्ट हों, नाना प्रकारकी घोर व्याधि और शस्त्रोंसे युद्धमें जीते पूतना रेवती और कालरात्रि ये सब शीघ्र शत्रुओंको दग्ध करें, हे पताके ! मैंने तुम्हारा पूजन किया ॥ (अथ हाथीका मन्त्र) कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन, नील ये आठ हाथी देवयोनि हैं, इनके पुत्र और पौत्र जो आठ बनोंमें रहतेहैं, जैसे मन्द्र, भद्र, मृग, गज, संकीर्ण जो वन २ में उत्पन्न हुए हैं उनकी योनिको स्मरण करो. वसु, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, तुम्हारी रक्षा करो. हे नागेन्द्र ! अपने पालन करनेवालेकी रक्षा कर और स्वामीके समान पालना करो, और युद्धमें जयकी प्राप्ति हो तथा यात्रामें हमारा कल्याण करो, चन्द्रमासे तुम्हारी लक्ष्मी, विष्णुसे बल, सूर्यसे तेज, पवनसे वेग, मेरुसे स्थिरता, रुद्रसे जय, इन्द्रदेवसे यश तुम्हारा प्राप्त रहै, और नागदेवताओं सहित दिशा, तथा गन्धर्वों सहित अश्विनीकुमार एकत्र होकर तुम्हारी चारों ओरसे रक्षा करें ॥ (अब खड्गका मन्त्र कहतेहैं) हे खड्ग !

अथ खड्गमन्त्रः—"असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथै च ॥ एतानि तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिका ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ रोहिण्यश्च शरीरं ते दैवतं च जनार्दनः । पिता पितामहो देवस्त्वं मां पालय सर्वदा ॥ नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः । भावशुद्धो-मर्षणश्च अतितेजास्तथैव च ॥ इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः । तीक्ष्ण-धाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः " ॥ ५ ॥ अथ छूरिकायाः—"सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि, पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् ॥ चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिवर्हिणी । तया विस्तारिता चासि देवानां प्रति-पादिता ॥ सर्वसत्त्वाङ्गभूतासि सर्वाऽशुभनिवर्हिणि । छुरिके रक्ष मां नित्यं शांतिं यच्छ नमोस्तु ते" ॥ ३ ॥ अथ कट्टारकपूजा—"रक्षांगानि गजान्रक्ष रक्ष वाजि-धनानि च । मम देहं सदा रक्ष कट्टारक नमोस्तु ते"॥ कट्टारको मध्यदेशे कटारीति प्रसिद्धा ॥ अथ धनुःपूजा ॥ "सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां समरे रक्ष सार्कं शरवरैरिह ॥ धृतं कृष्णेन रक्षार्थं संहाराय हरेण च ॥ त्रयीमूर्तिगतं देवं धनुरस्त्रं नमाम्यहम् " ॥ २ ॥ अथ कुन्तपूजा—"प्रास पातय शत्रूंस्त्वमनया नाकमायया । गृहाण जीवितं तेषां मम सैन्यं च रक्षताम्" ॥ अथ चर्मपूजा—"श-

असि, विशसन, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मधार ये तुम्हारे नाम हैं और ब्रह्माने स्वयं कहे हैं, कृत्तिका तुम्हारा नक्षत्र गुरुदेव महेश्वर हैं, तुम्हारा शरीर रोहिणी है, जनार्दन देवताहै, तुम पितापितामह देव हो, तुम मेरी सदा पालना करो, नीलमेघके तुल्य तुम्हारा रूप है तुम्हारी तीक्ष्ण दाढें हैं, कृश पेटहै, भाव शुद्ध है, सहनेके अयोग्य अत्यन्त तेज-वान् हो, इस पृथ्वीको जिसने धारण किया है और महिषासुरको मारा है उस तीक्ष्ण धारावाले शुद्ध खड्गको प्रणाम है ॥ (छुरीका मंत्र) हे छुरी ! सब शस्त्रोंसे प्रथम महादेवने तुम्हें शूल आयुधसे निकालकर और शुभ मुष्टि घर बनाकर निर्माण कियाहै, और चण्डिकाको दी है, तुम सब दुष्टोंकी नाश करनेवाली हो, देवीने ऐसाही तुम्हारा विस्तार किया, और देवताओंको दी, सब जीवोंके अंगस उत्पन्न सब अशुभोंको नष्ट करनेवाली, हे छुरिके ! मेरी नित्य रक्षा करो, और शान्ति दो तुम्हैं नमस्कार है ॥ (कटारकी पूजा) हे कटार ! गौ, हाथी, घोडे, धनकी रक्षा कर, और मेरे देहकी निरन्तर रक्षा कर. हे कटार ! तुम्हैं नमस्कार है, कटारको कोई मध्य-देशमें ' कटारी ' कहतेहैं ॥ (धनुषकी पूजा) हे सब आयुधोंमें महान् ! हे सब देव शत्रुओंके नाशक ! हे धनुष ! बाणोंसहित संग्राममें हमारी रक्षाकर, रक्षाके निमित्त कृष्णने और संहारके निमित्त महादेवने तुझे धारण किया. तीनों मूर्त्तियोंमें तेरा तेजहै मैं धनुष अस्त्रको प्रणाम करताहूं ॥ (भालेकी पूजा) हे भाले ! तुम शत्रुओंको गिराओ, इस देवमायासे उनके प्राणको ग्रहण करो । और मेरी सेनाकी रक्षा करो ॥ (अब चर्म ढालकी पूजा कहते हैं) हे चर्म ! तू

-र्मप्रदस्त्वं समरे चर्म सैन्ये यशोद्य मे । रक्ष मां रक्षणीयोहं तापनेय नमोस्तु ते " ॥ अथ कनकदण्डमन्त्रः–"प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताड-यस्व रिपून्सर्वान्हेमदण्ड नमोस्तु ते " ॥ २ ॥ अथ दुन्दुभिमन्त्रः–"त्वं दुन्दुभे सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्धनः ॥ यथा जीमू-तघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोस्माकं मुदावहः ॥ यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथात्र तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे" ॥ ३ ॥ अथ शंखमन्त्रः ॥ "पुण्यस्त्वं शंख पुण्यानां मंगलानां च मंगलम् । विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिप्रदो भव " ॥ अथ सिंहासनमंत्रः ॥ "विजयो जयदो जेता रिपुघाती शुभंकरः । दुःखहा धर्मदः शांतः सर्वारिष्टविनाशनः ॥ एते वै संनिधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं दैवैर्मंत्रैश्च गीयसे ॥ त्वयि स्थितः शिवः शांतस्त्वयि शक्रः सुरेश्वरः । नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः ॥ त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोस्तु ते । तथैव कर्मचिह्नानि स्वानि पूज्यानि शिल्पिभिः ॥ लोहाभिसारिकं कर्म कृत्वैवं मंत्रपूर्वकम् । कृत्वा नियमम-ष्टम्यां पूर्वाह्णे स्नानमाचरेत् ॥ कुंकुमचंदनचम्पकचतुरामैः शैलपिष्टैश्च । चर्चितगात्रीं

संग्राममें सुख देनेवाली है, आज मेरी सेनाके यशकी रक्षाकर, मैं तुम्हारी रक्षाके योग्य हूं, हे तपानेवाले ! तुमको नमस्कार है ॥ (अब सुवर्णके दण्डका मंत्र कथन करते हैं) कि, दुष्टोंके भगाने, और साधुओंकी रक्षाके और व्यवहारको प्रसिद्धके निमित्त ब्रह्माने तुम्हें रचाहै. राजाको यश, सुख, जय देनेवाला हो, सब शत्रुओंको ताडनकर हे सुवर्णके दंड ! तुझको प्रणाम है ॥ (दुन्दुभिका मंत्र) हे दुन्दुभे ! तू भयानक है, और शत्रुओंके हृदय आकर्षण करनेवाला है, जैसे मेघके शब्दसे मोर प्रसन्न होतेहैं इस प्रकार तुम्हारे शब्दसे हमको प्रसन्नता हो जिस प्रकार मेघके शब्दसे स्त्रियोंको डर होताहै तैसेही तेरे शब्दसे युद्धमें हमारे शत्रुओंको त्रास हो ॥ (अब शंखका मंत्र कथन करतेहैं) हे शंख ! तू पुण्योंका पुण्य और मंगलोंका मंगल है, विष्णु भगवान् तुझे नित्य धारण करते हैं इससे हमें शान्ति दो ॥ अब सिंहासनका मंत्र कहते हैं विजय, जयका देनेवाला, शत्रुओंका जीतनेवाला, रिपुका मारने वाला शुभका कर्ता, दुःखका नाशक, धनदाता, शान्तरूप, सब अरिष्टोंका नाशक है, जिससे यह आठ महाबली सिंह तुम्हारे निकट हैं तिससे वेद और मंत्रमें तुम्हें सिंहासन कहा है, तुममें शान्त शिव स्थित हैं, तुममें इन्द्र स्थित हैं, हे सर्वतोभद्र तुम्हें प्रणाम है, तुम राजाको वर देने-वाले हो. हे त्रिलोकीके जयके सर्वस्वसिंहासन ! तुझे प्रणाम है, तैसे शिल्पी अपने कामके चिह्नोंका पूजन करें, इस प्रकार मंत्रपूर्वक लौहाभिसारिक कर्मको समाप्त करके अष्टमीको निय-मपूर्वक पूर्वाह्नमें स्नान करे, कुंकुम, चंदन, चम्पा, लाखको चन्दनमें पीसकर शरीरपर चर्च,

देवीं कुसुमैरभ्यर्चयेद्बहुभिः ॥ कुमुदैः सपद्मपुष्पैः सधूपदीपैः सनैवेद्यैः । मांसैर्वल्युपहारैर्मङ्गलशब्दैः समुच्छलितैः ॥ विहितच्छत्रैर्यानैः स्यन्दनसितशस्त्रधारिजनलोकैः। तुष्टैः पश्वस्त्रादि च निवेद्यते सर्वमेव भगवत्यै ॥ दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिने द्रोणपुष्पकैः । ततः खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये ॥ इच्छेत विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः । पुनःपुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन्हृदये शिवाम् ॥ सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि । नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम् ॥ एवं हृष्टैर्निशां नीत्वा प्रभाते अरुणोदये । घातयेन्महिषान्मेषानग्रतो नतकंधरान् ॥ शतमर्धशतं वापि तदर्धं वा यथेच्छया । सुरासवधृतैः कुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥ कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजने तथा । ततोऽपराह्णसमये नवम्यां वै रथे स्थिताम् ॥ भवानीं भ्रामयेद्राष्ट्रे स्वयं राजा सशब्दवान् । कश्चिच्चोपोषितो वीरो विधृतोन्येन खड्गवान् ॥ भूतेभ्यस्तु वलिं दद्यान्मंत्रेणानेन सामिषम् । सरक्तं सजलं चान्नं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ त्रींस्त्रीन्वारान्समूहेन दिग्विदिक्षु किरेद्वलिम् " ॥ १७ ॥ मन्त्रश्च—" वलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा । मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सु[illegible]ः पन्नगा ग्रहाः ॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः । डाकिन्यो यक्ष-

---

और वहुत फलोंसे गायत्रीकी अर्चा करे, कुमुद, पद्मके फूल, दीप, नैवेद्य, मांसवलि भेंट वडे २ मंगलके शब्द, वनाये छत्र, पान, रथ, पैने शस्त्र धारण करनेवाले लोक प्रसन्नमन होकर इन सवका भगवतीके प्रति निवेदन करे, और उस दिन दुर्गाकी द्रोणके फूलोंसे पूजा करे, फिर शत्रुओंके मारनेके निमित्त खड्गको प्रणाम करके राजा अपने विजय राज्य सुभिक्षकी इच्छा करे, वारंवार खड्गको नमस्कार करके शिवाका हृदयमें स्मरण करता हुआ पूजन करै. हे कुरुवंशी ! इन सव कार्योंको करके अष्टमीको रात्रिमें नटोंके नृत्य गीतोंसे वडे उत्साहसे जागरण करे. इस प्रकार प्रसन्नतासे रात्रिको वितायकर प्रातःकाल अरुणोदयके समय देवीके आगे झुकाये कन्धेवाले भैंसे और मेंढे सौ, पचास, पचीस, अपनी इच्छासे वलि दिवावे, और सुराके आसवसे भरे घडोंसे परमेश्वरीकी अर्चा करे, वह मांस कापालिकोंको देदेना और दास दासियोंको देदे, फिर अपराह्ण कालमें नवमीको रथमें वैठाकर भवानीको अपने राष्ट्र (देश) में स्वयं भ्रमण करावे, जो कोई व्रती वीर खड्गवान् किसी दूसरेने पकड रक्खाहो मांससहित सव भूतोंको वली इस मंत्रसे [1]दे, रुधिर जलसहित गंध, पुष्प, अक्षतोंसे युक्त अन्न तीन २ वार मूलमंत्र पढकर दिशा और विदिशाओंमें उस अन्नकी वलि देनी. मंत्र यह है देवता, आदित्य, वसु, मरुत्, अश्विनीकुमार, रुद्र, सुपर्ण, पन्नग, ग्रह, असुर, यातुधान, पिशाच, उरग, राक्षस, डाकिनी, यक्ष, वेताल,

---

१ यह कल्पान्तरका विषय है ।

वेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥ जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः॥ दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥ जगतां शांतिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः । मा विघ्नं मा च मे पापं मा संतु परिपंथिनः ॥ सौम्या भवंतु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥४॥" इति ॥ इति महाष्टमीनिर्णयः ॥ महानवमीनिर्णयः ॥ महानवमी तु पूर्वयुता ग्राह्या पूर्वोक्तवचनात् । ' नवमी दुर्गाव्रते श्रावणी ' इति दीपिकोक्तेः । "श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् " इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेश्च ॥ भविष्येपि-"आश्वयुक्छुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा " इति ॥ मूल-सुपलक्षणम् । " दुर्गापूजा तु नवमी मूलाद्यृक्षत्रयान्विता । महती कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषमर्दिनी" इति मदनरत्ने लैङ्गात् । अत्र पूजयेदित्यग्रे शेषः । यानि तु ' सा कार्योदयगामिन्यां ' ' तिथावुदयगामिन्याम् ' इत्यादिप्रागुक्तानि । तानि नवमीभिन्नतिथिपराणि । नवम्यां विशेषोक्तेः । वेधश्च मुहूर्तत्रयेणैव ज्ञेयः । यद्यपि हेमाद्रिमते मुहूर्तद्वयात्मापि वेधोस्ति । तथापि सूर्योदय एव सः ॥ सायं तु त्रि-मुहूर्त एव । तदुक्तं दीपिकायां ' त्रिमुहूर्तगा तु सकला सायम् ' इति ॥ माधवोपि-'सायं तूत्तरया तद्वन्न्यूनया न तु विद्ध्यते' इति । तेन त्रिमुहूर्तयोगे पूर्वा नवमी ।

योगिनी, पूतना, शिवा, जंभिका, सिद्ध, गन्धर्व, माला, विद्याधर, नाग, दिक्पाल, लोकपाल जो तथा जो विघ्न और विनायक हैं और जगत्की शांति करनेवाले ब्रह्मा, आदि महर्षि हैं, वे सबही इस बलिको स्वीकार करें, और मेरा विघ्न न हो, पाप न हो शत्रु न हों और सुख देनेवाले सब भूत प्रेत मुझे सौम्य होजाँय ॥ इति महाष्टमीनिर्णयः ॥ महानवमी पूर्वोक्तवाक्यसे पूर्वयुक्त ग्रहण करनी. कारण कि, दीपिकामें यह लिखा है कि, दुर्गाव्रतकी नवमी और श्रावणी पूर्वयुता ग्रहण करनी. हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि श्रावणी, दुर्गानवमी दूर्वाष्टमी, होली, शिव-रात्री, वामनद्वादशी यह पूर्वविद्धा ग्रहण करनी. भविष्यपुराणमें लिखा है कि, आश्विनशुक्ल पक्षकी मूलसंयुक्त अष्टमी महानवमी कही है, यह त्रिलोकीमें भी दुर्लभ है, मूलनक्षत्र उपलक्षण है कारण कि, मदनरत्नमें लिंगपुराणका कथन है कि, दुर्गापूजामें नवमी मूल आदि तीन नक्षत्रोंसे युक्त बडी लिखी है, उसमें महिषमर्दिनी दुर्गाकी पूजा करे और जो यह वाक्य है कि, उदयगामिनी तिथिमें वह करनी चाहिये । यह पूर्वोक्तवाक्य नवमीसे भिन्न तिथिके विषयमें लिखे हैं कारण कि, नवमीमें विशेष लिखा है, वेध तीन मुहूर्तसे जानना चाहिये । यद्यपि हेमाद्रिके मतमें दो मुहूर्तका भी वेध लिखाहै तो भी सूर्योदयमें वह जानना, सायंकालको तो तीन मुहूर्तकाही वेध होताहै यही दीपिकामें लिखाहै कि, सायंकालकी तीनमुहूर्त्त भी तिथि: होय तो सम्पूर्णही जाननी । माधवकाभी यही कथन है कि सायंकालके समय न्यूनभी अगली तिथिसे वेध नहीं होता इससे तीन मुहूर्तके योगमें पूर्वोक्त वाक्यसे प्रथम नवमी ग्रहण करनी.

पूर्वोक्तवचनात् । ' न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन ' इति स्कान्दे परानिषेधाच्च ॥ त्रिमुहूर्तयोगाभावे तु निषिद्धापि परैव कार्येति निष्कर्षः ॥ यत्तु- " नवम्यां च जपं होमं समाप्य श्रवणेपि वा ' इति संग्रहोक्तेः ॥ ' व्रतं च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद्बलिः ' इतिदेवीपुराणाच्च ॥ तत्र होमबल्यादिनिर्णयः । नवम्यां होमबल्यादिविहितं तत्र-"आश्वयुक्छुक्लनवमी मुहूर्त वा कला यदि । सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः " इति सौरपुराणात् " सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि । बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र, देशे शुभावहम् ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभंगो भवेन्नृप"॥ इति मदनरत्ने देवीपुराणाच्च ॥ बल्यादौ परा कार्या ॥ उपवासादौ तु पूर्वेति मदनरत्ने उक्तम् । प्रतापमार्तण्डेप्येवम् । यत्तु 'अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेद्ध्रुवम्' इति कालिकापुराणे । तत्संधिपूजापरम् ।'अष्टमीनवमीसंधौ तृतीया खलु कथ्यते' इति तत्रैव तदुक्तेः ॥ कामरूपनिबन्धे-"अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च । तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला ॥ " अष्टमीमात्रे भवत्येव । " आश्विने पूजयित्वा तु अर्धरात्रेऽष्टमीषु च । घातयंति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः " ॥ तथा-" कन्यासंस्थे रवावीशे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः " तथा-"पशुघातश्च कर्तव्यो गवयाजवधस्तथा" इति ॥ रूपनारायणीये देवीपु-

स्कन्दपुराणमें यह निषेधभी है कि हे तात ! दशमीमें नवमीको कभी भी न करै तिससे तीन मुहूर्तका योग न होय तो निषिद्ध भी अगली करनी यही सिद्धान्त है । जो किसीने संग्रहके वाक्यसे यह लिखा है कि, श्रवणमें जप और होम नवमीको पूर्ण करै नवमीमें विधि पूर्वक व्रत, जागरण, बलिदान करै यह देवीपुराणमें है ॥ यहां नवमीको होम बलिदान लिखाहै, उसमें इस सौरपुराण और देवीपुराणके वाक्यसे बलि आदिमें दूसरी और व्रत आदिमें पहली करनी यह मदनरत्नमें लिखाहै कि, आश्विनशुक्ला नवमी मुहूर्त वा कलामात्र होय तो वह विद्या, लक्ष्मी जयकी इच्छावालोंको सम्पूर्ण जाननी चाहिये, सूर्योदयमें नवमी होय और आगे दशमी होय तो देशमें शुभ देनेवाले बलिदानको करना. हे राजन् ! अष्टमीमें बलिदान करनेसे पुत्रका नाश होताहै, और प्रतापमार्तण्डमें भी इसी प्रकार लिखाहै, जो यह कालिकापुराणमें कहाहै कि, अष्टमीको बलिदानसे अवश्य पुत्रनाश होताहै वह वाक्य सन्धिपजाकी प्रशंसाके निमित्त है. कारण कि, उसी स्थलमें उसने यह लिखा है कि, अष्टमी और नवमीकी सन्धिमें पूजा करनी कामरूप निबन्धमें भी कहाहै कि, अष्टमीका शेषभाग और नवमीका पूर्वभाग उसमें कोईई पूजा महाफलको देनेवाली होती है, केवल अष्टमीमें भी यह होती है आश्विनकी अष्टमीमें आधीरातके समय पूजा करके जो भक्तिसे पशुओंका वध करते हैं वे महाबलको प्राप्त होतेहै, कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्टमीको व्रत करके आधीरातमें बडे धनक विस्तारसे पूजा करै ॥ इसी प्रकार पशुका घात और नीलपशु और मेषका घात करै, रूपनारायणीयमें यह देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, वहांही भविष्यपुराणका यह वाक्य लिखाहै कि, तिससे महापुण्य और पापनाशिनी

राणात् ॥ तत्रैव भविष्ये—"तस्मादियं महापुण्या नवमी पापनाशिनी । उपोष्या सुप्रयत्नेन सततं सर्वपार्थिवैः ॥" निर्णयदीपे तु । महानवमी परदिने पराह्णव्यापित्वे परा ॥ अन्यथा पूर्वा ॥ "आवर्तनात्पूर्वकाले नवमी स्यात्परेहनि । दुर्गार्चा तत्र पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे त्वष्टमी यदि" इति धौम्यवचनादित्युक्तम् ॥ अस्य तु शारदानवमीविषयत्वं समूलत्वं च विमृश्यम् ॥ यानि तु—"नन्दायां ज्वलते वह्निः पूर्णायां पशुघातनम् । भद्रायां गोकुलक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति" इति ॥ "नवम्यामपराह्णे तु बलिदानं प्रशस्यते । दशमीं वर्जयेत्तत्र नात्र कार्या विचारणा" इति ॥ "नन्दायां दर्शने रक्षा बलिदानं दिशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते" ॥ 'ब्रह्मवैवर्तनारदादिवचनानि शुद्धाधिकनिषेधपराणि' इति मदनरत्ने ॥ तथा कालिकापुराणे—"नवम्यां बलिदानं तु कर्त्तव्यं वै यथाविधि । जपं होमं च विधिवत्कुर्यात्तत्र विभूतये" ॥ केचित्तु—'पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्' इति पूर्वोक्तदेवीपुराणादष्टम्यां होममाहुः ॥ अन्ये तु द्विविधवाक्यवशादष्टम्यामारभ्य नवम्यां समापयन्ति ॥ समुच्चयस्तु युक्तः ॥ रुद्रयामले तु विकल्प उक्तः ॥ तत्तु निर्मूलम् ॥ दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिगौडग्रन्थेष्वपि नवम्यां होम उक्तः ॥ होमे विशेषः । होमे च विशेष उक्तो डामरतन्त्रे—"पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् । होमयेद्वि-

---

यह नवमी बडे यत्नसे सब राजाओंके व्रत रहने योग्य है. निर्णयदीपमें तो यह लिखा है कि महानवमी परदिनमें अपराह्णव्यापिनी होय तो परली लेनी अन्यथा पहली करनी. 'कारण कि, यह धौम्यने कहा है कि, आवर्त्तन (मध्याह्न) से नवमी पूर्व कालमें परले दिन होय और जो अष्टमी पहले दिन पूर्वाह्णमें होय तो दुर्गाकी पूजा प्रथम दिन करै इस वाक्यको, शारद्नवमी विषयमें मानना चाहिये । और इसमें प्रमाणभी विचारने योग्य है, जो ब्रह्मवैवर्त नारद आदिके यह वाक्य हैं कि, नन्दामें अग्निहोत्र, पूर्णामें पशुवध, भद्रामें गौओंकी क्रीडा करै तो राज्य नष्ट होता है, नवमीके दिन अपराह्णमें बलिदान उत्तम है और दशमीको निषेध है इसमें विचार नहीं करना, नन्दामें राजदर्शन रक्षाबन्धन दिशाओंमें बलिदान करना, भद्रामें क्रीडा होय तो देशका नाश होता है, ये पूर्वोक्त वाक्य शुद्धासे अधिकके निषेधके विषय लिखे हैं, यह मदनरत्नमें कहा है इसी प्रकार कालिकापुराणके वाक्य हैं कि, नवमीको विधिसे बलिदान करै, और अपने ऐश्वर्यके निमित्त विधिसे जप होम करै, कोई तो इस पूर्वोक्त देवीपुराणके वाक्यसे अष्टमीको होम कहते हैं कि, पूर्वाषाढसे युक्त अष्टमीको पूजा, हवन, व्रत करै, और तो दोनों प्रकारके वाक्योंसे अष्टमीसे आरम्भ करके नवमीको पूर्ण करते हैं, इनकी एकता तो युक्त है, रुद्रयामलमें तो विकल्प लिखा है सो निर्मूल है, दुर्गाभक्तितरंगिणी आदि गौडग्रन्थोंमें तो नवमीको हवन लिखा है ॥ और हवनमें विशेष डामरतन्त्रमें यह लिखा है कि, हे राजन् ! घीसे

धिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम ॥ रुद्राध्याये यथा होमं मंत्रेणैकेन साधयेत् । तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत् " ॥ २ ॥ यद्वा सप्तशतीजप्यहोममन्त्रो नवाक्षरः । ' ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे इति नवाक्षरः ' इति केचित् ॥ पूजोक्तो ग्राह्य इति तु युक्तम् ॥ रुद्रयामलेपि ॥ " प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा । किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजदूर्वाङ्कुरैरपि ॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा । रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात् । नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च " ॥ इति ॥ रहस्ये तु-' प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा ' इत्युक्तम् । दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां तु तिलैर्जयन्तीमन्त्रेण च होम उक्तः-'पुरश्चरणकार्ये तु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः ' इति ॥ कालिकापुराणाद्बिल्वपत्रैश्चेति स्मार्ताः ॥ तन्न ॥ अत्र मानाभावात् ॥ अथ बलिदानम् ॥ तत्राश्वमेषछागमहिषस्वमांसानामुत्तरोत्तरं प्राशस्त्यं फलविशेषश्चान्यतोवसेय इति दिक् ॥ बलिप्रकारस्तु देवीपुराणे-" कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् । द्रोणपुष्पैश्च बिल्वाम्रजातीपुन्नागचम्पकैः ॥ पश्चाद्दं लक्षणोपेतं गन्धपुष्पसमन्वितम् । विधिवत्कालिकालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेत् " ॥ २ ॥ ' ॐ कालिकालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः ॥ इति मंत्रः ॥ ' तदुत्थरुधिरं मांसं गृहीत्वा पूजनादिषु ॥ ' आदिशब्दात्

और श्वेत तिलोंमे मिली खीरका भक्ति और विधिसे दशांश हवन करै, जैसे रुद्राध्यायमें एक मन्त्रसे हवन होता है इसी प्रकार स्तोत्रके जपमें एक श्लोकसे हवन करे, अथवा सप्तशती (दुर्गापाठ) जपमें ' ऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस नवाक्षरसे वा पूर्वोक्त पूजाके नवाक्षर मन्त्रसे हवन करै यह युक्त है, रुद्रयामलमें तो यह लिखा है कि, खीर और तिल पूजाके प्रधान द्रव्य हैं और केशू, सरसों, सुपारी, खील, दूर्वा, यव, श्रीफल, नानाप्रकारके दिव्य फल, लालचन्दनके खण्ड, मनोहर गन्ध इन सब द्रव्योंसे प्रतिश्लोकसे वा नवाक्षरसे वा (नमो देव्यै) इससे हवन करै, रहस्यमें तो यह लिखा है कि, घी मिली खीरसे प्रतिश्लोक पढकर होम करै, दुर्गाभक्तितरंगिणीमें तो जयन्तीमन्त्रसे तिलोंका होम करना कहा है पुरश्चरणके कार्योंमें तो बिल्वपत्रसे मिले तिलोंसे होम करना कहा है इस कालिकापुराणसे बेलपत्रसे होम करना कहाहै यह स्मार्त्त कहते हैं सो उचित नहीं कारण कि, इसमें प्रमाण नहीं है ॥ अब बलिदान कहतेहैं जिसमें मेष, बकरी, भैंसा, अपना मांस, उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं इसका फल विशेष दूसरे ग्रन्थोंसे देखलेना यही मार्ग है । बलिका प्रकार तो देवीपुराणमें यह लिखा है, कि, हे इन्द्र ! कन्याके सूर्यमें शुक्लाष्टमीको द्रोणके फूल, बेल, आम, जाती, पुन्नाग, चम्पासे तथा लक्षणसे युक्त गन्ध पुष्पसे पांचवर्षके पशुकी पूजा करे, और विधिसे (ॐकालिकालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः) इस मंत्रको जपकर खड्गसे वध करे इसके निकले हुए रुधिर और मांसको लेकर पूजना चरकी

चरकीविदारीपापराक्षस्यः । ' नैर्ऋतेभ्यः प्रदातव्यं महाकौशिकमन्त्रितम् । ' मन्त्रस्तु वक्ष्यते ॥ तथा—"तस्याग्रतो नृपः स्नायात्कृत्वा शत्रुं तु पैष्टिकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः" ॥ अशक्तौ ब्राह्मणेन च कूष्माण्डादिभिर्बलिदानं कार्यम् ॥ तदुक्तं कालिकापुराणे—"कूष्माण्डमिक्षुदण्डं च मांसं सारसमेव च । एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः सदा ॥" रुद्रयामलेपि—"छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम् । वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना" ॥ तथा—" ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्मांडं बलिकर्मणि । श्रीफलं वा सुराधीश छेदं नैव तु कारयेत् ॥ छेदे विकल्पः ॥ माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता ॥" कालिकापुराणे—"उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा । निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् । चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोस्तु ते ॥ यज्ञार्थे बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं बलिं मत्स्वरूपिणम् । चिन्तयित्वा न्यसेत्पुष्पं मूर्ध्नि तस्य तु भैरव ॥ रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः" ॥ " ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं च पूजयेत् ॥ पूजयित्वा ततः खड्ग ॐ हुंफडिति

विदारी पापराक्षसी राक्षस इनको महाकौशिकमंत्र (जो आगे लिखेंगे) पढकर दे. इसी प्रकारसे मन्त्र है उसके आगे राजा स्नान करे, और पिट्टीके शत्रुको बनाकर खड्गसे मारकर स्कंद और विशाखाके निमित्त प्रदान करे शक्ति न होय तो ब्राह्मणके द्वारा पेठा आदिसे बलिकरनी चाहिये यही कालिकापुराणमें लिखाहै कि कूष्माण्ड (पेठा), गन्ना, सारसका मांस ये बलिके तुल्य कहेहैं और तृप्तिमें सदा बकरेके तुल्य हैं. रुद्रयामलमें भी लिखाहै कि, छाग न होय तो कूष्माण्ड वा मनोहर नारियलको वस्त्रसे लपेटकर छुरी आदिसे छेदन करावे, इसी प्रकार हे इन्द्र ! ब्राह्मणोंको सदैव बलिकर्ममें कूष्माण्ड वा श्रीफल देना चाहिये और उसका छेदन न करावे, छेदन करनेमें विकल्प है, ज्ञानी ब्राह्मण उर्द अन्नसे बलि दे, कालिकापुराणमें कहाहै कि, आप उत्तराभिमुख होकर और बलिको पूर्वाभिमुख करके देखे और साधक भक्त पीछेसे इस मंत्रको उच्चारण करे तू पशु मेरे भाग्यसे बलिरूप प्राप्त हुआ है सर्व रूपी और बलिरूप तुझे मैं प्रणाम करता हूं चंडिकाको प्रीतिदानसे तू दाताकी आपत्तियोंको हरता है चांमुडाके बलिरूप तुम्हें मैं प्रणाम करताहूं, ब्रह्माने यज्ञके निमित्त स्वयं पशु रचे हैं, इससे तुझे मैं आज वध करताहूं तिससे यज्ञमें मारना नहीं मारनेकी समान है, ऐंह्रींश्रीं इस मंत्रसे उस बलिके देवतारूपी चिन्तन करके हे भैरव ! उसके मस्तकपर फल रक्खे, तू चण्डिकाकी जिह्वा इन्द्रलोक देनेवाली है ॥ ह्रींह्रीं इस मन्त्रसे ध्यान करके खड्गकी पूजा करे पूजित खड्गको ॐहुंफट्, इस मन्त्रसे लेकर उस उत्तम

मन्त्रकैः। गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्बलिमुत्तमम् ॥ ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतामिति। बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥ ८ ॥" मत्स्यसूक्ते–"नवम्यां पूर्ववत्पूजा कर्तव्या भूतिमिच्छता। दक्षिणां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥ शतचण्डीविधाननिर्णयः ॥ अथात्र प्रसंगाच्छतचण्डीविधानमुच्यते रुद्रयामले–"शतचण्डीविधानं च प्रोच्यमानं शृणुष्व तत्। सर्वोपद्रवनाशार्थं शतचण्डीं समारभेत् ॥ षोडशस्तंभसंयुक्तं मण्डपं पल्लवोज्ज्वलम्। वसुकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्यात्त्रिभागतः ॥ पक्केष्टकचितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम्। तत्र वर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम् ॥ पञ्चवर्णवितानं च किंकिणीजालमण्डितम्। आचार्येण समं विप्रान्वरयेद्दश सुव्रतान् ॥ ईशान्यां स्थापयेत्कुम्भं पूर्वोक्तविधिना चरेत्। वारुण्यां च प्रकर्तव्यं कुण्डं लक्षणलक्षितम् ॥ मूर्तिं देव्याः प्रकुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै। तदर्धेन तदर्धेन तदर्धेन महामते ॥ अष्टादशभुजां देवीं कुर्याद्वाष्टकरामपि। पट्टकूलयुगच्छन्नां देवीं मध्ये निधापयेत् ॥ देवीं सम्पूज्य विधिवज्जपं कुर्युर्दश द्विजाः। शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णवम् ॥ चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोयमुदाहृतः। एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम् ॥ रूपाणि क्रमशस्तद्वत्पूजनादिकमाचरेत्। पञ्चमीदिवसे प्रातर्होमं कुर्याद्विधानतः ॥

बलिका छेदन करे, फिर (ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं कौशिकीति रुधिरेणाप्यायतां) इस मन्त्रसे बलि देनी दुर्गाके बलिदानमें सब स्थानमें यह विधि कथन की है, मत्स्यसूक्तमें लिखाहै कि, धनकी इच्छावाले मनुष्यको नवमीके दिन पूर्वके तुल्य पूजन करना तथा दक्षिणा और वस्त्र आचार्यको देने चाहिये॥ अब प्रसंगसे शतचंडीकी विधि लिखते हैं रुद्रयामलमें लिखा है कि, मेरे कहेहुए शतचंडीविधानको सुनो सब उपद्रव नाशके निमित्त शतचंडीका आरम्भ करना चाहिये। पत्तोंसे उज्ज्वल सोलह स्तम्भोंका मंडप निर्माण करे उसके मध्यके त्रिभागमें आठ कोणकी ऐसी वेदी निर्माण करे जो पक्की ईंटोंसे चुनी हो मनोहर और एक हाथ ऊँची हो उसपर पांच रंगोंसे सुन्दर मंडल निर्माण करे, पांच वर्णका चँदोआ झालर सहित ऊपर लगावे, आचार्य सहित सुन्दर व्रतवाले दश ब्राह्मणोंका वरण करना. हे इन्द्र! ईशानदिशामें पूर्वोक्तविधिसे घडेको स्थापन करे, और लक्षणोंसे युक्त कुण्ड दक्षिणदिशामें बनावे, सुवर्णके एक पलकी वा आधेकी वा उससे आधेकी वा उससे आधेकी ऐसी मूर्ति बनवावे, जिसके अठारह वा आठ भुजा हों, और रेशमके दो वस्त्रोंसे ढकी हो देवीको मध्यमें स्थापन करे, विधिसे देवीकी पूजा करके दशों ब्राह्मण विधिपूर्वक जप करें, और आदिअन्तमें सौ सौ नवार्ण मंत्रका और मध्यमें सप्तशती चंडीका जप करें, यह संपूर्ण कहा है. एक, दो, तीन, चार पाठ चार दिनतक क्रमसे करने उसी प्रकार पूजन करे, पांचवें दिन विधिसे पूजन करे, पांचवें दिन विधिसे हवन करे, चंडीपाठका होम प्रतिश्लोक दशां

गुडूचीं पायसं दूर्वां तिलाञ्छुक्लान्यवानपि । चण्डीपाठस्य होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः ॥ होमं कुर्याद्ग्रहादिभ्यः समिदाज्यचरून् क्रमात् । हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद्द्विजेभ्यो दक्षिणां क्रमात् ॥ कपिलां गां नीलमणिं श्वेताश्वं छत्रचामरे । अभिषेकं ततः कुर्युर्यजमानस्य ऋत्विजः । एवं कृतेऽमरेशान सर्वसिद्धिः प्रजायते " ॥ सहस्रचण्डीनिर्णयः ॥ अथ सहस्रचण्डी । सा च तत्रैवोक्ता–"सहस्रचण्डीं विधिवच्छृणु विष्णो महामते । राज्यभ्रंशे महोत्पाते जनमारे महाभये ॥ गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा । इत्यादिविविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा कारयेत्तथा । जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्धस्तश्च मण्डपः ॥ भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् । गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च । सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम् । पञ्चनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या वार्धमानतः ॥ अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता । अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं प्रभो ॥ शतं वा नियताहारः पयःपानेन वर्तयेत् । एवं चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत् ॥ तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥" इति ॥ एतद्द्वयं यद्यपि महानिबन्धेषु नास्ति तथापि प्रचररूपत्वादुक्तमिति दिक् ॥ वाराहीतंत्रे–"संकटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा । जातिभ्रंशे कुलोच्छेदेप्या–

रासे, गिलोय, खीर, दूर्वा, श्वेततिल, यवसे होता है, और समिधा, घृत, चरु इनसे ग्रहोंके निमित्त हवन करे, और होमके पीछे ब्राह्मणोंको कपिलागौ, नीलमणि, श्वेतछत्र, चामरकी दक्षिणा दे, फिर ऋत्विजको यजमानका अभिषेक करना चाहिये. हे इन्द्र ! ऐसे करनेसे संपूर्ण सिद्धि प्राप्त होती हैं ॥ अब सहस्रचण्डीकी विधि कथन करते हैं–यह भी रुद्रयामलमें ही लिखी है हे महामते विष्णो ! सहस्र चंडीको विधानसे सुनो कि, राज्यभ्रष्ट, महान् उत्पात, जनोंका मरना, महान् भय, हाथी और घोडोंकी महामारी पराये चक्रका भय, क्षयरोग आदिका भय इत्यादि अनेक दुःखोंकी प्राप्ति हो तो सहस्र चंडीका जप करे वा करावे, इसके जापक सौ कहे हैं और बीस हाथका मंडप बनाना लिखा है, एक सहस्र ब्राह्मण भोजन करावे और सौ १०० गौकी दक्षिणा दे, और गुरुको दूनी दक्षिणा, शय्यादान, सप्तधान्य, भूमिदान, श्वेत रमणीय घोडा दे और पांच निष्कभर वा ढाई निष्कभर सुवर्णकी अठारह भुजायुक्त सब आयुधोंसे विभूषित देवीकी मूर्ति बनावे, हे विभो ! प्रतिदिन सहस्र ब्राह्मणोंको या सौ ब्राह्मणोंको निरन्तर अन्नदान करना चाहिये और प्रमितदुग्ध पानसे यजमान रहै, इस प्रकारसे जो चण्डिकाके सहस्र पाठ करता है उसके कार्यकी सिद्धि होती है, इसमें विचार नहीं करना । यद्यपि यह दोनों विधान बडे २ ग्रन्थोंमें नहीं लिखे हैं तथापि इनका प्रचार अधिक होनेसे इस ग्रन्थमें लिखे हैं. इति दिक् । वाराहीतन्त्रमें कहा है कि संकटकी प्राप्ति चिकित्साके अयोग्य

युषो नाश आगते ॥ वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये । तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवोपपातके ॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः संपद्यते शुभम् । श्रेयोवृद्धिः शतावृत्ताद्राज्यवृद्धिस्तथापरा ॥ मनसा चिन्तितं देवि सिद्धयेदष्टोत्तराच्छतात् ॥ सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा । भुक्त्वा मनोरथान्कामान्नरो मोक्षमवाप्नुयात् । चण्डयाः शतावृत्तिपाठात्सर्वाः सिद्धयन्ति सिद्धयः " ॥ इति शतचण्डीसहस्रचण्डीविधिः ॥ नवरात्रपारणानिर्णयः । अथ नवरात्रपारणा ॥ सा च दशम्यां कार्या—"आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम् । प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यां हि यथाक्रमम्" इति ॥ हेमाद्रौ धौम्यवचनात् ॥ 'नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्धया पूजाजपादिकम्' इति ॥ प्रागुक्तवचनैर्नवमीपर्यन्तं प्रधानभूतपूजाद्युक्तेरुपवासादेश्चाङ्गत्वेन तत्पर्यन्तत्वात् ॥ आदिशब्देनोपवासोक्तेः पूर्वोक्तत्रिरात्रव्रते नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ॥ न च पारणान्तत्वेन त्रिरात्रत्वम् । विष्णुत्रिरात्रादौ तथाप्रसक्तेः ॥ न चात्रोपवासे मानाभाव इति वाच्यम् । " एवं च विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रोपवासतः । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे " इति हेमाद्रौ भविष्योक्तेः ॥ नवरात्रसमाख्यातो नवम्या अप्युपोष्यत्वाच्च ॥ ननु तिथि-

---

रोग जाति वंश अवस्थाका नाश वैरी और व्याधिकी वृद्धि, धननाश, क्षयी रोग, तीन प्रकारके उपद्रव, और उपपातकमें यत्नसे शतचंडी करनी चाहिये तो शुभ होता है चण्डीसे कल्याण और राज्यकी वृद्धि होती है, हे देवी ! शत पाठसे मनोरथ सिद्ध होते हैं सहस्रचण्डीमें स्वयं आनकर लक्ष्मी प्राप्त होती है संपूर्ण मनोरथ और कामनाओंको भोगकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है, चण्डीसे सब सिद्धि होती है । (इति शतचंडीसहस्रचंडीविधिः) ॥ अब नवरात्रके पारणाका निर्णय लिखते हैं—वह पारणा दशमीमें करना चाहिये. कारण कि, हेमाद्रिमें धौम्यके वाक्यसे नवमी तिथिपर्यन्त व्रत लिखा है कि आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे नवमीतक नवरात्र करने वा सप्तमीसे लेकर नवमीतक त्रिरात्र करने और वृद्धिसे पूजा व्रत आदि करने, पहले कहे इन वाक्योंसे नवमी पर्यन्त प्रधान पूजा लिखी है और व्रत आदि पूजाके अंग हैं, कारण कि आदिशब्दसे व्रत लिखा है और पूर्वोक्त त्रिरात्रव्रतमें नवमीको भी व्रत प्राप्त होता है, यदि कोई शंका करे कि पारणाके अन्ततक त्रिरात्र होंगे सो उचित नहीं कारण कि, विष्णुके त्रिरात्रमें भी इसी प्रकार होजायगा, इसमें भी कोई शंका करे कि, यहां व्रतमें प्रमाण नहीं सोभी यथार्थ नहीं कारण कि, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे यह लिखा है कि, इस प्रकार विन्ध्यवासिनीमें नवरात्रके व्रत एक वार भोजन, नक्त, अयाचितव्रतसे मनुष्यको स्थान २ और पुर २ में व्रत करना चाहिये और नवरात्रके नामसे नवमी भी व्रत करने योग्य है, यदि कोई शंका क

ह्रासेऽष्टवाप्युपवासा भवन्तीति कथं समाख्या ॥ तेन कर्मविशेषे नवरात्रशब्दो रूढः ॥ अत एवोक्तं देवीपुराणे " तिथिवृद्धौ तिथिह्रासे नवरात्रमपार्थकम् " इति चेन्न । तिथिह्रासेपि नवतिथीनामुपोष्यत्वान्नवरात्रत्वाक्षतेः ॥ एतेन रात्रीणां प्राधान्यात् ह्रासे अमामादाय नवत्वमिति मूर्खोक्तिः परास्ता ॥ यत्तु देवीपुराणे । "कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् । अयाची ह्यथ वैकाशी नक्ताशी वाथवाम्ब्वदः ॥" इति व्रतचतुष्टयमुक्तं तल्लौहाभिसारिकविषयम् । तस्य "जयाभिलाषी नृपतिः प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् । लौहाभिसारिकं कर्म कारये-द्यावदष्टमी" इति भविष्येऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेः ॥ रूपनारायणेन तु नन्दादिव्रत-प्रयोगं पृथगेवोक्त्वा तस्य नवम्यां पारणमुक्तम् ॥ यदपि निर्णयदीपे—"आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः । नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमीमिश्रिता न चेत् ॥ दशमी-मिश्रिता यत्र पारणे नवमी भवेत् । दुःखदारिद्र्यदा ज्ञेया तथा व्रतविना-शिनी" ॥ २ ॥ इति ब्राह्मनाम्ना लिखितं वचनं यच्च रुद्रयामले इति वदन्ति— "अष्टम्या सह कार्या स्यान्नवमी पारणादिने । यो मोहाद्दशमीवेधे नवम्यां चण्डिकां यजेत् ॥ पारणं च प्रकुर्याद्वै तस्य पुण्यं निरर्थकम् । नवम्यां पारिता देवी कुल-वृद्धिं प्रयच्छति ॥ दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति वै । तस्मात्तु पारणं

कि, तिथिके घटनेमें आठ व्रत तो नवरात्रनाम किस प्रकार होसकता है इससे कर्म विशेषमें नवरात्रशब्द रूढ है इसीसे देवीपुराणमें लिखा है कि, तिथिकी वृद्धि और हानिमें नवरात्र नाम सत्य नहीं है सो ठीक नहीं कारण कि तिथिके घटनेमें भी नौ तिथियोंमें व्रत होनेसे नवरात्र नाममें कोई हानि नहीं होती इनसे यह मूर्खोंका कथन खण्डित हुआ कि रात्रि प्रधान है, वह घटजाय तो अमावस्याको लेकर नवरात्र पूरे करने ॥ जो देवीपुराणमें यह चार व्रत लिखे हैं कि, कन्याके सूर्यमें शुक्ल छठसे लेकर अयाचित, एक वार भोजन, नक्त व्रतको करै, सो पूर्वोक्त लौहाभिसारिक कर्मके विषय जानना, कारण कि, वह कर्म भविष्यमें अष्टमीपर्यन्तही लिखा है कि, जयकी इच्छावाला राजा अष्टमीपर्यंत लौहाभिसा-रिक कर्म सम्पादन करै, रूपनारायणने तो नन्दा आदि प्रयोगको कथन कर उसका नवमीमें पारण लिखा है । जो निर्णयदीपमें ब्रह्मपुराण नामसे यह कहा है कि, आश्विनके शुक्लपक्षमें नौ ९ दिन व्रत करके दशमीयुक्त न होय तो नवमीको ही पारणा करै, यदि पारणामें दशमी-युक्त नवमी हो तो दुःख दारिद्र्यकी देनेवाली और व्रतकी नाशक जाननी. जो रुद्रयामलमें यह लिखा है कि, पारणाके दिन अष्टमीयुक्त नवमी करनी चाहिये, जो अज्ञानसे दशमीविद्धा नवमीको पूजते हैं वा पारणा करते हैं उनका पुण्य व्यर्थ होजाता है, नवमीमें पारणा करनेसे देवी वंशकी वृद्धि करती है और दशमीमें पारणासे वंशका नाश करती है, तिससे हे इन्द्र !

कुर्यान्नवम्यां विबुधाधिप ॥ ३ ॥ " इत्यादीनि ॥ तानि यदि समूलानि तदा लौहाभिसारिकनन्दादिव्रतचतुष्टयविषयाणि ॥ तस्याऽष्टमीपर्यन्तमेवोक्तेरित्युक्तं प्राक् ॥ अन्यथा महाष्टम्यां परविद्धायां ता (पा) रणाविधाने पूर्वनिबन्धैर्विरोधो दुर्वारः स्यात् ॥ यानि तु कैश्चिल्लिखितानि नवम्यां पारणाविधायकानि वचनानि तानि हेमाद्र्यादिविरुद्धत्वान्निर्मूलानि ॥ समूलत्वेपि यदा दिनद्वये नवमी, तदा द्वितीयदिन उपोष्य तिथ्यन्ते पारणा न किं तु नवमीमध्ये कार्येत्येवं नेयानि शिवरात्रिपारणावत् ॥ अत्र केचित्पारणाहे सूतकादिप्राप्तौ तदतिक्रम्य पारणां कुर्यादित्याहुः ॥ तन्मंदम् ॥ "काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके । तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्" इति माधवीये कौर्मोक्तेः ॥ "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ इति विष्णुवचनाच्चाशौचमध्येपि तत्कर्तव्यतावगतेः ॥ पारणान्तत्वाद्व्रतस्य ॥ प्रारम्भस्तु तेनैवोक्तः "प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः । नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया" इति ॥ रुद्रयामलेपि—"सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम् । तदन्ते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः" इति ॥ तदन्ते–सूतकान्ते । एवं स्त्रीभिरपि रजोदर्शनमध्ये कर्तव्यमेव पारणम् । "संप्रवृत्तेपि रजसि न

नवमीमें पारणा करनी चाहिये, इत्यादि वाक्य यदि प्रमाणयुक्त हैं तो लौहाभिसारिक नन्दा आदि चार व्रतोंके विषयमें जानने यह प्रथम कहआये हैं अन्यथा परविद्धा अष्टमीको पारणा करोगे तो पूर्व (ग्रन्थों) के संग विरोध नहीं करसकोगे जो यह वाक्य किसीने नवमीमें पारणा आदिके विषयक लिखे हैं, वे हेमाद्रि आदिके विरुद्ध होनेसे निर्मूल हैं, यदि समूल भी होय तो वे इस प्रकार लगाने योग्य हैं जब दो दिन नवमी होय तब दूसरे दिन व्रत करके तिथिके उपरान्तमें पारणा न करै, किन्तु शिवरात्रिके तुल्य नवमीके बीचमेंही कर ल जो कोई यहां यह कथन करते हैं कि, पारणाके दिन सूतक आदि आपडै तो सूतककी निवृत्ति होनेपर पारणा करनी, सो मन्दता है, कारण कि, माधवीयमें कूर्मपुराणका लेख है कि, काम्यव्रतके प्रारम्भसे मरण वा सूतक होजाय तो वहां दान और पूजनको त्यागकर काम्य व्रत करना और व्रत, यज्ञ, विवाह होम, श्राद्ध, पूजन, जपके प्रारम्भके उपरान्त सूतक नहीं. और प्रारम्भके पहिले सूतक है ॥ इस विष्णुके वाक्यसे पारणान्त व्रत होनेसे पारणान्तव्रतही प्रतीत होता है, प्रारम्भ तो सूतकमें नहीं लिखा है कारण कि, यह वाक्य है कि, प्रारम्भ, वरण, यज्ञ, और सूत्रमें व्रतका संकल्प, विवाह आदिमें नांदीमुखका संकल्प, श्राद्धमें पाक ये सूतकमें न करने चाहियें, रुद्रयामलमें यह लिखा है कि, नवमीका सूतकमें भी हवन करके पारणा करै और सूतकके पाछम ब्राह्मण जिमावे, और शक्तिसे दान दे, इसी प्रकार स्त्रीभी रजोदर्शनके उपरान्तमें पारणा करले कारण कि, माधवीयमें ऋष्यशृंगने कहा है कि, रजके होनेपरभी स्त्री द्वादशीके व्रतको न त्यागे

त्याज्यं द्वादशीव्रतम्' इति माधवीये ऋष्यशृङ्गवचनात् । द्वादशीव्रतमित्युपलक्षणम् ॥ "प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन" इति । तत्रैव सत्यव्रतवचनात् ॥ किं, च एकादश्यादौ पञ्चषाशौचपाते मासान्ते पारणापत्तिः ॥ मासोपवासान्ते पञ्चषाशौचपाते जीवनासम्भवश्च ॥ यत्तु–"नियमस्था यदा नारी प्रपश्येदन्तरा रजः । उपोष्यैव तु ता रात्रीः स्नात्वा शेषं चरेद्व्रतम् " इत्यङ्गिरोवचनम् । यच्च हारीतवचनम्–"नियमस्था व्रतस्था स्त्री रजः पश्येत्कथञ्चन ॥ त्रिरात्रं तु क्षिपेदूर्ध्वं व्रतशेषं समापयेत् ॥" तद्विधवोपवासविषयम् ॥ तासां तत्र भोजननिषेधादिति केचित् ॥ वयं तु प्रागुक्तसत्यव्रतवचने दीर्घतपसामिति विशेषणोपादानाद्द्वादशीव्यतिरिक्तसकलैकाहोपवासविषयोऽयं निषेधः । त्रिरात्रनवरात्रादिदीर्घव्रतेषु तु रजोमध्ये पारणा इति ब्रूमः ॥ आशौचमध्ये सर्वापि पारणा भवति प्रागुक्तकौर्मवचनादिति सिद्धम् । अथ चोपवासपारणानिर्णयः सर्वव्रतेषु बोद्धव्य इत्यलं भूयसा ॥ दशम्यां देवीविसर्जननिर्णयः । दशम्यां देवीं विसर्जयेत् ॥ तदुक्तं दुर्गाभक्तितरंगिण्यां देवीपुराणे–"ततः प्रातः पूजयित्वा दशम्यां विधिपूर्वकम् । संप्रेषणं तु कर्तव्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।

द्वादशीव्रत और व्रतोंका भी उपलक्षण है. कारण कि, वहांही सत्यव्रतका कथन है कि, दीर्घ तपके प्रारम्भ करनेपर यदि स्त्रियोंको रजोदर्शन होजाय तो वहाँ भी किसी प्रकार व्रतका उपरोध नहीं होता, और यह भी लिखा है कि, एकादशी आदि व्रतोंमें पांच छः आशौचोंके लगातार आनेपर महीनेके पीछेमें पारणा होगी, और मासोपवासके मध्यमें पांच छः आशौच आनेपर जीवनका भी असम्भव प्राप्त होगा, जो ये अंगिरा और हारीतके वाक्य हैं कि, नियममें स्थित हुई यदि स्त्री रजको देखले तो उन रात्रियोंमें व्रत स्नान करके शेष व्रतको करना। नियम और व्रतमें स्थित स्त्री यदि किसी प्रकार रजको देखे तो तीन रात्रके बितानेपर शेष व्रतको पूर्ण करे, ये वाक्य विधवाके व्रतमें हैं कारण कि विधवाओंको ऋतुमें भोजनका निषेध कहा है कोई यह कहते हैं, परन्तु हम तो यह कहते हैं पूर्वोक्त सत्यव्रतके कथनमें (दीर्घतपसां) इस विशेषण देनेसे द्वादशीसे सिवाय एक दिनके सब व्रतोंमें विषयमें यह निषेध है, तीनरात्र नवरात्र आदि दीर्घव्रतोंके विषयमें तो रजके मध्यमें भी पारणा करले, आशौचके बीचमें तो पूर्वोक्त कूर्मपुराणके वाक्यसे सब पारणा होती हैं यह व्रतके पारणका निर्णय सब व्रतोंमें जानना अधिक कहनेसे क्या यहीं वस करते हैं दशमीको देवीका विसर्जन करे, सोई दुर्गाभक्तितरंगिणीमें देवीपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, तिससे पीछे दशमीके दिन प्रातःकाल पूजन कर गीतवाजेके शब्दोंसे (विसर्जन) करे. हे भगवति ! रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र, धन और सब कामनाओंको मुझे दीजिये, हे महिषघ्नि ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! हे मुण्डमालिनि ; हे देवि ! अवस्था, आरोग्य , ऐश्वर्य दीजिये आपको

आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य देवीं तु ततश्चोत्थापये-द्बुधः। उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥ कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह। गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥ व्रज स्रोतोजलं वृद्धयै स्थीयतां च जले त्विह ॥ ९ ॥" इति जलं नीत्वा।"दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥ २ ॥" इति जले प्रवाहयेत् ॥ विजयादशमीनिर्णयः ॥ इयमेव विजयादशमी ॥ सा च द्वितीयदिने श्रवणयोगाभावे पूर्वा ग्राह्या ॥ तदुक्तं हेमाद्रौ स्कान्दे-"दशम्यां तु नरैः सम्यक्पूजनीयाऽपराजिता। ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः ॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्यापराजिता। क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः ॥ नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता। ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी॥ ३ ॥" तथा-"आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेन्नरः। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्" इति ॥ यदा तु पूर्वदिने श्रवणयोगाभावः परदिने चाल्पापि तद्योगिनी, तदा परैव ॥ तथा च हेमाद्रौ व्रतकाण्डे कश्यपः-"उदये दशमी किंचित्संपूर्णैकादशी यदि। श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः। उल्लंघयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो

प्रणाम है. इस प्रकार प्रार्थना करके बुद्धिमान् देवीको उठावै, हे देवि ! हे चण्डेशि ! श्रेष्ठ पूजाको ग्रहण करके उठिये और आठ शक्तियों सहित मेरा कल्याण कीजिये. हे देवि ! हे चण्डिके ! अपने श्रेष्ठ स्थानको गमन करो वृद्धिके निमित्त स्रोतके जलमें गमन करो, और इस जलमें जाओ, इस मन्त्रसे उठाकर और लेजाकर जलमें प्रवाह करदे कि, हे दुर्गे ! हे देवि ! हे जगन्मातः ! वर्षदिनके पीछे रक्षाके निमित्त फिर आनेके निमित्त पूजा की हुई तुम अपने स्थानको जाओ ॥ यही विजया दशमी है वह दूसरे दिन श्रवणका योग न होय तो पहली ग्रहण करनी योग्य हेमाद्रिमें स्कंदके वाक्यसे लिखा है कि, दशमीको मनुष्य भली प्रकार कल्याणकी प्राप्तिके निमित्त और पूर्वोक्तविधिसे अपराजिता देवीका पूजन करे, नवमीके शेषयुक्त दशमीमें पूजा करनेसे जयवर्द्धिनी अपराजिता जय देतीहै, इसी प्रकार आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमीमें मनुष्यको अपराजिताका पूजन करना चाहिये और एकादशीमें न करे यदि प्रथमदिन श्रवणका योग न होय और अगले दिन यदि श्रवणसे युक्त थोडीभी तिथि होय तो अगलीही लेनी इसी प्रकार हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें कश्यपने लिखा है कि, यदि उदयकालमें दशमी किंचित्मात्रभी हो और आगे सम्पूर्ण एकादशी हो तब यदि अपराह्ण समयपर श्रवण नक्षत्र होय तो वह विजयादशमी कहाती है, जिससे श्रवण नक्षत्रमें दशमीके दिन रामचन्द्रने प्रस्थान किया है

–नराः ॥ २ ॥ '' इति ॥ कालेऽपराह्ने ॥ परदिनेऽपराह्ने श्रवणाभावे तु सर्वपक्षेषु पूर्वैव ॥ मदनरत्नेप्येवम् । ज्योतिर्निबन्धे रत्नकोशे च नारदः–''ईषत्संध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः ॥ ईषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥ सूर्योदये यदा राजन्दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ '' अत्रायं निर्गलितोर्थः ॥ अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः ॥ तत्रैव पूजाद्युक्तेः ॥ प्रदोषो गौणः । तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् ॥ दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा । अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् ॥ इदं शुद्धतिथौ अन्यकाले श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे तु पूर्वा॥ तत्रापि परदिनेऽपराह्ने श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ॥ तत्र विशेषः । अत्र विशेषो भार्गवार्चनदीपिकायां भविष्ये–''शमीयुक्तं जगन्नाथं भक्तानामभयङ्करम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥'' शमीमन्त्रस्तु हेमाद्रौ गोपथब्राह्मणे–''अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येहं शमीं शुभाम् ॥ '' तथा भविष्ये–''शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका । धारिण्यर्जुनबाणानां

इससे मनुष्य उस दिन श्रवण नक्षत्रमें ग्रामकी सीमाको लंघन करे, यदि परले दिन श्रवण नक्षत्र न होय तो सब पक्षोंमें प्रथमही लेनी, इसी प्रकार मदनरत्नमें भी कहाहै, ज्योतिर्निबन्धमें रत्नकोशमें नारदका वाक्य है कि, जिस समय थोडी सन्ध्या बीतीहो और कुछ तारे उदय हुए हों उस समय जो विजय मुहूर्त कहते हैं वह सब कार्य और अर्थोंकी सिद्धिको देता है। आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमी यदि श्रवण नक्षत्र युक्त हो तोभी राजाओंको पट्टाभिषेक (राजगद्दी) में पूर्वविद्धा न करनी चाहिये, आश्विनके शुक्लपक्षमें सूर्योदयमें यदि दशमी तिथि हो तो उसे पंडित विजयादशमी कहते हैं यहां यह मुख्य अर्थ है कि, अपराह्णमें पूजा आदिके कथनसे कर्ममें अपराह्ण मुख्य समय है और प्रदोष गौण है, जिसमें यदि दोनों दिन दशमी अपराह्ण (व्यापिनी न होय तो प्रदोषकी व्याप्ति सम्बन्धकी अधिकतासे ग्रहण करनी, और दोनों दिन प्रदोष व्यापिनी न होय तो, अपराह्णकी व्याप्तिकी अधिकतासे) अगलही लेनी, यह शुद्ध तिथिके विषयमें जानना, अन्य कालमें तो श्रवण रोहिणीके समान अप्रयोजक है कि, यदि दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी न हो वा होय तो श्रवणसे युक्त प्रथमकीही ग्रहण करनी और यदि तिसमें भी परले दिन अपराह्णमें श्रवण होय तो थोडी भी परलीही लेनी, यह संक्षेपसे कहा है ॥ यहाँ मार्गवार्चनदीपिकामें भविष्यपुराणमें यह विशेष लिखा है कि, भक्तोंको अभय करनेवाले शमीसे युक्त जगन्नाथको पूजन कर फिर शमीकी पूजा करे, शमीकी पूजाका मन्त्र हेमाद्रिमें गोपथब्राह्मणमें यह कहा है मैं अमंगल (दुःख) और पापोंके दूर करनेवाली और दुःस्वप्नोंके नष्ट करनेवाली धन्य और शुभरूप शमीकी शरणको प्राप्त हुआ हूं और इस प्रकार भविष्यपुराणमें लिखा है कि, जो लालकांटे तथा अर्जुनके बाणोंको धारण करनेवाली है और रामको प्रियवादिनी

रामस्य प्रियवादिनी ॥ १ ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥२॥ " इति ॥ तथा–"गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् । गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति । ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह" इति॥ बलिनीराजनम् । अत्रैव बलिनीराजनमुक्तं कृत्यरत्ने । तत्र मन्त्रः–" चतुरङ्गबलं मह्यं निररिष्टं व्रजत्विह । सर्वत्र विजयो मेऽस्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि " इति ॥ गौडनिबन्धे ज्योतिषे–" कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम् । शोभनं खंजनं पश्येज्जलगोगोष्ठसंनिधौ ॥" अस्य फलानि शुभाशुभदेशाश्च तत्रैव ज्ञेयाः ॥ आश्विनपौर्णमासीनिर्णयः । आश्विनपौर्णमासी परा ग्राह्या । 'सावित्रीव्रतमन्तरेण भवतोऽमापौर्णमास्यौ परे ' इति दीपिकोक्तेः । अत्र विशेषस्तिथितत्त्वे लैङ्गे–" आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि । कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये ॥ कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम् । सुगंधैर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत् ॥ ३ ॥ " तथा–"निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी । तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः " इति ॥ अत्रैवाश्वयुजीकर्मोक्तमाश्वलायनेन–'आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म' इति ॥ तच्छेषपर्वणि कार्यम् । विकृतित्वात्तत्र पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । दैव-

है ऐसी शमी पापोंको नष्ट करती है, समयपर जो मैं यात्रा करूंगा उसमें हे श्रीरामपूजिते ! तू निर्विघ्न अर्थात् विघ्नका अभाव करनेवाली हो, इसी प्रकार अक्षतों सहित गीली शमीत्याग करके मूलकी मृत्तिकाको लेकर गीत बाजेके शब्दों सहित घर लावे, फिर अपने मनुष्यों सहित भूषण वस्त्र आदिको पहरे ॥ तिसमें कृत्यरत्नमें बलिनीराजन (सेनाकी आरती) लिखी है तिस आरतीका यह मन्त्र है कि, चतुरंगव्यूह मेरी सेना अरिष्टके विना गमन करो, और हे सुरेश्वरि ! तुम्हारी कृपासे सर्वत्र मेरी विजय हो, गौडनिबन्धमें ज्योतिषका यह कथन है कि, राजा क्रमसे सेनाकी वृद्धिके निमित्त नीराजन करके जल गौ वा गोशालाके निकट खंजन (ममोले) पक्षीको देखे, इसका फल और शुभाशुभ देश तो वहींसे ही जानले ॥ आश्विनकी पूर्णमासी अगलीही लेनी, कारण कि, दीपिकामें लिखा है कि, सावित्रीव्रतके विना अमावस्या पौर्णमासी दूसरी होती है, यहां तिथितत्त्वमें लिंगपुराणके वाक्यसे यह विशेष लिखा है कि, आश्विनकी पौर्णमासीको रात्रिमें जागरण करना, और उसे कौमुदी कहा है, मनुष्य अपने ऐश्वर्यके निमित्त उसे करै, कौमुदीके विषय लक्ष्मी और ऐरावतपर स्थित इन्द्रका पूजन करै, और रात्रिके समय सुगन्ध लगाकर द्वेषबुद्धिसे (पाँसोंसे) जागरण करै अर्थात् तिन्होंसे खेलता हुआ रात्रि व्यतीत करै, इसी प्रकार अर्द्धरात्रके समय वरके देनेवाली लक्ष्मी यह कहती है कि, कौन जागता है और उसको मैं धन दूंगी जो कि, पाँसोंसे खेल करता है, इसीमें आश्वयुजी कर्म आश्वलायनने लिखा है कि, आश्विनकी पूर्णमासीको आश्वयुजी कर्म करै, वह विकृति (अंग) होनेसे शेष

कर्मत्वात् । आग्रयणं तु पर्वणि कार्यम् 'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' इति शौनकोक्तेः ॥ तत्रापि शेषपर्वणि कार्यमिति प्रागुक्तम् ॥ तच्च– 'व्रीहिभिरिष्ट्वा व्रीहिभिरेव यजेत् यवेभ्यो यवैरिष्ट्वा यवैरेव यजेत व्रीहिभ्यः '' इति श्रुत्या दर्शपूर्णमासयोरेककर्मत्वेनैकद्रव्यनियमाद्दर्शेष्ट्याः परं पौर्णमासेष्ट्याश्च प्राग्भवतीति हेमाद्र्यादयः ॥ 'दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्' इति दीपिकोक्तेश्च । तच्चाग्रयणं त्रेधा व्रीह्याग्रयणं यवाग्रयणं श्यामाकाग्रयणं चेति ॥ एषां कालः श्रुतौ–''गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्कालेनान्येन पुराणैर्वा'' इति ॥ आपस्तम्बोपि–'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तुवेणुयवैः ' इति ॥ तत्रापि श्यामाकाग्रयणमनित्यम् इतरे तु अनाहिताग्नेर्नित्ये यवाग्रयणं च कार्यमिति स्मार्तवृत्तावुक्तत्वात् । सूत्रे व्रीहियवदेवतासंबद्धानामत्र मन्त्राणामाम्नानाच्च । आहिताग्नेस्तु यवाग्रयणस्याप्यनित्यत्वम् । ' अपि वा क्रिया यवेषु ' इति सूत्रात् । यद्वा व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रता । श्यामाकैस्तु प्रस्तरं कुर्यान्नाग्रयणम् । यदि वा तदपि समानतन्त्रमित्यादिनारायणवृत्तौ परिश्रमवतां सुलभमित्यलम् ॥

अर्थात् (तिथिके अन्त) पर्वमें करना, और आग्रयण तो इस शौनकके वाक्यसे पर्वमें करै, शरदमें आग्रयण नाम यज्ञ पर्वमें होता है उसे आग्रयण कथन करते हैं, वहभी पर्वके शेष (अन्त) में करना, यह शेष प्रथम कह आये हैं, उसको अमावस्या और पूर्णिमामें एक कर्म होनेसे उसमें एकही द्रव्यका नियम लिखा है कि व्रीहियोंसे यज्ञ करके यवके स्थानमें व्रीहियोंसे यज्ञ करै, यवसे यज्ञ करके व्रीहियोंके स्थानमें यवसे यज्ञ करै, अर्थात् प्रथम पर्वका कर्म जिस द्रव्यसे किया है उसी द्रव्यसे शेष पर्वको करना चाहिये. यह हेमाद्रि आदि कहते हैं ॥ दीपिकामें भी यह लिखा है दर्शपूर्णिमाके यज्ञके उपरान्त शेष कर्म होता है जो आग्रयण (अगहनकी) पूर्णिमाका यज्ञ तीन प्रकारका लिखा है. व्रीहियोंका आग्रयण, यवका आग्रयण, स्यामा (समे) का आग्रयण इनके करनेका काल श्रुतिमें यह लिखा है कि, गृहस्थीको शरद् और वसंतमें व्रीहि, और यवोंसे वर्षामें समे और नीवारोंसे यज्ञ करना चाहिये, अथवा आपत्कालमें पुराने अन्नसे वा और किसी अन्नसे यज्ञ करै, आपस्तम्बका वचन है कि, वर्षामें समेसे, शरद्में व्रीहिसे, वसन्तमें यवोंसे यज्ञ करै वा नव ऋतुओंमें इन्द्रजौ वा बांसके निकले धान्यसे यज्ञ करै, इन तीनों आग्रयणोंमें भी समयका आग्रयण अनित्य (अनावश्यक) है, और दोनों अग्निहोत्रीसे भिन्नको नित्यही है अर्थात् इनको अवश्य करना चाहिये । कारण कि, स्मार्तवृत्तिमें यह लिखा है कि, यवाग्रयण तो करै, और सूत्रमें भी व्रीहि और यवके देवताओंसे मिलेहीं मंत्र कहे हैं, अग्निहोत्रीको तो यवाग्रयण भी अनित्य है, कारण कि, यह सूत्र है कि, वा यवसे भी कर्म करले, अथवा व्रीह्याग्रयणके समान यवाग्रयण है (समे) से तो प्रस्तार करना अथवा समाभी व्रीहियोंके समान है यह परिश्रमवालोंको नारायणवृत्तिग्रन्थमें मिलसकता ॥ (इतिअलम्) ॥

इदं च पर्वाभावे शुक्लपक्षे देवनक्षत्रके कृत्तिकादिविशाखान्ते कार्यमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ बोधायनीये केशवस्वामिनाप्येवमुक्तम् ॥ परिशिष्टे—"श्यामाकैर्व्रीहिभिश्चैव यवैश्चान्योन्यकालतः । प्राग्यष्टुं युज्यतेऽवश्यं न ह्यत्राग्रयणात्ययः" ॥ त्रिकाण्डमण्डनोऽप्येवम् । यदा त्वेतदाश्विनपौर्णमास्यां क्रियते तदैककालत्वादाश्वयुजीकर्मणोऽस्य च समानतन्त्रता भवति तदेतद्वृत्तिकृता—'एकबर्हिरिध्माज्या' इति सूत्रे स्पष्टमुक्तम् ॥ अस्याकरणे प्रायश्चित्तमुक्तं स्मृतिचन्द्रिकायां कात्यायनेन—"नित्ये यज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च । अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥ भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत्" ॥ कारिकापि—"अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः । वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा" इति ॥ ऋग्विधाने तु—"समिन्द्रायामन्त्रं च वर्षेवर्षे जपेच्छतम् । आग्रयणं यदा न्यूनं तदा सम्पूर्णमेति तत्" इत्युक्तम् ॥ एतच्चापदि मलमासे कार्यमन्यथा नेति प्रागुक्तम् ॥ अन्योप्याहिताग्न्यादिविशेषः शौनकादेर्ज्ञेयः इत्यलं बहुना ॥ इति श्री कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ आश्विनमासः समाप्तः ॥ अथ कार्त्तिकमासः ॥ तुलासंक्रमे प्रागपरा दश घटिकाः पुण्याः । रात्रौ तु प्रागुक्तम् ॥ अथ कार्तिकस्नाननिर्णयः । तत्र पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुस्मृतिपाद्मयोः—"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं

यह कर्म पर्वमें न होसके तो शुक्लपक्षमें कृत्तिकासे विशाखा नक्षत्रपर्यन्त देवनक्षत्रोंमें करना चाहिये यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है बौधायनीयग्रन्थमें भी केशवस्वामीका भी इसी प्रकार कथन है, परिशिष्टमें भी कहा है कि प्रथम परस्पर अन्नोंके समयमें समा व्रीहियवसे अवश्य यज्ञ करै, इसमें आग्रयणका न होना नहीं होता, त्रिकांडमंडनमें भी इसी प्रकार लिखा है, जब आग्रयण आश्विनकी पूर्णिमाकोही किया जाय तब एक समयमें होनेसे आश्वयुजी और इसकी समानतंत्रता प्राप्त होती है, अर्थात् दोनों एक दिन होते हैं, तिसमें यह वृत्तिकारने (एकबर्हिरिध्माज्या) इस सूत्रमें स्पष्ट लिखे हैं इसके न करनेमें प्रायश्चित्त स्मृतिचन्द्रिकामें कात्यायनने लिखा है कि, नित्य यज्ञ और दोनों वैश्वदेवके बीतजाने और यजन न करनेसे नव यज्ञके विना यजन किये नये अन्नप्राशनमें पतित अन्नके भोजनमें वैश्वानर (अग्नि) का चरु होता है, कारिकामें भी कहा है कि, यदि मनुष्य आग्रयणके विना किये नये अन्नको खाय तो अग्निके निमित्त चरु वा पूर्णाहुति करै, ऋग्विधानमें तो यह कहा है कि, आग्रयण न होसके तो वर्ष २ में 'समिंद्राया' इस मन्त्रको सौ वार जपनेसे उसकी पूर्ति हो जाती है, यह जपभी तब है जब आग्रयण मलमासमें करना हो, यह प्रथम कह आये हैं और भी अग्निहोत्री आदिका विशेष शौनक आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिये, यही बहुत है ॥ (इति श्रीकमलाकरभट्टकृत निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायामाश्विनमासः) अब कार्तिकका निर्णय लिखते हैं, तुलाकी संक्रांतिमें पहली और पिछली दश २ घडीका पवित्र काल है रात्रिका पुण्यकाल प्रथम कह आये हैं ॥ अथ कार्तिकस्नान उसमें पृथ्वी

१ समिन्द्रराया समिधारमेमहिर्सवाजेभिः पुरुषश्चन्द्रैरभिद्युमिः सन्देव्याप्रमत्यावी रशुष्मयागो अग्रश्वावत्यारभेमहि ऋ० १ । ४ । १९ ॥

विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्" इति सौरमास उक्तः। प्राच्याश्चैतदेवाद्रियन्ते। दाक्षिणात्यास्तु-"आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैका-दशी भवेत्। कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारभेत्सुधीः" इति पाद्मोक्तेः॥ भार्गवार्चने च-"प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः। प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिकभास्करः" इति विष्णुरहस्योक्तेः॥ हेमाद्रावादित्यपुराणे-'पूर्ण आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः' इत्युक्त्वा 'मासं समग्रं परया च भक्त्या समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्याम्' इत्यन्तेऽभिधानाच्चाश्विनशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वारभ्य कार्तिकशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा समापयेदित्याहुः। मदनपारिजाते विष्णुः-"कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः। जपन्हविष्यभुक्छान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ तत्र देशविशेषः। अत्र देशविशेषः पाद्मे कार्तिकं प्रक्रम्य"कुरुक्षेत्रे कोटिगुणो गंगायामपि तत्समः। ततोऽधिकः पुष्करे स्याद्द्वारवत्यां च भार्गव॥ पुण्याः पुर्यश्च सप्तैवं मुनयो मथुराधिकः। दुर्लभः कार्तिको विप्रा मथुरायां नृणामिह॥ यत्रार्चितः स्वकं रूपं भक्तेभ्यः संप्रयच्छति"॥ ३॥ इति॥ इदं च स्नानं काशीस्थपञ्चनदेऽप्यतिप्रशस्तम्। "शतं समास्तपस्तप्त्वा कृते यत्फा-

चन्द्रोदयमें विष्णुस्मृति और पद्मपुराणका कथन है कि, तुला, मकर मेषकी संक्रांतिमें प्रभातही स्नान, हविष्यभोजन ब्रह्मचर्य करै तो महापातकोंका नाश होता है, इसमें सूर्यमासभी कहा है प्राच्यभी सौरमासकाही सत्कार करते हैं। दक्षिणियोंका तो यह कथन है कि, इस पद्मपुराणके वाक्यसे कि, आश्विनशुक्ल एकादशीमें बुद्धिमान् मनुष्योंको कार्तिकके व्रतोंका प्रारम्भ करना उचित है और भार्गवार्चनमें विष्णुरहस्यके इस वाक्यसे कि, मनुष्य आश्विनशुक्ल एकादशीको प्रारम्भ करके कार्तिकके सूर्यतक प्रातःस्नान करै, हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके इस कथनसे कि, आश्विनमासके पूर्ण होनेपर पूर्णिमाको सावधानीसे प्रारम्भ करै यह कथन कर अन्तमें यह कहनेसे कि, पूरे महीनेभर परमभक्तिसे स्नान कर कार्तिककी पूर्णिमाको पूर्ण करै इन सब वाक्योंसे आश्विनशुक्ल एकादशी वा पूर्णिमाको आरम्भ करके कार्तिकशुक्लद्वादशी वा पूर्णिमाको पूर्ण करै, मदनपारिजातमें विष्णुने कहा है कि, सम्पूर्ण कार्तिकमें नित्य स्नान, हविष्यभोजन जप करना चाहिये और जितेन्द्रिय और शान्त रहै तो उसके सब पाप दूर होजाते हैं॥ इसमें देशविशेषमें पद्मपुराणमें कार्तिकीके प्रकरणमें यह लिखा है कि, हे भार्गव! कुरुक्षेत्र और गंगामें करोड गुना, पुष्कर और द्वारकामें उससे अधिक पुण्य नहीं मिलता है, ये सात पुरी पवित्र हैं हे मुनियो! इनमें मथुरा विशेष है मनुष्योंको इस लोकमें मथुरामें कार्तिकस्नान दुर्लभ है जहां पूजित हुए कृष्ण भक्तोंको अपना रूप देते हैं, यह स्नान काशीकी पंचगंगामें भी अति उत्तम है, कारण कि, काशीखण्डमें यह लिखा है कि, जो फल सौ वर्षतक तप करके सतयुगमें मिलता है वह कार्तिकमें पंचगंगाके एक वार स्नानसे प्राप्त

प्यते फलम् । तत्कार्तिके पञ्चनदे सकृत्स्नानेन लभ्यते ॥ कार्तिके विंदुतीर्थे यो ब्रह्मचर्यपरायणः । स्नास्यत्यनुदिते भानौ भानुजात्तस्य भीः कुतः ॥२॥" इत्यादि काशीखण्डोक्तेः ॥ भानुजो यमः । इदं च प्रातःस्नानं संध्यां च कृत्वा कार्यम् । तेन विनेतरकर्मानधिकारादिति वर्धमानः । यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिः तथापि वचनबलादनुदितहोमवद्भविष्यति ॥ तत्र स्नानादिमन्त्राः । स्नानमन्त्रश्च तत्रैव- "कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन । प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य मौनी स्नायाद्व्रती नरः" इति ॥ अर्घ्यमन्त्रोपि तत्रैव "व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ नित्यनैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य योऽर्घ्यं मह्यं प्रयच्छति । सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुपूर्णशंखेन पुण्यवान् ॥ सुवर्णपूर्णा पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥ ३ ॥" इति ॥ एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात् । "वाराणस्यां पंचनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्तिके । अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः ॥" इति काशीखण्डोक्तेः॥ अथ मालाधारणम् ॥ तत्र स्कान्दे द्वारकामाहात्म्ये-"निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् । वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥ न जह्यात्तुलसीमालां धात्रीमालां विशेषतः । महापातकसंहर्त्रीं धर्मकामार्थदायिनीम् ॥२॥"

होताहै, जो ब्रह्मचारी होकर कार्तिकमें विन्दुतीर्थमें सूर्योदयके समय प्रतिदिन स्नान करते हैं उनको यमका भय न होगा, यह प्रातःस्नान संध्या करके करना चाहिये, संध्याके विना और कर्मका अधिकार नहीं यह वर्धमानका कथन है यद्यपि प्रातःसंध्याकी सूर्योदयमें पूर्ति होती है तो भी सूर्योदयसे प्रथम हवनके समान उदयसे प्रथमही संध्या हो जायगी ॥ स्नानमंत्रभी वहांही कहा है कि, हे जनार्दन ! मैं प्रातःकाल स्नान करता हूं हे दामोदर ! इससे आपके संग मेरी सायुज्य मुक्ति हो, इस मंत्रको पढ़ और मौन होकर व्रती मनुष्यको स्नान करना चाहिये, अर्घ्यका मंत्रभी वहांही है कि, हे दैत्येंद्रोंके वधकर्ता ! हे कृष्ण ! कार्तिकमें विधिसे स्नान करनेवाले मेरे दिये अर्घ्यको स्वीकार करो । हे कृष्ण ! नित्य और नैमित्तिक और पापनाशक कार्तिकमें मेरे दिये अर्घ्यको राधासहित ग्रहण करो इन दो मन्त्रोंको पढकरके जो पुण्यात्मा सुवर्ण, रत्न, पुष्प, जल भरकर शंखसे अर्घ्य देता है उसनें सुवर्णभरी पृथ्वी दान की, इसमें संदेह नहीं इस प्रकार कार्तिकके पूरे स्नानमें शक्ति न होय तो तीन दिन स्नान करे, कारण कि, काशीखंडमें यह लिखा है कि, काशीकी पंचगंगाका स्नान जो तीन दिनभी करते हैं वे पुण्यके भागी होकर अत्यन्त निर्मल होते हैं ॥ अब मालाका धारण करना कहते हैं, उसमें स्कंदपुराणके द्वारकामाहात्म्यमें कहा है कि, तुलसीके काष्ठकी माला केशवको निवेदन करके जो मनुष्य भक्तिसे धारण करते हैं उनका पातक नहीं रहता है, तुलसीकी माला, आंवलेकी माला महापातकोंका नाश करने और धर्म अर्थ कामकी देनेवाली है, इस कारण तुलसीकी मालाको

विष्णुधर्मे-"स्पृशेतु यानि लोमानि धात्रीमाला कलौ नृणाम् । तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् ॥ मालायुग्मं तु यो नित्यं धात्रीतुलसिसम्भवम्। वहते कण्ठदेशे तु कल्पकोटि दिवं वसेत् ॥ तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये । बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् । एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेऽर्पिताम् । धारयेत्कार्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ ४ ॥" इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ तथा काशीखण्डे-"कार्तिके मासि मे यात्रा यैः कृता भक्तितत्परैः । बिन्दुतीर्थकृतस्नानैस्तेषां मुक्तिर्न दूरतः ॥ " मार्गवार्चनदीपिकायां नृसिंहपुराणे-" अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य देवर्षे नरकं नाश्नुते नरः ॥ विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम् । कार्तिके योऽर्चयेद्भक्त्या वाजपेयफलं लभेत् ॥ २ ॥" स्कान्दे कार्तिकमाहात्म्ये-"मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः । समासहस्रं सुप्रीतो भवेत्तु मधुसूदनः ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे "कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः । जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे॥ " तथा " कार्तिके केशवे पूजा येषां नाम्ना सुतैः कृताः । ते निर्भर्त्स्य रवेः पुत्रं वसन्ति त्रिदिवे सदा ॥ तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम् । पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् ॥ " तथा स्कान्दे कार्तिकमाहा-

---

मनुष्यको न त्यागना चाहिये, विष्णुधर्ममें लिखा है कलिमें आंवलेकी माला मनुष्योंके जितने रोमोंको स्पर्श करती है उतनेही वर्षतक उसका वैकुण्ठमें वास होता है, तुलसी और आंवलेकी दोनों मालाओंको जो कण्ठमें धारण करता है वह कोटियों कल्पतक स्वर्गमें रहता है, हे तुलसीकाष्ठसे उत्पन्न हुई कृष्णभक्तकी प्रिय माला ! तुझे कण्ठमें धारण करता हूं, मुझे कृष्णका प्यारा करो, इस प्रकार विधिसे प्रार्थना करके कृष्णके गलेमें पहराई हुई मालाको जो धारण करता है वह विष्णुके पदको प्राप्त होता है, इसमें प्रमाण नहीं है, इसी प्रकार काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्तिकमासमें बिन्दुतीर्थके व्रत स्नानसे जिन भक्तिमान् मनुष्योंने मेरी अर्चा की है उनको मुक्ति दूर नहीं है, प्राप्तही है, मार्गवार्चनदीपिकामें नृसिंहपुराणका वाक्य लिखा है कि, अगस्त्यके फूलोंसे जो भगवान्को पूजता है तिसके दर्शनसे मनुष्यको नरक नहीं मिलता सम्पूर्ण फूलोंको छोडकर जो मुनिपुष्पों (अगस्त्य) से कार्तिक मासमें भक्तिसे कृष्णकी पूजा करता है उसको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है, स्कंदपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, मालतीकी मालासे वा केतकीके फूलोंसे पूजे हुए मधुसूदन सहस्रवर्षतक प्रसन्न रहते हैं पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, कार्तिकमासमें जिन्होंने कमलोंसे कमलेक्षण विष्णुकी पूजा नहीं की तिनके घर करोड जन्मोंतक लक्ष्मी नहीं आती, कार्तिकमासमें जिनके नामसे पुत्रोंने भगवान्की पूजा की है वे यमराजका तिरस्कार करके सदा वैकुण्ठमें निवास करते हैं जो मनुष्य लक्ष तुलसीदलसे विष्णुकी पूजा करै हे मुनिश्रेष्ठ ! वह पत्तेपत्तेसे मोतियोंके चढानेके फलको प्राप्त होता

त्म्ये–" धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात्पिण्डदानं महामुने । मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु ॥ धात्रीफलविलिप्तांगो धात्रीफलविभूषितः । धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत् ॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योर्चयेच्चक्रधारिणम् । पुष्पेपुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः" ॥ ३ ॥ तथा स्कान्दे–"कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र धात्रीवृक्षोपशोभिते ॥ वने दामोदरं विष्णुं चित्रान्नैस्तोषयेद्विभुम् ॥ मूलेन पायसेनाथ होमं कुर्याद्विचक्षणः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः" ॥ २ ॥ इति । तत्र द्विदलादिवर्जनम् । तथा कार्त्तिके द्विदलव्रतं प्रागुक्तम् 'कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्' इति ॥ पाद्मेपि कार्त्तिकमाहात्म्ये–"राजिकामाढकं चैव नैवाद्यात्कार्त्तिकव्रती । द्विदलं तिलतैलं च तथान्यन्मतिदूषितम्" ॥ स्कान्देपि–"कार्त्तिके वर्जयेत्तद्वद्द्विदलं बहुबीजकम् । माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः ॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम् ॥ नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत्" ॥ २ ॥ अत्र केचिदुत्पत्तिसमये दलद्वयं यस्य भवति तद्भूतपूर्वगत्या द्विदलमित्युच्यत इत्याहुः ॥ उदाहरन्ति च–"बीजमेव समुद्भूतं द्विदलं चांकुरं विना । दृश्यते यत्र सस्येषु द्विदलं तन्निगद्यते" ॥ इति ॥ अन्ये तु लक्षणायां मानाभावाद्वचनस्य निर्मूलत्वाद्द्विदलात्मकं यस्य स्व-

है स्कन्दपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें कहाहै कि, हे महामुने ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करता है उसके पितरोंको भगवान्‌के प्रसादसे मुक्ति मिलतीहै वह मनुष्य नारायणरूप होता है जिसने आँवलेके फलको लपेटा, पहना, वा भोजन किया है आँवलेकी छायामें जो भगवान्‌की पूजा करता है वह मनुष्य प्रतिफूलसे अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है हे विप्रेन्द्र ! कार्तिकमासमें आँवलेके वृक्षोंसे शोभित वनमें जो दामोदर विष्णुभगवान्‌का पूजन और विचित्र अन्नोंसे भगवान्‌को प्रसन्न करते हैं और मूलमन्त्रसे खीरका हवन करते हैं वह भी उक्त फलको प्राप्त होते हैं शक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे, और बन्धुओंसहित स्वयं भोजन करै ॥ इसी प्रकार कार्तिकमें द्विदलको वर्ज दे इस वाक्यसे द्विदलका व्रत पहले लिखा है, पद्मपुराणके कार्तिक माहात्म्यमें भी लिखा है कि, राई, मादकपदार्थ, दाल, तिल, तेल और जो मतिदूषक पदार्थ हों इनको कार्तिकका व्रती न खाय, स्कन्दपुराणमें भी कहा है कि, कार्तिकमें इसी प्रकार द्विदल तथा बहुत बीजवाले (बैंगन आदि) और उर्द, मूंग, मसूर, चना, कुलथी, निष्पाव, राजमाष (अरहर) यहभी द्विदल लिखेहैं इससे ये नये हों वा पुराने हों इन सबको व्रतीको त्यागने चाहिये, यहां कोई यह कहते हैं कि, उत्पत्तिके समय जिस अन्नके दो दल हों उसेही भूतपूर्वगति (उत्पत्तिसे पूर्व जिसके दो दल न हो) उसे द्विदल कहतेहैं, कोई यह कहतेहैं कि, अंकुरके विना उत्पन्न हुआ बीजही जिन (खेतियोंमें) का द्विदल दीखे उन्हें द्विदल कहतेहैं और किन्हींका यह कथन है, कि, इस वाक्यको निर्मूल और लक्षणमें कोई प्रमाण न होनेसे स्वरूपसेही जिसका

रूपं तदेव वर्जयेदित्याहुः ॥ तथा नारदीये-"कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु । कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके शुक्तसन्धितम् " ॥ कांस्यं तत्पात्रभोजनम् । शुक्तं पर्युषितम् । सन्धितं लवणशाकः ॥ दीपदानम् ॥ तत्रैव-'कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानादिवं व्रजेत् ॥' तथा-'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी ।' तथा- "कार्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यपरोऽथवा । एकान्तरोपवासी वा त्रिरात्रोपोषितोपि वा ॥ षड्द्वादश पक्षे वा मासं मा वरवर्णिनि । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ उपवासेन भैक्ष्येण व्रजेत परमं पदम् " ॥ २ ॥ अन्येऽपि नियमाः प्रागुक्ताः ॥ तत्र ग्राह्यधान्यनिर्णयः । ग्राह्यमुक्तं स्कान्दे-"व्रीहयो यवगोधूमाः प्रियंगुतिलशालयः । एते हि सात्त्विकाः प्रोक्ताः स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥ " काशीखण्डे-" ऊर्जे यवान्नमश्नीयाद्देवान्नमथ वा पुनः । वृंताकं सूरणं चैव शुकशिंबीश्च वर्जयेत् " ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे-' नोर्जो वन्ध्यो विधातव्यो व्रतिना केनचित्क्वचित्' ॥ तथा नारदीये-"अव्रतेन क्षिपेद्यस्तु मासं दामोदरप्रियम् । तिर्यग्योनिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥" अन्यान्यपि ताम्बूलतैलकेशकर्तनादिवर्जनसंकल्परूपाणि प्रागुक्तानि ॥ आकाशदीपः ॥ तथा कार्तिके आकाशदीप उक्तो निर्णयामृते पुष्करपुराणे -"तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते । आकाश-

---

दो दल हों उसेही त्यागना चाहिये, तैसेही नारदपुराणमें कहा है कि, कार्तिकमासमें तैल,शहत, कांसेके बर्तनमें भोजन, पर्युषित (बासी) अन्न, लवणमिश्रित शाकको व्रती त्यागदे ॥ तहांही यहभी कहाहै कि, कार्तिकमासमें विष्णुकी मूर्तिके आगे दीपक बालनेसे स्वर्ग मिलताहै इसी प्रकार कार्तिकमासमें कृच्छ्रव्रत वा प्राजापत्यव्रतमें तत्पर होकर वा एकान्तरोपवासी (मध्यमें एक दिन न खाना) वा तीन रात्रि जिसने व्रत किया हो वह और जो छः वा बारह दिन वा एक पक्ष वा महीनेतक एक वार भोजन नक्तव्रत करै और जो विना मांगे मिले वा भिक्षाके अन्नका खानेवाला हो औरजो व्रत करै उसको परमगति प्राप्त होती है और भी नियम पहले कह आये हैं॥ स्कन्दपुराणमें ग्रहण करने योग्य धान्य ये कहे हैं कि, व्रीहि, गोधूम (गेहूं), प्रियंगु (कांगनी) तिल, शालीके चावल ये स्वर्ग मोक्षके देनेवाले सात्त्विक अन्न हैं, काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्तिकमें यवान्न और देवान्न (व्रीहि आदि) का भोजन करै, आर बैंगन और जिमीकन्दको कभी न खाय, पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, किसी व्रतीको कार्तिकको कदाचित्भी न छोडना चाहिये, इसी प्रकार नारदपुराणमें लिखाहै कि, जो दामोदरके प्रीतम कार्तिकमासमें व्रत नहीं करता उसको तिर्य्यग्योनिकी प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं करना, और भी तैल, ताम्बूल, क्षौर आदिके वर्जनका संकल्प करना, पूर्व लिख आये हैं ॥ कार्तिकमें आकाशदीप निर्णयामृतग्रन्थमें पुष्करपुराणके वाक्यसे वर्णन किया है तुलाकी संक्रांतिमें तिलके तेलसे सायंकालके

दीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति ॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्॥" इति ॥ तद्विधिश्च हेमाद्रावादित्यपुराणे- "दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम् । यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि । यवांगुलच्छिद्रयुतास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु । कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारी ॥ तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ । निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे ॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः " ॥ ३ ॥ इति ॥ अपरार्के त्वन्यो मन्त्र उक्तः । यथा- "दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह । प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनंताय वेधसे" ॥इति ॥ कार्तिककृष्णकरकचतुर्थी । कार्तिककृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी । सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा तत्रैव पूजाद्याम्नानात् । गोवत्सद्वादशी ॥ कार्तिककृष्णद्वादशी गोवत्ससंज्ञा । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये तत्त्वे पूर्वा युग्मवाक्यात् । 'वत्सपूजा वटश्चैव कर्तव्या प्रथमेऽहनि' इति । निर्णयामृतेऽभिधानाच्च ॥ अत्र विशेषो मदनरत्ने भविष्ये- "सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम् । चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत् ॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः । पादमूले तु दद्याद्वै मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥

समय एक महीनेभर नारायणके निमित्त जो आकाशदीप देता है, वह महालक्ष्मीरूप सौभाग्यसंपदाको प्राप्त होता है, उसकी विधि हेमाद्रिमें आदित्यपुराणके वाक्यसे कही है कि, जब सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होते हों तब घरसे थोडी दूर पुरुषके प्रमाणसे यज्ञके काष्ठका यूप निर्माण कर गाडे, उस यूपकी भूमि और मस्तकपर जौ भर अंगुलके छिद्रके बीचमें और दो हाथ लम्बी पट्टिकाओंमें चार दलकी आठ आकृति निर्माण करै, जिनसे आठ दिशा प्रतीत हों, उसकी कर्णिका (बीच) में बडा दीपक रक्खै, इसी प्रकार उसके आठ दलोंमें आठ दीपक धर्म, हर, भूमि, दामोदर, धर्मराज, प्रजापति, पितर, प्रेतको क्रमसे दे, अपरार्कमें तो और मन्त्र यह लिखे हैं कि, लक्ष्मीसहित दामोदरके निमित्त तुलारादिमें आकाशदीपको देताहूं हे अनन्त ! जगत्के रचनेवाले तुम्हें नमस्कार है ॥ कार्तिकवदी चतुर्थी करकचतुर्थी होती है, वह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिये, दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी होय तो पहली ग्रहण करनी ॥ कार्तिक वदी द्वादशीको गोवत्सनाम उत्सव है वह तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो प्रथमकी लेनी कारण कि, दो प्रकारके वचन मिलते हैं, और निर्णयामृतमें लिखा है कि, वत्स पूजा वट ये दोनों प्रथम दिन करनी इसमें विशेष मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, सवत्सा एक वर्णकी, सुशील दूध देती गौको चन्दन आदिसे चर्चित कर पुष्पमालासे पूजै, हे पाण्डव ! तांबेके पात्रमें फूल अक्षत तिलोंसहित अर्घ्य बनाकर गौओंके खुरोंमें इस मन्त्रसे दे कि, हे

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते । सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमो नमः ॥ ततो माषादिसंसिद्धान्वटकान्विनिवेदयेत् । सुरभि त्वं जगन्मातर्देवि विष्णुपदे स्थिता ॥ सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस । ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि" ॥ ६ ॥ इति प्रार्थयेत् ॥ तथा–"तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं युधिष्ठिर । गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत्" ॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः–"आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिपूक्तः सुपूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥ नीराजयेयुर्देवांस्तु विप्रान्गाश्च तुरंगमान् । ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः " इति ॥ यमदीपः ॥ निर्णयामृते स्कान्दे-"कार्तिकस्य सिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति " ॥ मन्त्रस्तु–"मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतां मम "इति, ॥ अभ्यंगस्नानम् ॥ कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । तदुक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च भविष्योत्तरे–"कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः॥ इनश्चन्द्रः । मदनरत्ने–'विधूदये ' इति पाठः 'दिनोदये' इति पाठात् सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्ते स्नानं वदतां गौडानां तदनुसारिणां चाज्ञतैव । " पूर्वविद्धचतुर्दश्यां

क्षीरसागरसे प्रगट हुई ! हे देवता और राक्षसोंके नमस्कृत ! हे सर्वदेवरूप ! हे मातः ! इस अर्घ्यको ग्रहण करो, तुम्हें नमस्कार है । फिर उडद आदिके वडे बनाकर इस मन्त्रसे निवेदन करै, कि, हे सुरभी ! हे जगन्मातः ! हे देवि ! तुम विष्णुके चरणमें स्थित हो. हे सर्वदेवरूपे ! मेरे दिये इस ग्रासको भोजन करो, फिर इस मन्त्रसे स्तुति करै कि, हे सर्वदेवरूपे ! हे सर्वदेवोंसे शोभित ! हे मातः ! हे नन्दिनी ! मेरे मनोरथोंको सफल करो ॥ इसी प्रकार कहा है कि, हे युधिष्ठिर ! उस दिन तेलका पका खाली टोकनीका पका गौ, दूध, दही, घृत, मट्ठा न खाय, ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, आश्विनके कृष्णपक्षमें द्वादशी आदि पांच तिथियोंमें पूर्वरात्रको नीराजन (आरती) करना चाहिये, देवता, ब्राह्मण, गौ, घोडे, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, छोटे, माताको आदि लेकर स्त्रीजनोंकी आरती करै ॥ निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, कार्तिक वदी १३ को घरसे बाहर प्रदोषके समय यमदीपक देय तो अकालमृत्यु नष्ट होती है, उसका मन्त्र यह है कि, मृत्यु, पाश, दण्ड, काल, श्यामासहित यमराज त्रयोदशीके दीपदानसे मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ कार्तिक वदी १४ को सवेरेही चन्द्रोदयके कालमें उबटना करै, सोई हेमाद्रि और निर्णयामृतमें भविष्योत्तरपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको इन (चन्द्र) के उदयमें नरकसे डरते हुये मनुष्यको अवश्य स्नान करना चाहिये, मदनरत्नमें दिनोदयके स्थानमें विधूदय पाठ कहा है और जो 'दिनोदये' इस पाठसे सूर्योदयके उपरान्त ३ मुहूर्तमें स्नान कहते हैं वह गौडोंकी और

कार्तिकस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः" इति ॥ स्मृतिदर्पणेपि "चतुर्दशी चाश्वयुजश्च कृष्णा स्वात्यर्थयुक्ता च भवेत्प्रभाते । स्नानं समभ्यज्य नैरस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः " इति ॥ पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे- "आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये। तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः इति ॥ 'कर्तव्यं मङ्गलस्नानं नरैर्निरयभीरुभिः' इति कालादर्शे पाठः, उभयत्राश्वयुगित्यमावास्यान्तमासमभिप्रेत्योक्तम् ॥ तथा-'तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्याश्चतुर्दशीम्।' प्राप्येति शेषः । 'प्रातः स्नानं तु यः कुर्याद्यमलोकं न पश्यति' इति दिनद्वयेपि चन्द्रोदये चतुर्दशीसत्त्वे तदभावेप्यरुणोदये सम्पूर्णे खण्डे वा दिनद्वये चतुर्दशीसमत्वे च पूर्वदिनेऽभ्यङ्गं कुर्यात् । 'पूर्वविद्धचतुर्दश्याम्' इतिवचनात् । पूर्वदिने परदिन एव वा सत्वे सैव ग्राह्या। दिनद्वयेप्यसत्त्वे अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या 'पक्षे प्रत्यूषसमये' इत्युक्तेः । वक्ष्यमाणवचनाच्च । तदभावे तु चतुर्दशीह्रासं पूर्वेद्युः प्रवेश्य पूर्वेह्नि त्रयोदशीमध्य एवाभ्यंगं कुर्यादिति दिवोदासः॥ केचिदत्र वचनमपि साधकत्वेन वदन्ति-'तिथ्यादौ तु भवेद्यावान् ह्रासो वृद्धिः परेहनि । तावान् ग्राह्यः स पूर्वेद्युरदृष्टोपि स्वकर्मणि " इति । तन्मन्दम् । न हीदं

उनके अनुयायियोंकी मूर्खता है, कारण कि, गौडोंका यह कथन है कि, कार्तिकके कृष्णपक्षकी पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें प्रयत्नसे स्नान करना, स्मृतिदर्पणमें भी कहा है कि, आश्विन कृष्णपक्षमें स्वातिनक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रभात समय विभूतिकी कामनावाले मनुष्य सुगन्धके तेलसे उबटना करके स्नान करें पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणका कथन है कि, आश्विन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें नरकसे भय पातेहुए मनुष्य चन्द्रोदयमें तेलसे स्नान करें कालादर्शमें यह लिखा है कि, नरकसे भय मानता मनुष्य मंगल स्नान करे, यहां दोनों वाक्योंमें आश्विनका समय लिखना अमावस्यान्त मासके अभिप्रायसे लिखा है ॥ इसी प्रकार दिवालीकी चतुर्दशीको तेलमें लक्ष्मी, जलमें गंगा निवास करती है, जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करता है, वह यमलोकको नहीं जाता, दोनों दिन चन्द्रोदयमें चतुर्दशी होय वा दोनों दिन न होय वा अरुणोदयमें पूर्ण वा किंचित् हो वा दोनों दिन चतुर्दशी होय तो प्रथम दिन अभ्यंग करे, कारण कि, पूर्वविद्धा चतुर्दशीमें करे ऐसा वाक्य है पहले दिन होय तो वहही लेनी और दोनों दिन न होय तो अरुणोदयकी ग्रहण करनी. कारण कि, पहले प्रातःकालके समय लिख आये हैं, और आगेभी वाक्यसे लिखेंगे, प्रातःकालके समयभी न होय तो चतुर्दशीके घटनेको प्रथम दिन मानकर त्रयोदशीके बीचमेंही उबटन करे यह दिवोदासका कथन है ॥ कोई इसमें साधक भी कहते हैं कि, अगले दिन तिथि आदिकी जितनी हानि वा वृद्धि हो उतना समय विना देखें भी अपने कर्ममें प्रथम दिन ग्रहण करना चाहिये सो तुच्छ है, कारण कि, यह वाक्य पहले.

वचनं पूर्वदिनस्यापूर्वं ग्राह्यत्वं विधत्ते । नक्तैकभक्तजन्माष्टम्यादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे सर्वत्र पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वप्रसंगात् ॥ किन्तु यत्रैकभक्तादौ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त्यभावे वाक्यांतरेण न्यायेन वा पूर्वदिनस्य ग्राह्यत्वमुक्तम्, तत्र मुख्यकाले तत्तिथेरभावेऽपि तत्रैवानुष्ठानबोधकमिदम् । न चात्र तदस्तीति यत्किंचिदेतत् । तेन चतुर्थयामगामिनी ग्राह्या । अत एव सर्वज्ञनारायणः-"तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा । यामिन्याः पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते" इति । "मृगांकोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शे वा मंगलस्नानं दुःखशोकभयप्रदम् " इति कालादर्शे त्रयोदशीनिषेधाच्च । तेनायमर्थः । यथाग्निहोत्रे यावज्जीवं सायंप्रातःकालेषु व्याप्यकालस्य गुरुत्वम् । तथात्र चतुर्दशीचतुर्थयामारुणोदयचन्द्रोदयानामुत्तरोत्तरस्य व्याप्यत्वाद्गुरुत्वमिति ॥ यदपि दिवोदासीये-"त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाभ्यङ्गे त्रयोदशी" इति वचनं तद्धेमाद्रिनिर्णयामृताद्यलिखितत्वेन निर्मूलम् । समूलत्वेपि चतुर्दश्याः सूर्योदयद्वयासंबंधित्वरूपः क्षयोत्र विवक्षितः सूर्योदयात् प्राक् समाप्तौ चन्द्रोदयकालसत्त्वे च तथैवाङ्गीकारात् । किं तु अभ्यङ्गकालात् प्राक् समाप्तिरूपोऽत्र ह्रासः क्षयशब्देन विवक्षितः । स चारुणोदयात् चतुर्थयामाद्वा प्राक् यदा

दिनके अपूर्व माननेको नहीं कहता रात्रिके जन्माष्टमी व्रत आदिमें दोनों दिन कर्म कालतक व्यापिनी न होय तो और वाक्यसे प्रथम दिन मानना लिखा है, वहां मुख्य समयमें वह तिथि नहीं भी है, तथापि उसमेंही व्रत करनेका कहनेवाला वाक्य है सो वात यहां नहीं है, इसीसे यह कुछभी नहीं तिससे रातके चौथे प्रहरगामिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी, इसीसे सर्वज्ञनारायणमें लिखा है कि, इसी प्रकार आश्विनकृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे. प्रथम तैल मलना श्रेष्ठ है, कालादर्शमें इस वाक्यसे त्रयोदशीका निषेधभी कहा है कि, चन्द्रोदयके समयमें त्रयोदशी वा अमावस्याको मंगल स्नान करे तो यह स्नान दुःख, शोक, भयको देता है. इससे यह सिद्धान्त है कि जैसे अग्निहोत्रमें जीवनपर्यंत सन्ध्या समय, और प्रभातकालमें व्याप्यकालका गुरुत्व है इसी प्रकार यहां चतुर्दशीका चौथा प्रहर अरुणोदय चन्द्रोदयमें भी पिछलेको व्यापक होनेसे श्रेष्ठतावाला है और जो दिवोदासीयमें भी लिखा है कि, प्रभातकालके समय होय और चतुर्दशीकी हानि हो रात्रिके शेषमें अमावस्या होय तो त्रयोदशीमें तेल मले, यह वाक्य हेमाद्रि निर्णयामृत आदिमें लिखे न होनेसे निर्मूल हैं और समूल भी होय तो चतुर्दशी सूर्योदयपर दोनोंसे सम्बन्धवाली है यहां क्षय विवक्षित है सूर्योदयसे समाप्तिपर्यन्त चन्द्रोदयकालमें होनेपर इसी प्रकार अंगीकार किया है । किन्तु अभ्यङ्गकालसे पहले समाप्तिरूपह्रास क्षयशब्दसे विवक्षित है । वह अरुणोदयसे और चौथे प्रहरसे हीन होय उस समयमें जानना, इसीसे सर्वज्ञनारायणने

ह्रासस्तत्परमिदम् । अत एव सर्वज्ञनारायणेन चतुर्थयाममात्रे स्नानमुक्तम् ॥ तथा चोदाहृतम्–'तथा कृष्णचतुर्दश्याम्' इति । ज्योतिर्निबन्धे नारदोपि-"इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम्" । ये तु त्रयोदशीमध्ये स्नानमाहुः तेषामाशयं न विद्म इत्यलं भूयसा ॥ यदपि–"अरुणोदयतोन्यत्र रिक्तायां स्नाति यो नरः । तस्याब्दिकभवो धर्मो नश्यत्येव न संशयः" इति दिवोदासीये भविष्यवचनम् ॥ तन्मुख्यकालेऽरुणोदये चतुर्दश्यभावेपि तत्रैव स्नातव्यमित्येवंपरमिति सर्वं सिद्धम् । 'चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदयः' इति तत्रैवोक्तम् । मदनरत्ने पाद्मे–"अपामार्गमथो तुंबीं प्रपुन्नाटमथापरम् । भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥" प्रपुन्नाटश्चक्रमर्दः । मन्त्रस्तु"सितालोष्ठसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनःपुनः" ॥ इति । अस्यामेव प्रदोषे दीपान् दद्यादित्युक्तं हेमाद्रौ स्कांदे–"ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च" । इति ॥ दिवोदासीये ब्राह्मे "अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गांधिकारेभ्यो मुच्यते कार्त्तिके नरः ॥" खण्डतिथौ तु पूर्वेद्युः प्रदोषे दीपान् दत्वा परेद्युः स्नायादिति दिवोदासीये उक्तम्॥ तत्र चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानम् अत्र नरकोद्देशेन चतुर्वर्तियुक्तं दीपदानं कार्यम् । तत्र

कृष्णचतुर्दशीके चतुर्थप्रहरमें स्नान लिखा है. ज्योतिर्निबन्धमें नारदनेभी लिखा है कि, आश्विनकृष्ण चतुर्दशीको और अमावस्याको और स्वातिनक्षत्रयुक्त कार्तिकमें दीपमालिका जो होती है उसमें निरन्तर तीन दिन दीपोत्सव करे, जो त्रयोदशीके बीचमें स्नान कहते हैं उनका आशय हमको विदित नहीं होता अर्थात् वे मन्द हैं,बहुत कहनेसे क्या है दिवोदासीयमें भविष्यपुराणका वाक्य है कि, अरुणोदयको त्यागकर जो मनुष्य रिक्तातिथिमें स्नान करता है, उसका वर्षभरका किया हुआ धर्म नष्ट होजाताहै ॥ यह वाक्य मुख्यसमयमें चतुर्दशीका अभावभी होय तोभी चतुर्दशीमें स्नान करना इस निमित्त है, इससे सम्पूर्ण सिद्ध हुआ, चार घडीका अरुणोदय होता है, यह वहांही लिखा है मदनरत्नमें पद्मपुराणका कथन है कि, (चिरचिटा) तुम्बी चक्रमर्दको स्नानके समय नरकके नाशके निमित्त चारों ओर भ्रमावे, उसका मन्त्र यह है,कि, हे अपामार्ग ! सिताके दलोंसे और कांटेवाले दलोंसे संयुक्त वारंवार भ्रमानेसे तुम मेरे पापको दूर करो, इसी चतुर्दशीको सायंकालके समय दीपदान करे, यह हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, फिर प्रदोषकालमें सुन्दर दीपक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके मन्दिरोंमें और मठोंमें बालै, दिवोदासीयमें ब्रह्मपुराणका कथन है कि, कार्त्तिककी अमावस्या और चतुर्दशीको दीपदान करनेसे मनुष्य यममार्गके अंधकारसे छूट जाता है, तिथि खंडित होगई होय तो प्रथम दिन प्रदोषमें दीपदान कर प्रथम दिन स्नान करे यह दिवोदासीयमें कहा है॥ इस दिन नरकनिवृत्तिके उद्देशसे चार वर्तियोंका दीपक देना चाहिये. उसका यह मंत्र है कि, नरकोंकी

मंत्रः-"दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया । चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये " ॥ तत्रैव लिंगे-" माषपत्रस्य शाकेन भुक्त्वा तत्र दिने नरः । प्रेताख्यायां चतुर्दश्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते " ॥ अथ यमतर्पणम् । अत्र यमतर्पणमुक्तं मदनपारिजाते वृद्धमनुना-'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम् ' ॥ मदनरत्ने ब्राह्मे-"अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औदुंबराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः " ॥ ३ ॥ इति ॥ तर्पणप्रकारस्तु हेमाद्रौ-" एकैकेन तिलैर्मिश्रान्दद्याच्च त्रीन् जलाञ्जलीन् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति "॥ तथा मदनरत्ने स्कान्दे । "दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः । देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः ॥ " तथा 'यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिना तथा " इति । इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम् । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेः ॥ अत्र भीष्मतर्पणमप्युक्तं दिवोदासीये तत्प्रकारस्तु माघे वक्ष्यते॥ इति नरकचतुर्दशी ॥ कार्तिकामावास्यानिर्णयः । कार्त्तिकामावास्यायां प्रातरभ्यंगं कुर्यात् ॥ तदुक्तं कालादर्शे-"प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यंगादिमंगलः । भक्त्या प्रपूजयेद्देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये"॥

प्रसन्नता और सब पापोंको दूर करनेके निमित्त चार बत्तियोंका दीपक मैंने दिया है. वहांही लिंगपुराणका यह वाक्य है कि, उस दिन मनुष्य उरदके पत्तोंके सागको भोजन करनेसे सब पापोंसे छूट जाता है ॥ इसमें यमका तर्पणभी मदनपारिजातमें वृद्धमनुने लिखा है कि, चतुर्दशीको दीपोत्सव और यम तर्पण करना चाहिये । मदनरत्नमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, अपामार्गके पत्तोंको अपने शिरपर भ्रमण करावे, फिर यमराजके इन नामोंसे तर्पण करै कि—यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्टि, चित्रगुप्त, वृकोदर, चित्रके निमित्त नमस्कार है, तर्पणका प्रकार तो हेमाद्रिमें यह लिखा है कि, एक एकको तिलोंसे मिली ३ अञ्जली दे तो वर्षदिनका संचित किया पाप क्षणभरमें दूर होजाता है, इसी प्रकार मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, दक्षिणकी ओर मुख करके सव्य होकर सावधानीसे तिलोंसे तर्पण करना चाहिये इस तर्पणमें यमराजको देव होनेसे देवतीर्थसे और प्रेतोंका राजा होनेसे तिलोंसे तर्पण करे, इसी प्रकारके वाक्य हैं कि— 'यज्ञोपवीती ' अथवा 'प्राचीनावीती ' होकर तर्पण करना . यह जीवीत्पितृकको भी करना चाहिये. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि जिसका पिता जीवित हो वह यम और भीष्मका तर्पण करे, यहां दिवोदासीयमें भीष्मका तर्पण लिखा है उसका प्रकार माघके निर्णयमें लिखेंगे । इति नरकचतुर्दशी ॥ कार्तिककी अमावस्याको प्रातःकाल तेल मले यही कालादर्शमें लिखा है कि आश्विनकी अमावस्याको प्रातःकालके समय तेल मलना आदि मंगलस्नानको संपादन करके

अस्य व्याख्याने आदिशब्दात्पञ्चत्वगुदकस्नानादेरुपसंग्रहः । तदुक्तं पुष्करपुराणे—"स्वातीस्थिते रवाविन्दुर्यदि स्वातिगतो भवेत् । पञ्चत्वगुदकस्नायी कृताभ्यंगविधिर्नरः ॥ नीराजितो महालक्ष्मीमर्चयञ्छ्रियमश्नुते ॥" आश्वयुग्दर्शे इति दर्शशब्दः प्रत्यूषस्वातियुक्ततिथिपरः। तदुक्तं ब्राह्मे— "ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां तिथिषु स्वातिऋक्षगे । मानवो मंगलस्नायी नैव लक्ष्म्या वियुज्यते " ॥ तत्रैव—"इषे भूते च दर्शे च कार्तिकप्रथमे दिने । यदा स्वाती तदाभ्यंगस्नानं कुर्याद्दिनोदये " ॥ कश्यपसंहितायां तु दीपावलिदर्शं प्रक्रम्य—"इन्दुक्षयेपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यंगो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये " इति ॥ स्वातीयोगं विनाऽप्यभ्यंग उक्तः । मात्स्ये—" दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता " ॥ तत्र विशेषः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—" दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराजनात् । प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ॥ दीपवृक्षाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च " ॥ तत्रैवाभ्यंगमभिधाय-" एवं प्रभातसमये त्वमावास्या नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः॥ दीपान्दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना " ॥ २॥ अयं प्रदोष-

---

भक्तिसे अलक्ष्मीकी निवृत्तिके निमित्त देवीकी पूजा करै, इस कथनके व्याख्यानमें आदिशब्दसे पंचत्वचाके स्नानका ग्रहण करना चाहिये । यही पुष्करपुराणमें लिखा है कि, स्वातीके सूर्यमें स्वातीका चंद्रमा होय तो पंचत्वचाके जलमें स्नान करके और तेल मल करके मनुष्य आरती करे और महालक्ष्मीकी पूजा करे तो लक्ष्मीको भोगता है, (आश्वयुग्दर्शे) इस पदमें दर्शशब्द प्रातःकाल स्वाती नक्षत्रयुक्त तिथिका जतानेवाला है यही ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको स्वातीनक्षत्रमें मंगल स्नान करे तो मनुष्य लक्ष्मीसे हीन कभी नहीं होता, आश्विनकी चतुर्दशी और अमावस्याको और कार्तिकके प्रथम दिन जब स्वातीनक्षत्र युक्त हो तब सूर्योदयमें तेल मले उबटन करे, फिर स्नान करे यह वहांही लिखा है. कश्यपसंहितामें तो दिवालीकी अमावस्याके आरम्भ करके स्वातीनक्षत्र योग विना भी अभ्यंग करना लिखा है कि–अमावास्या, संक्रान्ति, आदित्यवार, व्यतीपात, दिनका क्षय इनमें प्रभात समय अभ्यंग करनेका दोष नहीं है किन्तु पाप नाश होता है. मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, इसमें दीपकोंसे नीराजन (आरती) होती है इससे इसे 'दीपावली' कहा है॥ इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि,बालक और आतुर मनुष्योंके बिना दिवालीको दिनमें किसीको भी भोजन न करना चाहिये, प्रदोषके समय लक्ष्मीका क्रमानुसार पूजन करके देवताओंके मन्दिरमें शक्तिपूर्वक दीपवृक्ष देने, फिर वहांही अभ्यंगको लिखकर हे राजन् ! इस प्रकार अमावस्याको प्रभात कालमें दधि, खीर, घृत आदिसे पार्वणश्राद्ध करके और दीप देकर प्रदोषमें लक्ष्मीका यथाविधि पूजन करके श्वेत वस्त्रोंको धारण कर और अलंकार धारण कर भोजन करै यह पूजनभी प्रदोषसमय करना तुलाकी संक्रान्तिमें चतुर्दशी और

व्यापी ग्राह्यः—" तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् " इति ज्योतिषोक्तेः दिनद्वये सत्त्वे परः—" दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका " इति तिथितत्त्वे ज्योतिर्वचनात् ॥ दिवोदासीये तु प्रदोषस्य कर्मकालत्वात् । " अयनेऽस्मिन् भवन्त्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपजालप्रकाशिताः ॥ सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः " ॥ इति ब्राह्मोक्तेश्च । प्रदोषार्धरात्रव्यापिनी मुख्या एकैकव्याप्तौ परैव ॥ प्रदोषस्य मुख्यत्वादर्धरात्रेऽनुष्ठेयाभावाच्च । यत्तु " अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन् कर्तव्या दीपमालिका " इति क्रमः । स संपूर्णतिथावेव प्राप्तेरनुवादो न विधिः । तत्तत्कर्मकालव्याप्तिर्वलवत्त्वात्संपूर्णतिथौ प्राप्त्या खण्डतिथावप्राप्त्या विध्यनुवादविरोधाच्चेत्युक्तम् । अथाऽलक्ष्मीनिःसारणम् । अत्रैव दर्शे परराऽत्रेऽलक्ष्मीनिःसारणमुक्तं मदनरत्ने भविष्ये— " एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने । तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः । निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् " ॥ कार्तिकशुक्लप्रति-

---

अमावस्याको प्रदोषमें उल्का हाथमें धारण कर मनुष्य पितरोंके मार्गको दिखावें, यह ज्योतिषका वाक्य इसमें प्रमाण है, यदि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो अगले दिन करनी कारण कि, तिथितत्त्वमें ज्योतिषका वाक्य है कि, एक घड़ी रात्रिका योग होय तो अमावास्या दूसरे दिन होती है, तब प्रथम दिन छोड़कर अगले दिन सुख रात्रि होती है, दिवोदासीयमें तो प्रदोषको कर्मका समय होनेसे और ब्रह्मपुराणके इस वाक्यसे कि, अर्द्धरात्रमें इनके निमित्त लक्ष्मी घरोंमें घूमती है इससे मनुष्य भली प्रकार अलंकार और चंदन लगाकर दीपकके चांदनेमें उत्सवपूर्वक जागते रहें, और श्वेतवाले वस्त्र और फलोंको माला से शोभित रहें, इससे प्रदोष और अर्द्धरात्रव्यापिनी मुख्य है (यदि प्रदोष वा अर्द्धरात्रमें एक २ व्यापिनी होय तो अगली लेनी चाहिये, प्रदोष मुख्य है) और आधीरात्रमें कर्म करने योग्य नहीं ! जो किसीने यह क्रम कहा है कि, पितरोंके भक्त मनुष्योंको अपराह्णमें श्राद्ध करना चाहिये, और हे राजन् ! प्रदोषके समय दीपमालिका करैं, इस क्रमका सम्पूर्ण तिथिके बीचमें प्राप्तिका अनुवाद करना, विधि नहीं जाननी. कारण कि, तिस २ कर्म कालमें तिथिका होना बलिष्ठ है और सम्पूर्ण तिथिमें प्राप्त हो खण्डमें न प्राप्त हो इससे विधि और अनुवादका परस्पर विरोध है, यह प्रथम कह आये हैं ॥ दिवालीकी अमावस्याको पिछली रातको दरिद्रका करके निकालना मदनरत्नमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, इस प्रकार जब आधीरात बीतजाय और मनुष्योंके नेत्रमें आधी निद्रा रहै, तब नगरके नरनारियोंको सूप और बाजोंको बजाकर आनन्दित होकर अपने घरके आँगनसे दरिद्रको निकालना चाहिये । कार्तिकशुक्ल प्रतिपदाको गौओंकी क्रीडा निर्णय-

पन्निर्णयः॥ कार्त्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनमुक्तं निर्णयामृते। अस्यामेव रात्रौ बलेः पूजोक्ता हेमाद्रौ भविष्ये—"कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः। पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके शुभे॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः। गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत्॥ लोकश्चापि गृहस्यांतः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः। संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैस्तु पूजयेत्"॥ ३॥ मन्त्रास्तु पाद्मे—"बलिराज नमस्तुभ्यं दैत्यदानववन्दित। इन्द्रशत्रोऽमराराते विष्णुसान्निध्यदो भव" इति॥ तथा—"बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन। यानि तान्यक्षयाण्याहुर्मयैव सम्प्रदर्शितम्" इति॥ तदेतत्पूर्वविद्धप्रतिपदि कर्तव्यम्। "पूर्वविद्धा, प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्" इति हेमाद्रौ पाद्मोक्तेः। माधवोपि 'बल्युत्सवं च पूर्वेद्युरुपवासवदाचरेत्' इति। निर्णयामृतेपि—"या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप। पूजनात्त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः" इति। तथा—'भद्रायां गोकुलक्रीडा स देशो वै विनश्यति'॥ भद्रायां द्वितीयायाम्॥ तथा—"प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोर्चनम्। क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्" इति। तथा—"प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्। परविद्धेषु यः कुर्यात्पुत्रदारधनक्षयः" इति देवलवचनाच्च॥ एते च विधिप्रति-

---

मृतमें लिखा है और इसीमें बलिकी पूजा रात्रिको हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, रात्रिके विषय इस सम्पूर्णकृत्यको करके रात्रिको दैत्योंके पति बलिकी पूजा अपने घरकी भूमिमें राजाको करनी चाहिये। पांचरंगोंसे दैत्यपति बलिको लिखकर घरके मध्यकी उत्तम शालामें बलिकी पूजा करनी चाहिये, जगत्भी अपने घरके बीचमें शय्यापर श्वेत चावलोंके ऊपर बलिराजाको स्थापन करे, पुष्प और धूपसे बलिका पूजन करे उसका मंत्र पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, हे बलिराज! हे दैत्य दानवोंके प्रणाम योग्य! हे इन्द्र और देवताओंके शत्रु! मुझे विष्णुकी निकटता दीजिये. तैसेही यह लिखा है कि, हे कुरुनन्दन! बलिके निमित्त जो दान दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं यह मैंने दिखाया है सो यह व्रत, पूजा, पूर्वविद्धा प्रतिपदामें करनी चाहिये. कारण कि हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि, शिवरात्रि और बलिदिन पूर्व दिनमें करना. माधवमें भी लिखा है कि, प्रथम दिन बलिका उत्सवभी व्रतके तुल्य करे, निर्णयामृतमें भी कहा है कि, प्रतिपदासे मिली अमावास्यामें गौओंके पूजनेसे राजाके प्रजा गौ और राज्य तीनोंकी वृद्धि होती है. इसी प्रकार वाक्य है कि, जहां भद्रा (द्वितीया) को गौओंकी क्रीडा होती है वह देश नष्ट होता है. तैसेही लिखा है कि, प्रतिपदाको अग्निहोत्र करना द्वितीयाको गौओंकी पूजा हो तो छत्रभंग धननाश कुलक्षय होता है॥ तैसेही देवलने यह कहा है कि, प्रतिपदा अमावस्याके योगमें गौओंकी क्रीडा करानी चाहिये परविद्धातिथिमें जो क्रीडा करे उसके पुत्र, स्त्री, धनका क्षय होताहै॥

वेधाः । पूर्वदिने प्रतिपदः सायाह्नव्यापित्वे द्वितीयदिने चन्द्रदर्शनसंभवे च ज्ञेयाः । " गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून्हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा " इति पुराणसमुच्चयात् । दिनद्वये सायाह्नव्यापित्वे तु परैव ग्राह्या। " वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका । द्वितीयावृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते" इति ॥ तथा-' त्रियामगा दर्शतिथिर्भवेच्चेत्सार्द्धत्रियामा प्रतिपद्विवृद्धौ । दीपोत्सवे ते मुनिभिः प्रदिष्टे अतोन्यथा पूर्वयुते विधेये " इति पुराणसमुच्चयादिति निर्णयामृतकारः ॥ सार्द्धत्रियामिकेत्यनेन चन्द्रदर्शनाभाव उक्तः ॥ द्वितीयायाः पञ्चधा विभक्तदिनचतुर्थांशरूपापराह्णव्याप्तावेव चन्द्रदर्शनसम्भवात् । वयं त्वेतद्वचनद्वयं पूर्वविद्धासम्भवे वेदितव्यमिति ब्रूमः ॥ दिनद्वये प्रातिपदः सायाह्नव्याप्त्यभावे तु पूर्वैव । रात्रौ वलिपूजाविधानेन कर्मकालव्यापित्वात् । परदिने चन्द्रोदये तन्निषेधादिति दिक् । मदनरत्ने तु पूर्वविद्धायां गोक्रीडा ॥ नीराजनमङ्गलमालिके तूत्तरत्र कार्ये- " कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका । यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत् । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ २ ॥

ये पूर्वोक्तविधि और निषेध पूर्वदिनमें प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो और दूसरे दिन चन्द्रमाके दर्शनका संभव हो तो जाननी चाहिये । कारण कि, पुराणसमुच्चयमें यह लिखा है कि, जिस दिन रात्रिमें चन्द्रमाका दर्शन हो उस दिन गौओंकी क्रीडा करे तो सोमराजा गौओंके पूजन करनेवालेको और पशुओंको हनते हैं दोनों दिन संध्याव्यापिनी होय तो अगले दिन करनी. कारण कि, पुराणसमुच्चयमें लिखा है कि, बढनेवाली तिथिमें यदि साढे तीन प्रहर नन्दा होय तो द्वितीयाकी वृद्धि होनेवाली है, इससे वहां उत्तरतिथि ग्रहण की है. इसी प्रकार वाक्य है कि, अमावस्या तीन प्रहर हो और साढे तीन प्रहर प्रतिपदा होय तो ये दोनों तिथि मुनियोंने दीपोत्सवमें लिखी हैं, ये दो ऐसी न होंय तो दोनों तिथि पूर्वविद्धा करनी, यह पुराणसमुच्चयसे निर्णयामृतमें लिखा है, साढे तीन प्रहर प्रतिपदा कहनेसे चन्द्रमाके दर्शनका अभाव वर्णन किया द्वितीयाके पांच भाग करनेपर जब चतुर्थ भाग प्रतिपदाके अपराह्नका पूरा आजाय तो पडवामें चन्द्रदर्शन होसकता है. हम तो ये दोनों वाक्य पूर्वविद्धाके असम्भवमें जानने चाहिये ऐसा कहते हैं. दोनों दिन प्रतिपदा प्रदोषव्यापिनी न होय तो प्रथमकी लेनी कारण कि, रात्रिमें बलिपूजाकी विधिसे कर्मकालव्यापिनी लिखी है, और परदिनमें चन्द्रोदय होय तो बलिपूजाका निषेध है, इति दिक् । मदनरत्नमें तो पूर्वविद्धामें गोक्रीडा, नीराजन और मंगलकी माला यह सब उत्तरतिथिमें करने चाहिये ऐसा कहा है । कारण कि, ब्रह्मपुराणमें यह लिखा है कि, कार्तिकके शुक्लपक्षमें दो विधि होती हैं, प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको मंगलमालिका करना जिस दिन प्रतिपदा थोडी होय तो स्त्री द्वितीयाको प्रातःकाल नीराजन और सायंकालको

इति ब्राह्मोक्तेः ॥ "लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद्घटिकाद्वयम् । तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका" इति भविष्योक्तेः । "प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद्घटिका शुभा । द्वितीयायां तदा कुर्यात्सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ कार्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्याघटीद्वयम् । देशभङ्गभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालिकाम्" ॥ २ ॥ इति देवीपुराणाच्चेत्युक्तम् ॥ तत्र विशेषः । अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे ॥ बलिप्रतिपदं प्रक्रम्य—"तस्मिन्द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत् । दयिताभिश्च सार्द्धं तैर्नेया सा च भवेन्निशा" ॥ २ ॥ इति ॥ गोवर्धनपूजननिर्णयः । अत्र गोवर्धनपूजादि चोक्तं हेमाद्रौ निर्णयामृते च स्कांदे—"प्रातर्गोवर्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत् । भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः" ॥ गोवर्धनश्च गोमयेन कार्यश्चित्रेण वा । मन्त्रस्तु—"गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारण । बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥" गोमन्त्रस्तु—"लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु" ॥ तत्रैव स्कांदे—"ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत । मार्गपाली प्रबध्नीयात्तुंगे स्तंभेऽथ पादपे ॥ कुशकाशमयीं दिव्यां लंबकैर्बहुभिर्युतां । दर्शयित्वा गजानश्वान्सायमस्यास्तले नयेत् ।

मंगलमालिका करै. भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, जो प्रातःकाल दो घडी प्रतिपदा भी मिलें तो उसमें नीराजन और सायंकालको मंगलमालिका करलेनी, देवीपुराणमें लिखा है कि, प्रातःकाल शुद्धप्रतिपदा घडीभरभी मिले तो द्वितीयाको सायंकालमें मंगलमालिका करनी चाहिये । कार्तिकके शुक्लपक्षके आदम अमावास्या दो घडी मात्र होय तो उस दिन देशभंगके भयसे मंगलमालिका न करनी॥ इसमें विशेष, हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे बलिप्रतिपत्प्रकरणमें लिखा है कि, दिवालीके दिन मनुष्योंको प्रभातके समय जुआँ खेलना उचित है, उसमें जिसका जय हो उसका वर्षदिनतक जय होता है, और जिसका विरोध वा पराजय होता है उसके लाभका नाश होताहै, इससे मनुष्य उस रात्रिको स्त्रियोंके साथ द्यूतक्रीडामें बितावें ॥ उसमें गोवर्द्धनपूजा आदि और देवमार्गपालीकी पूजा आदि हेमाद्रिमें निर्णयामृतमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखी है कि, प्रातःकाल गोवर्द्धनकी पूजा करके जुआँ खेले और गौओंको सज्जित करे और यान तथा गोदोहनकी पूजा करनी, और गोमय वा चित्रामका गोवर्द्धन रचे, उसका मंत्र यह है कि, हे गोवर्द्धन ! हे गोकुलके रक्षक ! हे बहुत भुजाओंसे छाया करनेवाले कोटि गौओंके दाता ! आपको प्रणाम है. गौओंका मंत्र यह है कि, जो सम्पूर्ण लोकपालोंकी लक्ष्मी गोरूपसे स्थित है, और यज्ञके निमित्त घृतको धारण करती है, वह मेरे पापको दूर करो. वहांही स्कंदपुराणमें कहा है कि, तिससे अपराह्णके समय पूर्वदिशामें ऊंचे स्तंभोंपर वा वृक्षपर कुशा वा काशोंके लंबे २ सूतोंसे मार्गपालीको बांधे, हाथी और घोडेको दिखाकर संध्याके समय उसके नीचेको लेजांय, और ब्राह्मण जब हवन

कृते होमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् । नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे । विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥ नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् । राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः । मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः" ॥ ९ ॥ तत्रैवादित्यपुराणे—"कुशकाशमयीं कुर्याद्यष्टिकां सुदृढां नवाम् । तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथान्यतः ॥ गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः । जयोऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम्" ॥ २ ॥ इति ॥ यमद्वितीयानिर्णयः । यमद्वितीया तु प्रतिपद्युता ग्राह्येत्युक्तं निर्णयामृतादौ । यमद्वितीया मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा चेति हेमाद्रिः ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ स्कान्दे-"ऊर्जशुक्लद्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद्यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति" ॥ इति । "ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यमः । वेष्टितः किन्नरैर्हृष्टैस्तस्मै यच्छति वांछितम् ॥" यथा भविष्ये—"प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेतरा । तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्त्तिके भवेत् ॥ श्रावणे कलुषा नाम तथा भाद्रे च गीर्मला । आश्विने प्रेतसंचारा कार्त्तिके याम्यका मता" ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा, प्रथमायां व्रतं द्वितीयायां सरस्वतीपूजा तृतीयायां श्राद्धमुक्त्वा चतुर्थ्यामुक्तं 'कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य

करले तब मार्गपाली बांधे, हे सुव्रत इस मंत्रसे नमस्कार करे कि, हे मार्गपालि ! हे सर्वलोकसुखदायिनी ! तुमको प्रणाम है पुत्र और स्त्रियोंके और मेरे व्रतकी पूर्णताके निमित्त फिर आना, और वहांही राज्यके जय देनेवाला नीराजन करै. राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्रजाति मार्गपालीको लंघकर प्रसन्न होते हैं, वहांही आदित्यपुराणमें कहा है कि, कुश और काशकी दृढ रस्सी निर्माण करै, उसको एक ओर राजाके पुत्र और एक ओर हीनजाति अपने बलके अनुसार वारंवार खैंचे, खींचनेमें हीन जातियोंकी जय होजाय तो वर्षदिनतक राजाको जय प्राप्त होती है । अथ यमद्वितीया । यह प्रतिपदासे युक्त ग्रहण करनी यह निर्णयामृतमें लिखा है. कारण कि, हेमाद्रिने यह कहा है कि यमद्वितीया पूर्वविद्धा और मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी, इसमें विशेष हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि कार्तिकशुक्ल द्वितीयाको अपराह्णमें यमराजका पूजन करना चाहिये, और यमुनामें स्नान करनेसे यमलोकको देखना नहीं पडता, कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको पूजा और तर्पण करनेसे प्रसन्न हुए किन्नरों सहित यमराज मनुष्यके सम्पूर्ण मनइच्छित फलको देते हैं इसी प्रकार भविष्यपुराणका कथन है कि श्रावण मासकी प्रथमा और भाद्रपदकी अपरा (२) और आश्विनकी तृतीया और कार्तिक चतुर्थी इन चार महीनोंकी द्वितीयाओंको क्रमसे कलुषा, गीर्मला, प्रेतसंचारा, याम्यका नामवाली कहा है यह कहकर पहलीमें व्रत दूसरीमें सरस्वती पूजा, तीसरीमें श्राद्ध कहकर चौथी कार्तिकशुक्ल द्वितीयामें लिखा है कि हे युधिष्ठिर !

द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्व भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता । अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः ॥ स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् । दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ॥ स्वर्णालंकारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः । सर्वा भगिन्यः संपूज्या अभावे प्रतिपन्नकाः " ॥ ४ ॥ प्रतिपन्नाः मातृभगिन्य इति हेमाद्रिः । " पितृव्यभगिनीहस्तात्प्रथमायां युधिष्ठिर ॥ मातुलस्य सुताहस्ताद्द्वितीयायां तथा नृप ॥ पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये तृतीयायां तयोः करात् । भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्या हस्ततः परम् ॥ सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम् । यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः संभोजितः प्रतिजगत्स्वसृसौहृदेन । तस्यां स्व : करतलादिह यो भुनक्ति प्राप्नोति रत्नसुखधान्यमनुत्तमं सः " ॥ ४ ॥ गौडास्तु– " यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत् । अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः " ॥ मन्त्रः–" एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश । भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते ॥ भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनायां विशेषतः " ॥ २ ॥ ज्येष्ठाग्रजातेति वदेदिति स्मार्ताः ॥ इत्यन्नदानमित्यप्याहुः ॥ ब्रह्माण्डपुराणेपि–" या तु

यमुनाने अपने घरमें पूजन करके यमराजको सत्कारसे भोजन कराया, इससे यह तीनों लोकोंमें यमद्वितीया नामसे प्रसिद्ध है. हे विप्र ! समें मनुष्यको अपने घरमें भोजन न करना किन्तु अपनी पुष्टि बढानेवाले मनुष्यको स्नेहसे भगिनीके हाथसे भोजन करना, और विधिसे भगिनियोंको दक्षिणा देना, और स्वर्ण अलंकार, वस्त्र, अन्न, पूजा सत्कार भोजनसे भगिनियोंकी पूजा करनी चाहिये, भगिनी न होय तो प्रतिपन्नोंकी पूजा करनी, माताकी भगिनियोंको प्रतिपन्न कहते हैं, यह हेमाद्रिमें वर्णन किया है, पिताकी बहिनीके हाथसे श्रावण शुक्ल द्वितीयाको और मामाकी लडकीके हाथसे भादा शुक्ल २ को, मौसी और फूफीकी लडकीके हाथसे आश्विन शुक्ल २ को और सगी बहिनके हाथसे कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको भोजन करना चाहिये, सब द्वितीयाओंको बल बढानेवाले, बहिनीके हाथसे भोजन करैं, जिस तिथिको यमुनाने यमराजदेवका सब जगत्की भगिनियोंके प्यारसे भोजन कराया है उस तिथिको जे बहिनीके हाथसे भोजन करता है वह श्रेष्ठ रत्न धान्यको प्राप्त होता है, गौड तो यह कथन करते हैं कि, यम और चित्रगुप्त आर यमके दूतोंकी पूजा करनी और दोनों पुत्रोंके सहित यमराजको अर्घ्य दे मंत्र तो यह है कि हे सूर्यपुत्र ! हे हाथमें पाश धारण किये ! हे यम ! हे अंतक ! हे लोकधर ! हे अमरेश ! भैया दोयजम की हुई देवपूजा और अर्घ्यको स्वीकार करो हे भगवन् ! आपको नमस्कार है, हे भ्राता ! मैं तुम्हारी छोटी बहिनी हूं तुम इस सुन्दर भोजनको यमराज और विशेषकर यमुनाकी प्रसन्नताके निमित्त भक्षण करो, स्मार्त यह कहते हैं कि, हे ज्येष्ठ ! हे अग्रजात ! इस प्रकार कहै और अन्नदान भी करै, ब्रह्माण्डपुराणमें भी यह कहा ह कि जो स्त्री द्वितीया तिथिमें भ्राता (भाई)

भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि तांबूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत्तत्र कर्हिचित् " ॥ इति ॥ कार्त्तिकशुक्लनवमीनिर्णयः । कार्त्तिकशुक्लनवमी युगादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । शुक्लपक्षस्थत्वात् । अत्रापि पिण्डरहितं श्राद्धं कर्तव्यम् । अन्यत्प्रागुक्तम् ॥ विष्णुत्रिरात्रम् । अत्रैव विष्णुत्रिरात्रमुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे-" कार्त्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः । हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम् ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम् । एवं यथोक्तविधिना कुर्याद्वैवाहिकं विधिम् " ॥ २ ॥ इति ॥ कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकम् । कार्त्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपंचकव्रतमुक्तं नारदीये-" अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपंचकम् । कार्त्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः । एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम् " इति ॥ तद्विधिस्तु गोमयेन स्नात्वा मौनी पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्विष्णुं संस्नाप्य संपूज्य पायसं निवेद्य द्वादशाक्षरमष्टोत्तरशतं जप्त्वा । 'ॐ नमो विष्णवे' इति षडक्षरेण घृताक्तान् यवान् व्रीहींश्चाष्टोत्तरशतं हुत्वा भूमौ स्वपेत् । एवं पंचदिनेषु कुर्यात् ॥ विशेषस्त्वाद्येह्नि हरेः पादौ कमलैः संपूज्य त्रिर्गोमयं प्राशयेत् । द्वितीयेह्नि बिल्वपत्रैर्जानुनी संपूज्य गोमूत्रम् । त्रयोदश्यां भृंगराजेन नाभिं संपूज्य क्षीरम् । चतुर्दश्यां करवीरैः स्कंधं संपूज्य दधि । पौर्णमास्यां होमान्ते लौहीं पापप्रतिमां खड्गचक्र-

---

को भोजन कराती है, और पानोंसे पूजन करती है, वह कभी विधवा नहीं होती, हे राजन् ! भाईकी अवस्थाका कभी नाश नहीं होता ॥ कार्त्तिक शुक्ल ९ युगादि है वह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये इसमें पिंडरहित श्राद्ध करना और निर्णय तो प्रथम कह आये हैं ॥ इसमेंही विष्णुका व्रत त्रिरात्रके हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि कार्त्तिक शुक्ल ९ नवमीको जितेंद्रिय होकर हरि और तुलसी बनाकर तीन दिन व्रत करके विधिपूर्वक पूजन करै फिर विवाहके शास्त्रोक्त विधानसे तुलसीके संग विष्णुका विवाह करै ॥ कार्त्तिक शुक्ल ११ को भीष्मपंचक व्रत नारदीयपुराणमें लिखा है कि इससे मनुष्य प्रयत्नसे भीष्मपंचक करै, कार्त्तिकके शुक्लपक्षमें अच्छी प्रकार व्रतमें स्थित होकर मनुष्य स्नान करके ११ को पांच दिनका व्रत ग्रहण करै उसकी विधि इस प्रकार है कि: गोबरसे स्नान करके मौन होकर पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराय पूजा करके और खीरको निवेदन करके अष्टोत्तरशत द्वादशाक्षर[1] मंत्र जपसे (ॐ नमो विष्णवे) इस षडक्षर मंत्रसे घृतमें मिले हुए यव और व्रीहियोंसे १०८ आहुति देकर भूमिपर शयन करै. इस प्रकार पांच दिन करै. विशेष तो यह है कि, प्रथम दिन विष्णुके चरणोंकी पूजा करकै तीन बार गोबरका भक्षण करै, दूसरे दिन बेलपत्रोंसे जानुओंकी पूजा करके गोमूत्र पान करै, त्रयोदशीको भँगरेसे नाभिकी पूजा करकै दूधका पान करै, चतुर्दशी १४ कनेरसे स्कन्धकी पूजा करके दहीका भक्षण करै, पूर्णिमाको होमके पीछे

---

१ " ॐ नमो भगवते वासुदेवाय " यह द्वादशाक्षर मन्त्र है ।

हस्तां कृष्णवस्त्रेण वेष्टितां प्रस्थतिलोपरिस्थां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः संपूज्य ।."यदन्यजन्मनि कृतमिहजन्मनि वा पुनः । तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात्' इति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा । कृष्णप्रतिमां च संपूज्य, विप्राय दत्त्वा, विप्रान् संभोज्य, दक्षिणां दत्त्वा, पञ्चगव्यं प्राश्य, पौर्णमास्यां नक्तं भुंजीतेति लघुनारदीये ॥ पञ्चगव्यप्राशनं षडक्षरेणेति हेमाद्रिः । हेमाद्रौ भविष्ये तु शाकैर्मुन्यन्नैर्वा पञ्चाहं वर्तनमुक्तम् । अन्तेप्युक्तं " यद्भीष्मपंचकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धम् ॥ मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा" इति ॥ तथा पाद्मे-" पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पंचसु । अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने । भीष्मायैतद्ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे ॥ वैय्याघ्रपद्यगोत्राय " ॥ २ ॥ इति च ॥ सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम् ' इति ॥ कार्तिकशुक्लद्वादशीनिर्णयः । कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीनक्षत्रयोगरहितायां पारणं कार्यम् । तदुक्तम्-" आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् " । इति ॥ यदा तु रेवतीयोगरहिता द्वादशी सर्वथा न लभ्यते तदा रेवत्याश्चतुर्थपादं

लोहेकी पापकी प्रतिमा निर्माण करै जिसके खड्ग चक्र हाथमें हो काला वस्त्र लिपटा हो प्रस्थभर तिलोंके ऊपर रक्खी हो धर्मराजके नामोंसे कनेरके फूलोंसे उसका पूजन करके इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर कि, और जन्म वा इस जन्ममें जो पाप किये हैं वह सब तुम्हारे पूजनेसे दूर हों, कृष्णकी प्रतिमाका पूजन करके ब्राह्मणोंको देकर भोजन कराय दक्षिणा दे पंचगव्यको भोजन कर पूर्णिमाको रात्रिमें भोजन करे, यह लघुनारदीयपुराणमें कहा है पंचगव्यका भक्षण षडक्षर मंत्रसे करे, यह हेमाद्रिमें लिखा है, हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे तो शाक वा मुनियोंके अन्नसे पांच दिन वर्तना लिखा है और अन्तमें भी लिखा है कि, ११ से पूर्णिमातक जो पृथ्वीपर भीष्मपंचक प्रसिद्ध है उसमें जो मनुष्य मुनियोंके भोजनमें तत्पर रहता है उसको हे पांडव ! शार्ङ्गधन्वा भगवान् वांछित फल देते हैं इसी प्रकार पद्मपुराणमें लिखा है कि, पांच दिन पंचगव्यका भोजन और पांचों दिन भीष्मको इस मंत्रसे अर्घ्य दे कि, सत्यव्रत पवित्र गंगाके पुत्र परममहात्मा, जन्मसे ब्रह्मचारी वैयाघ्रपद गोत्री भीष्मको अर्घ्य देताहूं, और सम्पूर्ण वर्णोंको इसी मंत्रसे तर्पण करना चाहिये ॥ कार्तिक शुक्ल १२ रेवती नक्षत्रके योगसे रहित होय तो पारणा करना, यही हेमाद्रिमें लिखा है कि, आषाढ भाद्रपद कार्तिकके शुक्लपक्षमें क्रमसे अनुराधा, श्रवण, रेवती नक्षत्र होय.तो इनके संगममें भोजन न करे और करे तो १२ एकादशीका फल व्यर्थ होता है, जब रेवतीयोगसे रहित. द्वादशी सर्वप्रकार न मिले तो तब रेवतीके चौथे पदको त्याग दे, इसका वाक्य पहले लिख आये हैं, लघुनारदीयमें लिखा है कि,

वर्जयेत् । वचनं तु प्रागुक्तम् ॥ लघुनारदीये–" कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा चैकादशीं नरः । प्रातर्दत्त्वा शुभान्कुम्भान्प्रयाति हरिमन्दिरम् " ॥ मदनरत्ने वाराहे– "एकादशी सोमयुक्ता कार्त्तिके मासि भामिनि । उत्तराषाढसंयोगे अनन्ता सा प्रकीर्तिता ॥ तस्यां यत्क्रियते भद्रे सर्वमानन्त्यमश्नुते " ॥ तत्र देवोत्थापनम् । अस्यामेव रात्रौ देवोत्थापनमुक्तं हेमाद्रौ ब्राह्मे–"एकादश्यां च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः " ॥ इति ॥ मदनरत्ने भविष्ये–"कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्द्विजः " ॥ रामार्चनचन्द्रिकादौ तु द्वादश्यामुक्तं ' पारणाहे पूर्वरात्रे घण्टादीन्वादयेन्मुहुः ' इति । अत्र देशाचारतो व्यवस्था । " तत्रैव देवदेवस्य स्नानं पूर्वं महद्भवेत् । महापूजां ततः कृत्वा देवमुत्थापयेत्सुधीः ॥ " मन्त्रास्तु वाराहपुराणे उक्ताः– " ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दित वन्दनीय । बुद्ध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं विनिर्मिता । त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते । त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव । गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानि च

कार्तिकशुक्लपक्षकी एकादशीको करके मनुष्य प्रातःकाल घटका दान करे तो हरिके मंदिरको जाता है, मदनरत्नमें वाराहपुराणका लेख है कि, हे भामिनी ! कार्त्तिक महीनेमें ११ सोमवारकी और उत्तराषाढ नक्षत्र होय तो अनन्ता नाम कथन की है, हे कल्याणी ! उसमें जो कर्म किया जाता है वह सब अनन्तफलदायक होता है ॥ इसी रात्रिमें देवोत्थापन हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, कार्तिकशुक्ल एकादशीकी रात्रिको श्रद्धा और भक्तिसे युक्त मनुष्य केशवको जगावे, मदनरत्नमेंभी भविष्यपुराणका लेख है कि, हे कुन्तीके पुत्र ! कार्तिक शुक्ल ११ को हे राजेन्द्र ! इस मंत्रसे ब्राह्मण परम देवका उत्थापन करे. रामार्चनचंद्रिकामें तो द्वादशीको देवोत्थापन लिखा है कि, पारणाके दिन पूर्वरात्रिमें घंटे आदि बारंबार बजाकर देवोत्थापन करे, इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी उचित है उसीमें देवको प्रथम महान् स्नान करावे और फिर महापूजा करके देवदेवको उठावे, मन्त्र तो वाराहपुराणमें ये लिखे हैं कि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, कुबेर, रुद्र, सूर्य, सोम आदिके नमस्कार करने योग्योंको भी प्रणाम करने योग्य है, हे देवेश ! हे जगत्के निवास ! हे देव ! मंत्रके प्रभावसे सुखपूर्वक उठो, हे देव ! यह द्वादशी सब जगत्के मंगलके निमित्त शेषके ऊपर सोनेवाले आपनेही निमित्त की है. हे गोविंद ! उठो उठो हे जगत्पते ! निद्राको छोडो त्यागो, हे जगत्पति ! आपके शयनेसे यह जगत् शयन करजाता है और तुम्हारे उठनेसे चेष्टा करने लगता है इससे हे माधव ! उठो उठो मेघ जाते रहे आकाश और दिशा निर्मल हुई. हे केशव ! मेरे दिये शरद्ऋतुके फूलोंको स्वीकार करो

१ चार महीने देवशक्ति शयन कर जाती है जो पालनाधार कहाती है यही देवशयन है ।

पुष्पाणि गृहाण मम केशव । इदं विष्णुरिति प्रोक्तो मन्त्र उत्थापने हरेः" ॥ ९ ॥ इति ॥ एवं देवमुत्थाप्य तदग्रे चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिं कुर्यात् ॥ चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः । तदुक्तं भारते-"चतुर्थो गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः । कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥ " लघुनारदीये-"चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्त्तिके स्मृता " ॥ मन्त्रश्च निर्णयामृते सनत्कुमारेणोक्तः " इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन " इति ॥ बोधिनीविधिः । अथ वाराहोक्तो बोधिनीविधिः-एकादश्यां रात्रौ कुंभे घृतपात्रोपरि हैमं माषमितं मत्स्यं पञ्चामृतेन संस्नाप्य, कुंकुमपीतवस्त्रयुगपद्माद्यैः संपूज्य, मत्स्यादिदशावतारान् संपूज्य, जागरं कृत्वा, प्रातर्देवमाचार्यं च वस्त्राद्यैः सम्पूज्य, "जगदादिर्जगद्रूपो जगदादिरनादिमान् । जगदाद्यो जगद्योनिः प्रीयतां मे जनार्दनः" इति नत्वा, दक्षिणां दत्त्वा, ब्राह्मणान् भोजयेदिति ॥ तथा ब्राह्मे-"महातूर्यरवै रात्रौ भ्रामयेत्स्यन्दने स्थितम् । उत्थितं देवदेवेशं नगरे पार्थिवः स्वयम् ॥ चतुरो वार्षिकान्मासान्नियमं यस्य यत्कृतम् । कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम्" ॥ २ ॥ यस्य भक्ष्यस्य नियमः कृतस्तद्द्रव्यं दद्यादित्यर्थः । इदं शुक्रास्तादावपि कार्यम् । आशौचे तु पूजामन्येन कारयेत् ॥ कार्त्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । अन्यत् प्रागुक्तम् ॥ कार्त्तिकशुक्ल-

---

विष्णुके उठानेका ' इदं विष्णु० ' यह मंत्र लिखा है, इस प्रकार देवको उठाकर उनके आगे चातुर्मास्य व्रतकी पूर्ति करै ॥ यही भारतमें लिखाहै कि, मनुष्य पुराने और किये हुये चातुर्मास्य व्रतको कार्तिकशुक्ल द्वादशीको सम्पूर्ण करे, लघुनारदीयमें कहा है कि, चातुर्मास्य व्रतोंकी पूर्ति कार्तिकमें लिखी है, मंत्र तो निर्णयामृतमें सनत्कुमारने लिखा है कि, हे देव ! आपकी प्रसन्नताके निमित्त यह व्रत मैंने किया हे जनार्दन ! आपके प्रसादसे पूर्ण हो ॥ अब वाराहपुराणमें लिखी बोधिनीका वर्णन करते हैं, कि, एकादशीकी रात्रिको घटभर घीके पात्रके ऊपर मासेभर सुवर्णका मत्स्य बनाकर रक्खै, और स्नान कराकर और कुंकुम दो पीले वस्त्र पद्म आदिसे पूजन कर और मत्स्य आदि दश अवतारोंकी अर्चा कर और जागरण करके और प्रातःकाल वस्त्र आदिसे देव आचार्यकी पूजा करके, जगत्के आदि जगत्रूप जगत्के कारण अनादि जगत्के आद्य, जगत्के योनि जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों इस मंत्रसे प्रणाम करके दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे, यही ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, उठे हुये देवदेवेशको बडे बाजोंके शब्दोंसे रथमें स्थित कराय राजा स्वयं नगरमें भ्रमावे, चार वर्षाऋतुके महीनोंमें जिसका जो नियम कियाहो उसे ब्राह्मणोंको कहकर भक्तिसे दक्षिणासहित देना चाहिये, अर्थात् जिस भक्ष्यका नियम कियाहो वह दे, यह शुक्रास्त आदिमें भी करना चाहिये, आशौचमें तो औरसे पूजा करावे, कार्तिककी द्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि कही है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, अन्य निर्णय प्रथम कह आये हैं॥ कार्तिकशुक्ल चतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी

चतुर्दशीनिर्णयः । कार्त्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठसंज्ञा । सा विष्णुपूजायां रात्रिव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं हेमाद्रौ भविष्ये-" कार्त्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप । सोपवासस्तु संपूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः " इति ॥ तत्र विश्वेश्वरयात्रा । अस्यामेव विश्वेश्वरप्रतिष्ठादिनत्वात्तत्प्रीत्यर्थं यदोपवासादि क्रियते तदारुणोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ तदुक्तं त्रिस्थलीसेतौ सनत्कुमारसंहितायां-"वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्त्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति ॥ महादेवतिथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके । स्नात्वा विश्वेश्वरो मदेव्या विश्वेश्वर पूजयत् ॥२॥" इति तत्पूर्वदिने चोपवासः कार्यः। "ततः"प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम् । दण्डपाणेर्महाधाम्नि नवेऽस्मिन्कृतपारणः इति तत्रैवोक्तेः॥शिवरहस्येपि पूजाजागराद्युक्तम्-"ततोऽरुणोदये जाते स्नात्वा स्नात्वा च भस्मना । संध्यां समाप्य विश्वेशं मामभ्यर्च्य यथाविधि । मद्भक्तान्भोजयामासुर्ऋषयो बुभुजुस्ततः " इति ॥ कार्त्तिकव्रतोद्यापनम् । अत्र कार्तिकव्रतोद्यापनं पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये उक्तम्-" अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु । ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥ तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां

है, वह विष्णुपूजामें रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी दोनों दिन होय तो निशीथ और प्रदोषव्यापिनी लेनी सोई हेमाद्रिमें भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे राजन् ! कार्तिकशुक्लचतुर्दशीको व्रतके पीछे जितेन्द्रिय होकर रात्रिमें भगवान्की पूजा करे ॥ यहीं विश्वेश्वरकी प्रतिष्ठाका दिन है, इससे जब विश्वेश्वरकी प्रीतिके निमित्त व्रत आदि कियाजाय, तब अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये । यह त्रिस्थलीसेतुमें सनत्कुमारसंहिताके वाक्यसे लिखा है कि, हेमलम्ब नामके वर्षमें और लक्ष्मीवाले कार्तिकशुक्लचतुर्दशीके अरुणोदयके समय महादेवकी तिथिके ब्राह्ममुहूर्तमें मणिकर्णिकामें स्नान करके पार्वतीसहित विश्वेश्वरने देवीसहित विश्वेश्वरकी पूजा की थी इससे प्रथम दिन व्रत करना चाहिये सोई वहां लिखा है कि, प्रभातके समय महान् अद्भुत पूजाको विमल तीर्थपर करके दण्डपाणिके वडे धामरूप इस वन (काशीमें) फिर पारण करै शिवरहस्यमें भी पूजा और जागरण आदि कथन कर यह लिखा है कि, फिर अरुणोदयके समय भस्मसे स्नान करके और सन्ध्याको समाप्त कर मुझ विश्वेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके. ऋषियोंने मेरे भक्तोंको भोजन कराया था फिर आप भोजन किया ॥ इसीमें कार्तिक व्रतका उद्यापन पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, इसके उपरान्त कार्तिक व्रतवाले उद्यापन विधिको सुनो कि, व्रतवाला कार्तिकशुक्ल चतुर्दशीको उद्यापन करै, तुलसीके ऊपर छोटासा मंडप और तुलसीकी जडमें सर्वतोभद्र निर्माण करै, उसके ऊपर

१ मर्यादा दिखानेको अपनी पूजा आपहीने की है ।

शुभाम्। तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च ॥ तस्योपरिष्टात्कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम्। पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया ॥ रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमङ्गलैः। ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ॥ त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत्। अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम् ॥ ततो गां कपिलां दद्यात्पूजयेद्विधिवद्गुरुम् ॥ ६ ॥ इति ॥ कार्तिकी पौर्णमासी परा ग्राह्या। 'अमापौर्णमास्यौ परे' इति दीपिकोक्तेः। अत्र विशेषो हेमाद्रौ ब्राह्मे-'पुण्या महाकार्त्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च।' तथा-"आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित्। महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा ॥ यदा तु याम्यं भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्। तिथिः सापि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ त र्यां नराधिप। सा महाकार्त्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा" ॥ ३ ॥ इति ॥ पाद्मे-"विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः। स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वपि दुर्लभः ॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति। स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्" ॥ २ ॥ यमः-"कार्तिक्यां पुष्करे स्नातः सर्वपापैः प्रमुच्यते। माध्यां स्नातः प्रयागे तु मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ मत्स्यावतारनिर्णयः ॥ अस्यामेव सायंकाले मत्स्यावतारो

पञ्चरत्नसहित स्थापन किये हुए कलशपर सुवर्णकी पूजा गुरुकी आज्ञासे करै, गीत और बाजे आदि मङ्गलोंसे रात्रिको जागरण करै, फिर पौर्णमासीको स्त्रीसहित तीस ३० वा एक ब्राह्मणको निमंत्रण दे, 'अतोदेवा' इन दो मन्त्रोंसे तिल पायसकी आहुति देनी, फिर कपिला गौका दान और विधिसे गुरुकी पूजा करै कार्तिककी पूर्णिमा परली लेनी चाहिये। कारण कि, दीपिकामें यह लिखा है कि अमावस्या और पूर्णिमा परली लेनी चाहिये। यहां विशेष हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे वर्णन किया है कि, बृहस्पति चन्द्रवार कृत्तिका नक्षत्र होय तो कार्तिकी महापुण्यदायक होती है, इसी प्रकार जो कदाचित् कार्तिकीपूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र होय वह तिथि स्नान और दानमें उत्तम और महती जाननी चाहिये, यदि उसमें याम्य नक्षत्र होय तो मुनियोंने वह तिथि: बडी पुण्यवाली कही है हे नराधिप! जो यदि उसमें रोहिणी होय तो देवताओंको भी दुर्लभ वह महाकार्तिकी लिखी है, पद्मपुराणमें लिखा है कि, विशाखापर सूर्य और कृत्तिकापर चन्द्रमा होय तो यह पद्मक नामका योग पुष्करमें तो अत्यन्त दुर्लभ है, जो मनुष्य पद्मकयोगमें पुष्करमें गमन कर कपिलागौ देते हैं वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुके पदको प्राप्त होतेहैं, यमराजने कहा है कि, कार्तिकीको पुष्करमें और माघकी पूर्णिमाको प्रयागमें स्नान करनेसे सब पाप छूटते हैं ॥ इसी कार्तिकीकोही सन्ध्याके समय मत्स्य-

१ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः ऋ० १।२।७॥

जात इत्युक्तं पाद्मे कार्तिकमाहात्म्ये—" वरान्दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपी भवेत्ततः । तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम् " इति ॥ त्रिपुरोत्सवनिर्णयः । अत्र त्रिपुरोत्सव उक्तो भार्गवार्चनदीपिकायां—" पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः । दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये ॥ कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः । दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः " ॥ २ ॥ तत्र वृषोत्सर्गनिर्णयः । अत्र वृषोत्सर्गोतिप्रशस्तः । तदुक्तं मात्स्ये—कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् " इति ॥ कार्तिकेयदर्शनम् । अत्र कार्तिकेयदर्शनमुक्तं काशीखण्डे— " कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कुर्यात्स्वामिदर्शनम् । सप्तजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः " ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे कार्तिकमासः ॥ अथ मार्गशीर्षमासः । तत्र वृश्चिकसंक्रांतिनिर्णयः । वृश्चिके पूर्वाः षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् ॥ कालाष्टमीतिनिर्णयः । मार्गशीर्षसिताष्टमी कालाष्टमी, सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या ॥ " मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसंनिधौ । उपोष्य जागरं कुर्वन्सर्वपापैः प्रमुच्यते " ॥ इति काशीखण्डात् रात्रिव्रतत्वावगतेः । 'रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्तव्याः संमुखी तिथिः ' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च ॥

अवतार हुआ है यह पद्मपुराणके कार्तिकमाहात्म्यमें लिखा है कि, जिससे वरोंको देकर विष्णु मत्स्यरूपी हुए इससे उस तिथिमें दिया हुआ दान, होम, जप, अक्षय फलको देता है ॥ इसमेंही त्रिपुरोत्सव भार्गवार्चनदीपिकामें लिखा है कि, पूर्णिमाको सन्ध्याके समय त्रिपुरोत्सव करना चाहिये और इस मन्त्रसे देवताओंके मन्दिरमें दीप देने कि, कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष और जल और स्थलमें जो जीव विचरते हैं वे और श्वपच और ब्राह्मण जो इस दीपकको देखते हैं उनको फिर जन्म लेना नहीं पडता ॥ इसमें वृषोत्सर्ग करना अत्यन्त श्रेष्ठ है, सोई मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, जो मनुष्य कार्तिकको नक्त व्रत करके वृषोत्सर्ग करता है उसे शिवजीका परमपद प्राप्त होता है ॥ इसमें ही स्वामिकार्तिकका दर्शन काशीखण्डमें लिखा है कि, कार्तिकमें कृत्तिकानक्षत्रके योगमें जो स्वामिकार्तिकका दर्शन करता है वह पुरुष सातजन्मतक महाधनी और वेदका पारगामी ब्राह्मण होता है ॥ (इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां कार्तिकमासः समाप्तः । वृश्चिकसंक्रान्तिमें सोलह घडी पुण्यकाल है, शेष निर्णय पूर्वकी समान जानना ॥ मार्गशिर कृष्णअष्टमीको कालाष्टमी होती है, वह रात्रिव्यापिनी लेनी कारण कि, इस काशीखण्डके कथनसे यह रात्रिका व्रतही प्रतीत होता है, कि, मार्गशिर कृष्णअष्टमीको कालभैरवके निकट व्रत और जागरण करके सब पापोंसे रहित होता है, और ब्रह्मवैवर्तके इस वाक्यसे रुद्रके सम्पूर्ण व्रतोंमें सन्मुखी (पहली) तिथि लेनी कही है दोनों दिन किसी अंशमें रात्रिव्यापिनी होय तो पिछली

दिनद्वयेंऽशतो रात्रिव्याप्तावुत्तरैव ॥ भैरवोत्पत्तेः प्रदोषकालीनत्वादिति केचित्। तन्न। शिवरहस्ये मध्याह्ने भैरवोत्पत्तेः श्रवणात्। तथा च तत्रैव–'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ' इत्युपक्रम्य ब्रह्मणा रुद्रेऽवज्ञाते उक्तं–"तदोग्ररूपा-दनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः। आविरासीत्तदा लोकान्भीषयन्नखिलानपि" इति॥ तत्रोपवासनिर्णयः। अत्रोपवास एव प्रधानमित्युक्तं तत्रैव "उपोषणस्यांगभूतमर्घ्य-दानमिह स्मृतम्। तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये ॥" सन्ध्यायामपि पूजो-क्ता तेन मध्याह्नव्यापिनी युक्ता। दिनद्वयेंऽशतः सम्पूर्णायां वा तद्व्याप्तौ पूर्वैव पूर्वोक्तवचनात्। पारणा तु प्रातरेव–'यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा' इति वचनात्॥ कालभैरवपूजानिर्णयः। अत्र च कालभैरवपूजोक्ता त्रिस्थलीसेतौ– "कृत्वा च विविधां पूजां महासंभारविस्तरैः। नरो मार्गसिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमु-त्सृजेत्" ॥ तथा–"तीर्थे कालोदके स्नात्वा कृत्वा तर्पणमत्वरः। विलोक्य कालरा-जानं निरयादुद्धरेत्पितॄन्" इति॥ इयं च कार्तिक्यनन्तरा गौडचान्द्राभिप्रायेण॥ मार्ग-शीर्षशुद्धपञ्चमी (नागपञ्चमी) निर्णयः। मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां नागपूजोक्ता हेमाद्रौ स्कांदे "शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी। स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदा-दायिनी" इति॥ इयं नागपूजायां षष्ठीयुतैव ग्राह्या–"पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमान्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका" इति मदनरत्ने

लेनी कारण कि, भैरवकी उत्पत्तिका समय प्रदोष है यह किन्हींका कथन है सो ठीक नहीं है कारण कि, शिवरहस्यमें मध्याह्नमें भैरवोत्पत्ति लिखी है, इसी प्रकार वहां भी लिखा है कि, नित्य यात्रा आदि करके जब सूर्य मध्याह्नमें प्राप्त हो यह प्रारम्भ करके ब्रह्माने रुद्रके समान जाना यह लिखा है, तब निष्पाप उग्ररूपसे उन्मत्तरूप कालभैरव मानो सब संसारको भय देते प्रगट हुए॥ इस तिथिमें व्रतही प्रधान है वहांही लिखा है कि, उपवासका अंग अर्घ्यदान, जागरण, चार प्रहरकी पूजा इसमें लिखी है, सन्ध्यामें भी पूजा लिखी है, तिससे मध्याह्नव्यापिनी लेनी युक्त है, दोनों दिन किसी भागमें संपूर्ण व्यापिनी होय तो पूर्वोक्तवाक्यसे प्रथमहीकी लेनी, पारणा तो तीन प्रहरसे अधिक तिथि होय तो प्रातःकाल करनी चाहिये इस वाक्यसे प्रातःकाल ही करै॥ इसमेंही त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें कालभैरवकी पूजा लिखी है कि बडी सामाग्रियोंके विस्तारसे मार्गशिर शुक्ल अष्टमीको पूजन करके मनुष्यके वर्षदिनके विघ्नको भैरव दूर करदेता है. तैसेही लिखा है कि, कालोदक तीर्थमें स्नान और शनैः २ तर्पण करके और कालराजा (भैरव) का दर्शन करके नरकसे पितरोंका छुटकारा करता है, यहां मार्गशिरसुदि अष्टमी कार्तिकीके उपरान्त गौण चांद्रमासमें लेनी चाहिये॥ मार्गशिरशुक्लपञ्चमीको हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे नागपूजा लिखी है कि मार्गशिरशुक्ल वा श्रावणशुक्ल पञ्चमी स्नान और दानसे अनेक फल और नागलोक देनेवाली है, यह नागपूजामें षष्ठीसे युक्त लेनी चाहिये. कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखा है कि, नागपूजामें पञ्चमी षष्ठीयुक्त लेनी चाहिये और सब पंचमी चतुर्थीयुक्त लेनी चाहिये॥ मार्गशिर-

वचनात् ॥ मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी (चम्पाषष्ठी) निर्णयः । मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठीति महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । सोत्तरयुता ग्राह्या 'षण्मुन्योः' इति युग्मवाक्यात् । 'पूर्वाह्णे दैविकं कुर्यात्' इति वचनादस्य च देवकर्मत्वात् । इयमेव योगविशेषेण चम्पेत्युच्यते । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे मल्लारिमाहात्म्ये—"मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता । रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता" इति ॥ 'विशाखाभौमयोगेन सा चम्पेतीह कीर्तिता' इति मदनरत्ने पाठः । "मार्गशीर्षेऽमले पक्षे षष्ठ्या वारेंऽशुमालिनः । शततारागते चन्द्रे लिङ्गं यादृष्टिगोचरम्" इति । इयं च योगवशेन पूर्वा परा वा कार्या । चम्पाषष्ठी सप्तमीयुतेति दिवोदासः ॥ स्कन्दषष्ठीनिर्णयः । इयमेव स्कन्दषष्ठी । "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्" इति भृगूक्तेः परेऽह्नि रात्रावाद्ययाममध्ये पारणासम्भवे इदम् । अन्यथोत्तरैवेति दिवोदासः । अब्दपर्यन्तषष्ठीषु । "सेनाविदारक स्कन्द महासेन महाबल । रुद्रोमाग्निज षड्‌ गङ्गागर्भ नमोस्तु ते" इति राजतं स्कन्दं पूज्य विप्राय दद्यादिति दिवोदासः ॥ मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दशीनिर्णयः । मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पिशाचविमोचनीतीर्थे श्राद्धं त्रिस्थलीसेतौ भट्टचरणैरुक्तम् । तस्य प्राप्तपैशाच्यस्वपित्राद्युद्देश्यकपार्वणत्वादपराह्णव्यापिनी ग्राह्या

शुक्लषष्ठी महाराष्ट्रोंमें " चम्पाषष्ठी " नामसे प्रसिद्ध है । वह उत्तरातिथिसे युक्त लेनी चाहिये. कारण कि (षण्मुन्योः) षष्ठी और सप्तमीका द्विवाक्य है, पूर्वाह्णमें देवकर्म करना चाहिये, इससे यह भी देवकर्म है इसेही योगविशेषसे चंपा वर्णन करते हैं यही ब्रह्माण्डपुराणमें मल्लारिमाहात्म्यमें लिखा है कि, मार्गशिर और भाद्रपद शुक्लषष्ठी वैधृति रविवारसे युक्त होय तो चम्पा जाननी. मदनरत्नमें यह पाठ है कि विशाखा मंगलके योगसे युक्त षष्ठी चंपा कही है, मार्गशिरशुक्ल षष्ठीको रविवार और विशाखापर चंद्रमा होय तो शिवजीके लिंगका उस दिन दर्शन होसकता है, यही योगके वशसे प्रथम वा पिछली करनी चाहिये, चंपाषष्ठी सप्तमीसे युक्त लेनी चाहिये, यह दिवोदासका मत है ॥ यही स्कंदषष्ठी यह पूर्व तिथिसे युक्त लेनी चाहिये, कारण कि, भृगुजीने यह लिखा है कि कृष्णाष्टमी स्कंदषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी ये पूर्व तिथियोंसे युक्त लेनी चाहिये, और तिथिके अंतमे पारणा करनी यह तब जानना चाहिये जब अर्द्धरात्रिसे प्रथम पारणा हो सके अन्यथा पिछली ग्रहण करनी यह दिवोदासका कथन है कि वर्षदिनतक षष्ठियोंमें इस मंत्रसे चांदीकी स्कंदकी पूजा करके ब्राह्मणको दे दे कि, हे सेनाविदारक ! हे स्कंद ! हे महासेन ! हे महाबल ! हे रुद्र ! हे पार्वतीपुत्र ! हे अग्निके पुत्र ! हे षण्मुख ! हे गंगाके गर्भसे उत्पन्न ! आपको प्रणाम है ॥ मार्गशिरशुक्ल चतुर्दशीको पिशाचमोचन तीर्थपर श्राद्ध त्रिस्थली सेतु ग्रन्थमें भट्टोंने लिखा है, वह श्राद्ध पिशाच हुये अपने पिता आदिके निमित्त किया जाय तो पार्वण होगा, इससे अपराह्णव्यापिनी लेनी.

अज्ञातनामपिशाचाद्युद्देश्यकत्वे त्वेकोद्दिष्टत्वात् मध्याह्नव्यापिनीति ॥ कुलधर्मव्रतादौ तूत्तरैव । 'चैत्रनभोगतेतरसिता स्यादूर्ध्वा' इति दीपिकोक्तेः ॥ दत्तजयन्ती । मार्गशीर्षपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः ॥ तदुक्तं स्कान्दे सह्याद्रिखण्डे-"मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेह्नि सुनिर्मले । मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे ॥ जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् । तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम्॥ दत्तवान्स्वस्य पुत्रत्वाद्दत्तात्रेय इतीश्वरः"॥२॥इति इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येतिवृद्धाः॥ अष्टकानिर्णयः ॥ मार्गशीर्षपौर्णिमानन्तराष्टमी अष्टका ॥ एवं पौषादिमासत्रयेपि 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा ' इत्याश्वलायनोक्तेः ' एकस्यामष्टम्यां वै कार्या ' इति हरदत्तः । क्वचित् पंचम्यप्युक्ता-' प्रौष्ठपद्यष्टका भूयः पितृलोके भविष्यति ' इति पाद्मवचनात् । तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युः तत्परनवमीष्वन्वष्टकासु च श्राद्धमुक्तं कालादर्शे " मार्गशीर्षे च पौषे च माघे प्रौष्ठे च फाल्गुने । कृष्णपक्षे च पूर्वेद्युरन्वष्टक्यं तथाष्टका " ॥ इति ॥ यत्तु विष्णुः 'अमावास्यास्तिस्रोष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टकाः ' इति । यच्च कौर्मे-अमावास्याष्टकास्तिस्रः पौषमासादिषु त्रिषु " इति । तच्चतुर्थ्यामनावश्यकत्वार्थं-" याचाप्यन्या चतुर्थी

चाहिये. यदि जिसका नाम ज्ञात न हो ऐसे पिशाचके निमित्त किया जाय तो एकोद्दिष्ट होगा इसमें मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये कुलधर्म व्रत आदिमें तो पिछली लेनी चाहिये चैत्र नभोगतमें सिता ऊर्ध्वा होती है यह दीपिकामें लिखा है ॥ मार्गशीर्षशुक्ला पूर्णिमामें दत्तात्रेयकी उत्पत्ति है सोई स्कन्दके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है मार्गशिर मासके दशवें निर्मल दिनमें मृगशिर मासके दशवें मृगशिर नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और बुधवारको देदीप्यमान पुत्रको सतीने उत्पन्न किया, उस आये हुये विष्णुको जानकर अत्रिने स्वयं उनका नामकरण किया कि, अपने पुत्रके निमित्त देनेसे आपका नाम दत्तात्रेय ईश्वर है, यह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये यह वृद्ध कहते हैं ॥ मार्गशिरकी पूर्णिमाके अनन्तर अष्टमी अष्टका लिखी है, इसी प्रकार पौष आदि तीन महीनोंकी अष्टमी अष्टका जाननी चाहिये. कारण कि आश्वलायनने यह लिखा है कि, हेमंत शिशिरके चार महीनोंकी वा एक महीनेकी कृष्णाष्टमी-अष्टका होती है, एक अष्टमीको एक अष्टका करनी चाहिये यह हरदत्तने कही है. कहीं पांचवीं अष्टका लिखी है, कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि, भाद्रपदकी अष्टका फिर पितृलोकमें होगी, उनसे पहिली सप्तमी और अगली नवमी अन्वष्टका कहाती हैं, उनमेंभी कालादर्शमें श्राद्ध लिखा है कि, मार्गशिर, पौष, माघ, भाद्रपद, फाल्गुन इनके अष्टमीसे प्रथम और पिछले दिन अन्वष्टका होती है ॥ जो विष्णुने यह लिखा है कि, अमावास्या और तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका और जो कूर्मपुराणमें यह लिखा है कि अमावास्या और पौष आदि तीन महीनोंमें तीन अष्टका और तीन अन्वष्टका होती हैं, वह उस निमित्त हैं कि, चौथी अष्टकाकी आवश्यकता नहीं. कारण कि,

स्यात्तां च कुर्यात्प्रयत्नतः " इति वायुब्रह्माण्डपुराणात् । " श्राद्धमेतन्न कुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते " इति विष्णूक्तेरिति शूलपाणिः । शाखाभेदाद्व्यवस्थेति तत्त्वम् । वायुब्रह्माण्डयोः- " आद्यापूपैः सदा कार्या मांसैरन्या सदा भवेत् । शाकैः कार्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः ॥ " पौषादिः क्रमः ॥ अन्वष्टका तु प्रागेव निर्णीता । तत्राष्टम्यपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । " अथान्वाहार्यपर्यन्तं श्राद्धं पार्वणवद्भवेत् " इत्याश्वलायनकारिकोक्तेरपराह्णकालत्वाच्च पार्वणस्य । पूर्वेद्युरष्टकाश्राद्धयोस्तु अष्टम्यनुरोधेन निर्णयः । अत एव सूत्रम्- " पूर्वेद्युः पितृभ्यो दद्यात् । अपरेद्युरन्वष्टक्यम् " इति च । अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ । " इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षावष्टम्यां कामकालौ " इति सायणीये शंखोक्तेः ॥ श्राद्धाकरणे प्रायश्चित्तनिर्णयः । अत्र श्राद्धाकरणप्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने- " एभिर्द्युभिर्जपेन्मन्त्रं शतवारं तु तद्दिने । अन्वष्टक्यं यदा न्यूनं संपूर्णं याति सर्वथा " इति १ अशक्तौ त्वाश्वलायनः- " अद्य श्वोभूतेष्टकाः । पशुना स्थालीपाकेन चाप्यनडुहो यवसमाहरेदग्निना वा कक्षमुपोषेदेषा-मष्टकेति न त्वेवानष्टकः स्यात् " इति ॥ मार्गशीर्षादिषु मलमासे सति तत्राष्टका

वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि, जो चौथी अष्टका है उसको भी प्रयत्नसे करे, विष्णुने भी लिखा है कि, इसमें जो श्राद्ध नहीं करता वह नरकमें जाता है, यह शूलपाणिने लिखा है, इसमें तत्त्व यह है कि, शाखाभेदसे व्यवस्था समझनी चाहिये वायु और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि, पहली अष्टका पूओंसे, दूसरी मांससे, तीसरी शाकोंसे यही पौषसे लेके द्रव्यकी विधि कही है अन्वष्टकाका निर्णय तो प्रथम कह आये उसमें अपराह्णव्यापिनी अष्टमी लेनी चाहिये, कारण कि, अष्टकामें अन्वाहार्य पर्यंत पार्वणके समान श्राद्ध होता है इस आश्वलायनके कथनसे पार्वणका अपराह्णकाल है, प्रथम दिन अन्वष्टका श्राद्धमें तो अष्टमीके अनुरोधसे निर्णय जानना चाहिये, इसीमें यह सूत्र है, प्रथम दिन पितरोंको दे, पिछले दिन अन्वष्टका करे इसमें काम और काल विश्वेदेवा होते हैं कारण कि, सायणीय ग्रंथमें शंखका कथन है कि, इष्टिश्राद्धमें क्रतुदक्ष और अष्टमीमें कामकाल विश्वेदेवा होते हैं ॥ इसमें श्राद्ध न करे तो ऋग्विधानमें भी प्रायश्चित्त कथन किया है कि, अन्वष्टका श्राद्धसे न्यून होजाय तो (एभिर्द्युभिः) इस मंत्रको सौ वार जपना चाहिये, जिससे सर्वथा सम्पूर्ण हो जाता है, अशक्तिमें तो आश्वलायनने यह लिखा है कि आजके दिन पशु वा स्थालीपाकसे अन्वष्टका करे, वा बैलके निमित्त यवोंको लावे, अथवा जंगलकी सूखी घासको अग्निसे जलादेना, इस प्रकार अष्टका नष्ट नहीं होती, मार्गशिर आदि चारोंमें मलमास आवे तो अष्टका न करनी यह मदनरत्नमें

---

१ इस प्रकार आश्वलायनने लिखा कि फाल्गुन अष्टमी और सब महीनोंमें श्राद्ध न करनेसे भी दोष नहीं है अपनी शाखाको त्यागकर जो परशाखामें वर्णित है उसकी यह चेष्टा सिद्ध होजाती है अर्थात् अधिक जल्दी नहीं होती १९३ ॥

न कार्या । चतुर्णामिति ग्रहणादित्युक्तं नारायणवृत्तौ । तथा काठकगृह्येपि-"महालयाष्टकश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् । स्पष्टमासविशेषाख्याविहितं वर्जयेन्मले" इति॥ मार्गशिरसि रविवारव्रतम् । मार्गादिरविवारेषु काम्यं व्रतमुक्तं हेमाद्रौ । तत्र भक्ष्याण्युक्तानि हंसे सौरधर्मे-"पत्रत्रित्वं तुलस्यास्त्रिपलमथ घृतं मार्गशीर्षादि भक्ष्यं मुष्टीनां त्रिस्तिलानां त्रिपलदधि तथा दुग्धकं गोमयं च । त्रित्वं तोयाञ्जलीनां त्रिमरिचकमथो त्रिःपलाः सक्तवः स्युर्गोमूत्रं शर्करासद्धविरितिविधिना भानुवारे क्रमेण" इति ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ द्वितीयपरिच्छेदे मार्गशीर्षमासः समाप्तः ॥ अथ पौषमासः (धनुःसंक्रांतिः) । धनुस्संक्रमे पराः षोडश घटिकाः पुण्याः । अन्यत्प्राग्वत् । अत्रोत्सर्जननिर्णयो वक्तव्योपाकर्मप्रसङ्गात् प्रागेवोक्तः ॥ पौषाष्टमी । कल्पतरौ भविष्ये-"पौषे मासे यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् । तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम् । मत्प्रीतये कृतं देवि शतसाहस्रिकं भवेत् ।" अत्रैव रोहिण्यार्द्रायोगे पुण्यतमत्वं तत्रैव ज्ञेयम् ॥ पौषैकादशी । पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः ॥ सा चोक्ता प्राक् पौषपूर्णिमानन्तराः सप्तम्यष्टमीनवम्योऽ ष्टकाः प्रागुक्ताः ॥ अर्धोदयनिर्णयः । पौषामावास्यामर्धोदयो योगविशेषः । तदुक्तं मदनरत्ने महाभारते-"अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः

लिखा है. काठकगृह्यमें भी लिखा है कि, महालय अष्टकाके श्राद्ध उपाकर्म आदि जो कर्म प्रसिद्ध नामके मासमें लिखे हैं उन्हें मलमासमें न करना ॥ हेमाद्रिमें मार्गशिर आदिके रविवारोंमें काम्यव्रत लिखा है और उसमें भक्षणके योग्य पदार्थ संग्रहके सौरधर्ममें लिखे हैं कि, तुलसीके, तीन पत्ते, घी तीन पल, तीन मुट्ठी तिल, तीन पल दही, तीन पल दूध, तीन पल गोवर, तीन अंजली जल, तीन मिर्च, तीन पल सत्तू, तीन पल गोमूत्र, तीन पल शकर, तीन पल श्रेष्ठ हवि ये मार्गशिर आदि महीनेके रविवारोंमें क्रमसे भक्षण करने चाहिये ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां मार्गशिरनिर्णयः समाप्तः । धनकी संक्रान्तिमें अगली सोलह घडी पवित्र काल हैं शेष निर्णय पूर्वकी तुल्य जानना चाहिये यहां उत्सर्जनका निर्णय कहना था सो उपाकर्मके प्रसंगसे पहिले कथन कर आये हैं ॥ कल्पतरुग्रन्थमें भविष्यका कथन है कि, हे देवि ! पौष शुक्ल अष्टमीको जब बुधवार हो उसमें स्नान, जप, होम, तर्पण, ब्राह्मणभोजन मेरी प्रसन्नताके निमित्त कराया जाय तो लक्षगुना फल होताहै, उसमें यदि रोहिणी वा आर्द्रा नक्षत्रका योग होय तो महापुण्य होता है, सो कल्पतरु ग्रन्थसे ही जानना चाहिये ॥ पौषशुक्लएकादशी मन्वादि है, उसे प्रथम कह आये हैं, पौषकी पूर्णिमाके उपरान्त सप्तमी, अष्टमी, नवमी, अष्टका आदि प्रथम कह आये हैं ॥ पौषकी अमावस्याको अर्धोदय नामका विशेष योग होता है कि, सोई मदनरत्नमें महाभारतके वाक्यसे लिखा है कि, रविवार व्यतीपात श्रवणसे युक्त पौष और माघकी अमावस्या होय तो अर्धोदय योग

कोटिसूर्यग्रहैः समः " इति । पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनी पौर्णमास्युत्तरामावास्ये त्यर्थ इति भट्टाः । मदनरत्ने पौषस्य च माघस्य वेत्यर्थ उक्तः । तन्न । हेमाद्रिविरोधात् । तत्र हि माघ एवोक्तः । तथा–'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन' इति । इदमर्थमन्यनिबन्धेष्वभावान्निर्णयामृतमात्रोक्तेर्निर्मूलमेव¹। तेन हेमाद्यादिमते रात्रावर्धोदयो भवत्येव । केचित्तु–'किंचिदूनो महोदयः' इत्याहुस्तन्निर्मूलम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च स्कान्दे–"माघामायां व्यतीपाते आदित्ये विष्णुदैवते । अर्धोदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समम् ॥ " तत्रैव–"माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने । वैष्णवेन तु ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे ॥ " व्रतं कुर्यादित्यग्रेऽन्वयः । तत्रैव–"ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णाः पलसंख्यया । प्रतिमास्तु प्रकर्तव्यास्तदर्धेन द्विजोत्तम ॥ सार्धं शतत्रयं शंभोर्द्रोणानां तिलपर्वतः । कर्तव्यौ पर्वतौ विष्णुरुद्रयोः पूर्वसंख्यया ॥ २ ॥ " शंभुरत्र ब्रह्मा । 'शय्यात्रयं ततः कुर्यादुपस्करसमन्वितम् । ' तिलैर्होमं कृत्वा प्रतिमां दद्यादित्युक्तं स्कान्दे–"अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् ॥ शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंमिताः ॥ यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् " ॥ इति ॥ तत्र दानविशेषः । अत्र दान-

जानना, वह कोटि सूर्यके ग्रहणोंके तुल्य होता है भट्ट यह कहते हैं कि, पौष और माघके बीचकी पौषकी पूर्णिमा और उससे अगली अमावस्या लेनी चाहिये. मदनरत्नमें यह कहा है कि, हेमाद्रिके विरोधसे पौष और माघ दोनोंकी लेनी चाहिये, सो ठीक नहीं है कारण कि, माघही लिखा है तैसेही दिनमें यह योग उत्तम है, रात्रिमें किसी प्रकार यह ठीक नहीं यह अर्थ और ग्रन्थोंमें न होनेसे और केवल निर्णयामृतमेंही लिखा होनेसे निर्मूल है, इससे हेमाद्रिके मतमें रात्रिमें अर्धोदय होताही है कोई कुछ न्यून महोदय कहते हैं सो निर्मूल है. हेमाद्रि और मदनरत्नमें स्कन्दपुराणका वाक्य है कि, माघकी अमावस्याको व्यतीपात रविवार श्रवण नक्षत्र होय तो सहस्र सूर्य ग्रहणोंके तुल्य उसको अर्द्धोदय कहते हैं. वहांही लिखा है कि, माघमासके कृष्णपक्षकी पञ्चदशीको रविवार श्रवण नक्षत्र व्यतीपात होय तो इस दुर्लभ दिनमें व्रत करना चाहिये. वहांही लिखा है कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ब्रह्मा विष्णु शिवकी एक वा आधे-पल सुवर्णकी उत्तम प्रतिमा निर्माण करनी, साढे तीन द्रोणभर तिलोंका पर्वत शिवजीका और इतनेही पर्वत विष्णु और ब्रह्माके निर्माण करै, इस वाक्यमें शम्भुसे ब्रह्माका ग्रहण लेना फिर सामग्री सहित तीन शय्या निर्माण करै, तिलोंसे हवन करके प्रतिमाका दान करै. स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, अर्द्धोदयके प्राप्त होनेपर सब जल गंगाके समान हैं, और सब ब्राह्मण शुद्धात्मा ब्रह्मके समान होते हैं जो कुछ दान दिया जाता है वह मेरुके समान है ॥ इसमें

१ यह योग दिनमेंही उत्तमहै वा आपत्तिमें उषःकालमें भी उत्तम है परन्तु धर्मपरायण पुरुष रात्रिमें इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं इस प्रकार नव्य नागरखण्डसे रात्रिमें योग निर्मूल कहते हैं १९४ ॥

विशेषो निर्णयामृते स्कान्दे-"चतुःषष्टिपलं मुख्यममत्र तत्र कारयेत्। चत्वारिंशत्पलं वाथ पंचविंशतिरेव वा॥" अमत्रं पात्रम्। तच्च कांस्यमयमित्युक्तं तत्रैव "एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्" इति। तथ-"निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्। पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्॥ तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत्। भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाष्टदलमुत्तमम्॥ अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्। तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैस्तु शोभनैः॥ वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ४॥" मन्त्रस्तु-"सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम्। आपत्तेस्तारकं यस्मात्तद्गृहाण द्विजोत्तम॥ समुद्रमेखलां पृथ्वीं सम्यग्दातुश्च यत्फलम्। तत्फलं लभते मर्त्यः कृत्वेदं दानमुत्तमम्॥ २॥" इति॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पौषमासः समाप्तः॥ अथ माघमासः। माघस्नानम्। तत्र विष्णुः-"तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत्। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्" इति सौरमास उक्तः। "एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत्। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्" इति। पाद्मेपि-"पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः। मासमात्रं निराहारस्त्रिकालं स्नानमाचरेत्॥ त्रिकालमर्चयेद्विष्णुं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः।

दान विशेष भी निर्णयामृतमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, ६४ वा चालीस वा पचीस पल भरका काँसेका पात्र निर्माण करै. सोभी इस वाक्यसे कांसेका लिखा है कि, इस प्रकार कांसेके पात्रको भली प्रकार गढवावे इसी प्रकार उसमें खीर रखकर ८ दलका पद्म लिखै, उस पद्मकी कर्णिकामें १ कर्षभर वा उससे आधा वा उससे भी आधा सुवर्णका पात्र करावे, पृथ्वीमें चावलोंसे श्रेष्ठ अष्टदल निर्माण करै उसपर ब्रह्मा विष्णु शिवरूप उस पात्रको स्थापन करै, शोभन श्वेत पुष्पोंसे तीनों देवताओंकी अर्चा करै, और वस्त्र आदिसे अलंकार करके ब्राह्मणको निवेदन करै. मन्त्र यह है कि जिससे यह सुवर्ण सहित पायसका पात्र ब्रह्मा विष्णु शिवरूप और आपत्तिका निवारक है. इस कारण हे द्विजोत्तम! तुम इसे ग्रहण करो, समुद्रपर्यन्त पृथ्वी भली प्रकार दान करनेसे जो फल मिलता है मनुष्योंको इस दान करनेसे वही फल प्राप्त होता है॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां पौषमासः समाप्तः। वहां विष्णुका यह वाक्य है कि, तुला मकर मेषकी संक्रांतिमें प्रातःस्नान हविष्य भोजन ब्रह्मचर्य सदा करै, माघके स्नानका बडा फल है यहां सौरमास लिखा है, ब्रह्मपुराणमें तो सावनमास लिखाहै कि, पौषशुक्ल ११ को आरम्भ कर; १२ द्वादशी वा पूर्णिमा शुक्लपक्षमें सम्पूर्ण करै. पद्मपुराणमें लिखाहै कि, पौषशुक्ल ११ से भूमिपर शयन करै, निराहार रहै, त्रिकाल स्नान करै, त्रिकाल विष्णुकी अर्चा करै; भोगोंको त्यागदे, जितेन्द्रिय रहै. हे विद्याधरोत्तम! ये सब

माघस्यैकादशीं शुक्लां यावद्विद्याधरोत्तम ॥ २ ॥ " इति ॥ त्रिकालस्नानं मासोपवासविषयम् । निराहार इत्युक्तेः । पृथ्वीचन्द्रोदये त्वन्यथोक्तम् । विष्णुः—"दर्शं वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत् । पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे" अत्र दर्शमिति । शुक्लादिमुख्यचान्द्राभिप्रायेण । अयं तु पक्षो नेदानीं प्रचरति ॥ स्नाने अधिकारिनिर्णयः । अत्राधिकारिणो भविष्ये—"ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः । बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः ॥ स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलम् ॥ " पाद्मे—'सर्वेऽधिकारिणो ह्यत्र विष्णुभक्तौ यथा नृप '। ब्राह्मे—"उष्णोदकेन वा स्नानमशक्ते सति कुर्वते । दृढेषु सर्वगात्रेषु उष्णोदं न विशिष्यते " ॥ वैष्णवामृते गौडनिबन्धे स्कान्दे—" पौष्यां तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा । माघमासस्य तावद्धि पूजा विष्णोर्विधीयते ॥ पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत् । ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ अन्यथा याति नरकं क्षत्रविट्शूद्र एव च । वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरोपमम् ॥ ॥ ३ ॥ माघे मलमासे सति निर्णयः । यदा तु माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वये स्नानं तन्नियमाश्च कार्याः । मासोपवासचान्द्रायणादि तु मलमास एव समापयेत् । तदुक्तं दीपिकायाम्—' नियतत्रिंशद्दिन-

---

माघशुक्ला ११ एकादशीतक करै यह वाक्य त्रिकाल स्नान मासोपवासके निमित्त है कारण कि, निराहार रहना लिखा है, पृथ्वीचन्द्रोदयमें तो दूसरा प्रकार लिखा है कि, विष्णुका वाक्य है कि, अमावास्या वा पूर्णिमासे आरम्भ करके मकरके सूर्यमें तीस दिनतक स्नान करै, इस वाक्यमें अमावास्याका कहना शुक्ला आदि मुख्य चान्द्रमासके अभिप्रायसे है, परन्तु इस पक्षका आजकल प्रचार नहीं है ॥ इसके अधिकारी भी भविष्यपुराणमें लिखेहैं कि, ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ भिक्षुक बालक वृद्ध युवा नरनारी नंपुसक माघमासमें शुभतीर्थमें स्नान करके मनोवांछित फलको प्राप्त होते हैं, पद्मपुराणमें लिखा है कि, हे राजन् ! विष्णुकी भक्तिके तुल्य इसके सब अधिकारी हैं. ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, शीतलजलसे स्नान न होसकै तो गरम जलसे स्नान करै उनके दृढ सब गात्रोंको उष्णजल भेदन नहीं करता. वैष्णवामृत गौडनिबंधमें स्कंदने यह कहा है कि, पौषकी पूर्णिमा बीतनेपर माघकी पूर्णिमा आजावे तबतक विष्णुका पूजन करै, पितर और देवताओंके निमित्त मूली न दे, और ब्राह्मण मूलीको खाकर चान्द्रायण व्रत करै, न करै तो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र नरकमें जाते हैं तिससे मदिराके तुल्य (सलगम) मूलीको प्रयत्नसे त्यागदे ॥ जब माघ मलमास होजाय तब काम्य कर्मोंकी पूर्तिका उसमें निषेध है, इससे दोनों महीनोंमें स्नान और उसके नियम करने, और चान्द्रायण आदि मासोपवासको तो मलमासमें ही पूर्ण करना. सोई दीपिकामें लिखा है कि, तीस:

त्वाच्छुभे मास्यारभ्य समापयेत् । 'मलिने मासोपवासव्रतम्' इति ॥ मासोपवासपदं चान्द्रायणादेरुपलक्षणम् ॥ स्नानारंभे च मन्त्रो विष्णुनोक्तः--"तत्र चोत्थाय नियमं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् । माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि" इति । प्रत्यहं मन्त्रश्च पाद्मे--"दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव ॥ स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव । इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः" ॥ २ ॥ इति ॥ प्रत्यहं सूर्यायार्घ्यम् । मन्त्रस्तु पृथ्वीचन्द्रोदये पाद्मे--"सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम । त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा" इति ॥ स्नानकालश्च सूर्योदयः । त्रिस्थलीसेतौ--"मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यभ्युदिते रवौ" इति ॥ 'माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ' इति च पाद्मवचनात् । "संप्राप्ते माघमासे तु तपस्विजनवल्लभे । क्रोशन्ति सर्ववारीणि समुद्गच्छति भास्करे ॥ पुनीमः सर्वपापानि त्रिविधानि न संशयः" इति नारदीयोक्तेः । "यो माघमास्युषसि सूर्यकराभितप्ते स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे । उद्धृत्य सप्तपुरुषान्पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं

दिनका नियम होनेसे शुभमासमें आरम्भ करके मासोपवासको मलमासमेंही पूर्ण कर दे यहां मासोपवास पद चान्द्रायण आदिका उपलक्षण जानना. स्नानारंभके मंत्र विष्णुने लिखे हैं कि, उठकर विधिपूर्वक नियमको स्वीकार करे हे माधव ! इस सम्पूर्ण माघमासमें इस तीर्थके जलमें नित्यस्नान करूंगा, यह संकल्प कर. प्रतिदिनका मंत्र पद्मपुराणमें लिखा है कि, दुःखदारिद्र्यनाशक और लक्ष्मीसहित विष्णुकी प्रसन्नताके निमित्त आज माघमासमें पापोंका विनाश करनेवाला स्नान करताहूं मकरके सूर्य और माघमासमें हे गोविंद ! हे अच्युत ! हे माधव ! इस स्नानसे मुझे शास्त्रोक्त फल दो, इस मंत्रको पढकर मौनको धारण करके स्नान करे, प्रतिदिन सूर्यके अर्घ्यका मन्त्र पृथ्वीचन्द्रोदयमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, हे सूर्य ! हे परमधाम ! तुम सबकी रचना और पालना करनेवाले हो, तुम्हारे तेजसे भ्रष्ट हुआ मेरा पाप सहस्र प्रकारसे नष्ट हो स्नानका काल सूर्योदय त्रिस्थलीसेतुमें लिखा है जो मकरके सूर्यके उदयमें नहीं नहाता और सूर्यके किंचित् उदयमें जल शब्द करते हैं कि हममें कोई स्नान करै. यह पद्मका वचन है. नारदीयमें कहा है तपस्वीजनोंका प्रिय जब माघमास आता है तब सूर्योदयके समय सब जल शब्द करते हैं कि, हम तीन प्रकारके सब पापोंको पवित्र (शान्त) करते हैं, इसमें संशय नहीं करना चाहिये. भविष्यपुराणमें भी लिखा है कि मकरकी संक्रांतिमें सूर्योदयमें जो स्नान करेगा, तैसेही माघमासमें प्रातःकाल सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए सुन्दर नदीके प्रवाहमें जो स्नान करता है वह माता और पिताके कुलके सात पुरुषोंका उद्धार करके देवरूपको धारण कर स्वर्गको

प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ ॥ " इति भविष्योत्तरवचनाच्च । ब्राह्मे त्वरुणोदय उक्तः-"अरुणोदये तु संप्राप्ते स्नानकाले विचक्षणः । माधवांघ्रियुगं ध्यायन्यः स्नाति सुरपूजितः" इति ॥ तथा "अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालावधि प्रभो । माघस्नानवतां पुण्यं क्रमात्तत्रावधारणा ॥ उत्तमं तु सनक्षत्रं मध्यमं लुप्ततारकम् । सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम् " इति । तेनात्र शक्त्यपेक्षया व्यवस्था । इदं च स्नानं प्रयागेऽतिप्रशस्तम् । "काश्याः शतगुणं प्रोक्तं गङ्गायमुनसंगमे । सहस्रगुणिता सापि भवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ पश्चिमाभिमुखी गङ्गा कालिंद्या सह संगता । हंति कल्पकृतं पापं सा माघे नृप दुर्लभा ॥ इत्यादिपाद्मादिवचोभ्यः । विस्तरस्तु मत्पितामहकृतप्रयागसेतौ ज्ञेयः ॥ ब्राह्मे-"यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः । करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद्गाङ्गमज्जनम् ॥ " तथा समुद्रेप्यतिप्रशस्तम् । तदुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे- "माघे मासि च यः स्नायान्नैरन्तर्येण भावतः । पौण्डरीकफलं तस्य दिवसे दिवसे भवेत् । " माघस्नानं काम्यमेवेति भट्टाः ॥ विष्ण्वादिवाक्ये सदावश्यशब्दान्नित्यत्वावगते-

---

गमन करता है- ब्रह्मपुराणमें तो अरुणोदयके समय स्नान लिखा है, स्नानका समय अरुणोदय जब होय तब है, उस समय बुद्धिमान् मनुष्य जो कृष्णके चरणोंका स्मरण करता हुआ स्नान करता है वह देवताओंसे पूजित होता है, इसी प्रकार अरुणोदयसे प्रारम्भ कर और प्रातःकाल पर्यंत जो माघके स्नान करनेवाले हैं हे स्वामिन् ! उनका पुण्य क्रमसे इस प्रकार जानना चाहिये कि जिस समय तारे हों उस समयका स्नान उत्तम और तारे अस्त होगये हों उस समयका मध्यम और सूर्यउदयमें तिससे हीन लिखा है, तिससे यहां शक्तिके अनुसार व्यवस्था है, यह स्नान इस पद्मपुराणके वाक्योंसे प्रयागमें उत्तम लिखा है कि, गंगाके और यमुनाके संगममें स्नानका काशीसे सौगुणा पुण्य लिखा है, यदि वहभी पश्चिमको बहनेवाली होय तो सहस्रगुणा पुण्य होता है, पश्चिमको ओर बहनेवाली गंगा यदि कालिंदीके संग मिले तो वह माघमासमें स्नान करनेसे कल्पोंके किये हुये भी पापोंको नष्ट करती है हे राजन् ! वह माघमासमें बडी दुर्लभ है, इसका विस्तार तो हमारे पितामहके किये हुए प्रयागसेतु ग्रन्थसे जानना चाहिये ॥ ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, माघमासमें जिस किसी दिन प्रयागका स्मरण करता हुआ जो तीर्थमें स्नान करता है वह गंगाके स्नानके फलको प्राप्त होता है, तैसेही समुद्रमें भी अति श्रेष्ठ है सोई पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभासखण्डमें लिखा है कि, जो माघमासमें निरन्तर प्रीतिसे स्नान करता है उस पुरुषको दिनदिनमें पौण्डरीक यज्ञका फल मिलता है किन्हींका तो यह कथन है कि, माघका स्नान काम्यही है नित्य नहीं है, और विष्णु आदिके वाक्योंमें तो सदा और अवश्य शब्दके

र्नित्यकाम्यमिति तु युक्तम् । मासपर्यन्तं स्नानासम्भवे तु त्र्यहमेकाहं वा स्नायात्॥ "महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्" इति लिङ्गात् । "अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि" इति पाद्मादिवचनात् । अत्र मकरसंक्रमो रथसप्तमी माघी त्र्यहमित्येके । माघशुक्लदशम्यादीत्यन्ये । मकराद्यत्र्यह इत्यपरे । माघमासाद्यत्र्यह इति केचित् । त्रयोदश्यादीति बहवः । 'महामाघीं पुरस्कृत्य सस्नौ तत्र दिनत्रयम्' इति पाद्मोक्तेः ॥ एतस्यार्थवादत्वाद्यत्किंचिद्दिनत्रयमिति भट्टाः । तत्त्वं तु—'संदिग्धेषु वाक्यशेषात्' इति न्यायात्त्रयोदश्याद्येवेति प्रयागं विनापि पाद्मे—'अस्मिन्योगे त्वशक्तोपि स्नायादपि दिनत्रयम्' इति ॥ माघस्नाने नियमाः । माघस्नाने नियमास्तु नारदीये—"न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने।होमार्थं सेवये द्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः। त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः ॥ अनभ्यंगी वरारोहे सर्वमासं नयेद्व्रती"२॥

नित्य और काम्य प्रतीत होता है, और यही युक्त है. यदि माघमासपर्यन्त स्नान न होसके तो तीन वा एक दिन अवश्य स्नान करै, कारण कि, यहां वाक्य प्रमाण है कि, महामाघीसे प्रारम्भ कर तीन दिन उसमें स्नान करते हुए श्रेष्ठ हैं, इस योगमें तो अशक्तको भी तीन दिन स्नान करना चाहिये. कारण कि, पद्मपुराणमें लिखा है कि--माघमासमें प्रयाग तीर्थपर तीन दिन नहाये हुएको जो फल है वह सहस्र अश्वमेधोंसे पृथ्वीपर भी नहीं मिल सकता. यहां कोई यह लिखते हैं कि, मकरकी संक्रांतिकी सप्तमीको माघी कहते हैं, तिससे लेकर तीन दिन स्नान करै, और दूसरोंका यह कथन है कि, माघकी शुक्ल दशमीसे लेकर तीन दिन स्नान करै और मकरसे लेकर तीन दिन करै, यह और कहते हैं और कोई यह कहते हैं कि माघके प्रथमके तीन दिन स्नान करै, और बहुतसे यह कहते हैं कि, त्रयोदशीसे लेकर तीन दिन स्नान करै, महामाघीसे लेकर तीन दिन स्नान किया इस पद्मपुराणके वाक्यको अर्थवाद (कहे हुएका कहना) होनेसे चाहै किसी तीन दिनका ग्रहण है यह भट्टोंका कथन है. सिद्धान्त तो यह है कि, संदिग्ध वाक्योंमें वाक्यशेषसे निर्णय करै, इस न्यायसे त्रयोदशी आदि तीन दिन लेने चाहिये, प्रयागके विनाभी पद्मपुराणके वाक्यसे स्नान लिखा है कि, इस योगमें असमर्थभी मनुष्य तीन दिन स्नान करै ॥ माघस्नानके नियम तो नारदपुराणमें इस प्रकार लिखे हैं कि, हे वरानने ! स्नान किया हुआ वा विना स्नान किया हुआ भी मनुष्य अग्नि न तापे, होमके निमित्त वह्निका सेवन करै, और शीतापनयनके निमित्त तो कभीभी न करै, और दिन दिन शर्करासहित तिलोंका दान करै, तीन भाग तिलोंके और चौथा भाग शर्करा, इनको अभ्यंग जिसने न किया हो ऐसा मनुष्य सब महीनेको

तथा-" अप्रावृतशरीरस्तु यः कष्टं स्नानमाचरेत् । पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ तथा-"शंखचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् । वह्निं हुत्वा विधानेन ततस्त्वेकाशनो भवेत् ॥ भूशय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् । अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा सर्वत्र कथ्यते ॥ २ ॥ " तथा-" तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी । तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः " ॥ इति । प्रयागासंभवे काश्यां दशाश्वमेधोत्तरस्थप्रयागतीर्थे स्नानमुक्तं काशीखण्डे-"काश्युद्भवे प्रयागे ये तपसि स्नान्ति मानवाः । दशाश्वमेधजनितं फलं तेषां भवेद्ध्रुवम् " इति ॥ स्नानोत्तरं मदनपारिजाते विष्णुः--"काष्ठमौनान्नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ अवश्यमेव कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः ॥ भविष्ये-"तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः । ततः प्रज्वालयेद्वह्निं सेवनार्थे द्विजन्मनाम् ॥ एवं स्नानावसाने तु भोज्यं देयमवारितम् । भोजयेद्द्विजदाम्पत्यं भूषयेत्स्रग्द्भूषणैः ॥ कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च । चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा ॥ उपानहौ तथा गुप्तमोचकौ पापमोचकौ । अनेन विधिना दद्यान्माधवः प्रीयतामिति" ॥ ४ ॥ पाद्मे-'भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम् । ' यथा-"अन्नं चैव यथाशक्त्या देयं माघे नराधिप ।

बितावै, तैसेही जो शरीरपर कपडेको न ओढकर कष्टसे स्नानको जाता है, उसको पदपदपर अश्वमेधका फल प्राप्त होता है, तैसेही शंखचक्रधारी माधवका पूजन कर फिर विधिसे अग्निम होम करै एक वार भोजन करै भूमिपर सोवै इस प्रकार समर्थ मनुष्य ब्रह्मचर्यसे स्नान करै. यदि ब्रह्मचर्य आदिके करनेमें शक्ति न होय तो सर्वत्र अपनी इच्छा लिखी है तिलसे स्नान तिलोंसे उद्वर्तन (उवटना) तिलोंसे होम तिलोंसे तर्पण तिलका भोजन और तिलका दान करै. कारण कि, ये छः तिल पापके नाश करनेवाले कहे हैं काशीखण्डमें लिखा है कि, प्रयाग न मिले तो काशीमें स्नान करनेसे दश अश्वमेधका फल निश्चय प्राप्त होता है वही मदनपारिजातमें विष्णुका वाक्य है जो माघमें काशी वा प्रयागमें नहाते हैं उनको दश अश्वमेधका फल मिलता है काष्ठमौनियोंको नमस्कार कर विष्णुका पूजन करै, और अवश्य माघका स्नान करना यह श्रुतिका वाक्य है ॥ भविष्यपुराणमें कहाहै कि, तिल आमले यह तीर्थपर नित्य प्रदान करने चाहिये, फिर ब्राह्मणोंको तपानेके निमित्त अग्निको जलावै, इसी प्रकार स्नानके पीछेमें अवारित (मने न करना) भोज्यान्न दे, सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावे, वस्त्रभूषणोंसे भूपित कर, कंबल रत्न नानाप्रकारके वस्त्र चोलक ओढनेके वस्त्र उपानह (जूते) गुप्तमोचक दान तथा पापमोचक ये माधवकी प्रीतिके निमित्त इस विधिसे देने चाहिये. पद्मपुराणमें भी लिखाहै कि, भूमिपर शयन करे, तिलोंसहित घीसे होम करै, तैसेही हे राजन् ! माघमें यथाशक्ति अन्न दे , तैसेही वेदके

सुवर्णं रक्तिकामात्रं दद्याद्वेदविदे तथा "॥ माघान्ते विशेषः । माघान्ते तु विशेषो नारदीये-"माघावसाने सुभगे षड्रसं भोजनं स्मृतम् । सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः ॥ दम्पत्योर्वाससी सूक्ष्मे सप्तधान्यसमन्विते । त्रिंशत् मोदका देयाः शर्करातिलसंयुताः ॥ २ ॥" इति॥ अत्र 'एकादशीविधानेन व्रतस्योद्यापनं तथा' इति । पूर्वेह्नि उपवासपूजनादि कृत्वा परेऽह्नि तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतं होमं कृत्वा, ' सवित्रे प्रसवित्रे च' इति पूर्वोक्तं मन्त्रमुक्त्वा-"दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते । परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते" इति समापयेदिति संक्षेपः ॥ मकरसंक्रान्तिः । मकरसंक्रान्तौ हेमाद्रिमते परतः चत्वारिंशद्धटिकाः पुण्याः ' त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः' इति ब्रह्मवैवर्तात् । माधवमते तु विंशतिः-'त्रिंशत्कर्कटके पूर्वं मकरे विंशतिः परा' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ॥ यदा तु सूर्यास्तात्पूर्वं संक्रांतिर्भवति तदोभयमते पूर्वमेव पुण्यकालः । रात्रौ तु प्रदोषे निशीथे वा मकरसंक्रमे माधवमते द्वितीयदिन एव पुण्यम् । " यद्यस्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि" इति वृद्धगार्ग्यवचनात् । अस्तमयं प्रदोषः । प्रदोषे पूर्वरात्रे ॥ "कार्मुकं

ज्ञाताको रत्ती भर सोना दे ॥ माघके अन्तमें विशेष नारदीयमें लिखाहै कि, हे सुभगे ! माघके उपरान्त षट्रस भोजन लिखाहै, विष्णुकी मूर्ति, सूर्य निरञ्जन मेरेपर प्रसन्न हो ऐसे कहै, स्त्री और पुरुषकी प्रीतिके निमित्त सूक्ष्म वस्त्रोंका और सप्तधान्योंका दान करै, और शकर और तिलसहित तीस लड्डू दे, यहां एकादशीकी विधिसे इस व्रतका उद्यापन करै, इस पद्मपुराणके वाक्यसे प्रथम दिन व्रत पूजन आदि करके परले दिन तिल चरु आज्यसे १०८ एकसौ आठ, आहुति देकर और (सवित्रे प्रसवित्रे) इस पूर्वोक्तमन्त्रको कहकर इस मन्त्रसे क्षमा मांगे कि हे सूर्य ! हे जगन्नाथ ! हे प्रभाकर ! आपको प्रणाम है. हे स्वामी ! प्रातःकालके मघाके स्नानको पूर्ण करो । इति संक्षेपः ॥ मकरकी संक्रान्तिमें हेमाद्रिके मतसे परली चालीस घडी पवित्रकाल है. कारण कि, ब्रह्मवैवर्तमें लिखाहै कि, कर्ककी संक्रान्तिमें तीस घडी और मकरमें दश अधिक (४०) पुण्य काल है, माधवके मतमें तो बीस घडी पुण्यकाल है. कारण कि, वृद्धवसिष्ठने यह लिखाहै कि, कर्कमें प्रथम तीस और मकरमें पिछली बीस घडी पुण्य काल है. जब सूर्यास्तसे प्रथम संक्रान्ति हो तब दोनोंके मतसे प्रथमही पुण्यकाल है. रात्रिमें तो प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकरकी संक्रान्ति होय तो माधवके मतसे दूसरे दिन पुण्यकाल है. कारण कि, वृद्धगार्गने कहाहै कि, सूर्यास्तकालमें प्रदोष वा अर्धरात्रमें मकर राशिपर सूर्य आवे तो परले दिन स्नान दान करना इस वाक्यमें सूर्यास्तसे प्रदोप और प्रदोपसे पूर्वरात्र लेनी. कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, धनराशिको त्यागकर जब मकरपर सूर्य प्रदोप वा अर्द्धरात्रके समय

तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः । प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि'' इति भविष्योक्तेश्च ।' तदा भोगः परेऽहनि '·इति हेमाद्रौ पाठः कालादर्शनिर्णयामृतमदनपारिजातादयोप्येवमूचुः ॥ दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते ॥ यत्तु हेमाद्रिणाद्यो वाशब्दो यथार्थे द्वितीयस्तथार्थे । यथा प्रदोषे पूर्वेद्युस्तथार्धरात्रे परेऽहनीत्युक्तम् तस्मै नमोस्तु । तेन परेऽह्नि पुण्यं वक्तुं प्रदोषे इति दिनद्वये पुण्यनिरासार्थमर्धरात्रग्रहणम् । हेमाद्रिस्मृत्यर्थसारानन्तभट्टादिमते तु निशीथात् पूर्वं पश्चाच्च संक्रांतौ पूर्वदिने परदिने वा पुण्यम् । '' धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा । पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा ॥ दिनान्ते पञ्चनाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः । उदयेपि तथा पञ्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि'' ॥ २ ॥ इति स्कान्दवचनात् । पूर्वापरविभागेनेति मकरकर्कभिन्नविषयम् । पूर्वोक्तवचोविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् । ' षडशीतिमुखेऽतीते अतीते चोत्तरायणे, ' इत्यादिविरोधाच्च ॥ तेन पूर्वैकवाक्यतयायमर्थः । रात्रौ पूर्वभागे मकरसंक्रमे परेऽह्नि उदये पञ्च नाड्यः पुण्याः, रात्रावपरभागे कर्कसंक्रमे पूर्वदिनान्ते पंच नाड्य इति । एवं सर्वेषामविरोधः ॥ मकरे सामान्येन

आवे तब स्नान, दान परले दिन होतेहैं. हेमाद्रिमें यह पाठ है कि, तब भोग परले दिन होताहै, कालदर्श, निर्णयामृत, मदनरत्न, पारिजातमें भी इसी प्रकार लिखते हैं ॥ और दाक्षिणात्य भी इसीको मानतेहैं, जो हेमाद्रिने यह लिखाहै कि, प्रथम वाशब्दका यथा और दूसरे वाशब्दका तथा अर्थ है जैसे प्रदोषमें पहले दिन ऐसे अर्द्धरात्रमें परले दिन पवित्र काल है, ऐसे स्थलमें हेमाद्रिको प्रमाण है, अर्थात् हेमाद्रिका कहना ठीक नहीं, तिससे परले दिन पुण्य कहनेको (प्रदोषे) इस पदका और दोनों दिन पुण्यनिरासके निमित्त (अर्द्धरात्रे) इस पदका ग्रहण है, हेमाद्रि स्मृत्यर्थसार अनन्तभट्ट आदिके मतमें तो आधीरातसे प्रथम और पीछे संक्रान्ति होय तो पूर्वदिन और परदिनमें क्रमसे पुण्यकाल है. कारण कि, स्कंदपुराणमें लिखाहै कि, धन, मीन, कन्या, मिथुनके अनन्तर रात्रिके पूर्व वा परभागमें संक्रान्ति होय तो दिनके अन्तकी पांच घडी तब पुण्य लिखीहैं, और उदयकी भी पांचही घडी, देव और पितरोंके कर्ममें भी पांच घडी पुण्य लिखी है, यह स्कंदका वचन है पूर्व और परभाग मकर और कर्कसंक्रान्तिसे पृथक्‌में समझना चाहिये. कारण कि, पूर्वोक्त वाक्यका विरोध है, यह मदनरत्नमें लिखाहै और इस वाक्यका भी विरोध है कि, षडशीति मुखनामकी संक्रान्ति और उत्तरायणके वीतने पर, तिससे पूर्ववाक्यकी एक वाक्यतासे यह अर्थ है कि, रात्रिके पहले भागमें मकरकी संक्रान्ति होय तो पहले दिन उदयकी पांच घडी पवित्र काल है रात्रिके पिछले भागमें कर्ककी संक्रान्ति होय तो पूर्व दिनके अन्तमें पांच घडी पवित्रकाल है, इस प्रकार सब वाक्योंका परस्पर अविरोध है ॥ मकरमें सामान्यसे

परदिने पुण्यत्वेपि पुण्यातिशयार्थमिदम्। यत्तु देवलयज्ञपार्श्वौ– "आसन्ने संक्रमं पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः। रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्यथ नो दिवा" इति॥ अत्र माधवः। अयने दिवा जाते तदूर्ध्वं पुण्यम्। कर्के पूर्वं मकरेन्त्यम्। एतन्मध्यंदिनायतपरमिति॥ हेमाद्रिस्तु रात्रौ विषुवत्यासन्नदिनार्धं पुण्यम्। अयने त्वासन्नदिनं पुण्यम्। दिने इति पाठे उभयत्र दिनार्धपुण्यमित्याह॥ एतदेवोक्तं दीपिकायाम्–"अथायनमधः पश्चान्निशीथाद्द्वेधयासन्नमहस्तदर्धमथवा पुण्यम्' इति॥ तत्त्वं तु आसन्नसंक्रममित्यस्य विषुवत्येवान्वयः। अयने रात्रौ सति दिने पुण्यम्। कस्मिन्नित्यपेक्षायां कर्के पूर्वेऽह्नि मकरे परेऽह्नि इति वाक्यान्तरवशादर्थे उच्यमाने न कोपि विरोधः। यत्त्वनन्तभट्टः–"अथ संक्रमणं भानोर्निशीथात्प्राक् यदा भवेत्। अयनं विषुवं तत्र प्राग्दिनान्तिमनाडिकाः॥ पञ्च पुण्यतमाः पश्चान्निशीथाच्चेद्भवेत्तथा। आद्याः परदिनस्यापि तद्वदित्येष निर्णयः" ॥ २ ॥ इति॥ अपरार्केप्येवम्॥ "अस्तं गते यदा सूर्ये झषं याति दिवाकरः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा तदा पुण्यं दिनद्वयम्" इति बौधायनवचनाद्दिनद्वयं वा पुण्यकालः॥ 'तदा पुण्यं दिनान्तरम्' इति मदनरत्ने पाठः। गुर्जरप्राच्योदीच्यास्त्विदमेवाद्रियंते। अत्रापि पूर्ववद्व्याख्येयम्। तिथितत्त्वादयो

परदिनमें पुण्य है तोभी यह वाक्य अधिक पुण्यके निमित्त कथन किया गया है देवल और यज्ञपार्श्वने यह लिखाहै कि, सक्रांतिके समयका आधा दिवस स्नान और दानमें पुण्य है, रात्रिमें सूर्यकी संक्रांतिम यह कहाहै कि, विषुव और अयनमें दिनमें पवित्रकाल है, इसमें माधव तो यह कहतेहैं कि, अयन दिनमें होय तो उसके उपरान्त पुण्य है कर्कमें प्रथम, मकरमें पीछे यह मध्याह्नके अयनमें समझना चाहिये. हेमाद्रिका तो यह कथन है कि रात्रिकी विषुवत् संक्रान्तिमें निकटका आधा दिन पवित्र है और अयनमें तो निकटका सम्पूर्ण दिन पुण्य है (दिने) यह पाठ होय तो दोनोंमें आधा दिन पुण्य कहा है यही दीपिकामें लिखाहै कि, आधी रातसे प्रथम वा पीछे अयन होय तो जो निकटका दिन हो उसका आधा पवित्र काल है, सिद्धान्त तो यह है कि, संक्रातिके निकटका इसका अन्वय विषुवत्में होताहै, अयन रात्रिमें होय तो दिनमें पुण्यकाल है किसमें यह जब अपेक्षा हुई कर्कमें पूर्वदिन और मकरमें परदिनमें इस वाक्यांतरके वशसे अर्थ लिखा जाय तो किसी प्रकार विरोध नहीं आता जो अनन्तभट्ट लिखतेहैं कि, जो सूर्यकी संक्रान्ति आधी रातसे प्रथम हो और विषुव वा अयन होय तो प्रथम दिनके अन्तकी पांच घडी अत्यन्त पवित्रकाल लिखा है, तैसेही आधी रातसे पीछे होय तो दूसरे दिनके आदिकी पांच घडी पवित्र कहीहैं, यह निर्णय है. अपरार्कमें भी इस प्रकार लिखाहै कि, सूर्यास्तमें यदि मकरपर सूर्य हो वा प्रदोष आधी रातमें आवे तो दोनों दिनही पवित्रकाल कहाहै. बौधायनके मतसे दोनों दिन पुण्यकाल है॥ मदनरत्नमें यह पाठ है कि, और दिनमें पुण्यकाल है, गुर्जर प्राच्य

गौडग्रन्थास्तु प्रदोषार्धरात्रिभिन्ने रात्रेः पूर्वभागे पूर्वदिने परभागे च परदिने पुण्यमन्यसंक्रांतिवत्, विशिष्य तयोर्निर्देशात् ॥ प्रदोपश्च 'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते ' इति वत्सोक्त इत्याहुः ॥ तन्न ॥ 'अस्तं गते' इति त्रितयवैयर्थ्यापत्तेः । अतः प्रदोपपदेन तद्भिन्नैव रात्रिरुच्यते अत एव 'यावन्नोदयते रविः ' इति वृद्धगार्ग्यादिभिर्दक्षिणायने पूर्वरात्रौ संक्रमे पूर्वदिनमुक्तम् । वत्सोक्तिरप्यध्ययनादिपरा ॥ इह तु त्रिमुहूर्त एव प्रदोपः ॥ तत्र दाननिर्णयः । मकरे दानविशेषो हेमाद्रौ स्कांदे–"धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याद्यश्चोत्तरायणे । सर्वान्कामानवाप्नोति विंदते परमं सुखम् ॥ " विष्णुधर्मे–" उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदानं महत्फलम् । तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते " इति ॥ शिवरहस्येपि–"तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं शुभैः । तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदैवोत्तरायणे ॥ तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥ " कल्पतरौ कालिकापुराणे–"होमं तिलैः प्रकुर्वीत सर्वदैवोत्तरायणे ॥ तान्यो देवाय विप्रेभ्यो हाटकेन समं ददेत् ॥ उत्तरायणमासाद्य नरः कस्मात्स शोचति ॥ " तथा मकरे

उदीच्यभी इसकाही सन्मान करते हैं इसमें भी पूर्वके समान व्याख्या करनी चाहिये, तिथितत्त्व आदि गौडग्रन्थोंमें तो यह लिखाहै कि, प्रदोप और आधी रातसे भिन्न रात्रिके पूर्वभागमें अयनसंक्रान्ति होय तो पहले दिनमें, पिछले भागमें होय तो अगले दिनमें अन्य संक्रान्तियोंके तुल्य पुण्यकाल होताहै. कारण कि, उन दोनोंका पृथक् २ नाम ग्रहण कर उपादान (ग्रहण) है और प्रदोष तो यह वत्सऋपिका कहा जानना चाहिये कि, अस्तके पीछे दो घडीतक प्रदोष होताहै सो उचित नहीं है. कारण कि, 'अस्तं गते' इत्यादि पूर्वोक्त तीन वाक्य वृथा होजायँगे, इससे प्रदोषपदसे प्रदोपसे भिन्न रात्रि लिखी है, इससे वृद्धगार्ग आदिने दक्षिणायनमें पूर्व रात्रिमें संक्रान्ति होय तो प्रथम दिनही पुण्य इस वाक्यसे लिखाहै कि, जवतक सर्यका उदय न हो इत्यादि वत्सका कहनाभी अध्ययन आदिमें जानना चाहिये, यहां तो तीन मुहूर्तका ही प्रदोष है ॥ मकरमें दानविशेष हेमाद्रिमें स्कंदपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, हे राजन्! जो मनुष्य उत्तरायणमें तिलकी धेनु देतेहैं वह उन सब कामनाओंको प्राप्त होतेहैं और परम सुख मिलताहै, विष्णुधर्ममें लिखाहै कि, हे ब्राह्मणो! उत्तरायणमें वस्त्रदानका महाफल है. और तिलसे भरे बैलका दान करके रोगोंसे छूटताहै, शिवरहस्यमें भी कहाहै कि, तिसमें श्रेष्ठ काले तिलोंसे उबटना करै , और उत्तरायणमें ब्राह्मणोंको सदैव तिल देने और तिलके तेलके श्रेष्ठ दीपक मंदिरमें देने चाहिये, कल्पतरुमें कालिकापुराणका लेख है कि, उत्तरायणमें सदा तिलोंसे हवन करै तिलोंको जो देवता और ब्राह्मणोंको सुवर्णसहित देताहै, वह उत्तरायणमें किसी प्रकार भी शोच नहीं करता, इसी प्रकारही मकरमें श्राद्ध आदि रात्रिमेंभी होतेहैं, यह प्रथम कहआये हैं ॥

रात्रावपि श्राद्धादि भवतीत्युक्तं प्राक् । माघामायां योगविशेषोदयः प्रागेवोक्तः ॥ माघकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः । माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमुक्तं हेमाद्रौ यमेन—"अन-रुणोदिते काले माघकृष्णचतुर्दशीम् । स्नातः संतर्प्य तु यमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥" इति ॥ माघशुक्लचतुर्थीनिर्णयः । माघशुक्लचतुर्थी तिलचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । "माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणः । ये त्वां ढुंढेचयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम " इति काशीखण्डात् । 'माघमासे चतुर्थ्यां तु तस्मिन्काल उपोषितः । अर्चयित्वा तु यो देवि जागरं तत्र कारयेत् " इति त्रिस्थलीसेतौ लैङ्गाच्च ॥ तत्र कुन्दचतुर्थी । इयमेव कुन्दचतुर्थी । सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या " माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम् । सम्पूज्य यो हि नक्ताशी समाप्नोति श्रियं नरः " इति कालादर्शे कौर्मोक्तेः ॥ श्रीपंचमी । माघशुक्लपंचमी श्रीपंचमी । तदुक्तं हेमाद्रौ वाराहे—" माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः । पंचम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात्समृद्धये ॥ " इयं माधवमते पूर्वा, हेमाद्रिमते परा ॥ चैत्रशुक्ले श्रीपञ्चमीति दिवोदासः ॥ माघशुक्लसप्तमी (रथसप्तमी) निर्णयः । माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी । सा अरुणोदव्ययापिनी ग्राह्या—"सूर्यग्रहणतुल्या तु

माघकृष्ण चतुर्दशीको यमका तर्पण हेमाद्रिमें यमने लिखाहै कि, माघकृष्ण चतुर्दशीको सूर्योदयसे प्रथम स्नान और यमराजका तर्पण करके सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ माघशुक्ल चतुर्थीका तिलचतुर्थी नाम है वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, कारण कि काशी-खण्डमें कहा है कि, माघशुक्लचतुर्थीको रात्रिव्रतमें तत्पर हो जो मनुष्य ढुंढिराजका पूजन करते हैं, वे देवताओंके भी पूजने योग्य होते हैं, और त्रिस्थलीसेतुमें लिंगपुराणका कथन है कि, माघमासकी चतुर्थीको उस कालमें व्रत और पूजन करके हे देवि ! जागरण करना चाहिये ॥ यही कुन्दचतुर्थी है वह प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये. कारण कि कालादर्शमें कूर्मपुराणक कथन है कि, माघशुक्ल चतुर्थीको सदा कुन्दके फूलोंसे जो शिवपूजन करके रात्रिमें भोजन करता है उस मनुष्यको लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ माघकी शुक्ल पंचमीको श्रीपंचमी कहते हैं यहां हेमाद्रिमें वाराहपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, माघकी शुक्ल चतुर्थीको भली प्रकार श्रीकी आराधना करके पंचमीके दिन समृद्धिके निमित्त कुन्दके फूलोंसे पूजन करना चाहिये, माधवके मतसे यह प्रथमकी लेनी और हेमाद्रिके मतसे दूसरी लेनी चैत्रशुक्लमें श्रीपंचमी होती है यह दिवो-दासका कथन है ॥ माघशुक्ल सप्तमी रथसप्तमी कहाती है वह अरुणोदयव्यापिनी लेनी चाहिये

---

१ माघमासे सुरश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ । रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः । दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः । अर्थात्—इस प्रकार माघशुक्लपञ्चमीको रति कामका पूजादि वसन्तोत्सव करना चाहिये. हे सुरश्रेष्ठ ! माघशुक्लपञ्चमीको रति और कामकी पूजा पूजादि वसन्तोत्सव करै और दान देने चाहिये जिससे भगवान् प्रसन्न हों यह पुराणसमु-च्चयमें लिखा है पूजाव्रतादिमें कर्मकाल मध्याह्न लेना ।

शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम् " इति चन्द्रिकायां विष्णुवचनात् ॥ "अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी । प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा " इति वचनाच्च ॥ यत्तु दिवोदासीये-"अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः । द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा" इति षष्ठीयुतत्वमुक्तम् ॥ तद्यदा पूर्वेह्नि घटिकाद्वयं षष्ठी सप्तमी च परेद्युः क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तत्परं ज्ञेयम् । तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् । मदनरत्ने भविष्योत्तरे स्नानं-"माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा । कुर्यात्स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसंपदः " ॥ अत्रविधिर्भविष्ये-" स्नात्वा षष्ठ्यामेकभुक्तं सप्तम्यां निश्चलं जलम् । रात्र्यन्ते चालयेथास्त्वं दत्त्वा शिरसि दीपिकम् ॥ " तथा जलं प्रक्रम्य-"न केन चाल्यते यावत्तावत्स्नानं समाचरेत् ॥ सौवर्णे राजते पात्रे भक्त्यालाबुमयेथ वा ॥ तैलेन वर्तिर्दातव्या महारजनरञ्जिता ॥ " महारजनं कुसुम्भम् । " समाहितमना भूत्वा दत्त्वा शिरसि दीपकम् ॥ भास्करं हृदये ध्यात्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोस्तु ते ॥ जले परिहरेद्दीपं ध्यात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥ २ ॥ इति ॥ " चन्दनेन लिखेत्पद्ममष्ट-

---

कारण कि चन्द्रिकामें विष्णुने लिखा है कि माघशुक्ल सप्तमी सूर्यग्रहणके तुल्य होती है सूर्योदयके समय इसमें स्नानका महाफल होता है, और यहभी कथन है कि माघशुक्ल सप्तमी यदि अरुणोदयके समय प्रयागमें प्राप्त होजाय तो कोटि सूर्य ग्रहणोंके तुल्य होती है जो दिवोदासीयमें षष्ठीसे युक्त लेनी लिखी है कि हे भारत ! अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रि वत्सपूजामें द्वादशी ये सब पूर्वतिथिसे युक्तही सदा सुखदायक होती हैं, वह उस समय जानना जब प्रथमदिन षष्ठी दो घडी हो और अगले दिन सप्तमी क्षयके वश अरुणोदयसे प्रथमही संपूर्ण हो जाय, वहां षष्ठीमें सप्तमीके क्षयका प्रवेश करके अरुणोदयमें स्नान करना चाहिये. मदनरत्नमें भविष्योत्तरपुराणका कथन है कि माघमासकी शुक्लसप्तमी कोटिसूर्योंके तुल्य है उसमें सूर्य स्नान दान अर्घ्यसे आयुः आरोग्य सम्पदा करते हैं. इसकी विधि भविष्यपुराणके वाक्यसे लिखी है कि षष्ठीको एक भुक्त करके सप्तमीको निश्चलजलके शिरके ऊपर दीपक देकर तुम चलाओ तैसेही जलकी परिक्रमा करके इतने उसे कोई न चलावे तबतक स्नान करै, सोने वा चांदीके पात्र वा तुम्बीके पात्रमें तेलमें बत्तीको कुसुम्भके रंगमें रंगकर रक्खै, सावधान मन होकर शिरपर दीपक रखकर और सूर्यका हृदयमें ध्यान कर इस मंत्रका जप करना चाहिये कि रुद्ररूप रसोंके पति वरुण हरिके निवास आपको प्रणाम है, दीपकको जलमें छोड देना चाहिये ध्यान और देवताओंका तर्पण करके फिर चंदनसे कर्णिकासहित पद्मका अष्टदल चक्र लिखे उसके बीचमें पार्वती-

पत्रं सकर्णिकम् । मध्ये शिवं सपत्नीकं प्रणवेन च संयुतम् ॥ " पूर्वादिदलेषु रविभानुविवस्वद्भास्करसवित्रर्कसहस्रकिरणसर्वात्मकान् संपूज्य गृहं गच्छेदिति ॥ स्नानमन्त्रश्च काशीखण्डे-"यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥ एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् । मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताऽज्ञाते च ये पुनः ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके । सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि ॥ एतन्मन्त्रत्रयं जप्त्वा स्नात्वा पादोदके नरः । केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषो भवेत् " ॥ ४ ॥ दिवोदासीये मदनरत्ने च-" इक्षुदण्डेन जलं चालयित्वा सप्तार्कपत्राणि बदरीपत्राणि च शिरसि निधाय पूर्वोक्तैर्मन्त्रैः स्नात्वा तिलपिष्टमयापूपैः हैमं सूर्यं सम्पूज्य विप्राय दद्यात् ॥ अर्घ्यमंत्रो मदनरत्ने-" सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन । सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर " ॥ ततः-"जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके । सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले" इति प्रार्थयेत् । सौरागमे-"अर्कपत्रैः सबदरैर्दूर्वाक्षतसचन्दनैः । अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये ॥ " अत्र दानविशेषो मदनरत्ने भविष्ये-"ताम्रपात्रे यथाशक्त्या मृन्मये वाथ भक्तिमान् । स्थापयेत्तिलपिष्टं च सघृतं

और ॐकारसहित महादेवको लिखे । पूर्व आदि दलोंपर क्रमसे रवि भानु विवस्वान् भास्कर सविता अर्क सहस्रकिरण सर्वात्मकको लिखें और पूजकर घरको चलाजाय ॥ स्नानका मंत्र काशीखण्डमें इस प्रकार लिखाहै कि, जो जो सात जन्मोंमें मैंने पाप कियाहै उस मेरे पापको रोग और शोकको मकरकी सप्तमी दूर करे. इस जन्मके और दूसरे जन्मके मन वाणी और कायाके ज्ञात और अज्ञात पापको इस प्रकार सात प्रकारके पापोंको सात व्याधियों सहित मकरकी सप्तमी मेरे स्नानसे नष्ट करो. इसमंत्रको जपकरके और सप्तसप्तिकचरणोदकमें स्नान करके और केशवादित्यको देखकर क्षणमें पापरहित होताहै, दिवोदासीय और मदनरत्नमें भी कहा है कि, गांडेसे जलको चलाकर और सात आकके पत्तोंको शिरपर रखकर पूर्वोक्त मन्त्रोंसे स्नान कर तिलकी पिट्ठीके पूयेपर सोनेके सूर्यकी पूजा कर ब्राह्मणको देदेना चाहिये ॥ अर्घ्यका मंत्र मदनरत्नमें यह कहा है कि, हे सात घोडोंके वाहनसे प्रसन्न ! हे सप्तलोकदीपन ! हे देव ! हे दिवाकर । सप्तमीसहित अर्घ्यको स्वीकार करो. फिर सबलोकोंकी माता सप्तव्याहृतियों सहित सूर्यमण्डलमें तुझको प्रणाम है, इस मन्त्रसे प्रार्थना करै. सौरागममें कहाहै कि, आक, बेरके पत्ते, दूर्वा अक्षत, चन्दन इनकी अष्टांग विधिसे सूर्यकी प्रसन्नताके निमित्त अर्घ्यदे, इसमें दानविशेष भी. मदनरत्नमें भविष्यके इस वाक्यसे लिखाहै कि, तांबेके अथवा मृत्तिकाके पात्रमें भक्तिमान् मनुष्य घी और गुड

-सगुडं तथा ॥ काञ्चनं तालकं कृत्वा अशक्तस्तिलपिष्टजम् । संछाद्य रक्तवस्त्रेण पुष्पैर्धूपैरथार्चयेत् ॥ २ ॥ '' दानमन्त्रस्तु-"आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नान-फलेन च । दुष्टदौर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम् ॥ '' तालकं कर्णाभरण-मिति तत्रैवोक्तम् । दीपमात्रमिति हेमाद्रौ तत्रैव भविष्योत्तरे-"एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हेमशतदीधितिना समेतम् । दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति ॥ '' इयं मन्वादिरपि । इयं च शुक्लपक्षस्य-त्वात् पौर्वाह्णिकी ग्राह्या ॥ यदा माघो मलमासो भवति तदा मासद्वये मन्वादि-श्राद्धं कुर्यात् । 'मन्वादिकं पैतृकं च कुर्यान्मासद्वयेपि च' इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः । माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी । माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी तदुक्तं हेमाद्रौ पाद्मे-'माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम् । श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः '' इति ॥ भारतेपि-" शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति '' इति धवलनिबन्धे स्मृतिः-"अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् । अन्नं च विधिवद्द्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ '' सर्ववर्णोक्तेः 'द्विजातयः' इति संबोधनम् । तर्पणमन्त्रस्तत्रैव-

---

सहित तिलको रक्खै, तालक (कर्णफूल) अथवा असमर्थ मनुष्यको तिलकी पिट्ठी निर्माणकर पुष्प और धूपसे पूजन करना चाहिये . दानका मन्त्र यह है कि, सूर्यके प्रसाद और प्रातः काल स्नानके फलसे दुष्ट दौर्भाग्य और दुःखका नाशक यह ताल मैंने दिया है. हेमाद्रिने तो तालदीपकपात्र लिखा है, तहांही भविष्यपुराणका लेख है कि, रथ और घोडोंसे युक्त हो, और सुवर्णकी सौ किरण जिसमें स्फुरित होरही हों इसी प्रकार सुवर्णके सुन्दर रथको माघ-शुक्ला सप्तमीके दिन इस प्रकार जो मनुष्य प्रदान करता है, वह चक्रवर्ती होकर पृथ्वीको भोगता है, यह मन्वादि भी लिखी है, यह शुक्लपक्षकी होनेसे पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, यदि माघ मलमास होय तो दोनों महीनोंमें मन्वादि श्राद्ध करै कारण कि, स्मृतिचन्द्रिकामें लिखा है कि, मन्वादि और तीर्थश्राद्ध ये दोनों महीनोंमें करै ॥ माघके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्माष्टमी लिखते हैं सोई हेमाद्रिमें पद्मपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, माघकी शुक्ल अष्टमीको जो मनुष्य तिलोंसे भीष्मका तर्पण और श्राद्ध करते हैं, वे सन्ततिवाले होतेहैं, भारतमें भी कहाहै कि, माघकी शुक्लअष्टमीको जो भीष्मको जल और अन्न विधिसे प्रदान करते हैं उनके वर्ष दिनके किये हुए पाप क्षणमेंही नष्ट होजातेहैं, यहां (सर्वे वर्णाः) यह कहनेसे (द्विजातयः) यह सम्बोधन समझना चाहिये, धवलनिबन्धमें स्मृतिका लेखहै कि, हे द्विजातियो ! शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मके निमित्त सब वर्ण तिलोदक और विधिसे अन्न दे ।

"भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम् ॥ वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे ॥ वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च । अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे ॥ ३ ॥" इति ॥ एतज्जीवत्पितृकस्यापि भवति । 'जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः' इति पाद्मोक्तेरिति जीवत्पितृकनिर्णये पितृचरणैरुक्तम् ॥ एतच्चापसव्येन कार्यमिति दिवोदासीये । अत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं च नित्यम् ॥ "ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम् । संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ भीष्मद्वादशी । माघशुक्ला द्वादशी भीष्मद्वादशी । "त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति । सा भीष्मद्वादशीत्येषा सर्वपापहरा शुभा" इति हेमाद्रौ पाद्मवचनात् इयं पूर्वयुता युग्मवाक्यात् ॥ माघीपूर्णिमानिर्णयः । माघी पूर्णिमा परेत्युक्तं प्राक् । तथा हेमाद्रौ ब्राह्मे–'माघस्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते' ॥ तत्रैव ज्योतिषे–"मेषपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः ॥ भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ॥" तथा भविष्ये–"वैशाखी कार्त्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः। स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन" ॥ तथा–' तिलपात्राणि देयानि

तहां तर्पणमन्त्र भी लिखाहै कि, शन्तनुके पुत्र और वीर, सत्यवाक्, जितेंद्रिय, भीष्म इन जलोंसे पुत्र और पौत्रको करने योग्य जो क्रिया है उसे प्राप्त हो. वैयाघ्रपद्यगोत्र सांकृत्यप्रवर पुत्रहीन भीष्म वर्माके निमित्त यह जल देताहूं, वसुओंका अवतार शन्तनुके पुत्र बालब्रह्मचारी भीष्मके निमित्त ये अर्घ्य देताहूं, यह जीवितपितावालेको भी करना कारण कि पद्मपुराणमें लिखा है जीवितपितावालाभी भीष्म और यमका तर्पण करे, यह जीवत्पितृकनिर्णयग्रन्थमें पिताजीने लिखा है, यह अपसव्यसे करे, यह दिवोदासीयका मत है, इसमें श्राद्ध काम्य है और तर्पण नित्य है, कारण कि, मदनरत्नमें यह लिखाहै कि, हे श्रेष्ठ ! ब्राह्मण आदि चारों वर्ण जो भीष्मके निमित्त जल नहीं देते उनका वर्ष दिनका किया हुआ पुण्य नष्ट होजाता है ॥ माघके शुक्लपक्षकी द्वादशीको भीष्मद्वादशी कहते हैं कारण कि, हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वाक्य है कि, हे वीर ! तुम्हारा किया हुआ यह व्रत तुम्हारेही नामसे प्रसिद्ध होगा, तिससे यह "भीष्मद्वादशी" सब पापोंके दूर करनेवाली शुभरूप है यह युग्मवाक्यसे पहली विद्धा लेनी ॥ माघकी पूर्णिमा दूसरी लेनी यह पहले कथन कर आयेहैं, सोई हेमाद्रिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखाहै कि, जिस माघकी पूर्णिमाको बृहस्पति और चन्द्रमा मघानक्षत्रपर प्राप्त हों उसे महामाघी कहतेहैं. तहांही ज्योतिषमें भी लिखा है कि जब मेषराशिपर शनि और सिंहराशिपर बृहस्पति चन्द्रमा और श्रवण नक्षत्रपर सूर्य होय तो वह माघकी पूर्णिमा अत्यन्त पूजनीय है. भविष्यमें कहा है, कि, वैशाखी कार्तिकी माघी ये तिथियें अति पूजनीय हैं इससे हे पाण्डुनन्दन स्नान दानसे रहित

कञ्चुकाः कम्बलास्तथा' इति ॥ माघीअष्टकानिर्णयः । माघपूर्णिमानन्तरा अष्टमी माघी अष्टका तन्निर्णयः, पूर्वेद्युरन्वष्टकानिर्णयश्च पूर्वमुक्तः । मलमासे चैता न भवन्तीत्येतत्सर्वं मार्गशीर्षप्रकरणेऽभिहितम् । यथा चतसृष्वष्टकास्वशक्तावेषा आवश्यकी । 'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इत्याश्वलायनोक्तेः । तथा-'माघाष्टकां प्रक्रम्य तामेकाष्टकेत्याचक्षते' इत्यापस्तम्बवचनाच्चेत्यादि प्रयोगपारिजाते ज्ञेयम् ॥ इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ द्वितीयपरिच्छेदे माघमासः समाप्तः ॥ अथ फाल्गुनमासः । कुम्भसंक्रांतिनिर्णयः । कुम्भे षोडश घटिकाः पुण्याः । शेषं प्राग्वत् । फाल्गुनकृष्णाष्टमी सीताष्टमी । 'फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीपते ' इत्युपक्रम्य । " जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी । उपोषितो रघुपतिः समुद्रस्य तटे तदा ॥ रामपत्नी च संपूज्या सीता जनकनन्दिनी ॥ " फाल्गुनकृष्णचतुर्दशीनिर्णयः । फाल्गुनकृष्णचतुर्दशी शिवरात्रिः ॥ सा च केषुचिद्वचनेषु प्रदोषव्यापिनी ग्राह्येत्युक्तम्, केषुचिन्निशीथव्यापिनी । तत्राद्या माधवीये-"त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥ ". स्मृत्यन्तरेपि-" प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिश्चतुर्दशी । रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपो-

---

उसको न जाने दे, तैलेही तिलसे भरेहुए पात्र कंचुक (संजोआ) कम्बलको देना चाहिये ॥ माघकी पूर्णिमाके उपरान्त माघकी अष्टमी 'अष्टका' कहाती है, उसका निर्णय पूर्वदिन अन्वष्टका निर्णयमें पहले कहा है मलमासमें यह नहीं होती यह सब मार्गशीर्षके प्रकरणमें कहा है कि, चार अष्टकाओंमें असमर्थ हो तो यह अवश्य करै. हेमन्तशिशिरमें यह विचार इस आश्वलायनके और इस आपस्तम्बके वाक्यसे प्रयोगपारिजातमें लिखाहै कि, प्रथम दिन अन्वष्टका और चारों महीनोंकी कृष्णाष्टमियोंमें वा एक महीनेकी अष्टमीको अष्टका होती है, इसी प्रकार माघकी अष्टकाके प्रकरणमें उसीको अष्टका वर्णन कियाहै ॥ (इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां माघमासः समाप्तः ।) कुंभकी संक्रांतिमें प्रथम सोलह घडी पवित्र काल है शेष निर्णय पूर्वके तुल्य जानना ॥ हे राजन् ! फाल्गुनकृष्ण अष्टमीको कल्पतरुग्रन्थमें फाल्गुनकी कृष्णअष्टमीको यह विशेष लिखाहै कि, उस दिन रामचन्द्रकी प्रिया श्रीजानकीजी प्रगट हुई और उसी दिन समुद्रके किनारेपर श्रीरामचन्द्रजीने व्रत किया इससे उसमें जनकनन्दिनी सीताका पूजन करना चाहिये ॥ फाल्गुनकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहतेहैं, वह किन्हीं वाक्योंमें प्रदोषव्यापिनी और किन्हीं वाक्योंमें अर्द्धरात्रव्यापिनी लेनी चाहिये. यदि त्रयोदशीके दिन सूर्यास्तके समयपर चार घडीतक चतुर्दशी आगई होय तो उसमें शिवरात्रि व्रत करै. स्मृत्यन्तरमें भी लिखा है कि, शिवरात्रिकी चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी लेनी, और रात्रिमें जागरण करै इससे तिसमेंही व्रत

चयेत् ॥" अत्र प्रदोषो रात्रिः । उत्तरार्धे तस्या हेतुत्वोक्तेः । कामिकेपि—"आदित्यास्तमये काले अस्ति द्वेधा चतुर्दशी । तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा" इति ॥ द्वितीयापि तत्रैव नारदसंहितायाम्—"अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" स्मृत्यन्तरेपि—"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता महानिशा । शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा" ॥ ईशानसंहितायाम्—"माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि । शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः" इति ॥ "अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । तत्तिथावेव कुर्वीत शिवरात्रिव्रतं व्रती ॥ नार्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी । नैव तत्र व्रतं कुर्यादायुरैश्वर्यहानितः" ॥ अर्धरात्रश्च द्वितीययामान्त्यतृतीययामाद्यघटीद्वयरूप इति माधवः । वचनं तूक्तं प्राक् । एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव ॥ "त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः ॥ जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी" इति स्कान्दोक्तेः । दिनभुक्तिः अस्तमयः । "जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते" इति स्कान्दाच्च दिनद्वये निशीथव्याप्तौ हेमाद्रिमते पूर्वा ॥

करना चाहिये, यहां श्लोकके पिछले दो पादोंसे रात्रिको कारण लिखाहै इससे प्रदोष शब्दसे यहां रात्रिका ग्रहण करते हैं, कामिकमें भी कहाहै कि, फाल्गुनकी चतुर्दशी जिस सूर्यास्तमय (रात्रि) कालमें हो वह रात्रि सबमें श्रेष्ठ शिवरात्रि होतीहै ॥ दूसरीभी इस नारदसंहिताके कथनसे वहांही लिखीहै कि, जिस तिथिमें अर्द्धरात्रके समय माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी हो, तिसमें जो शिवरात्रि व्रत करै उसको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है. स्मृत्यन्तरमें भी कहाहै कि, जिस त्रयोदशीमें आधी रात पर चतुर्दशी हो तिसमें शिवरात्रि व्रत तथा रात्रिको जागरण करै, ईशानसंहितामें कहा हैं कि, माघके कृष्ण पक्षकी चौदशको आधी रातमें कोटिसूर्योंकीसी कान्तिवाले आदिदेव शिवलिंग रूपसे प्रगट हुए इसमें चतुर्दशी तिस समयतक व्याप्त लेनी चाहिये तिसमें व्रती मनुष्य शिवरात्रिव्रत करै, जिस तिथिमें आधी रातसे पीछे वा प्रथम चतुर्दशी नहीं उसमें व्रतीको व्रत न करना चाहिये. कारण कि, तिसमें व्रत करनेसे अवस्था और ऐश्वर्यकी हानि होती है ॥ यहां आधी रातसे दूसरे प्रहरके अन्तकी घडीका ग्रहण है, तीसरे प्रहरकी आदिकी घडी तो दूसरे प्रहरके तुल्य है यह माधवका कथन है वाक्य तो पूर्व लिख आये, इस प्रकारकी यदि प्रथम दिन चतुर्दशी उभय (प्रदोष निशीथ) व्यापिनी होय तो पहली लेनी चाहिये. कारण कि स्कंदपुराणमें लिखा है कि, हे देवि ! यदि त्रयोदशी दिनमें होय तो जागरण और शिवरात्रि व्रत द्वादशी और त्रयोदशीसे युक्तमें करने चाहिये. स्कन्दमें लिखा है कि, भद्रासे जयन्ती और शिवरात्रि जयासे युक्त करनी यदि दोनों दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी होय तो हेमाद्रिके मतसे

"अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः" इति पाद्मवचनात् ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ गौडा अप्येवमाहुः ॥ निर्णयामृते तु सर्वापि शिवरात्रिः प्रदोषव्यापिन्येव अर्धरात्रवाक्यानि कैमुतिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम् । तन्न ॥ अर्धरात्रस्य पूर्वं कर्मकालत्वोक्तेः । परदिनप्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात्परैवेति तु माधवः । इदमेव च युक्तं प्रतीमः । परेद्युः प्रागुक्तार्धरात्रस्यैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ च सत्यपि पूर्वेद्युः संपूर्णव्याप्तेः पूर्वैव । "व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी । तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः ॥ तदूर्ध्वाधोन्विता भूत सा कार्या व्रतिभिः सदा" इति माधवधृतेशानसंहितोक्तेः । पूर्वेद्युर्निशीथस्य परेद्युः प्रदोषस्यैकैकव्याप्तौ तु पूर्वैव । जयायोगस्य प्राशस्त्यात् । तच्चोक्तं नागरखण्डे—"माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी । अनङ्गेन समायुक्ता कर्तव्या सा सदा तिथिः" इति ॥ पाद्मे—"अर्धरात्रात्परस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत् । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः" इति ॥ स्कान्देपि—"भवेद्यत्र त्रयोदश्यां भूतव्याप्ता

प्रथमही ग्रहण करनी ॥ कारण कि, पद्मपुराणका वाक्य है कि, यदि आधी रातसे प्रथम जयाका योग होय तो शिवरात्रि व्रत शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धाही करनी चाहिये. मदनरत्नमें भी इसी प्रकार कहा है, गौडभी इसी प्रकार लिखते हैं निर्णयामृतमें तो यह कहा है कि, सब शिवरात्रि प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये । आधीरातके वाक्य तो कैमुतिकन्यायसे प्रदोषकी स्तुतिके विषयमें जानने सो उचित नहीं कारण कि, प्रथम आधीरातको कर्म लिख आये हैं, माधवका यह कथन है कि, परले दिन प्रदोष और निशीथ इन दोनोंकी व्याप्ति होय तो दूसरीही लेनी यह हमकोभी ठीक प्रतीत होता है, परले दिन पूर्वोक्त कहे आधी रातके एकदेश (भाग) में व्याप्ति होय तो दूसरे दिन करै, यदि सम्पूर्ण आधी रातके समय व्याप्ति होय तो परले दिन करै प्रदोष और निशीथ इन दोनोंके योगमें यदि पूर्वोक्त सम्पूर्ण आधी रातकी व्याप्ति होय तो पहलीही लेनी चाहिये इसी प्रकार माधवके मतमें ईशानसंहिताका वाक्य है कि जिस तिथिमें आधी रातके समय चतुर्दशी मिले तिसमेंही मेरी प्रसन्नताकी कामनावाले मनुष्य व्रत करैं, अर्द्धरात्रसे प्रथम और पीछे जिसदिन चतुर्दशी होय उसको व्रती निरन्तर करै, जो पहले दिन आधी रातकी और परले दिन प्रदोपकी इस प्रकार एक २ की व्याप्ति होय तो जया योगकी प्रशंसासे प्रथमही लेनी चाहिये, सोई नागरखण्डम लिखा ह कि, माघ और फाल्गुनके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है वह अनंग (त्रयोदशी) सहित सदा करनी चाहिय ॥ पद्मपुराणम भी लिखा ह कि आधीरातसे प्रथम यदि जयाका योग होय तो वह शिवके प्रियोंको पूर्वविद्धाही चतुर्दशी सदैव करनी चाहिये. स्कंदपुराणमें भी कहा है कि, यदि त्रयोदशी आधीरातमें चतुर्दशी होय तो,

महानिशा । शिवरात्रिव्रतं तत्र कुर्याज्जागरणं तथा" इति ॥ "महतामपि पापानां दृष्टा वै निष्कृतिः परा । न दृष्टा कुर्वतां पुंसां कुहूयुक्तां तिथिं शिवाम् " इति स्कान्दे दर्शयोगस्य निन्दितत्वाच्च । यदा चतुर्दशी पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीथादर्वागेव समाप्ता तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात्परैव । 'माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्याः । जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य " इति वचनात् । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात्पूर्वैव । तेन दिनद्वये निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ निशीथेन निर्णयः एकैकव्याप्तौ तु निशीथेन निर्णय इति । इयं च रविभौमसोमवारेषु शिवयोगे चातिप्रशस्ता । हेमाद्रौ तीर्थखण्डे लैङ्गे—"फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः । कृत्तिवासेश्वरं लिंगमर्चयन्ति शिवं शुभे ॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम् ॥ शिवरात्रिपारणानिर्णयः । शिवरात्रिपारणे तु विरुद्धवाक्यानि दृश्यन्ते ॥ स्कान्दे—"कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च

तिसमें शिवरात्रिव्रत और जागरण करना चाहिये, इसके करनेवाले मनुष्योंके महापापोंकी शांति पहले देखी है और न करनेवालोंकी नहीं देखी. यदि प्रथम दिन आधी रातसे उपरान्त प्रवृत्त हुई, और पिछले दिन आधी रातसे प्रथम पूर्ण होगई होय तो अगले दिन एक (प्रदोष) की व्याप्ति होनेसे परलीही लेनी. कारण कि, यह कथन है कि, माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें याद अमावस्याका योग होय तो हे नृप ! जयासे युक्त चतुर्दशीमें शिवभक्तोंको कभी भी शिवरात्रि व्रत न करना चाहिये, इसी प्रकार यदि दोनों दिन प्रदोषकी व्याप्ति न होय तो आधीरातकी व्याप्तिसे प्रथमकी लेनी, तिससे यदि दोनों दिन आधी रात व्यापिनी होय तो प्रदोषकी व्याप्तिसे निर्णय करै, अर्थात् जिस दिन प्रदोषमें भी चतुर्दशीका योग हो उसी दिन व्रत करना चाहिये, यादि दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो आधी रातसे निर्णय करै, एक एकका योग होय तो प्रदोप और आधी रात्रिसे निर्णय करै, यह रवि मंगल सोम इन वारोंमें और शिवयोगमें अतिउत्तम होती है. हेमाद्रिके तीर्थखण्डमें लिंगपुराणका कथन है कि, फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको सावधान होकर कृत्तिवासेश्वर लिंगमें जो महादेवकी पूजा करते हैं हे शुभे ! उनको मैं सदैव मुक्त और रोगरहित परमस्थान देता हूं ॥ शिवरात्रिके पारणामें यह विरुद्ध वाक्य दीखतेहैं कि, स्कन्दपुराणमें कहाहै कि कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी ये पूर्वविद्धा करनी चाहिये, और इनमें तिथियोंके अन्तमें पारणा करनी चाहिये; जन्माष्टमी रोहिणी तथा शिवरात्रि यह पूर्वविद्धा करनी चाहिये, और तिथि और नक्ष-

पारणम् ॥२॥ " इति ॥ तिथिमध्येपि पारणं स्कान्दे उक्तम्–"उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते यथवा न वा ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् " ॥ ३ ॥ इति ॥ अत्र यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ तदन्ते तदूर्ध्वगामिन्यां तु प्रातस्तिथिमध्य एवेति हेमाद्रिमाधवादयो व्यवस्थामाहुः तन्न । "तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा" इत्यादिसामान्यवचनैरेव व्यवस्थासिद्धेरुभयविधवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः । अयं तु तिथ्यन्ते पारणं भवेदिति कृष्णाष्टम्यादिविषयमेव, न तु शिवरात्रिविषयम् । तदुपादानं तु पूर्वयुतत्वमात्रकथनार्थम् । कथमन्यथा स्कांदे एव शून्यहृदयवाक्यवत्तिथिमध्ये पारणविधानं घटते । तस्मात् ' विना शिवचतुर्दशीम् ' इति पर्युदस्तत्वाच्छिवरात्र्याः सर्वप्रकारेषु तिथिमध्ये एव पारणेति भ्रमः । शिष्टाचारोप्येवमेव ॥ दीपिकायां तु रात्रावपि तिथ्यन्त एवोक्तम् । व्रततिथेरन्ते निशीथेपि घाऽश्नीयादिति ॥ मदनरत्नकालादर्शयोस्तु–" सा ह्यस्तमयपर्यंते

थके पीछे पारणा करनी चाहिये. तिथिके बीचमें भी पारणा स्कन्दपुराणमें लिखी है चतुर्दशीके दिन व्रत और पारणा ये लक्षपुण्योंसे प्राप्त होतेहैं अथवा नहीं होते । ब्रह्माण्डके मध्यमें जितने तीर्थ हैं उन सबके स्नानका इस चतुर्दशीमें पारणा करनेवालेको फल प्राप्त होता है, तिथियोंके व्रत आदिमें शिवचतुर्दशीके विना तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये, यहां हेमाद्रि और माधवने भी यह व्यवस्था की है कि, यदि तीन प्रहरसे प्रथम चतुर्दशीकी पूर्ति हुई हो तो उसके पीछे पारणा करनी, और तीन प्रहरके उपरान्त तक व्याप्त होय तो वहां प्रातःकाल तिथिके बीचमेंही पारणा करनी सो उचित नहीं. कारण कि, तिथिके अन्तमें वा तिथि और नक्षत्रोंके अन्तमें जहां पारणा लिखीहै, यदि वहां तिथि तीन प्रहरसे अधिक होय तो प्रातःकालही पारणा करनी कहीहै, इत्यादि सामान्य वाक्योंसे व्यवस्था सिद्ध थी, दोनों प्रकारके वाक्योंकी व्यर्थताका परिहार न होसकेगा, हमारा तो यह कथन है कि, तिथिके पीछेमें पारणा होती है यह कृष्णाष्टमीके विषयमें, शिवरात्रिके निमित्त नहीं उसका ग्रहण तो पूर्वयुत (विद्धा) के निमित्त है अन्यथा स्कंदपुराणमें शून्यहृदय (मूर्ख) के वचनकी समान तिथिके मध्यमें पारणा कहना किस प्रकार घट सकेगा ? तिससे शिवचतुर्दशीके विना इस वाक्यसे निषेध का हुई पारणा शिवरात्रिमें सब प्रकारसे तिथिके बीचमेंही होती है और शिष्टाचारभी इसी प्रकार लिखाहै ॥ दीपिकामें तो तिथिके पीछे भी पारणा कहीहै कि व्रत तिथिके पीछे या आधी रातमें भोजन करे, मदनरत्न और कालादर्शमें तो यह लिखाहै कि, वह सूर्यास्तपर्यन्त होय तो दूसरे दिनमें ही पारणा

व्यापिनी चेत्परेहनि । दिवैव पारणं कुर्यात्पारणे नैव दोषभाक्'' इत्युक्तम् ॥ तन्न ॥ तिथिमध्ये पारणविधानान्निषेधे फलायोगाच्च । तिथ्यन्तानपेक्षणाद्दोषाप्रसक्त्या चतुर्थपादासंगतेः । तेनेदं शिवरात्रिभिन्नव्रतपरं ज्ञेयम् । इदं च व्रतं संयोगपृथक्त्वन्यायेन नित्यं काम्यं च । तथा च माधवीये स्कांदे-" परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिः परात्परम् । न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः " इत्यकरणे प्रत्यवायश्रवणात् । "वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता । शिवरात्रौ महादेवं नित्यं भक्त्या प्रपूजयेत् " इति वीप्साश्रुतेः । "अर्णवो यदि वा शुष्येत्क्षीयते हिमवानपि ॥ चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम् " इति वचनाच्च नित्यता । "मम भक्तस्तु यो देवि शिवरात्रिमुपोषकः । गणत्वमक्षयं दिव्यमक्षयं शिवशासनम् ॥ सर्वान्भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्नुयात् " इति स्कान्दात् ॥ ' द्वादशाब्दिकमेतत्स्याच्चतुर्विंशाब्दिके तु वा ' इति तत्रैवेशानसंहितावचनात्काम्यता । तत्रैव-"शिवरात्रिव्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम् । आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥" अत्र जागरोपवासपूजाः समुदिताः व्रतं न तु प्रत्येकम् ॥ समुदितानां फलसंबन्धात् ॥

करनेमें दोष नहीं होता सो ठीक नहीं, तिथिके मध्यमें पारणा लिखीहै और निषिद्ध फलके योगसे और तिथ्यन्तकी अपेक्षाके अभावसे किसी दोषकी प्रसक्ति नहीं, इससे चतुर्थ पादकी असंगति होजायगी इससे यह शिवरात्रिसे दूसरे व्रतोंके विषयमें जानना, यह व्रत संयोग और पृथक्त्व न्यायसे शुद्धा वा विद्धासे नित्य और काम्यही है यही माधवीयमें स्कन्दपुराणके वाक्यसे लिखाहै पर (श्रेष्ठ) से परं कोई नहीं, किन्तु, शिवरात्रि उत्तमोत्तमा है, जो भक्ति करके ईशोंके ईश शिवका पूजन नहीं करते वह सहस्रों जन्मतक भ्रमते हैं इसमें सन्देह नहीं, इस वाक्यसे न करनेमें पाप श्रवण किया है. हे महादेवि ! वर्ष २ में नर और पतिव्रता स्त्री शिवरात्रिके दिन भक्तिसे शिवकी नित्य पूजा करै, इस वाक्यमें वीप्सा श्रवण करनेसे और सागर सूखने हिमालय नष्ट होनेसे भी शिवपूजन कदाचित् चलायमान नहीं होता इस वाक्यसे यह शिवपूजन नित्य है. हे देवि ! जो मेरे भक्त शिवरात्रिव्रत करतेहैं उनको सदाके निमित्त श्रेष्ठगण बनालेताहूं यह शिवकी शिक्षा है वह सब भोगोंको भोगकर मुक्तिको प्राप्त होते हैं यह स्कन्दपुराणका कथन है ॥ और वहांही ईशानसंहितामें यह लिखा है कि, बारह वा चौवीस वर्षतक शिवरात्रि व्रत करै, इससे यह काम्यभी है वहांही कहा है कि, शिवरात्रि व्रत सब पापोंको नाश करनेवाला है चाण्डालतकको भुक्ति मुक्तिका दाता है इसमें जागरण व्रत पूजा एकत्र होकर करनी और व्रतभी प्रत्येक न करना कारण कि, समूहोंको फलका सम्बन्ध है. जो किसीने यह कहाहै कि, शिवरात्रिको पूजा और जागरणसे बिताना चाहिये, इसी प्रकार वाक्य है कि, जो मनुष्य अखण्डितव्रत होकर शिवरात्रिव्रत करता है वह

यत्तु—'अथवा शिवरात्रिं च पूजाजागरणैर्नयेत् ।' तथा—अखंडितव्रतो यो हि शिवरात्रिमुपोषयेत् । सर्वान्कामानवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ कश्चित्पुण्यविशेषेण व्रतहीनोऽपि यः पुमान् ॥ जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत् ॥२॥" इत्यादिस्कांदं तदनुकल्पत्वादशक्तपरम् ॥ माघेतरप्रतिमासशिवरात्रिस्तु । शिवरात्रिशब्दस्य माघकृष्णचतुर्दश्यामेव रूढत्वात्—"माघमासस्य शेषे या प्रथमा फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता " इति हेमाद्रौ वचनाच्च ॥ नायं निर्णयस्तत्रेति रात्रौ यामचतुष्टये पूजाविधानाद्यस्मिन्दिने अधिका रात्रिव्याप्तिः सा ग्राह्या । साम्ये तु पूर्वेवेति हेमाद्रिरूचिवान् । वस्तुतस्तु प्रतिमासकृष्णचतुर्दश्यामपि—'सर्वकामप्रदं कृष्णचतुर्दश्यां शिवव्रतम' इत्युपक्रम्य ' चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ' इति हेमाद्रौ कालोत्तरे शिवरात्रिशब्दप्रयोगात् । कौण्डपायिनामयनाग्निहोत्रे नैत्यकाग्निहोत्रधर्मा इव तद्धर्मप्राप्तिः स्यादेव ॥ अतः प्रदोषनिशीथोभयव्याप्त्यैव निर्णय इति वयं प्रतीमः ॥ व्रतारम्भः । अस्यारम्भो हेमाद्रौ स्कान्दे—" आदौ मार्गशिरे मासि दीपोत्सवदिनेपि वा । गृह्णीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषयेत् ॥ " तथा—"दीपोत्सवे तथा माघे कृष्णा या तु चतुर्दशी । द्वादशस्वपि मासेषु प्रकुर्यादिह जागरम् ॥ एवं द्वादशवर्षेषु द्वादशैव तपोध-

---

संपूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है, और शिवजीके संग परम आनन्द भोगताहै, व्रतहीनभी जो मनुष्य किसी पुण्यविशेषसे शिवरात्रि करताहै, वह रुद्रके समान होता है, यह स्कन्दपुराणका लेख उसके अनुकूल होनेसे अशक्तके विषयमें कहाहै माघके दूसरे महीनोंमें जो प्रतिमासकी शिवरात्रि है उसमें यह निर्णय नहीं है कारण कि, शिवरात्रिव्रत माघकी कृष्णचतुर्दशीमें आरूढ है और हेमाद्रिमें यह कथनभी है कि, माघकी और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवरात्रि कहतेहैं, रात्रिके चारों प्रहरोंमें पूजा लिखी है जिस दिन अधिकरात्रिव्यापिनी हो वही लेनी चाहिए, दोनों दिन समान होय तो पहली करनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रि कथन करते हैं. सिद्धान्त तो यह है कि, प्रतिमहीनेकी कृष्णचतुर्दशीको भी प्रदोष और अर्द्धरात्रिकी व्याप्तिसेही निर्णय कहा है कारण कि, सब कामनाओंका देनेवाला यह कृष्णचतुर्दशीका व्रत है, यह हेमाद्रिमें समयके वाक्यसे प्रारम्भ करके चौदह वर्षतक शिवरात्रि व्रत करै यह लिखा है. यह शिवरात्रिके प्रयोगसे कुण्डकी और पाक आग्निमें अग्निहोत्र और नित्याग्नि होत्रके धर्मकी तुल्य उसके फलकी प्राप्ति होजायगी इससे प्रदोषका अर्धरात्रिकी प्राप्तिमें निर्णय है यह हम जानते हैं ॥ हेमाद्रिमें स्कन्दपुराणमें इसका प्रारम्भ इस प्रकार लिखाहै कि; मार्गशिरमें वा दीपमालिकाके दिन वा माघमासमें प्रथम आरम्भ करके बारह व्रत करै, तथा दीपोत्सव माघकृष्णचतुर्दशी दशों महीनोंमें जागरण करै, इसी प्रकार बारह वर्षोंमें बारह वा चौदह तपस्वी ब्राह्मणका वा आचार्यका वरण करै. फिर हे

नान्'' ॥ वरयेदिति शेषः । चतुर्दश वा विप्रान् आचार्यं च वृत्वा । ''कुम्भोपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम् । सौवर्णंप्यथवा रौप्ये वृषभे संस्थितं शुभे,'' इत्युक्तम् ॥ हैमीं मूर्तिं संपूज्य स्थिरं चरं वा लिंगं पञ्चामृतसहस्रशतपञ्चाशत्तदर्धान्यतरकुम्भैः संस्नाप्य, संपूज्य, जागरं कृत्वा, परेद्युस्तिलान् सहस्रं शतं वा हुत्वा, विप्रेभ्यो वस्त्राणि द्वादश गाश्च दत्त्वा, आचार्याय धेनुं शय्यां च दत्त्वा विप्रान् भोजयेदिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ माघामावास्यानिर्णयः । माघामावास्या युगादिः ॥ तदुक्तम्—' माघमासे त्वमावास्या' इति । अन्यत् प्राग्वत् ॥ तथान्योपि विशेषो विष्णुपुराणे—''माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन । ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ '' ॥ इति ॥ वारुणं शतभिषक् । इदं च कुम्भादित्ये ज्ञेयमिति हेमाद्रिः ॥ भारते—''काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन्भवेत्तु भूपाल सदा पितृभ्यः ॥ दत्तं तिलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत्कुलजैर्मनुष्यैः '' इति ॥ होलिकानिर्णयः । फाल्गुनपौर्णमासी

कल्याणी ! सुवर्ण वा चांदीके वृषपर स्थित हुए महादेवका घटके ऊपर स्थापन करै, और मदनरत्नमें तो यह लिखा है कि, सुवर्णकी शिवमूर्तिका पूजन करै. फिर स्थिर, वा चल, लिंगको पञ्चामृतसे भरे सहस्र वा सौ, वा पचास घडोंसे स्नान कराय और पूजन करके जागरण करै, फिर परले दिन तिलोंकी सहस्र वा सौ आहुतियोंसे हवन करै, फिर ब्राह्मणोंको वस्त्र और बारह गौ और आचार्यको गौ और शय्या देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ माघमहीनेकी अमावस्या युगादि है यही कहा है माघमासमें जो अमावस्या युगादि है इत्यादि प्रथम कहआये हैं, अन्य पूर्वकी तुल्य जाननी, तैसेही विष्णुपुराणमें और भी विशेष लिखाहैं कि, यदि माघमासकी अमावस्यामें शतभिषा नक्षत्रका योग होय तो वह पितरोंका उत्तम समय है. हे राजन् ! अल्पपुण्यवालोंको तो वह प्राप्त नहीं होताहै, वह कुम्भकी संक्रान्तिमें जानना यह हेमाद्रिका कथन है. भारतमें लिखा है कि, हे राजन् ! यदि तिस समय धनिष्ठा नक्षत्र होय तो तिस समय कुलके मनुष्य यदि पितरोंको तिल अन्न दें तो वह अन्न दशसहस्र वर्षतक पितरोंको तृप्त करताहै ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमाको होली कहते हैं, वह सायाह्नव्यापिनी

---

१ फाल्गुनस्यापरे पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे । जीवे धनुपि योगे च शोभने रविवासरे- पुष्यर्क्षे यदि सम्पूर्णा गोविन्दद्वादशी मता । फाल्गुने शुक्लपक्षे स्यात्पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि । गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् । विनाि थासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात् । अत्र श्रीगोविन्दं सम्पूज्योपवासं कुर्यात् । उपोष्य च जगन्नाथं नमेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् इत्युक्तेः । गंगास्नाने मंत्रः—महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति वै । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि ॥ अर्थात् फाल्गुनके दूसरे पक्षमें कुम्भके

होलिका । सा च सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या—" सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्" इति वचनादिति निर्णयामृते उक्तम् ॥ भद्रायां होलिकानिषेधः । ज्योतिर्निबन्धे तु—"प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा । संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति सा द्रुतम् ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा । तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे ॥ २ ॥" इति नारदवचनात् प्रदोषव्यापिनीत्युक्तम् । हेमाद्रौ मदनरत्ने च भविष्ये—" अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे । गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे" इत्यादिना तत्रैव तद्विधानाच्च तेनेयं पूर्वविद्धा—"श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् " इति बृहद्यमब्रह्मवैवर्तोक्तेश्च । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परैव । पूर्वदिने भद्रासत्त्वात्तत्र च होलिकानिषेधात् । तदुक्तं निर्णयामृते मदनरत्ने च पुराणसमुच्चये—" भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै । नग

ग्रहण करनी, यह निर्णयामृतमें लिखा है कारण कि, यह कथन है कि—सायाह्नकालमें होली और पूर्वाह्नमें गोक्रीडा करै ॥ ज्योतिर्निबन्धमें तो इस नारदके वाक्यसे प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, यह लिखाहै कि, प्रतिपदा चौदस भद्रामें और दिनमें पूजीहुई होली वर्षदिनतक उस देश और पुरको आश्चर्यसे भस्म करती है, फाल्गुनमासकी पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, तिसमें भद्राके मुखको छोडकर सायंकालके समय होलीका पूजन करना, यह नारद कहते हैं हेमाद्रि और मदनरत्नमें भविष्यपुराणका लेख है कि, हे पार्थ ! इस पूर्णिमाको गोबरसे लिपे हुए चौकोर घरके आँगनमें बालकोंकी रक्षा करै इत्यादि वाक्योंसे तिस समयमें पूजाका विधान लिखा है, तिससे यह पूर्वविद्धा लेनी चाहिये, बृहद्यम और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी लिखा है कि, श्रावणी दुर्गानवमी दूर्वाष्टमी होली शिवरात्रि बलिका दिन यह पूर्वविद्धाही करनी. यदि दोनों दिन प्रदोषमें व्याप्ति हो और पूर्वदिनमें भद्रा होय तो उसमें होलीके निषेधसे परली लेनी चाहिये, सोई निर्णयामृत और मदनरत्नमें पुराणसमुच्चयके वाक्यसे लिखा है कि, भद्रामें यदि होलीमें अग्नि लगावे तो वहां देशका भंग करती है, और नगरको भी वह इष्ट नहीं इससे उसे त्यागदे ॥ इस प्रकार भद्रामें

सूर्य होनेमें धनके बृहस्पति शोभनयोग रविवार पुष्यनक्षत्र होनेसे ' गोविन्दद्वादशी ' कहाती है, तिथितत्त्वमें लिखा है कि, फागुन शुक्लपक्षमें पुष्यनक्षत्रमें यदि द्वादशी हो तो यह गोविन्दद्वादशी सब पापनाशिनी है. गोविन्दद्वादशीको प्राप्त होकर श्रीपुरुषोत्तमके समीप गमनसे हे राजन् ! विना परिश्रम मुक्ति होती है । इसमें श्रीगोविन्दको पूजकर उपवास करै कहाभी है जगन्नाथका व्रत कर पुरुषोत्तमसे नमन करै पद्मपुराणमें लिखा है महापातकके समूह तथा और जो भी पाप है हे गंगे ! वह मेरे पाप हरण करो ॥

रस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥" तथा-"भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा। श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी" ॥ तथा-"दिनार्धात्परतोपि स्यात्फाल्गुनी पूर्णिमा यदि। रात्रौ भद्राऽवसाने तु होलिका दीप्यते तदा" इति ॥ यदा तु पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने च क्षयवशात्सायाह्नात् प्रागेव पूर्णिमा समाप्यते तदा पूर्वदिनसंपूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात्तत्र च तन्निषेधात् परेऽहनि प्रतिपद्येव कुर्यात्। "सार्धयामत्रयं वा स्याद्द्वितीयदिवसे यदा। प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥" इति भविष्यवचनादिति निर्णयामृतकारः। मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु-'वह्नौ वह्निं परित्यजेत्' इति भविष्ये॥ वह्नौ होलिकायां वह्निं प्रतिपदं वर्जयेदित्यर्थः ॥ तदुक्तं भिन्नविषयमिति तत्रैवोक्तम्। अन्ये तु तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वेत्यर्थः ॥ "प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा। भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्॥" इति नारदवचनात्। "निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः। न दिवा पूजयेड्डुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत्" इति दिवोदासीये वचनात्। 'यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः। भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होली मनीषिभिः" इति विद्याविनोदेऽभिधानाच्च भद्रामुखं विहाय पूर्वदिन एव कार्येत्याहुः॥

श्रावणी और होली ये दो न करनी चाहियें कारण कि, श्रावणी तो राजाको और होली ग्रामको भस्म करती है, इसी प्रकार यदि फाल्गुनकी पूर्णिमा मध्याह्नसे पर हो और रात्रिमें भद्राके अंतकालतक होय तो तिसमें ही होलीको जलावै. यदि पहले दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो और अगले दिन पूर्णिमा क्षयके वशसे सायंकालसे प्रथम समाप्त होगई होय, तब प्रथम दिन सम्पूर्ण रात्रिमें भद्रा होय तो तिसमें तिसका निषेध होनेसे अगले दिन प्रतिपदामेंही उसको करै यह निर्णयामृतकारका कथन है. कारण कि भविष्यपुराणमें लिखा है कि यदि वढी हुई प्रतिपदा दूसरे दिन साढे तीन प्रहर होय तो तिसे होली कहते हैं. इसी प्रकार मदनरत्नमें कहा है जो कि भविष्यमें यह कहा है कि, होलिकाको प्रतिपदामें न करना वह उक्तसे भिन्नके विषयमें है यह प्रथम कह आये हैं, अन्य तो यह कहते हैं कि इस नारद और दिवोदासीयके कथनसे भद्राके मुखको त्यागकर पहिले दिनही करै कि, तिसमें भद्राके मुखको छोडकर होलीका पूजन करै, और यदि प्रदोषव्यापिनी न होय तो प्रथम दिन भद्रामुखको छोडकर होलिकाका पूजन करै, तथा पण्डितजन होलिकाका सदा सायंकालमें पूजन करैं दिनमें न करैं कारण कि, दिनमें पूजी हुई होलीसे दुःख प्राप्त होता है और विद्याविनोदमें भी लिखा है कि पूर्णिमामें तीन प्रहरसे ऊपर प्रतिपदा आजाय तो भद्राके मुखको छोडकर होलिकाका पूजन करना चाहिये ॥ भद्रामुख तो रत्नमालामें यह लिखा है:

भद्रामुखनिर्णयः । भद्रामुखं तु–'नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका' इति रत्नमालोक्तं ज्ञेयम् ॥ शिष्टाचारोप्येवमेव ॥ तत्र ग्रहणनिर्णयः । अत्र चेच्चन्द्रग्रहणं तदा ततोर्वाङ्‌निशि भद्रावर्जं पौर्णमास्यां होलिकादीपनम् । अथ परेऽह्नि ग्रस्तोदयस्तदा पूर्वदिने भद्रावर्जं रात्रौ चतुर्थयामे विष्टिपुच्छे वा होलिका कार्या । ग्रहोत्तरं प्रतिपत्सत्त्वात्तत्पूर्वं च दिवा होलानिषेधादिति दिवोदासचन्द्रप्रकाशौ । वस्तुतस्तु परदिने प्रदोषे पौर्णमासीसत्त्वे कर्मकालस्पर्शे चतुर्थयामादिगौणकालग्रहणे मानाभावाद्भद्राभावाच्च ग्रहणकाल एव होला कार्या । न च–"सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने । स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रुतमन्नं विवर्जयेत्" इति निषेधात् कथं सूतके होलेति वाच्यम् । तस्योत्तरार्धशेषत्वात् । पूजामन्त्रस्तु–"असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः । अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव" इति ॥ यत्तु वार्तिककारैर्होलिका आचारप्राप्तेत्युक्तम् । तत्र हेमाद्र्याद्युदाहृतभविष्यवचनान्यसिद्धानि कृत्वा चिन्त्यं ज्ञेया । आत्यधिकरणवत् । हुताशिनी मलमासे न भवति ॥ इयं मन्वादिरपि सा तु पौर्वाह्णिकी ग्राह्या । मलमासे सति मन्वादिश्राद्धं मासद्वये कार्यमित्युक्तं प्राक् ॥ गोवि-

---

कि, भद्राकी आदिकी पांच घडियोंको मुख एक घडीको गला कहते हैं, और शिष्टाचारभी यही है ॥ दिवोदास और चंद्रप्रकाशका तो यह कथन है कि, यहीं पूर्णिमाको ग्रहण होय तो तिससे पूर्वरात्रिमें जिस समय भद्रा न हो उसमें होलीको जलाना उचित है अथवा यदि दूसरे दिन ग्रसा हुआही उदय होय तो पहले दिन भद्रारहित रात्रिके चौथे प्रहरमें भद्राकी पुच्छमें अर्थात् पीछेकी घडीमें होलीको जलावै. कारण कि ग्रहणसे उत्तर प्रतिपदा आजायगी, और प्रथम दिन होनेसे इन दोनोंमें होलीका निषेध है. तत्त्व तो यह है कि, दूसरे दिन यदि प्रदोषमें पूर्णमासी होय तो उसमें प्रदोषका स्पर्श होनेसे भद्राके अभावसे ग्रहण समयही होलीको करना. कारण कि जब मुख्य कर्मका समय मिलै तब गौण चतुर्थयामादि समयके ग्रहण करनेमें कोई प्रमाण नहीं यदि कोई शंका करै कि राहुके दर्शनमें सब वर्णोंको सूतक प्राप्त होता है, इससे स्नान करके कर्मोंको करै और पकायेहुये अन्नको छोडदे, इस निषेधसे सूतकमें होली किस प्रकार होगी सो ठीक नहीं कारण कि, यह (स्नात्वा) इत्यादि निषेध उत्तरार्द्धका शेष है (सर्वेषां) इत्यादिका नहीं है, इससे ग्रहण कालमें होली करनी इसमें कोई बाधक नहीं है. इसकी पूजाका मन्त्र यह है कि, होली असृक्पा राक्षसीके भयसे त्रासको प्राप्त हुए (अज्ञानी जनोंने) तुझे किया है, इससे तेरा पूजन करता हूं हे भूते । तू ऐश्वर्यकी देनेवाली हो, जो कि, वार्तिककारोंने यह लिखा है कि, होली शिष्टाचारसे सिद्ध है तिसमें हेमाद्रिमें कहे हुए भविष्यपुराणके वाक्योंको न मान करके दुःखीकी तुल्य विचार जानना होली मल मासमें नहीं होती, यह मन्वादिभी है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी चाहिये, जो मलमास होय तो मन्वादि श्राद्ध दोनों महीनोंमें

न्ददोलोत्सवनिर्णयः । कृत्यचिन्तामणौ ब्राह्मे—" नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् । फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥ " चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसंतोत्सवनिर्णयः । चैत्रकृष्णप्रतिपदि वसन्तोत्सवः । सा चोदयिकी ग्राह्या । ' प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ ' इति भविष्योक्तेः दिनद्वये तथात्वे पूर्वा । " वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥ " इति वृद्धवसिष्ठवचनात् ॥ अत्र विशेषो हेमाद्रौ भविष्ये—" चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने । यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप " इति । तथा—"प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ । कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥ वन्दयेद्धोलिकाभूमिं सर्वदुःखोपशान्तये ॥ " मन्त्रश्च—"वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च । अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव " इति ॥ तत्र आम्रकुसुमप्राशनम् । अत्र चूतकुसुमप्राशनमुक्तं तत्रैव पुराणसमुच्चये—" वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च । संप्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥ " मन्त्रस्तु—"चूतमग्र्यं

करना यह प्रथम कह आये हैं ॥ फाल्गुनकी पूर्णिमाको मनुष्य पुरुषोत्तम गोविंदको हिंडोलेपर बैठे देखनेसे संयत होकर वैकुण्ठको गमन करताहै यह कृत्यचिन्तामणिमें ब्रह्मपुराणके वाक्यसे लिखा चैत्रमासकी प्रतिपदाको वसंतोत्सव होताहै, वह उदयकालकी लेनी चाहिये. कारण कि, भविष्यपुराणमें लिखाहै कि, जब मधु (चैत्र) प्रवृत्त हो तब प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय वसंतोत्सव करै, यदि दोनों दिन उदय व्यापिनी होय तो प्रथमही लेनी. कारण कि, वृद्धवसिष्ठने कहाहै कि, वर्ष और वसंतकी आदिमें और बलिराज्यमें पण्डितोंको सदा प्रतिपदा पूर्वविद्धा करनी चाहिये. इसमें विशेष हेमाद्रिमें भविष्यके वाक्यसे यह लिखाहै कि, हे महाबाहो ! हे राजन् ! चैत्रमासकी पवित्रप्रतिपदाके दिन चांडालसे स्वयं स्पर्श करके जो मनुष्य स्नान करताहै उसको पाप और आधि व्याधि किंचित्भी नहीं होती, इसी प्रकार चैत्रमासके आरम्भमें प्रतिपदाके दिन सूर्योदयके समय आवश्यक नित्य कर्मोंको करके पितृ और देवताओंका तर्पण करै, और सब दुःखोंकी शान्तिके निमित्त होलीकी भस्मको प्रणाम करै, उसका मंत्र यह है कि, सुरेन्द्र ब्रह्मा और शिवसे तू स्तुति की गईहै, इस कारण हे देवि ! तुम हमारी रक्षा करो, और विभूति, भूतिको देनेवालीहो ॥ वहांही इस पुराणसमुच्चयके वाक्यसे आमके मौलका भोजन लिखाहै कि, शुक्लपूर्णिमाको जब जाडेका समय बीता हो, और प्रातःकाल वसंत समय प्राप्त हुआहो तब यदि मनुष्य चंदन सहित आमके मौलको खाय तो वह वर्षदिनतक सुखी होताहै, उसका यह मन्त्र है कि, हे वसंत ! मैं तेरे इस आम और माकन्दके

वसन्तस्य माकन्द कुसुमं तव। सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये' ' ॥ इति ॥ चैत्रामावास्या मन्वादिस्तन्निर्णयः । चैत्रामावास्या मन्वादिः । सा चापराह्णव्यापिनी ग्राह्या कृष्णपक्षस्थत्वात् ॥ इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ फाल्गुनमासः समाप्तः ॥ कविप्रार्थना । एवं निरूपितमिदं गहनं तु कालतत्त्वं विचार्य वचनैश्च नयैश्च सम्यक् । तद्दोषदृष्टिमपहाय विवेचनीयं विद्वद्भिरित्यविरतं प्रणतोस्मि तेषु ॥ १॥ मया सद्वाऽसद्वा यदिह गदितं मन्दमतिना किमेतच्छक्यं वाऽध्यवसितुमपि स्वल्पमतिना ॥ यदेवं यत्किञ्चिद्गदितमिह विख्यातमहिमा प्रतापोऽयं सर्वो विकसति तु पित्रोश्चरणयोः ॥ २ ॥ यो भाट्टतन्त्रगहनार्णवकर्णधारः शास्त्रान्तरेषु निखिलेष्वपि मर्मभेत्ता ॥ योऽत्र श्रमः किल कृतः कमलाकरेण प्रीतोऽमुना तु सुकृती बुधरामकृष्णः॥३॥ इति श्रीमन्नारायणभट्टसूरिसूनुरामकृष्णभट्टसुतदिनकरभट्टानुजभट्टकमलाकरकृते निर्णयसिन्धौ संवत्सरकृत्यनिरूपणं नाम द्वितीयपरिच्छेदःसमाप्तः ॥ २ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

फूलोंको चन्दन सहित सब काम अर्थकी सिद्धिके निमित्त आज पीताहूं ॥ चैत्रकी अमावस्या मन्वादि लिखीहै वह कृष्णपक्षकी होनेसे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये ॥ (इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ भाषाटीकायां फाल्गुनमासः समाप्तः ।) वाक्य और युक्तिसे विचार करके यह गहनरूपी कालनिर्णय करके मैंने इस प्रकार निरूपण कियाहैं सो इसको पण्डितजन दोषदृष्टि छोडकर विचार करैं, मैं उनको नवकर वारंवार प्रणाम करताहूं मुझ मन्दमतिने इसमें सत्य वा असत्य जो लिखाहै उसको अल्प बुद्धिवाला तो जाननेको समर्थ नहीं होसकता, तिससे जो मैंने यत्किंचित् लिखाहै वह सम्पूर्ण विख्यात महिमावाले माता पिताके चरणोंका प्रतापही विकसित हुआहै जो भट्टोंके शास्त्रोंके वनरूपी सागरका कर्णधार है तथा जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके मर्मके खोलनेवाले इस ग्रन्थमें कमलाकरने जो श्रम कियाहै उससे वह पुण्यात्मा रामकृष्ण पंडित प्रसन्नताको प्राप्त करै ॥

इति श्रीनिर्णयसिन्धौ पंडितसुखानंदसूनुपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृते भाषाटीकायां द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ २ ॥

इति निर्णयसिन्धौ द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥

॥ श्रीः ॥

निर्णयसिन्धौ—

तृतीयपरिच्छेदः ३.

अथ प्रकीर्णकनिर्णयः । श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकरसंज्ञितः ॥ निरूप्य तिथिकृत्यं तु प्रकीर्णं वक्तुमुद्यतः ॥ १ ॥ तत्र गर्भाधानम् । तत्रादौ संस्कारेषु गर्भाधानम् । तत्र प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासग्रहणसंक्रमादिफलं तत्र शान्त्यादि च पितृकृतं भट्टकृतप्रयोगरत्नं ज्ञेयम् ॥ किंचित्तूच्यते । मदनरत्ने नारदः—"अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्द्धे व्यतीपाते

दोहा—सिद्धिसदन आनंदघन, अभिमत फलदातार ।
उमासहित श्रीशंभुको, वन्दौं वारंवार ॥ १ ॥
उमारमण करुणायतन, दीनबन्धु सुखदान ।
नित ज्वालाप्रसादको, रक्षहु सब गुणखान ॥ २ ॥

अब प्रकीर्णनिर्णय लिखते हैं । श्रीरामकृष्णके पुत्र कमलाकरभट्टतिथिकृत्यका निरूपण करके प्रकीर्णके कहनेको उद्यत होते हैं ॥ तिसमें प्रथम संस्कारोंमें गर्भाधानका निर्णय करते हैं, इसमें दुष्ट महीना, ग्रहण, संक्रांति आदिमें प्रथम रजोदर्शनका फल और शांति आदि पितृकृत प्रयोगदीपिका और भट्टकृतप्रयोगरत्नमें लिखे हैं वहां देखलेने कुछ थोडासा यहां भी लिखते हैं, मदनरत्नमें नारदका कथन है कि, अमावास्या, रिक्ता, अष्टमी, छठ, द्वादशी, प्रतिपदा, परिघका पूर्वार्द्ध, व्यतीपात, वैधृति संध्या तथा ग्रहण और भद्रामें यदि प्रथम

---

१ सम्मार्जनीकाष्ठतृणादिशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् । तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद्दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् । अर्थात्—बुहारी काष्ठ तृण छाज आदि हाथमें लिये जो रजोवती हो तो कुलटा हो । शय्यामें तपमें स्थित हो तो भाग्यवती हो यह प्रथम रजोदर्शनका फल है ॥

च वैधृतौ ॥ संध्यासूपप्लवे विष्ट्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् । रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥ पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥ वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्द्धनम् । मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलवृद्धिर्बन्धुनाशनम् । मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः । तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥९॥" गर्गः-" सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता ॥ धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा । दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रियं नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी । स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥ ९ ॥ " गर्गः-" सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता। क्षौमवस्त्रा क्षितीशा च स्यान्नवस्त्रा सुखान्विता॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः ॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् । समाश्चेत्कन्यकाश्चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥२॥ तत्र स्त्रीसं-

---

रजोदर्शन होय तो अच्छा नहीं होता रोगिणी, पतिव्रता, दुःखित, पुत्रिणी, भोगभागिनी, पतिव्रता, क्लेशभोक्ती ये क्रमसे सूर्य आदि सात वारोंमें पहले रजोदर्शनके फल जानने चाहिये, अर्थात् सूर्यवारमें होय तो रोगिणी, चन्द्रवारमें होय तो पतिव्रता इत्यादि क्रमसे समझने चाहिये, तथा तिथियोंमें प्रथम रजोदर्शनका क्रमसे यह फल है कि, वैधव्य, सुतका लाभ, मित्रता, शत्रुकी वृद्धि, मित्रकी प्राप्ति, शत्रुकी वृद्धि, कुलकी वृद्धि, बन्धुनाश, मरण, कुलवृद्धि, भोजनकी अप्राप्ति, कुलक्षय, तेज, पुत्रनाश, वंशकी हानि होती है ॥ वहां गर्गने यह कहा है कि अश्विनी आदि नक्षत्रोंमें रजोदर्शनका यह फल क्रमसे जानना चाहिये कि, सुभगा, दुःशीला, वंध्या, पुत्रवती, धर्ममें युक्त, व्रतघ्नी, पराई संतानको प्रसन्नताकी देनेवाली, शोभन पुत्रोंवाली, दुष्ट पुत्रोंवाली, पिताके घरमें तत्पर, दुःखित, प्रजावाली और पुत्रोंसे युक्त, चित्राम करनेवाली, साध्वी, पतिको नित्यप्रिय, शोभन पुत्रोंवाली, कष्ट भोगनेवाली, अपने कर्ममें तत्पर, हिंसाशील, श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त, नित्य संचय करनेवाली, पुत्र और धान्यसे युक्त, मूर्ख, अज्ञ, पुण्यवती, अश्विनी आदिमें रजोदर्शनसे स्त्री क्रमसे इस प्रकारकी होती है, गर्गने यह लिखा है कि, कर्क, वृष, धन, मीन, मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भराशिमें प्रथम रजोदर्शन शुभ देनेवाला है. गर्गने कहा है कि, ऋतुसमयमें श्वेत दृढ (पुष्ट) क्षौम नवीन फटे लाल वा नीले वस्त्रोंको स्त्री धारण कर रही होय तो क्रमसे सुभगा, पतिव्रता, भूस्वामिनी, सुखसे युक्त, दुर्भगा, रोगिणी, विधवा होती है, अर्थात् यदि श्वेतवस्त्रोंको धारण किये होय तो सुभगा इत्यादि क्रमसे समझनी चाहिये, प्रथम ऋतुमें वस्त्रमें रुधिरकी बिन्दु यदि विषम (तीन वा पांच आदि) पडैं तो पुत्र, सम अर्थात् (दो चार आदि) पडैं तो कन्या होती है यह

सर्गवर्जनम् । अथ स्त्रीसंसर्गवर्जनमाह वसिष्ठः—"प्रभूतदोषे यदि दृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिककर्म कार्यम् । विवर्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमुत्तमेह्नि" ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः—"आद्यर्तौ पौषशुक्रोर्जमधुशुचिनभस्याः कुयुक्पापवारा रिक्ता मार्काष्टषष्ठ्यः पितृपरसदने रात्रिसन्ध्यापराह्णे। मिश्रोग्रा मूलतीक्ष्णं विवरमनरुणाल्पाधिकास्रं गराष्टोत्पातः पापस्य लग्नं न सदरुणजरन्नीलरक्ताम्बरं च ॥ आद्यर्तौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत्॥ गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चात्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदाः॥" तत्र शान्तिनिर्णयः । शान्तिमाह प्रयोगपारिजाते शौनकः— "सार्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनकः । पञ्चमेह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत् । कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादिवेष्टितम् ॥ सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव आप इत्यथ । ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्रा-

---

प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन किया है ॥ यहां स्त्रीसंगका निषेध कहते हैं--वसिष्ठने कहा है कि यदि महादोषमें रजोदर्शन होय तो शांतिकर्म करना चाहिये और जबतक रजोदर्शन रहै तब तब एक शय्याको त्यागदे. ज्योतिर्निबंधमें वसिष्ठने लिखा है कि, प्रथम रजोदर्शनमें पौष ज्येष्ठ कार्तिक चैत्र आपाढ भाद्रपद आश्विन पापवार रिक्ता पर्व (अमावस आदि) अष्टमी षष्ठी यह तिथि रात्रि सन्ध्या अपराह्ण माता पिताका दिन, पराया घर मिश्र, उग्र, तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र और विवर (क्षत) जिसमें लाली न हो ऐसा रुधिर, अल्प वा अधिक रुधिर, देशका उत्पात, पाप लग्न, नील फटा हुआ रक्त वस्त्र ये उत्तम नहीं है. विष्कम्भ, अतिगण्ड, शूलगण्ड, व्याघात, वज्रपात, परिघ तथा वैधृति यदि इनमें प्रथम रजोदर्शन होय तो स्त्री क्रमसे दुर्भगा, वन्ध्या, शूलवती, पुंश्चली (व्यभिचारिणी), आत्मघात करनेवाली, स्वैरिणी, पतिका घात करनेवाली, मृतवंध्या, पतिमारिणी होती है. शेष योग नामके अनुरूप फलदायक श्रेष्ठ जानने ॥ इसकी शान्ति प्रयोगपारिजातमें शौनकने लिखी है, मैं शौनक ऋतुवाली स्त्रियोंकी शान्ति लिखता हूं, कि, पांचवें वा चौथे दिन ग्रहोंके पूजनपूर्वक द्रोण (२५६ मुट्ठी) व्रीहियोंकी तीन राशि करै, उनके ऊपर तन्तुवस्त्रसे लपेटेहुए तीन घडे रक्खे, उनको भिन्न २ तीर्थके जलसे भरै, फिर नौऋचाओंका सूक्त तथा "प्रसुव आप" इत्यादि ऋचा[1] तथा प्रसव

---

[1] प्रसुवआपोमहिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः । प्रसप्तसप्तत्रेधा हि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ ऋ० ८ । ३ । ९ ॥

यऽया च ततः क्रमात् ॥ मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च। उदुम्बरः कुशो दूर्वा राजीववटबिल्वकाः ॥ विष्णुकान्ताथ तुलसी बर्हिषं शंखपुष्पिका । शतावर्यश्वगन्धा च निर्गुण्डी सर्षपद्वयम् ॥ अपामार्ग पलाशश्च पनसो जीवकस्तथा । प्रियंगवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च ॥ क्षीरं दधि च सर्पिश्च पद्मपत्रं तथोत्फलम् । कुरण्टकत्रयं गुंजा वचाभद्रकमुस्तकाः ॥ द्वात्रिंशदौषधानीह यथासंभवमाहरेत् । मृत्तिकाश्चौषधादीनि तन्मन्त्रेण क्षिपेत्क्रमात् ॥ कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं मृद्वेणुताम्रजम् ॥ भुवनेश्वरीं न्यसेत्तत्र इन्द्राणीं च पुरन्दरम् ॥ जपेद्गायत्रीमाहोमाच्छ्रीसूक्तं[1] च जपेत्ततः । स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भं ऋत्विगेको जपेदथ ॥ चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोतराणि च । संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ॥ शंन्न इन्द्राग्निसूक्तं च तत्रैव संस्पृशञ्जपेत् । कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् ॥ दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च। तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ॥ ततः स्विष्टकृतं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः[2] । सन्ततामा-

इत्यादि ऋचा और गायत्री इनसे क्रमसे कुम्भके मध्यमें धान्य औषधि तथा सुवर्ण इनको डालै, उदुम्बर (गूलर), कुशा, दूर्वा, कमल, वड, बेल, विष्णुकान्ता (नीला पुष्पा), तुलसी, बर्हिष (६४ कुशा), शंखपुष्पिका (शंखपुष्पा) शतावरी गन्धा (असगन्ध) निर्गुंडी दोनों सरसों अपामार्ग (ओंगा) ढाक पनस जीवक प्रियंगु गेहूं व्रीहि (धान्य) पीपल दूध दही घी कमलके पत्ते कमल तीन कुरंट चौटली वच भद्रक (धनियां) मोथा इन बत्तीस औषधियोंको यथासंभव (जितनी मिलसकें) लावै, मृत्तिका और इन औषधियोंको क्रमसे उसी मन्त्रसे डालै, घडेके ऊपर कांसी वा मृत्तिका वा बाँस वा तांबेके पात्रको रक्खै, तहां भुवनेश्वरी, इन्द्राणी, इन्द्रका स्थापन करै, और होम पर्यन्त गायत्री और लक्ष्मीसूक्तका जप करै, अथवा एक ऋत्विक् दक्षिणके घटका स्पर्श करता हुआ जप करै और तहांही चार रुद्रसूक्तके चार ऊपरके मन्त्र और ग्यारह श्रीसूक्त तथा शन्नइन्द्र और अग्निसूक्तके पाठ करके उत्तर घटको स्पर्श करता हुआ करै, कुम्भके पश्चिम भागमें दूर्वा तिल गेहूं खीर घीसे शान्ति हवनकी करै तीन दूर्वासहित एक २ घीकी आहुति दे, यहां चार प्रकारके हविकी ए.. सहस्र आठ वा अष्टोत्तरशत आहुति गायत्रीमन्त्रसेही करै, फिर समुद्रादूर्मिसूक्तसे स्विष्टकृत् होम करके निरन्तर घृतकी धारासे पूर्णाहुति करै, फिर

१ लक्ष्मीसूक्त, श्रीसूक्त, रुद्रसूक्त, पावमानी ऋचा यह एक २ कई ऋचोंका सूक्त पद्धतियोंमे पृथक् लिखाहै इससे नहीं लिखा यह सब पद्धतियोंमें देखो ॥

२ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदार दुपांशुना सममृतत्वमानट् घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ३ । ८ । १० ।

ज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥ अथाऽभिषेकं कुर्वीत प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥ आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ॥ इन्द्रो अङ्गतृचेनैव पावमानैः क्रमेण तु । उभयं शृणवच्चैनं स्वस्तिदाविश एकया ॥ त्रैयम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया । समुद्रज्येष्ठा इत्यादि त्रायन्तां च त्रिभिः क्रमात् ॥ इमा आपस्तृचेनैव देवस्य त्वेति मन्त्रतः । मन्त्रेणाथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ ॥ तमुष्टुहीति मन्त्रेण पितरं भुवनस्य हि । याते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसंकल्पमन्त्रतः । इंद्र त्वा वृषभं पञ्चमन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् । धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणम् ॥ सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने । महाशान्तिं प्रजप्याथ ब्राह्मणान्भोजयेदथ ॥ ॥ २ ॥ " नारदः—"तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः । प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये । " प्रकारान्तरं मदनरत्ने ज्ञेयम् ॥ विस्तरान्नोच्यते ॥ ग्रहणे रजोदर्शने तु जातकर्मप्रस्तावे शान्तिं वक्ष्यामः ॥ प्रथमर्तौ विशेषः । स्मृतिचन्द्रिकायां—

तीनों घडोंके जलसे इस प्रकार अभिषेक करै, प्रथम आपोहिष्ठेत्यादि नौ ऋचाओंसे फिर सूक्तसे फिर इन्द्रोअंग इत्यादि तीन ऋचाओंसे फिर 'पावमानैः' ऋचाओंसे फिर 'उभय शृणवच्च न स्वस्तिदाविश' इस एकसे फिर (त्र्यम्बकं यजामहे) इस मन्त्रसे, फिर समुद्रज्येष्ठा आदित्रायंत पर्यन्त तीन ऋचाओंसे, फिर 'इमा आप' इन तीन ऋचाओंसे, फिर 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रसे, फिर तमीशानं इस मन्त्रसे फिर त्वमग्ने इस मन्त्रसें फिर नतुष्टहि इस मन्त्रसे, फिर भुवनस्य पितर इस मन्त्रसे, फिर याते रुद्रसे, फिर शिवसंकल्प मंत्रसे, फिर 'इन्द्र त्वा वृषभं' इन पांच मन्त्रोंको पाठ करके यजमानका इन सब पूर्वोक्त मन्त्रोंसे अभिषेक करना चाहिये, आचार्यको भूषण सहित दूध देती गौ देनी चाहिये रुद्रजप करनेवालेको दक्षिणा सहित बैल देना चाहिये, और महाशान्तिका जप करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै, मदनरत्नमें नारदने. कहाहै कि, वहां शान्ति करै घी दूर्वा तिल अक्षतोंसे प्रत्येक १०८ गायत्रीके हवनके निमित्त करै, और सब दोषोंकी निवृत्तिके निमित्त सुवर्णकी गौ पृथिवी प्रदान करै. दूसरा प्रकार मदनरत्नमें जानना चाहिये यहां विस्तारके भयसे नहीं कथन किया, ग्रहणके समय रजोदर्शन होजाय तो जात प्रकरणमें उसकी शान्ति लिखेंगे ॥ प्रथम ऋतुमें रजस्वलाका विशेष स्मृतिचंद्रिकामें वर्णन कियाहै कि, पहली ऋतुमें रजस्वलाको

---

१ ॐ आपोहिष्ठामयो भुवः । ता न ऊर्जे दधातन । महेरणाय चक्षसे । योवः शिमतमो रसः ॥ तस्य भाजयतेहनः । उशतीरिवमातरः । तस्माअरंगमामवः । यस्यक्षयाय जिन्वथ । आपोजनयथाचनः ॥ २ इन्द्रो अंगमहद्भयमभीषदपचुच्यवत् सहि स्थिरोविचर्षणिः २ । ऋ० १ । ८ ऋ० ॥ ३ त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् । यजु० ३ । ६०॥

" प्रथमर्तौ तु पुष्पिण्याः पतिपुत्रवतीस्त्रियाः । अक्षतैरासनं कृत्वा तस्मिंस्तामुपवेशयेत् ॥ हरिद्रागन्धपुष्पादीन्दद्युस्ताम्बूलकं स्रजम् । दीपैर्नीराजनं कुर्यात्सदीपे वासयेद्गृहे ॥ लवणापूपमुद्गादि दद्यात्ताभ्यः स्वशक्तितः " ॥२॥इति॥ द्वितीयाद्यृतुषु नियमाः । द्वितीयाद्यृतुषु तन्नियमानाह मदनपारिजाते दक्षः– " अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम् । न कुर्यात्सार्त्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं

पति और पुत्रवाली स्त्री अक्षतोंका आसन निर्माण कर उसे उसपर बैठावै, हल्दी गन्धपुष्प पान माला इनको दे दीपकोंसे आरती करै, इस प्रकार घरमें सुलावै, जिस घरमें दीपक बलता रहै, उन स्त्रियोंको अपनी शक्तिके अनुसार लवण मूंग पुए आदि देना चाहिये ॥ दूसरी ऋतु-आदिमें रजस्वलाके नियम प्रयोगपारिजातमें दक्षने वर्णन किये हैं, अञ्जन . उबटना स्नान प्रवास (परदेशमें जाना) दंतधावन और आकाशमें ग्रहोंका दर्शन ऋतुवाली स्त्रियोंको न

१ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् । स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुद्ध्यति । सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेन्नान्यस्य कस्यचित् । अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् । इति याज्ञवल्क्येऽपि, मलवद्वाससा न संवदेत्, न सहासीत नास्या अन्नमद्यात् ब्रह्महत्यायै एषा वर्णं प्रतिमुच्यास्ते अथो खल्वाहु रभ्यञ्जनं वा व स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यदिति । या मलवद्वाससं संभवन्ति, यस्ततो जायते, सोभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनः, यां पराचीं तस्यै ह्रीत, मुख्यप्रगल्भा । या स्नाति तस्या अप्सुमारुकः या अभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा याथ लिखते तस्यै खलतिरपस्मारी, याङ्क्ते तस्यै काणः या दतो धावते तस्यै श्यावदन्, या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी, या कृणत्ति तस्यै क्लीवः या रज्जुं सृजति तस्या उद्बन्धुकः या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादकः, या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः । तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेत् अखर्वेण वा पात्रेण प्रजायै गोपीथाय इति तैत्तरीयसंहिता ॥ स्त्रीधर्म हो तो तीन दिन अपना मुख न देखै, जबतक स्नानसे शुद्ध न हो तबतक किसीको अपना वचन भी न सुनावै, स्नान कर स्वामीकाही मुख देखै औरका नहीं अथवा पति न हो तो मनमें पतिका ध्यान करके सूर्यका दर्शन करै यह याज्ञवल्क्य कहते हैं. रजोदर्शनमें मलीन वस्त्र पहरे रहै. किसीके साथ न बैठे, न इसका अन्न खाय यह ब्रह्महत्याके निमित्त है । इसपर कहते हैं स्त्री रजोवती हो उसका अन्न न ले, मलीन वस्त्र तीन दिन रहै तो सन्तान अच्छी हो जो वनमें जाय उसके स्तेन, जो पराक हो उसके ह्रीत, और वाचाल जो स्नान करती रहै उसके जलमें मारुक, जो उबटन लगावै उसके दुश्चर्मवाला, जो लिखे उसके खलित अपस्मारी, जो सुरमा लगावे उसके काना, जो दँतोन करै उसके श्यामदन्त, जो नख काटै उसकेखोटेनखी जो रस्सी वटे उसके उद्बन्धुक जो दौनोंसे पीवे उनके उन्मादी पुत्र हो जो खर्वसे पिये उसके बौना पुत्र हो, तीनों दिन व्रत करके अंज लिसे जल पिये, वा सन्तति रक्षाके निमित्त बृहत् पात्रसे जल पिये यह तैत्तिरीय संहितामें लिखा है. २१४ ॥

तथा ॥ अत्रिरपि—"वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम् । गन्धं माल्यं दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम् ॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत्॥" मदनरत्ने हारीतः—'रजःस्नाता चेदधः शयीत भूमौ कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाश्नीयात्' इति ॥ विष्णुधर्मे—"आहारं गोरसानां च पुष्पालंकारधारणम् । अञ्जनं कंकतं दन्ताः पीठशय्याधिरोहणम् ॥अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेच्च दिनत्रयम् ॥ ऋतोः पूर्वं स्त्रीगमननिषेधः । तथा प्रथमर्त्तोः पूर्वं स्त्रीगमनं न कार्यम्—"प्राग्रजोदर्शनात्पत्नीं नेयाद्गत्वा पतत्यधः । व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ॥" इति तत्रैवाश्वलायनोक्तेः ॥ तत्र ऋत्वनृत्वोरपि गमनम् । तत्र ऋतौ गमनमाह याज्ञवल्क्यः—'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्' इति ॥ अनृतावप्याह गौतमः—'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति ॥ मनुः—"ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तु या ॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः ॥" मदनरत्ने देवलः—'तस्मात्त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत् ॥" तत्र तिथ्यादिनिर्णयः । तिथ्यादीनाह श्रीधरः—"षष्ठ्यष्टमीं पंचदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्कसितेन्दुजानाम् ॥" उभयत्र

करना चाहिये. अत्रिने भी कहाहै कि, मधु मांस धातुके छोटे पात्रमें भोजन गन्ध माला दिनमें शयन पान वा मुखशोधनको रजस्वला स्त्री न करै, और मट्टीके पके और फूटे पात्रमें भोजन करै और अञ्जलीसे जलपान करै मदनरत्नमें हारीतने लिखा है कि, यदि स्त्रीको रज होजाय तो पृथ्वीपर शयन करै, लोहा हाथ वा मट्टीके पात्रमें भोजन करै और अञ्जलीसे जलपान करै । विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, गोरसोंका भोजन पुष्प और भूषणोंका धारण अञ्जन कंकत (कंघी) सुगन्ध लगाना आसन और शय्यापर बैठना तथा अग्निका स्पर्श रजस्वलाको तीन दिनतक न करना चाहिये ॥ इसी प्रकार प्रथमकी ऋतुसे पहिले स्त्रीका संग न करै. कारण कि, विष्णुधर्मोत्तरमें ही आश्वलायनका यह वाक्य है कि रजोदर्शनसे प्रथम स्त्रीका संग न करै और करै तो नरकमें पडता है, और वीर्यके वृथा करनेसे ब्रह्महत्याकी प्राप्ति होती है ॥ फिर ऋतु हानपर गमन याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, स्त्रियोंको सोलह रात्रि ऋतु लिखी है उनमें युग्म (दो चार आदि) रात्रियोंमें संग करै. गौतमने विना ऋतुमें भी गमन लिखा है कि ऋतुमें वा वर्जित तिथियोंको त्यागकर सदा स्त्रीसंग करै. मनुने कहा है कि, स्त्रियोंकी सोलह रात्रि स्वाभाविक ऋतु लिखी है उनमें आदिकी चार और ग्यारहवीं और तेरहवीं यह छः रात्रि निंदित हैं शेष १० रात्रि उत्तम हैं. मदनरत्नमें देवलने लिखा है कि, तिससे तीन रात्रितक चाण्डालस्वरूपिणी रजस्वलाको त्यागदे ॥ ऋतुमें तिथि आदि श्रीधरने लिखी हैं कि, छठ अष्टमी पूर्णिमा चौथ चतुर्दशी दोनों पक्षोंमें इनको त्यागकर तिथि और सोम बृहस्पति शुक्र बुधवार

पक्षद्वये ॥ आर्यो गुरुः ॥ सितः शुक्रः ॥ इन्दुजो बुधः ॥ " विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये । पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्ये ॥" विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्राण्युपक्रान्तानि रत्नमालायाम्–"भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वादितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोऽर्यमरवित्वाष्ट्राह्वया मारुतः । शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥" इत्यश्विन्यादिक्रमेण । अत्र मूलस्य पूज्यत्वमुक्तम् ॥ याज्ञवल्क्येन तु–'एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्' इत्युक्तम् ॥ तेन पूर्वेण मूलं विकल्प्यते ॥ अत्र–'समासु पुत्रा विषमासु कन्या' इति ज्ञेयं 'युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु' इति हेमाद्रौ शङ्खोक्तेः ॥ तत्राप्युत्तरोत्तराः प्रशस्ताः ॥ तदाहापस्तम्बः–'तत्राप्युत्तरा प्रशस्ता' इति ॥ तत्रैव व्यासः–" रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः । पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः ॥ सप्तम्यां सप्रजा योषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान् । नवम्यां

गर्भाधानमें उत्तम होती हैं, और विष्णु रोहिणी रवि अनुराधा समीर (स्वाती) रेवती मूल तीनों उत्तरा शतभिषा ये नक्षत्र उत्तम हैं, पुष्य धनिष्ठा मृगशिर अश्विनी चित्रा अदिति (पुनर्वसु) ये मध्यम हैं इनसे और नक्षत्र निष्फल हैं, विष्णु आदिके नक्षत्र रत्नमालामें ये अश्विनी आदिनक्षत्रोंके क्रमसे स्वामी हैं. अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, शिव, अदिति, नाग, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, इन्द्र, अग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्वेदेवा, ब्रह्मा, गोविन्द, वसु, वरुण, अजचरण, अहिर्बुध्न्य, पूषा, इनमें मूलको उत्तम और पूज्य लिखा है ॥ और याज्ञवल्क्यने रजसे दुर्बली स्त्रीका संग करता हुआ मनुष्य मघा और मूलको छोडदे, इस वाक्यसे मूलको वर्जित लिखा है तिससे मूलक विषयमें विकल्प समझना चाहिये, ऋतुओंमें समतिथियोंमें पुत्र, विषमतिथियोंमें कन्या उत्पन्न होती है यह हेमाद्रिमें शंखके वाक्यसे लिखा है. ऋतुकी भी तिथि उत्तरोत्तर उत्तम हैं, यही आपस्तम्बने लिखा है कि, उन तिथियोंमें भी उत्तरोत्तर उत्तम हैं. वहांही व्यासने कहा है कि, चौथी रात्रिमें गर्भ रहै तो अल्पायु धनहीन पुत्र होता है, पांचवीमें पुत्रवाली कन्या, छठीमें मध्यम पुत्र, सातवीमें सन्तानहीन कन्या, आठवीमें ऐश्वर्यवान् पुत्र, नौमीमें सुभगा कन्या, दशमीमें

---

१ बृहस्पति कहते हैं स्त्रीका रज अधिक हो तो कन्या, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुरुष इससे शुक्र वृद्धिके निमित्त स्निग्ध भोजन करना स्त्रीको लघु भोजन करानेसे पुत्र होगा जब कि युग्म रात्रिमें शोणितकी अधिकता हो तो स्त्रीमी पुरुषाकृति होती है, अयुग्ममें शुक्रकी अधिकतासे पुरुष भी स्त्रीकी आकृति होता है कालका निमित्त होनेसे शुक्र शोणितके उपादान कारणकी प्रबलतासे स्त्रीको दुर्बल रक्खै यह मिताक्षरामें कहा है ॥ २१६ ॥

सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः । एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसङ्करकारिणी ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः । प्रजापतिश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता ॥ आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान् " ॥ ४ ॥ इति ॥ अत्र चतुर्थदिननिषेधेपि–'स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः । ' इति भारतोक्तेः ॥ चतुर्थेऽहनि स्नातायां युग्मासु वा गर्भं संदधाति ' इति हारीतोक्तेर्विकल्पो ज्ञेयः ॥ तत्रापि–"स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेहनि शस्यते । गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथञ्चन " इत्यापस्तम्बोक्तेर्व्यवस्था ज्ञेया ॥ प्रभासखण्डे मरीचिः–'शुद्धा भर्तुश्चतुर्थेह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला । दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेहनि शुद्ध्यति ॥ " श्रौतकर्ममध्ये रजस्वला चेत्तत्र चतुर्थदिनेप्यधिकारः । ' अथ यदा त्रिरात्रिणी स्यादथैनामुपह्वयेत् ' इत्यापस्तम्बसूत्रात् ।' चतुर्थेहनि गोमूत्रमिश्राभिरद्भिः स्नाता वासोयोक्त्रजालानि मन्त्रैर्धारयेत् ' इति सोमेप्युक्तम् ॥ एवं सर्वत्र श्रौतकर्मणीति धूर्तस्वामिरामाण्डारादयः ॥ अत्र सर्वासु युग्मासु गमनमावश्यकं युग्मास्विति बहुवचनानिर्देशादिति विज्ञानेश्वरः ॥ तच्चैकस्यां रात्रौ सकृदेव कार्यम् ॥ ' सुस्थ इन्दौ

श्रेष्ठ पुत्र, ग्यारहवीमें धर्महीन कन्या, बारहवींमें श्रेष्ठपुत्र तेरहवींमें पापिनी और वर्णसंकर करनेवाली कन्या, चौदहवींमें धर्मज्ञाता कृतज्ञ आत्मज्ञानी दृढसंकल्प पुत्र, पन्द्रहवींमें पतिव्रता कन्या, सोलहवींमें सब भूतोंकी रक्षा करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है ॥ यद्यपि यहां चौथे दिन संगका निषेध है तोभी ऋतुस्नाता स्त्रीके संग चौथे दिनकी रात्रिमें बुद्धिमान् मनुष्यको गमन करना चाहिये, इस महाभारतके वाक्यसे चौथे दिन स्नान करनेवाली स्त्रीमें वा युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करना चाहिये इस हारीतके वाक्यसे विकल्प जानना चाहिये वहांभी इस आपस्तंबके वाक्यसे व्यवस्था जाननी कि, रजस्वला स्त्रीका चौथे दिन उत्तम स्नान है और वह रजोधर्मके निवृत्ति होनेपर गमन करने योग्य है और बिना निवृत्त हुए गमन करने योग्य नहीं है, प्रभासखण्डमें मरीचिने लिखा है कि, रजस्वला स्त्री पतिके निमित्त चौथे दिन स्नान करके शुद्ध है, और देवपितरोंके कर्ममें पांचवें दिन शुद्ध होती है, वेदोक्त कर्मके बीचमें रजस्वला हो जाय तो चौथे दिन भी अधिकार है कारण कि, आपस्तम्बका यह सूत्र है कि, जब यह त्रिरात्रिणी हो चुके अर्थात् रजके तीन दिन बीत जायं तब इसमें बीजवपन करै, चौथे दिन गोमूत्र मिले जलोंसे स्नान करके वस्त्रोंकी जगह सूतके जालोंको मन्त्रोंसे धारण करै, यह सोमयज्ञमें लिखा है ॥ इसी प्रकार सब वेदोक्त कर्मोंमें जानना चाहिये. धूर्तस्वामी रामांडार आदिका कथन है कि, ऋतुमें सब युग्मरात्रिमें गमन करना, ' युग्मासु ' इस बहुवचनसे आवश्यक है यह विज्ञानेश्वरका मत है परंतु वह गमन एक रात्रिमें एकबारही करना

सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ' इति याज्ञवल्क्योक्तेः । इदं ऋतौ गमनमन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासंभवे श्राद्धैकादश्यादावपि कार्यम् ॥ ' ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इति याज्ञवल्क्योक्तेः ॥ व्याख्यातं चेदं मिताक्षरायाम्– 'यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः' इति ॥ पर्वाणीति बहुत्वेनाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणमिति च ॥ मदनरत्नेप्येवम् ॥ यत्तु हेमाद्रौ शिवरहस्ये–" दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोर्थी न च पर्वसु" इति ॥ तदनृतुविषयम् ॥ ' ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्' इति मनूक्तेः ॥ दर्शादौ तु न भवत्येव पर्वणां पर्युदस्तत्वात् ॥ "ऋतुकालं नियुक्तो वा नैव गच्छेत्स्त्रियं क्वचित् । तत्र गच्छन्समाप्नोति ह्यनिष्टफलमेव तु" इति वृद्धमनूक्तेः ॥ श्राद्धे ब्रह्मचर्यं नियतमित्युक्तम् ॥ पृथ्वीचन्द्रोदयेप्येवम् । एतत्सति संभवे ज्ञेयम् ॥ अनेकभार्यस्यर्तुयौगपद्ये निर्णयः । अनेकभार्यस्यर्तुयौगपद्ये हेमाद्रौ कश्यपः–" यौगपद्ये तु तीर्थानां विवाहक्रमशो व्रजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोपि वा " ॥

कारण कि, श्रेष्ट चन्द्रमा होय तो सुलक्षण पुत्र एकवारही होता है. यह याज्ञवल्क्यने लिखा है कि, यह ऋतु गमन यदि प्रतिबंध आदिसे अन्यकालमें न हो सके तो श्राद्ध और एकादशी आदिमें भी करना चाहिये. कारण कि, याज्ञवल्क्यका कथन है कि, पर्व और आदिकी चार रात्रि त्यागदे तो ब्रह्मचारी होता है, मिताक्षरामें इसका यह व्याख्यान कहा है कि, जहां श्राद्धमें ब्रह्मचर्य लिखा है वहां ऋतुमें गमन करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाय तो दोष नहीं है, पर्वाणि इस बहु वचनसे अष्टमी और चतुर्दशी लेनी चाहिये. मदनरत्नमें भी इसी प्रकार लिखा है, जो हेमाद्रिमें शिवरहस्यका कथन है कि, दिन जन्मदिन श्राद्धकरके और खाकर और पर्वमें व्रतवाला मनुष्य कल्याण चाहै तो मैथुन न करै, यह वाक्य ऋतुसे भिन्नकालमें जानना. कारण मनुने यह लिखा है कि–जिस किसी आश्रममें निवास करता हुआ ऋतुमें गमन करनेसे ब्रह्मचारी रहता है अमावस्या आदिमें तो स्त्री गमन नहीं होता. कारण कि, विष्णुपुराणमें पर्वोंका निषेध कहा है कि, अमावस्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशीमें ऋतुसे भिन्न कालमें भी स्नातक द्विजको ब्रह्मचारी होना चाहिये. माधवीयमें इस वृद्धमनुके वाक्यसे नियत ब्रह्मचर्य करना कहा है कि, श्राद्धमें प्रवृत्त मनुष्यको ऋतुकालमें कभी स्त्रीके संग गमन न करना चाहिये, यदि करै तो अनिष्ट फल मिलता है पृथ्वीचन्द्रोदयमें इसी प्रकार लिखा है यह सम्भव होय तो जानना ॥ अनेक स्त्रीवालेकी स्त्री यदि एक वार ऋतुवाली होजाय तो हेमाद्रिमें कश्यपने यह लिखा है कि, एकवार ऋतुमें विवाहके क्रमसे वा रक्षाके निमित्त जिसके पुत्र न होय उसके संग वा ऋतुकालके क्रमसे भार्यागमन

इति ॥ ग्रहणमृतुग्रहणम् ॥ऋग्विधाने-"विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभि-र्व्रती । गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रो जायते ध्रुवम् ॥ " ऋतावगमने निर्णयः । अगमने दोषमाह पराशरः-"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः"॥ अस्यापवादमाह मदनरत्ने व्यासः-" "व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमु-च्यते ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तामनपत्यामपुष्पिणीम् । कन्यां च बहुपुत्रां च वर्ज-येन्मुच्यते भयात् ॥ २ ॥' वृद्धां गतरजस्काम् ॥ गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चि-त्तम् । गर्भाधानाङ्गहोमाकरणे प्रायश्चित्तमाह पारिजाते आश्वलायनः -"गर्भाधान-स्याकरणात्तस्यां जातस्तु दुष्यति । अकृत्वा गां द्विजे दत्त्वा कुर्यात्पुंसवनं पतिः॥" गर्भाधानं च मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम् ॥ " उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतु-जन्मसु । सुरसुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥" इति ज्योतिर्निबन्धे भृगूक्तेः॥ ऋतौ गमने पराशरः-"ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥ " स्त्रीणां तु न स्नानम् ॥ ' उभावप्यशुची स्यातां दम्पती शयनं गतौ । शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ "

कर, ऋग्विधानमें कहा है कि, योनिका तीन वार स्पर्श करके व्रतवाला मनुष्य विष्णुसूक्त जपै फिर गर्भाधान करै तो अवश्य सुन्दर पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ऋतुमें गमनके न करनेमें पराशरने दोष कहा है कि, ऋतुवाली भार्याके समीप जो गमन नहीं करता, उसको घोर गर्भहत्यामें पकना पढता है, इसमें संदेह नहीं. इसका अपवाद मदनरत्नमें व्यासने लिखा है रोगी, बंधनस्थ, परदेशी पर्वोमें ऋतुकालमें भी गमन न करनेसे ब्रह्महत्यासे मुक्त होता है, वृद्धा वंध्या दुराचा-रिणी मृतवत्सा जो रजस्वला न होती हो जो कन्या हो बहुत पुत्र होंय ऐसी स्त्रीका संग भी न करै तो ब्रह्महत्या नहीं लगती, और जन्ममरणसे मुक्त होता है यहां वृद्धा वह लेनी जिसका रजोधर्म जाता रहा हो ॥ यदि गर्भाधानका अंग हवन न किया जाय तो पारिजातमें आश्व-लायनने यह प्रायश्चित्त लिखा है कि, गर्भाधानमें होम न किया होय तो उसमें उत्पन्न हुई दुष्ट संतान होती है, और न करनेमें ब्राह्मणको गौ देकर पतिको पुंसवन करना चाहिये यह गर्भाधान मलमास शुक्रास्तआदिमें भी करना चाहिये. कारण कि, ज्योतिर्निबन्धमें भृगुका कथन है कि, सम्पूर्ण उत्सव सीमंत ऋतु (गर्भाधान) जन्म (जातकर्म) इनमें बृहस्पति और शुक्रके अस्तका दोष नहीं है, ऋतुकालमें गमन करै तो पराशरने यह लिखा है कि,ऋतुमें गर्भ रहनेकी शंका है इससे मैथुन करनेवाले मनुष्यको स्नान लिखा है, यदि ऋतुस्नानके उपरान्त गमन करै तो उसको शौच करना चाहिये जो मूत्र विष्ठाके करनेमें लिखा है, स्त्रियोंको तो स्नान नहीं लिखा कारण कि, वृद्धशातातपने यह लिखा है कि, शय्यापर सोते हुए स्त्री

इति वृद्धशातातपोक्तेः॥ ऋतौ स्त्रिया अस्पृश्यत्वनिर्णयः । अत्र कश्चिद्विशेष उच्यते तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागां कृत्वा आद्यभागद्वयं चेत्पूर्वदिनं ग्राह्यम्, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम्॥यत्तु–"प्रागर्द्धरात्रात्प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम् " इत्युक्तम् ॥ तत्र देशाचाराद्व्यवस्था ॥ तथा सप्तदशादिनपर्यन्तं पुना रजोदृष्टौ स्नानमात्रम् ॥ अष्टादशे एकरात्रम् ॥ ऊनविंशे द्व्यहः ॥ विंशतिप्रभृतित्रिरात्रमिति तत एव ज्ञेयम् ॥ यत्तु–'चतुर्दशदिनादर्वागशुचित्वं न विद्यते' इति तत्र स्नानप्रभृतित्वमभिप्रेतम् ॥ एतच्च यस्या विंशतिदिनोत्तरं प्रायशो रजस्तत्रैव यस्यास्त्वर्वाक् प्रायशो रजोदर्शने तत्रोक्तं स्मृत्यर्थसारे–' त्रयोदशदिनादूर्ध्वं प्रायो रजोवतीनामेकादशदिनात्प्रागशुचित्वं नास्ति ॥ एकादशदिने एकरात्रम् ॥ द्वादशे द्विरात्रम् ॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रमिति ॥ प्रयोगपारिजातेप्येवम् ॥ रोगजे तु तत्रैव विशेषः संग्रहे -" रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते । नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम् ॥ " इति ॥ कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव ॥ "साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नातापि स्त्री रजस्वला । यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्तते ॥ "

और पुरुष अपवित्र होते हैं और शय्यासे उठनेपर स्त्री शुद्ध होती है और पुरुष अशुद्ध हो हो जाता है ॥ इसमें कुछ विशेष लिखते हैं कि जब रात्रिमें रजोधर्म हो वा जन्म होय तो रात्रिके तीन भाग करके पहले दो भागमें होय तो प्रथम दिन लेना और तीसरे भागमें होय तो अगला दिन लेना यह मिताक्षरामें कहा है, जो किसीने यह लिखा है कि, आधी रात वा सूर्योदयसे प्रथम होय तो प्रथम दिन लेना उसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी चाहिये इसी प्रकार सूत्र है (१७) दिनपर्यंत फिर रजोदर्शन हो तो स्नान मात्रही करै, १८ वें दिन एक रात्र १९ वें दिन दो दिन २० आदिमें ३ दिन अशौच मिताक्षराके लिखे अनुसार जानने, जो किसीने यह लिखा है कि, १४ दिनसे प्रथम रजोदर्शनमें अशुद्धि नहीं होती, उसमें स्नान करना तो इष्ट है और यह भी वहांही लिखा है कि, जिस स्त्रीको २० दिनके उपरांत प्रायः रजोधर्म होता है और जिसको २० दिनसे पहले होता है उनको स्मृत्यर्थसारमें लिखा है कि- १३ दिनके उपरान्त प्रायः रजोधर्मवाली स्त्रीको ११ दिनसे प्रथम अशौच नहीं होता ११ ग्यारहवें दिन एकरात्र पीछे ३ दिनका अशौच लगता है, प्रयोगपारिजातमें भी इसी भाँति लिखा है कि, रोगसे उत्पन्न हुये रजोधर्ममें तो यह विशेष संग्रहमें कहा है कि, स्त्रियोंको रोगसे प्रतिदिन जो रजोधर्म होता है उससे स्त्री अपवित्र नहीं होती. कारण कि, वह विकारसे प्राप्त हुआ है, स्त्रियोंको कर्मका अधिकार तो रजोदर्शनकी निवृत्तिपर कहा है कारण कि श्राद्ध हेमाद्रिमें शंखका कथन है कि, रजस्वला स्त्री स्नान करनेसे भी साधु आचरण नहीं कर सकती जबतक प्रवृत्त हुआ रजोधम पूर्णतासे निवृत्त न होजाय तिसमें भी रजोधर्म जाननेके समय

इति श्राद्धहेमाद्रौ शंखोक्तः ॥ तत्रापि स्वकालेऽशुचिरेवेत्याह ऋष्यशृङ्गः—"रोगजे वर्त्तमानेपि काले निर्याति कालिकम् । तस्मात्कालेऽप्रमत्ता स्यादन्यथा संकरो भवेत् ॥" रजस्वलापरस्परस्पर्शे निर्णयः । तथा—'रजस्वलाया रजस्वलान्तर-स्पर्शेऽकामतः स्नानं' कामत उपवासः पञ्चगव्याशनं च ॥ असवर्णानां तु ब्राह्म-ण्याः क्षत्रियादिस्पर्शे क्रमेण कृच्छ्रार्द्धपादोनकृच्छ्रकृच्छ्राणि, क्षत्रियादीनां तु कृच्छ्रपाद एव, क्षत्रियादीनां हीनवर्णस्पर्शे त्रिरात्रमुपवासः ॥ वैश्याशूद्र्याः पूर्वया स्पर्शेऽहोरात्रं द्विरात्रं च ॥ एतच्च कामतः ॥ आकामतश्च प्राक् शुद्धेरन-शनम् ॥ चाडालादिस्पर्शे । आकामतश्चाण्डालादिस्पर्शेप्यनशनमेव प्राक्छुद्धेः ॥ कामतस्तु—प्रथमेह्नि त्र्यहः, द्वितीये द्व्यहस्तृतीये एकाहः ॥ श्वस्पर्शे तु द्व्यह एकाहो वा ॥ भुञ्जानायाश्चाण्डालादिस्पर्शे षड्रात्रम् ॥ उच्छिष्टयोः स्पर्शे तु कृच्छ्र इत्यादि मिताक्षरायां ज्ञेयम् ॥ स्मृत्यर्थसारे तु—'सर्वत्र बालापत्यायाः स्पर्शे स्नाने कृते भुक्तिः पश्चादनशनप्रत्याम्नायः' इति ॥ तत्र ऋतुस्नानविधिः । स्नानविधिं चाह पराशरः—"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला । पात्रा

की अशुद्धही है यह ऋष्यशृंगने लिखा है कि, रोगसे हुआ रज वर्तमानभी होय तो भी कालसे उत्पन्न हुआ रुधिर कालमें निकलता है उस समय मनुष्य प्रमत्तता न करै अन्यथा वर्णसंकर होता है ॥ यदि रजस्वलाको अज्ञानसे दूसरी रजस्वला स्पर्श करले तो स्नान और जानकर करले तो व्रत और पंचगव्यका भक्षण करै असवर्णा (भिन्नजाति) ओंके स्पर्शमें तो यह लिखाहै कि ब्राह्म-णीको क्षत्रिया वैश्या शूद्रा स्पर्श करले तो आधा कृच्छ्र पौनकृच्छ्र अतिकृच्छ्र व्रत क्रमसे ब्राह्म-णी करै और क्षत्रिया आदि तीनों तो चौथाई कृच्छ्र व्रत करै तो पवित्र होती है. यदि क्षत्रिया आदिकोंको हीनवर्ण स्त्रीका स्पर्श होजाय तो तीनरात व्रत करै, यदि वैश्या और शूद्राको अपनेसे पूर्वजातिकी स्त्री छूले तो अहोरात्र वा दो रात्र व्रत करै, यहभी जानकर स्पर्शमें जानना चाहिये, अज्ञानसे स्पर्शमें तो पवित्रतासे प्रथम अनशन व्रत करै ॥ अज्ञानतासे चाण्डाल आदिके छूलेनेमें भी पवित्रतासे प्रथम अनशनव्रतही लिखाहै, जानकर छूलेनेमें तो प्रथम ३ दिन, २ दिन दो, तीसरे दिन एक क्रमसे व्रत करना कुत्तेका स्पर्श होजाय तो २ वा १ दिन व्रत करै, यदि भोजन करती हुई रजस्वलाके चाण्डाल आदिका स्पर्श होजाय तो ६ दिन व्रत करै यदि उच्छिष्ट दो रजस्वला परस्पर छूलें तो कृच्छ्र व्रत करैं इत्यादि प्रायश्चित्त मिताक्षरामें लिखे हैं. स्मृत्यर्थसारमें तो यह लिखा है कि, जिस स्त्रीकी गोदीमें बालक हो वह छूले तो स्नान करनेसे पवित्र होती है और भोजनके पीछे स्पर्श करले तो अनशन व्रत करनेसे पवित्र होती है ॥ स्नानकी विधि पराशरने इस प्रकार लिखी है कि, यदि रजस्वला स्त्रीको नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति होय तो वह पात्रांतरित(एकपात्रसे जो दूसरे पात्रमें लियाजाय) जलसे स्नान करके व्रत करै,

न्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन । न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् " ॥ २ ॥ रजस्वलास्नानम् । अथ रजस्वलास्नानं दैवज्ञवल्लभः–"ब्रह्मानुराधाश्विनसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु । विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥ " ज्वरे तूशनाः–" ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता । कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ॥ चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम् । सा सचैलावगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत् ॥ दशद्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः । अन्ते च वाससां त्यागः ततः शुद्धा भवेत्तु सा " ॥ ३ ॥ इति ॥ इदं चातुरमात्रे ज्ञेयम् ॥ 'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः' इति पराशरोक्तेः ॥ रजसोऽज्ञाने निर्णयः । रजसोऽज्ञाने तु पराशरमाधवीये प्रजापतिः–"अविज्ञाते मले सा च मलवद्वसना यदि । कृतं गृहेषु दुष्टं स्याच्छुद्धिर्न स्यात्त्रिरात्रतः ॥" देवजानीये कारिकायां–"उच्छिष्टा तु द्विजातीनां रजः स्त्री यदि पश्यति ॥ उपवासमधोच्छिष्टे ऊर्ध्वोच्छिष्टे त्र्यहं क्षिपेत् " ॥ पुंसवनम् । अथ पुंसवनम् ॥ प्रयोगपारिजाते जातूकर्ण्यः–"द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते

किन्तु किसी प्रकार अपने सम्पूर्ण शरीरको जलसे छिड़कले, न वस्त्रोंको धोवे न दूसरे वस्त्रोंको धारण करै ॥ अब रजस्वलाका स्नान लिखतेहैं दैवज्ञवल्लभने लिखाहै कि, रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, सौम्य नक्षत्र हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, मघा, उत्तराभाद्रपदा इनमें स्त्रियोंको स्नानकी विधि लिखी है, यदि ज्वरवाली स्त्री रजोवती होजाय तो उसका शौच किस प्रकार होय और किस कर्मसे पवित्र होय, चौथा दिन जब आवै तब उस रजस्वलाको और शुद्ध स्त्री स्पर्श करै, और वह स्त्री सचैल स्नान करके फिर जलको स्पर्श करै फिर उस रजस्वलाका स्पर्श करै, इस प्रकार १० तथा १२ बारहवार करके बारम्बार आचमन करै, और अन्तमें वस्त्रोंको छोडदे तो फिर वह पवित्र होजाती है यह सब रोगियोंके विषयमें उशनाने कहा है कारण कि, पराशरने यह लिखा है कि, रोगीको स्नान करना प्राप्त होवे तो अच्छा मनुष्य स्नान कर २ के छूवे ॥ रजका अज्ञान होय तो पराशरमाधवीयमें प्रजापतिने यह लिखा है कि, यदि मलका ज्ञान न होय वा वस्त्रोंमें मलिनता होय तो घरमें किया हुआभी स्नान दुष्ट होजाता है, किन्तु तीन दिन व्रतसे उसकी शुद्धि होती है. देवजानीय कारिकामें कहा है कि, यदि द्विजातियोंकी उच्छिष्ट स्त्री रजको देखलेय तो आधे उच्छिष्टसे प्रथम व्रत और उससे पीछे ३ तीन व्रत करै ॥ अब पुंसवन संस्कार प्रयोगपारिजातमें जातूकर्ण्यने लिखा है कि, दूसरे वा तीसरे महीनेमें पुंसवन होताहै, अथवा गर्भके

गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथ वा ॥ " बृहस्पतिः-"तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टे-रन्यत्र शोभनम् । गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथवाष्टमे ॥" सकृत्प्रसूता गृष्टिः ॥ एतेन प्रतिगर्भमपि भवतीति ज्ञायते ॥ बह्वृचकारिकापि-" कर्ता स्याद्देवरस्तस्या यस्याः पत्युरसंभवः । आवर्त्तेत इदं कर्म प्रतिगर्भमिति स्थितिः"॥ब्राह्मे-"गर्भाधानादिसंस्कर्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ अभावे स्वकुलीनः स्याद्बान्धवोऽन्यत्र गोत्रजः ॥" मदनरत्ने सत्यव्रतः-" मृतो देशान्तरगतो भर्त्ता स्त्री यद्यसंस्कृता । देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत्॥" हेमाद्रौ यमः-'प्रथमे मासि द्वितीये वा पुंनक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यादिति'इति ॥ वाराहः-हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसु-र्मृगशिरस्तथा पुष्यः । पुंसंज्ञकेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥ " अनुराधापि पुन्नक्षत्रं ' अनुराधान् हविषा वर्धयन्तः ' इति श्रुतेः ॥ गर्गोपि-" पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः ॥ अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनुराधा तथाश्वयुक् ॥ " नृसिंहः-' रिक्तां पर्व च नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः । ' ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः-" मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य । काकी च वंध्या भवतीह शुक्रे स्त्रीपुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥ " अनवलोभनस्याप्ययमेव कालः ॥

प्रगट होनेपर वा सीमन्तके संग करना. बृहस्पतिका कथन है कि, गृष्टि (प्रथम गर्भवती) से और स्त्रीका तीसरे महीनेमें पुंसवन श्रेष्ठ है, और गृष्टिका चौथे छठे आठवें महीनेमें श्रेष्ठ है, यह कर्म सब गर्भोंमें होताहै यहभी इससे जानागया बह्वृचकारिकामें कहाहै कि, जिस स्त्रीका पति निकट न होय उसका पुंसवन देवरको करना यह कर्म प्रतिगर्भमें होताहै यही मर्यादा है ॥ ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, गर्भाधान आदि संस्कारोंका करनेवाला पिता अत्यन्त उत्तम कहा है पिता न होय तो कुलीन वा और गोत्रका पुरुष होता है. मदनरत्नमें सत्यव्रतने कहा है कि, पति मृतक होगया हो वा देशान्तरोंमें हो और स्त्रीका संस्कार न हुआ होय तो देवर गुरु वा किसी वंशके गुरुसे संस्कार करा देना. हेमाद्रिमें यमराजने कहा है कि, पहले दूसरे महीनेमें जब पुरुषनक्षत्रपर चन्द्रमा होय तब पुंसवन करना चाहिये. वराहपुराणमें लिखा है कि, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य ये नक्षत्र पुरुषसंज्ञक कार्योंमें उत्तम लिखे हैं, अनुराधा भी पुरुषनक्षत्र वर्णन किया है अनुराधाको हविदानसे देवताओंने वढाया, यह श्रुति है. गर्गने कहा है कि, श्रवण, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, प्रौष्ठपाद ये सब पुरुष नक्षत्र हैं. नृसिंहने लिखा है कि, रिक्ता पर्व नौमीको पुंसवन कर्म न करना. ज्योतिर्निवन्धमें वसिष्ठने कहा है कि, शनैश्चरको पुंसवन करनेसे मृत्यु, सोमवारको शरीरकी हानि, बुधमें सन्तानका मरण, शुक्रमें काकवन्ध्या, रविवार, मंगल, बृहस्पतिको पुंसवन होय तो पुत्रकी प्राप्ति होती है, अनवलोभन

१ गृष्टि-प्रथम वारकी गर्भवती ।

दीपिकायां तु–' चतुर्थेऽनवलोभनम्, इत्युक्तम् ॥ सीमंतोन्नयनम् । हेमाद्रौ वैज-वापः–" अथ सीमंतोन्नयनं चतुर्थे पञ्चमे षष्ठे च " इति ॥ वसिष्ठः–' चतुर्थे सप्तमे मासि षष्ठे वाप्यथवाष्टमे ॥ ' हेमाद्रौ शंखः–' गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावद्वा न प्रसवः ॥ ' कार्ष्णाजिनिः–" गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा " मासश्चात्र सौरः सावनो वा ॥ कालविधाने–" चतुर्थषष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयम् । सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं च कुर्यात् ॥ " वसिष्ठः–' चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यथ वाष्टमे '॥ ज्योतिर्निबन्धे नारदः–अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे :॥ ' कालविधाने–' सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षछिद्रं च रिक्ता पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः ॥' अदितिः पुनर्वसुः ॥ तत्र पक्षच्छिद्रनिर्णयः । पक्षच्छिद्रं चाह वसिष्ठः–" चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा । षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः ॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः । भूता ५ ष्ट ८ मनु १४ तत्त्वां २२ क ९ दश १० शेषास्तु शोभनाः ॥ २ ॥ " कालनिर्णये–" शुभसंस्थे निशानाथे चतुर्थी च चतुर्दशीम् । पौर्णमासीं प्रशंसंति केचित्सीमंतकर्मणि ॥" बृहस्पतिः–" पूर्वपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना । चतुर्दशी चतुर्थी च शुक्लपक्षे शुभप्रदे ॥ "

कर्मका भी यहही समय है, दीपिकामें तो चतुर्थ महीनेमें अनवलोभन लिखा है ॥ अब सीमंतोन्नयन हेमाद्रिमें वैजपायनने लिखा है कि, चौथे पांचवें छठे आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन करै. वसिष्ठने कहा है कि, चौथे सातवें छठे वा आठवेंमें करै. हेमाद्रिमें शंखने कहा है कि, गर्भके चलनेपर सीमन्त करै, कार्ष्णाजिनि कहते हैं कि, जबतक जन्म न होय तबतक सीमन्तोन्नयन करना चाहिये. इसमें महीना सौर वा सावन लेना चाहिये, कालविधानमें कहा है कि, द्विजातियोंकी स्त्रियोंका सीमन्तकर्म प्रथम गर्भमें चौथे छठे वा आठवें महीनेमें करना चाहिये, और आठवें महीनेमें विष्णुबलि करनी. वसिष्ठने कहा है कि, चौथे छठे वा आठवें सावन वर्षके महीनेम करै. ज्योतिर्निबन्धमें नारदने कहा है कि, रिक्तपर्वसे दिनमें और मंगल, सूर्य, बृहस्पति वारमें सीमन्त करना, कालविधानमें कहा है कि, सीमन्तमें पुष्य हस्त पुनर्वसु श्रवण मृगशिरा रेवती रोहिणी तीनों उत्तरा यह ग्रहण किये हैं ॥ तहां पक्षका छिद्र वसिष्ठने लिखा है कि, चतुर्दशी चतुर्थी अष्टमी नवमी षष्ठी द्वादशी तिथियोंमें क्रमसे पांच आठ चौदह पच्चीस नव दश घडी त्यागनी चाहिये शेष घडी उत्तम हैं. कालनिर्णयमें कहा है कि, कोई एक आचार्य सीमंतमें चन्द्रमा उत्तम होय तो चतुर्थी चतुर्दशी पूर्णिमाको भी उत्तम मानते हैं, बृहस्पतिने सीमंतमें शुक्लपक्ष उत्तम लिखा है और अन्तकी पांच तिथियोंको त्यागकर कृष्ण-

नारदः—" विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत् । वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवा निश्यपि केचन " वाराः पूर्वोक्ता एव ॥ एतच्च सकृदेव कार्यमिति विज्ञानेश्वरः—' सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता ' इति देवलोक्तेः ॥ सकृत्प्रतिगर्भं वा कार्यमिति हेमाद्रिः ॥ " सकृच्च कृतसंस्कारः सीमन्तेन द्विजास्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् " इति हारीतोक्तेः ॥ " सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥ केचिद्गर्भस्य संस्कारात्प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते" इति हेमाद्रौ विष्णुवचनाच्च ॥ स एव--" स्त्री यद्यकृतसीमन्ता प्रसवेत्तु कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवत्पुनः संस्कारमर्हति ॥ " सीमन्तान्नभोजने प्रायश्चित्तनिर्णयः । सीमन्ते भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं पराशरमाधवीये धौम्येन--" ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा । जातकर्मनवश्राद्धे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥" ऋग्विधाने तु--" अराइवे-जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः । सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्बिषात्तदा"इति॥ अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः । अथ गर्भिणीतत्पतिधर्माः ॥ वराहः—'सामिषमशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेदतःप्रभृति । ' गृह्यकारिकायाम्—" अङ्गारभस्मास्थिक-

---

पक्षभी श्रेष्ट है नारदने लिखा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सीमन्त दिनमें करै और वैश्य और शूद्रका दिनमें और रात्रिमें भी करना चाहिये इसमें पूर्वोक्त दिन लेने चाहिये ॥ सीमंत एकबारही करना चाहिये यह विज्ञानेश्वरका कथन है. कारण कि देवलने कहा है कि, एकवार संस्कार की हुई स्त्री सब गर्भोंमें संस्कृत होती है हेमाद्रिका तो यह कथन है कि, एकवार वा प्रतिगर्भमें सीमंत करै, कारण. कि, हारीतने कहा है कि, सीमंतसे एक वार संस्कृत की हुई ब्राह्मणकी स्त्री जिस २ गर्भको उत्पन्न करती है वह सब संस्कृत होते हैं, और हेमाद्रिमें विष्णुने कहा है कि कोई सीमन्तोन्नयन कर्मको स्त्रीका संस्कार नहीं मानते किन्तु गर्भका संस्कार होनेसे प्रतिगर्भ करते हैं विष्णुकाभी यही कथन है कि यदि सीमंतके किये विना जो स्त्रीको. प्रसव हो जाय तो पुत्र होनेपर विधिसे फिर संस्कार करनेके योग्य होती है ॥ सीमन्तके भोजनमें माधवीयमें धौम्यने यह प्रायश्चित्त लिखाहै कि, ब्रह्मौदन (यज्ञोपवीतसे पहिले कर्म) सोमसीमन्तोन्नयनमें भोजन करके चान्द्रायण करना चाहिये, ऋग्विधानमें यह कहाहै कि, जो मनुष्य सीमंतमें यदि भोजन करे तो (अराइव) इस मन्त्रका सौवार जप करै तब पापसे मुक्त होताहै, इसमें सन्देह नहीं ॥ अब गार्भिणी और उसके पतिके धर्मोंको लिखते हैं वराहपुराणमें लिखा है कि, गर्भधारणसे (प्रारम्भसे) लेकर स्त्री मांससहित भोजन न करै. गृह्यकारिकामें भी कहा है गर्भवती स्त्री अंगार भस्म हड्डी कपाल चूल्हा छाज

---

१ अराइवेद चरमा अहेव प्रप्रजायन्ते अकवामहोभिः । पृश्नेः पुत्र उपमासोरभिष्ठाः स्वया-मत्यामरुतः संमिमिक्षुः ॥ ऋ० ४ । ३ । २३ ॥

पालतुल्लीशूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी । सोलूखलाढये दृषदादिके वा यन्त्रे तुषाढचे न तथोपविष्टा ॥ नो मार्जनीगोमयपिण्डकादौ कुर्यान्न वारिण्यवगाहनं सा । अङ्गारभूत्या न नखैर्लिखेत्क्ष्मां कलिं वपुर्भङ्गमथो न कुर्यात् ॥ नो मुक्तकेशी विवशाथ वा स्याद्भुंक्ते न संध्यावसरे न शेते । नामङ्गलं वाचमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतले न यायात् ॥ ३ ॥ " विष्णुधर्मोत्तरे–" कटुतीक्ष्णकषायाणि अत्युष्णलवणानि च । आयासं च व्यवायं च गर्भिणी वर्जयेत्सदा ॥ " हेमाद्रौ कौण्डिन्यः–"मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः । न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ॥ " मिताक्षरायाम् " उदन्वतोम्भसि स्नानं नखकेशादिकर्त्तनम् । अन्तर्वत्न्याः पतिः कुर्वन्नप्रजा जायते ध्रुवम् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये गारुडे–'गयायां पिण्डदानस्य न कदाचिन्निराक्रिया ॥ ' अत्र काले दाप्रत्ययस्मृतेर्निषिद्धकालस्यैवापवादो न तु जीवत्पितृकगर्भिणीपत्याशौचादिनिमित्तस्य अग्निहोत्रे यावज्जीवत्कालपरत्वाभावात् ॥ अन्यथाशौचेपि गयायात्राश्राद्धं च स्यात् । यत्र तु निमित्तसंयोगस्यापवादो यथाशौचेऽग्निहोत्रादेर्यथा वा जीवत्पितृकस्य मातुर्गयान्वष्टकादौ तत्र तदेव भवति नान्यदिति संक्षेपः ॥ प्रयोगपा-

---

ऊखल पत्थर आदि यंत्र तुप आदि बुहारी गोमयके पिंडआदि पर न बैठे, और जलमें जाकर स्नान न करै, अंगारेकी राखसे (कोयले) नखसे पृथ्वीको न कुरेदे, कलह और शरीरभंग अर्थात् अँगडाई न ले, खुले वाल न रक्खै, नंगी न होय, सन्ध्याके समय भोजन न करै, न शयन करै, अमंगल वाक्य न कहै, शून्य घर और वृक्षके नीचे न जाय, विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहै कि, कटु, तीखा, कसैला, अत्यन्त गरम, और लवणका भोजन परिश्रम और मैथुनको गर्भिणीको सदा त्यागना चाहिये, हेमाद्रिमें कौडिन्यने कहाहै कि, मुंडन पिंडदान और सम्पूर्ण प्रेतकर्मको जीवत्पितृक और गर्भिणीके पति त्यागदें ॥ मिताक्षरामें कहाहै कि, गर्भिणीके पतिको समुद्रके जलमें स्नान, और नख और केशोंके कटवानेसे तो निश्चय प्रजाहीनता होतीहै, पृथ्वीचन्द्रोदयमें गरुडपुराणका वाक्य है कि. गयामें पिंडदानका किसी प्रकार निषेध नहीं है, इस वाक्यमें कालमें दाप्रत्यय की है, इससे निषिद्ध कालका अपवाद (निषेध) है, कुछ जीवत्पितृक और गर्भिणी पतिके अशौच आदि निमित्तका नहीं है. कारण कि, यह वाक्य अग्निहोत्रमें जीवनपर्यन्तके तुल्यसमयका बोधक नहीं है, अन्यथा अशौचनिमित्तमें गयाकी यात्रा और श्राद्धभी न होंगे, और जहां निमित्तके संयोगका अपवाद होता है. जैसे अशौचमें अग्निहोत्र आदिका वर्जना, और जीवत्पितृकको माताकी गया करनेको जाना और अन्वष्टका आदिमें वहां वही होता है और नहीं, यह संक्षेपसे कहा है ॥ प्रयोगपारिजातमें कश्यपने: लिखा है कि, गर्भिणी

रिजाते कश्यपः—" गर्भिणी कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्याधिरोहणम् । व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥ शोकं रक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम् । व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥ २ ॥ " मदनरत्ने स्कान्दे—"हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णविभूषणम् । भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेद्गर्भिणी न हि" ॥ २ ॥ बृहस्पतिः—" चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणी यदा । यात्रा नित्यं विवर्ज्या स्यादाषाढे तु विशेषतः ॥" याज्ञवल्क्यः—" दौर्हृदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् । वैरूप्यं मरणं चापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः ॥" दौर्हृदं गर्भिणीप्रियम् ॥ तत्रैवाश्वलायनः—"वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ श्राद्धं च सप्तमान्मासादूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित् ॥ " श्राद्धं तद्भोजनमिति प्रयोगपारिजातः ॥ कालविधाने मुहूर्तदीपिकायां च—"क्षौरं शवानुगमनं नखकृन्तनं च युद्धादि वास्तुकरणं त्वतिदूरयानम् । उद्वाहमौपनयनं जलधेश्च गाहमायुःक्षयार्थमिति गर्भिणिकापतीनाम् ॥ " रत्नसंग्रहे गालवः—"दहनं वपनं चैव चौलं वै गिरिरोहणम् । नाव आरोहणं चैव वर्जयेद्गर्भिणीपतिः ॥ अव्यक्तगर्भापतिरब्धियानं मृतस्य वाहं क्षुरकर्म सङ्गम् । तस्यां तु यत्नेन गयादितीर्थं यागादिकं वास्तुविधिं

हाथी, अश्व, पर्वत, महल आदिपर चढना और मैथुन और शीघ्र गमनको छोडदे, शोक रक्तविमोक (फस्त) साहस कुक्कुटके तुल्य बैठना परिश्रम और दिनमें सोना और रात्रिमें जागना न चाहिये. मदनरत्नमें स्कंदपुराणका वाक्य है कि, हलदी कुंकुम कूर्पासक (चोली) पान मंगलके श्रेष्ठभूषण केशोंका संस्कार कबरी (मोंढी गूथना) हाथ और कानके गहनोंको भर्ताकी आयुकी इच्छावाली गर्भिणी न त्यागै. बृहस्पतिने कहा है कि, चौथे छठे आठवें महीनेमें और विशेषकर आषाढमें गर्भिणी यात्रा न करै याज्ञवल्क्यने कहा है कि, दौर्हृद (गर्भिणीका प्रिय) न करनेसे गर्भमें दोष विरूप मरण होजाता है तिससे स्त्रीको प्यार रक्खे ॥ वहांही आश्वलायनने कहा है कि, मुंडन मैथुन तीर्थ और सात मासके गर्भसे पीछे श्राद्धको वेदका जाननेवाला गर्भिणीका पति न करै, यहां श्राद्धशब्दसे श्राद्धका भोजन ग्रहण करते हैं यह प्रयोग पारिजातमें लिखा है कालविधान और मुहूर्तदीपिकामें कहा है कि, क्षौर, मृतकके पीछे गमन, नखोंका कतरना, युद्ध आदि, घरका निर्माण करना, अत्यन्त दूर गमन और विवाह तथा यज्ञोपवीत और समुद्रमें स्नान ये गर्भिणीके पतिकी आयुके क्षीण करनेवाले होते हैं, रत्नसंग्रहमें गालवने कहा है कि, दाह मुंडन चौल पर्वतपर चढना नावपर बैठना ये गर्भिणीका पति त्याग दे, और स्थानमें भी लिखा है कि, गर्भप्रतीतिवाली स्त्रीका पति समुद्रमें तरना मृतकवहन तथा और स्त्रीका संग और गयादि तीर्थ और यागआदि वास्तुकी

-न्न कुर्यात् ॥ अव्यक्तगर्भा वनिता भवेन्मासत्रयात्परम् । पण्मासात्परतः सूति-र्नवमेरिष्टवासिनी ॥ ३ ॥ " सूतिकागृहप्रवेशः । अथ सूतिकागृहप्रवेशः ॥ गर्गः--"रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि । पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठास्त्यु-त्तरासु च ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् ॥ " एतच्च संभवे ॥ ' प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत् ' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ तच्च नैर्ऋत्यां कार्यम् । 'वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् ' इति वसिष्ठोक्तेः ॥ विष्णुधर्मे--"दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः । वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्ण-कुम्भैः प्रदीपकैः ॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च " इति ॥ जातकर्म-निर्णयः । अथ जातकर्म । पारिजाते वसिष्ठः--" श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् ' ॥ मनुः--'प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । ' वर्द्धनं छेदनम् । हेमाद्रौ बैजवापः--"जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवा-दतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत् ॥ " पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे ॥ ' अच्छि-न्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि ॥ ' पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते ॥ तदाह तत्रैव । काष्र्णाजिनिः--" प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वाऽनन्तर-मात्मीयान्पितञ्श्राद्धेन तर्पयेत् ॥ " एतच्च रात्रावपि कार्यम्--'पुत्रजन्मनि या-

---

विधि इनको यत्नसे त्याग दे तीन महीने उपरान्त स्त्री प्रगट गर्भवाली होती है और छः महीने उपरान्त सूति (प्रसूति) और नवें महीनेमें सूतिकागृह (नोःवर) निवासिनी होती है ॥ अब सूतिकागृहमें प्रवेशका निर्णय कहते हैं कि रोहिणी मृगशिर स्वाती शतभिषा पुनर्वसु पुष्य हस्त धनिष्टा तीनों उत्तरा अनुराधा चित्रा अश्विनी इन नक्षत्रोंमें सूतिकागृहमें प्रवेश करना चाहिये, यह तो सम्भवमें जानना. कारण कि वसिष्ठने लिखा है कि प्रसवके समयमें शीघ्रही प्रवेश करावे विष्णुधर्ममें लिखा है कि, सूतिका गृहको दश दिनतक अस्त्र वह्नि तिंदुक (तेंदु) आलात (जला काष्ठ) जलसे भरेहुये घडे दीपक मूसल वारि वर्णक (समान) तथा चित्रोंसे सुशोभित रक्खै ॥ अब जातकर्मका निर्णय लिखते हैं पारिजातमें वसिष्ठने लिखा है कि पिता पुत्रके जन्मको सुनकर सचैल स्नान करै, नाल कटने उपरान्त मनुष्यका जातकर्म लिखा है हेमाद्रिमें बैजवापने लिखा है कि जन्म होनेपर विधिपूर्वक जातकर्म करै यदि दैवयोगसे वह समय वीत जाय तो सूतकके उपरान्त करै, पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखा है कि, पुत्र वा कन्याके जन्ममें नाल काटनेसे प्रथम श्राद्ध करना चाहिये, सोई तहां काष्र्णाजिनिने लिखा है कि, पुत्र और कन्याके जन्ममें तथा सूर्य और चन्द्रके ग्रहणमें स्नान करके अपने पितरोंको श्राद्धसे तृप्त करना चाहिये, यह रात्रिमें भी करना कारण कि, पुत्रजन्ममें तथा प्रयागकी यात्रामें

-त्रायां शर्वर्यां दत्तमक्षयम्' इति तत्रैव व्यासोक्तेः ॥ वैजवापः-"जातमात्रकुमा-रस्य जातकर्म विधीयते । स्तनप्राशनतः पूर्वं नाभिकर्तनतोपि वा ॥" एतेन नैमित्तिकमपीदं जातेष्टिवदाशौचान्ते कार्यमिति शंका परास्ता ॥ 'जाते कुमारे पितॄणामामोदात्पुण्यं तदहः ' इति हारीतोक्तेश्च ॥ अत्र श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यमित्युक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये आदित्यपुराणे ॥ 'जातश्राद्धे तु पक्वान्नं न दद्या-द्ब्राह्मणेष्वपि' इति ॥. हेमाद्रिस्तु-"पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान् । न पक्केन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्" इति संवर्तोक्तेर्हेम्नैवेत्याह ॥ एतच्च जननाशौचे मरणाशौचे च कार्यमित्याह मिताक्षरायां प्रजापतिः-" आशौच तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥" केचित्तु-"मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि । " इति स्मृतिसंग्रहोक्तेराशौचान्ते कार्यमित्याहुः ॥ स्मृत्य-र्थसारेपि विकल्प उक्तः-" मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेषु च । गुरौ शुक्रेथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥ " :मृद्वादिलक्षणमाह श्रीधरः-"रोहिण्युत्तरभं स्थिरं गिरिशमूलेन्द्रोरगा दारुणं क्षिप्रं त्वाश्विदिनेशपुष्यमनकेन्द्राग्नी तु साधा-

---

-रात्रिके दान करनेका अक्षय फल होता है. यही वहां व्यासने लिखा है कि वैजवापका तो यह कथन है कि जन्मके समयही स्तनपान तथा नाळ छेदनसे भी पूर्व पुत्रका जातकर्म करना चाहिये, इससे नैमित्तिक भी यह कर्म जातेष्टिके तुल्य अशौचके अन्तमें करना चाहिये, यह शंका परास्त हुई, और हारीतनेभी लिखा है कि पुत्रके जन्ममें पितरोंको प्रसन्नता होती है इससे वह जन्मका दिन महापवित्र है ॥ यहां श्राद्ध आमान्न वा सुवर्णसे करना चाहिये, यह पृथ्वीचन्द्रोदयमें आदित्यपुराणके वाक्यसे लिखा है कि, जातकश्राद्धमें ब्राह्मणोंको पकान्न न देना चाहिये, हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, कल्याणोंकी कामनावाले पुरुषको पुत्रजन्ममें सुवर्ण-सेही श्राद्ध करना चाहिये, पक्व वा आमान्नसे न करना इस सम्वर्तके कथनसे सुवर्णसे ही श्राद्ध करना चाहिये, यह जन्म वा मरणके अशौचमेंभी करना यह मिताक्षरामें प्रजापतिने लिखा है कि यदि किसी अशौचके होनेपर पुत्रका जन्म होजाय तो कर्ताकी शुद्धि तो उस समयमें होजाती है और जन्माशौच तो मरणाशौचके संगमें दूर हो जाता है ॥ किन्हींका यह कथन है कि मरणा-शौचमें पुत्रजन्म होजाय तो अशौचके उपरान्त विधिसे जातकर्म करै, इस स्मृतिसंग्रहके वाक्यसे अशौचके उपरान्तमें करना, स्मृत्यर्थसारमें भी विकल्प लिखा है, मृदुध्रुवचरक्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र और इनके उदयमें और गुरु शुक्र केन्द्रमें हों ऐसे लग्नमें जातकर्म और नामकर्म करै, मृदु आदिका लक्षण श्रीधरने लिखा है कि, रोहिणी, तीनों उत्तरा स्थिर हैं, आर्द्रा मूल ज्येष्ठा आश्लेषा ये दारुण हैं, अश्विनी हस्त पुष्य ये क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र हैं, कृत्तिका ज्येष्ठा विशाखा

रणम् । उग्रं पूर्वमघान्तकं मृदुगति त्वाष्ट्रान्त्यमैत्रं चरं विष्णुस्वातिशतोडुव-स्वादितयः कुर्युः स्वसंज्ञाफलम् ॥ " अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादावुक्त-कालातिक्रमे नक्षत्रादिकं ज्ञेयम् । "" देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगे ज्येन्दुसिते तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ " इति मदनरत्ने नारदोक्तेः ॥ बृहस्पतिरपि-"मुख्यालाभे विधिज्ञेन विधिश्चिन्त्योऽप्रमादतः । नक्षत्रतिथिलग्नानां विचार्यैवं पुनः पुनः ॥" सूतके सन्ध्यादौ विशेषं वक्ष्यामः ॥ अथ जन्मनि दुष्टकालाः । तत्र गण्डान्तः । ज्योतिर्निबन्धे नारदः--"पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः संधिनाडीद्वयं तथा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्धं मृतिप्रदम् ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशभसंधयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥ ॥ ३ ॥ " रत्नमालायाम्--"पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् । स्याद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥ " रत्नसंग्रहे नवनीतारिष्टे--सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते । वर्जयेद्दर्शनं श्रावं तत्र षाण्मासिकं भवेत् ॥ तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु संधौ तनयस्य

साधारण संज्ञक हैं, तीनों पूर्वा भरणी उग्रसंज्ञक हैं और अपनी २ संज्ञाके अनुसार यह सब फल देते हैं, यहां सब स्थान जातकर्म और नामकर्म आदिमें समयका व्यतिक्रम होजाय तो नक्षत्रआदि जानने कारण कि, मदनरत्नमें नारदने यह कहा है कि, देश और कालके उपद्रवसे यदि समय वितिजाय तो वह उत्तरायणमें उस समय करना चाहिये कि, जिस समय बृहस्पति शुक्र चन्द्रमाका अस्त न होय. बृहस्पतिने कहा है कि प्रमादसे मुख्यसमय न मिले तो विधिज्ञाता नक्षत्रतिथि लग्नकी विधिको वारम्वार इस प्रकार विचार कर देखे सूतक होय तो संध्याआदिमें विशेष लिखेंगे ॥ अब जन्ममें दुष्टसमय लिखते हैं उनमें गंडांत ज्योतिर्निबंधके वाक्यसे लिखा है पूर्णा और नन्दा दो तिथियोंकी दो घडी गंडांत कहाती हैं वह जन्म यात्रा विवाह आदिमें मृत्युकी देनेवाली है कर्क सिंह वृश्चिक धन मेषके मध्यकी घडी आधी गंडांत कहाती हैं, वहभी मृत्यु देनेवाली है आश्लेषा ज्येष्ठा रेवतीके अन्तकी सोलह घडी और इनसे अगले नक्षत्रोंका प्रथमपाद गंडांत संज्ञक है, रत्नमालामें कहा है कि, रेवती अश्विनी आश्लेषा मघा ज्येष्ठा और मूलके बीचकी चार घडी गण्डान्त कहाती है वह यात्रा जन्म विवाह अनिष्ट हैं और रत्नसंग्रहमें नवनीतारिष्टमें कहा है कि गंडांतमें उत्पन्न हुए सब बालकोंका त्याग लिखा है, अथवा छः महीनेतक उसका देखना और सुनना त्याग दे । तिथि और नक्षत्रके गंडांतमें पिता और माताकी मृत्यु होती है, लग्नकी संधिमें पुत्रकी मृत्यु होती है

नाशः ॥ सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून्जीवन्पुनः स्याद्गजवाजिनाश्च ॥" तत्र दाननिर्णयः। अथैषां दानमुत्तरगार्ग्ये-"तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते। काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते। अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात्पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च। कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजां बुधः ॥ २ ॥" आश्लेषाफलनिर्णयः। अथाश्लेषाफलम् ॥ " मूर्द्धास्यनेत्रगलकांसयुगं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागः। बाणद्विनेत्रहुतभुक्छ्रुतिनागरुद्रषण्णन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः ॥ राज्यं पितृभ्यो मातृनाशः कामक्रियारतिः। पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात् ॥२॥" ज्येष्ठाफलनिर्णयः। अथ ज्येष्ठाफल ब्रह्मयामले-"ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता। तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके ॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत्। सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे ॥ नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके ॥ ३ ॥" इति ॥ मूलफलनिर्णयः। अथ मूलफलम् ॥ मल्लाटः-"अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम्। समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ तदाद्यपादके पिता द्वितीयके जनन्यथा ॥ धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थकः शुभावहः ॥ प्रतीपम-

---

सब गंडांतोंमें उत्पन्न हुआ बालक नहीं जीता और बन्धुओंको नष्ट करता है और जीवित रहै तो बहुतसे हाथी और घोडोंसे युक्त होता है अब इनका दान कथन करते हैं, उत्तरगार्ग्यमें कहा है कि, तिथि, नक्षत्र, लग्नके गण्डांतमें क्रमसे बैल गौ सुवर्ण देय तो गण्डांतका दोष नष्ट होता है, उत्तरामें तिलपात्र पुष्य नक्षत्रमें गोदान चित्रामें बकरीका दान, पूर्वाषाढामें सुवर्णका दान करै, उत्तरा तिष्य चित्रा पूर्वाषाढामें उत्पन्न हुए बालकके नक्षत्रका आकार बनाकर मनुष्यको प्रयत्नसे शान्ति करानी चाहिये ॥ अब आश्लेषाका फल लिखते हैं, माथा, मुँह, नेत्र, गर्दन, दोनों स्कन्ध, दोनों भुजा, हृदय, जानु, लिंग, चरण यह आश्लेषाके देहका भाग है इसकी मस्तकके क्रमसे ये घडी हैं पांच ५ सात ७ दो २ तीन ३ चार ४ आठ ८ रुद्र ११ छः ६ नव ९ पांच ५ इनका क्रमसे यह फल है कि, राज्य, पितृनाश, माताका नाश, यथेच्छ कर्ममें प्रीति होनी, पिताकी भक्ति, बलवान्, बालकका मरण, त्यागी, भोगी, धनवान् ज्येष्ठाका फल ब्रह्मयामलमें लिखा है कि, ज्येष्ठाकी आदिमें माताकी माता, दूसरेमें माताका पिता, तीसरेमें माताका भ्राता, चौथेमें माता, पांचवेंमें अपनी आत्मा, छठेमें गोत्र, सातवेंमें दोनों वंश, आठवेंमें बडा भाई, नवेंमें श्वशुर, और दशवें अंशमें सबको अरिष्ट करता है ॥ अब मूलका फल लिखते हैं मल्लाटने कहा है कि, अभुक्त मूलमें उत्पन्न हुए बालकको त्याग देना, अथवा उसके पिताको आठ वर्षतक उसका मुख न देखना चाहिये, मूलके पहिले चरणमें पिता, दूसरेमें माताकी मृत्यु होती है, तीसरेमें धननाश, चौथे चरणमें शुभ है, इससे

२४

न्त्यपादतः फलं तदेव सार्पभे ॥ २ ॥ " अभुक्तमूलं त्वाह वृद्धवसिष्ठः–"ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं शिशुं त्यजेत् ॥ " केचिज्ज्येष्ठान्त्यमूलाद्यं च पादमभुक्तमूलमाहुः ॥ कश्यपसंहितायां त्वन्यथोक्तं–"मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः । मातरं स्वं तृतीयोऽर्थान्सुहृदं तत्तुरीयजः ॥ फलं तदेव सार्पर्क्षे प्रतीपं त्वन्त्यपादतः ॥ " मूलवृक्षनिर्णयः । अथ मूलवृक्षः ॥ जयार्णवे–"मूलं स्तंभं त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । वेदाश्च मुनयश्चैव दिशश्च वसवस्तथा ॥ नन्दा वाणा रसा रुद्रा मूलभेदः प्रकीर्तितः । मूले मूलविनाशाय स्तम्भे हानिर्धनक्षयः ॥ त्वचि भ्रातृविनाशाय शाखा मातृविनाशकृत् । पत्रे सपरिवारः स्यात्पुष्पेषु नृपवल्लभः ॥ फलेषु लभते राज्यं शिखायामल्पजीवितम् ॥ ४ ॥ " अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्–"मूले सप्तघटीषु मूलहननं स्तम्भेष्टसु स्वक्षयं त्वग्दिग्बंधविनाशनं च विटपे रुद्रैर्हतो मातुलः । पत्रैर्कैः सुकृती तु वाणकुसुमे मन्त्री फले सागरे राजा वह्निशिखाल्पमायुरिति सन्मूलांघ्रिपे स्यात्फलम् ॥ " भूपालवल्लभः–" वृषालिसिंहेघु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये । पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति ॥

विपरीत आश्लेषाके अन्य चरणसे होता है, अभुक्त मूलको वृद्ध वसिष्टने लिखा है कि, ज्येष्ठाके अन्यकी एक घडी, और मूलके आदिकी दो घडीको अभुक्त मूल कहा है उसमें उत्पन्न हुए बालकको त्याग दे, कोई तो ज्येष्ठाका अन्त्य और मूलके आदिके चरणको अभुक्तमूल लिखते हैं कश्यपसंहितामें तो अन्यथा लिखा है कि मूलके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुआ बालक पिताको दूसरेमें माताको तीसरेमें धन और मित्रोंको नष्ट करता है इससे विपरीत फल अन्त्यके पादसे आश्लेषामें जानना चाहिये ॥ अब मूलवृक्ष कथन करते हैं जयार्णवमें कहा है कि जब स्तम्भ त्वचा शाखा पत्र पुष्प शिखाकी क्रमसे चार सात दश आठ नव पाँच छः ग्यारह घडी होती हैं यह मूलका भेद लिखा है मूलमें मूलका नाश, स्तम्भमें हानि और धनका क्षय, त्वचामें भाईका नाश, शाखामें माताका नाश होता है, पत्रोंमें कुटुम्ब मरता है, पुष्पोंमें राजाका प्रिय, फलमें राज्यका लाभ, शिखामें अल्पजीवन होता है, अन्यत्र तो अन्यथा लिखा है कि, मूलकी सात घडियोंमें मूलका नाश, स्तम्भकी आठ घडीमें सुखका क्षय, त्वंचाकी दश घडीमें बन्धुओंका नाश, शाखाकी ग्यारह घडीमें माताका नाश, पत्रोंकी द्वादश घडीमें पुण्यशाल पुष्पोंकी पांच घडीमें मन्त्री फलकी सात घडीमें राजा, शिखाकी तीन घडीमें अल्पायु होता है, यह मूलवृक्षका फल होता है ॥ भूपालवल्लभने कहा है कि, वृष वृश्चिक सिंह कुम्भमें मूल स्वर्गमें होते हैं, मिथुन तुला कन्या मीनलग्नमें पातालमें मेष धनं कर्क मकरमें पृथ्वीमें रहते हैं यह मुनिजनोंने

स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले चेद्धनागमः । मर्त्यलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥ " वसिष्ठः–"नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वशुरं निहन्ति । तदन्त्यपादे जनितो निहन्ति तस्योत्क्रमेणाहिभवे कलत्रम् ॥ सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम् । पुरन्दरर्क्षे जनितः सुतस्तथा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिका यदि ॥ २ ॥ " प्रयोगपारिजाते–" मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा च तदङ्गनाम् । माहेन्द्रजाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदेवजा ॥" नृसिंहप्रसादे–" धवाग्रजं हन्ति सुरेन्द्रजाता तथैव पत्न्या भगिनीं पुमांश्च ॥ द्विदैवजा देवरमाशु हन्याद्भार्यानुजामाशु निहन्ति सूनुः ॥ पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं वा शालकं वा द्विदैवजः ॥ कन्यका देवरं हन्ति विशाखान्त्यसमुद्भवा । आद्यपादत्रये नैव आद्यभे तु पुमान्भवेत् ॥ न हन्याद्देवरं कन्या तुलामिश्रा द्विदैवजा । तदृक्षान्तोद्भवा वर्ज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छवत् ॥ चित्राद्यर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये । जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते मातापित्रोर्भ्रातरं बालनाशम् ॥ द्विमासं चोत्तरा-

---

कहा है मूल स्वर्गमें होय तो राज्य, पातालमें होय तो धनकी प्राप्ति, और जब मूल मृत्युलोकमें हो तब शून्य अर्थात् सर्वनाशक कहाते हैं ॥ वसिष्ठने कहा है कि, मूलनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुत्र वा कन्या शीघ्र श्वशुरको नष्ट करती है और उसके अन्त्य पादमें उत्पन्न हुआ सासको नष्ट करता है, आश्लेषामें यह फल विपरीत जानना चाहिये, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है ज्येष्ठामें उत्पन्न हुआ पुत्र अपने जेठे भाईको हतता है जो जेठी पुत्री होय तो नहीं अर्थात् बडे भाईको भारी नहीं होती ॥ प्रयोगपारिजातमें कहा है कि, मूलमें उत्पन्न कन्या श्वशुरको, आश्लेषामें उत्पन्न सासको, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई ज्येष्ठको, विशाखामें उत्पन्न देवरको नष्ट करती है, नृसिंहप्रसादमें कहा है कि, ज्येष्ठामें उत्पन्न हुई कन्या ज्येष्ठको और इसी प्रकार मौसी और मामाको विशाखामें उत्पन्न हुई देवरको नष्ट करती है, और पुत्र तो शीघ्र भार्याकी लघुभगिनीको नष्ट करता है, ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न पुत्र पत्नीकी बडी बहिन वा बडे भाईको नष्ट करता है, विशाखामें उत्पन्न हुआ भार्याकी छोटी भगिनी वा शालेको नष्ट करता है, विशाखाके अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट करती है, पहले तीन चरणोंमें दोष नहीं यदि प्रथम तीन चरणमें उत्पन्न हुआ बालक हो तुला राशिसे मिले तो, विशाखामें उत्पन्न हुई कन्या देवरको नष्ट नहीं करती और उस नक्षत्रके अन्त्यमें उत्पन्न हुई कन्या बिच्छूके डंककी समान त्यागने योग्य है, चित्राके प्रथमका आधा भाग, पुष्यके मध्यम दो पाद, पूर्वाषाढाके तीसरे चरणमें, वा उत्तरार्द्धमें उत्पन्न हुआ पुत्र माता पिता भाई बालक क्रमसे इनको अरिष्ट करता है, उत्तराका दोष दो

दोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः । पूर्वाषाढाष्टमे मासि चित्रा षाण्मासिकं फलम् ॥ नवमासं तथाश्लेषा मूले चाष्टकवर्षकम् । ज्येष्ठा पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिता ॥ ७ ॥" वसिष्ठः—"व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत् । वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् । विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि ॥ पर्वण्यपि प्रसूतौ च सर्वारिष्टभयप्रदाः । तद्वत्सदन्तजातश्च पादजातस्तथैव च ॥ विपरीतप्रसूतौ तु नाभिनालेन वेष्टितः । राष्ट्रस्य नृपतेश्चैव स्वस्यापि च विनाशकः ॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम् ॥ ९ ॥" गर्गः—"कृष्णां चतुर्दशीं षोढा कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये हन्ति मातरम् ॥ चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् । षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥ " अथ पित्रोर्नक्षत्रे जन्मदोषः । तत्र देवकीर्तिः—"यद्येकस्मिन् धिष्ण्ये जायन्ते दुहितरोऽथवा पुत्राः । पितुरन्तकरा ह्येते यद्यपरे प्रीतिरतुला स्यात् ॥ " गर्गः—"एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः । प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितम् ॥ " शौनकः—"ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते । व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ इत्थं संजायते यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ " शान्तिस्तु—"तद्दक्षाधिपते रूपं

महीनेतक, पूर्वाषाढाका आठ महीनेतक, चित्राका छः महीनेतक आश्लेषाका, नौ ९ महीनेतक, मूलका आठ वर्षतक, ज्येष्ठाके उत्पन्न हुए पुत्रका दश महीनेतक दर्शन न करै ॥ वसिष्ठने कहा है कि, व्यतिपातमें अंगकी हानि, और परिघमें मृत्यु होती है, वैधृतिमें पिताकी हानि, और नष्ट चन्द्रमामें अन्धता प्राप्त होती है, मूलमें समूल नाश, धृतिमें वंशक्षय, विकृत अंग वा हीन अंग, बालकका जन्म दोनों सन्ध्याओंमें और पर्वमें हो तो सम्पूर्ण आरिष्ट और भयको प्राप्त होता है उसी प्रकार दन्तसहित उत्पन्न और पैरोंसे उत्पन्न हुआ बालकभी अशुभ है तिससे क्रूरग्रहोंकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥ गर्गने कहा है कि, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके छः भाग करने प्रथम शुभ है दूसरेमें पिताको तीसरेमें माता चौथेमें मामा पांचवेंमें कुल छठेमें धन और अपने कुलको नष्ट करता है इस कारण प्रयत्नसे विधियुक्त शान्ति करनी ॥ देवकीर्तिने कहा है कि यदि एकही नक्षत्रमें कन्या वा पुत्र उत्पन्न होय तो दोनों पिताके अन्त करनेवाले होते हैं । और भिन्न नक्षत्रमें महाप्रीति होती है गर्गने लिखा है कि एकही नक्षत्रमें दो भ्राता वा पितापुत्रका जन्म होय तो निश्चयही एककी मृत्यु होती है. शौनकने कहा है कि यदि चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें जन्म होय तो स्त्रियोंको ऋतु होनेसे प्रथम रोगकी पीडा होती है इस प्रकार जिसके हो उसकी निःसंदेह मृत्यु होती है ॥ शान्ति तो यह है कि, उस

सुवर्णेन प्रकल्पयेत् । सूर्यग्रहे सूर्यरूपं हैमं चन्द्रं तु राजतम् ॥ राहुरूपं प्रकुर्वीत् नागेनैव विचक्षणः । (नागः–सीसं) त्रयाणां चैव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥ २ ॥ " आकृष्णेनाप्ययस्वस्वर्भानोः इति पूजामन्त्राः ॥ नक्षत्रदेवतायास्तन्मन्त्रेण । " संपूज्य तु यजेत्सूर्यं समिद्भिश्चार्कसम्भवैः । चन्द्रग्रहे च पालाशैर्दूर्वाभी राहुमेव च ॥ समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य भेशाय जुहुयाद्बुधः । आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः । पंचगव्यैः पंचरत्नैः पंचत्वक्पञ्चपल्लवैः । जलैरौषधिकल्कैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥ मन्त्रैर्वारुणसंभूतैरापोहिष्ठादिभिस्त्रिभिः । इमं मे गङ्गे पुरतस्तत्त्वायामीति मन्त्रकैः ॥ यजमानस्ततो दद्याद्भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ॥ ४ ॥ " अकालप्रसवादिफलम् । मात्स्ये–"अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवकास्तथा ॥ अमानुषा अमुण्डाश्च अजातव्यजनास्तथा । हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः । विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ।

नक्षत्रके स्वामीकी सोनेकी प्रतिमा बनावे, सूर्यके ग्रहणमें सूर्यकी सोनेकी, और चन्द्रग्रहणमें चंद्रमाकी चांदीकी मूर्ति निर्माण करावे और राहुका रूप नाग (सीसे) का निर्माण करै, तीनों रूपोंको वहां स्थापन करै, उनकी पूजाके मंत्र आकृष्णेन, आप्यायस्व, स्वर्भानो लिखे हैं नक्षत्रदेवताकी पूजा उसके ही मन्त्रसे करनी चाहिये, और पूजा करके आककी समिधोंसे सूर्यकी पूजा और चन्द्रग्रहणमें ढाकसे चन्द्रमाकी पूजा और दूर्वासे राहुकी पूजा करनी चाहिये और पीपलकी समिधोंसे नक्षत्रके स्वामीके निमित्त बुद्धिमान् मनुष्यको होम करना चाहिये फिर घी चरु तिलोंसे हवन करै फिर पञ्चगव्य पञ्चरत्न पञ्चत्वचा पञ्चपल्लव और औषधियोंके गुदोंके जलसे अभिषेक करै वह अभिषेक वरुणके मंत्र और आपोहिष्ठा-आदि तीन मंत्र इमं मे गंगे तत्त्वायामि इन मंत्रोंसे करना चाहिये फिर यजमान भक्तिसे तीनों मूर्तियोंका दान करै ॥ मत्स्यपुराणमें लिखा है कि जिनके असमय प्रसव हुआ है वा समय उपरांत हुआ है जिनके विकारयुक्त प्रसव हुआ है जिनके अमानुष विना शिर वा अप्रकट अंगवाला प्रसव हुआ है वा अंगहीन अधिकअंग प्रसव हुआ है वा जिसके पशुपक्षी सर्प हुआ है उस देश

१ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ यजु० ३३ । ४३ ॥ २ आप्यायस्वसमेतु ते विश्वतः सोमवृष्ण्यम् । भवावाजस्यसंगथे ॥ ऋ०.१ । ६ । १२ ॥ ३ स्वर्भानो रधयदिन्द्रमायाअवो दिवोवर्तमाना अवाहन् । गूहळं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः ॥ ऋ०४।२।१३॥ ४ तत्वायामि ब्रह्मणावन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः । अहेळमानो वरुणेहबोध्युरुशंसमान आयुः प्रमोषीः ॥ ऋ० १ । २ । १९ ॥

निर्वासयेतां नगराततः शान्तिं समाचरेत् ॥ ४ ॥ " उपरिदन्तजनने निर्णयः । पाद्मे-" उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा । यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम् ॥ मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च । गज- पृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्थापयेद्द्विज ॥ तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने वा वरासने । सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्ततः ॥ पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव । स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम् । भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिर्मूलैः फलैस्तथा ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च । स्नापयेत्पूजयेच्चात्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ पर्व- तांश्च तथाख्यातान्देवदेवं च केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद्व्रतमग्नौ यथाविधि ॥ ब्राह्मणानां तु दातव्या ततः संपूज्य दक्षिणा ॥ अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देयात्र दक्षिणा । काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं वा धनमेव च ॥ दन्तानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः ॥ दन्ता यस्य च जायन्ते माता वा म्रियते पिता । बालको म्रियते तत्र स्वयमेव न संशयः । दधिक्षौद्रं घृताक्तानामश्वत्थसमिधां तथा ॥ जुहुयादष्टोत्तरशतं समन्त्रेण तु मन्त्रवित् । धेनुं च दक्षिणां दद्यात्ततः सम्पद्यते सुखम् " ॥ ज्योतिर्निबन्धे तु अष्टमे शुभमित्युक्तम् । अष्टमादिषु

और वंशका नाश करना उस स्त्रीको नगरसे निकालदेना और फिर उसकी शांति करनी चाहिये ॥ अब ऊपरके दांतोंके निकलनेकी शांति लिखते हैं पाद्ममें कहा है कि, जिस बालकके ऊपरके दांत पहले निकलें वा हे भार्गव श्रेष्ठ ! जो दांतोंसहित जन्मे, दूसरे तीसरे चौथे पांचवें महीने जब दांत उत्पन्न होयँ तो महान् भय होता है, और बालक माता वा पिताको वा अपेको नष्ट करता है, धर्मज्ञ बालकको हाथीकी पीठ वा नावपर चढावे यदि वह न होय तो सुवर्णके वा श्रेष्ठ आसनपर बैठाकर सम्पूर्ण औषधि संपूर्ण गन्ध बीज फूल फल पञ्चगव्य सम्पूर्ण रत्न मृत्तिकासे स्नान करावे तिससे पीछे स्थालीपाकसे ब्रह्माका पूजन करै तथा सात दिनतक ब्राह्मणोंका भोजन करावै फिर आठवें दिन बालकको श्रेष्ठ आसनपर बैठाय मृत्तिका मूल फल सब औषधी, सब गन्ध, सब बीजसे स्नान तथा पूजन करै, फिर अग्नि सोम पवन प्रसिद्ध पर्वत तथा देवोंके देव विष्णुके निमित्त विधिसे अग्निमें हवन करै, फिर भली प्रकार पूजा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे, तथा सुवर्ण चांदी गौ पृथ्वी धनको दे, यदि बालकके दांत आठवें वा छठे महीनेमें निकलें तो माता पिताकी मृत्यु और स्वयं बालक मरे इसमें संदेह नहीं- इसमें दधि दूध सहतसे सींचीहुई पीपल वा ढाककी लकडियोंसे मंत्रका ज्ञाता मंत्रसहित एक सौ आठ आहुति दे फिर गौ और दक्षिणा देनी चाहिये, तिससे सुखकी प्राप्ति होती होतीहै, ज्योतिर्निबंधमें तो आठवां महीना शुभ लिखाहै अथवा

तूत्थानं शुभावहमित्यतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा वा नवमासादिग्रहणम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मयामले-"प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद्भवेत्। क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता मनीषिभिः॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा। दध्योदनेन संपूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम्। सालंकारं सवस्त्रं च शिशुमालिङ्ग्य सादरम्॥" तत्र मन्त्रः- "रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम्। गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव सर्वदा॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम्। मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरञ्जीव मया सह॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोपि न जायते॥ २॥" त्रिकशांतिः। अथ त्रिकशान्तिः शान्तिसर्वस्वे-"सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि। मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत्॥ ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत्। तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने। आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम्॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः। पूजयेद्धान्यराशिस्थाः कलशोपरि शक्तितः॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया। रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः॥

अष्टम है आदिमे जिनके ऐसे मासोंमें दांत निकलना उत्तम है, यहां (अष्टम आदौ येषु) इस अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि (जिस बहुव्रीहिमें कथन किये हुये पदार्थोंका संविज्ञान ग्रहण न हो) से नौ आदि महिनेका ग्रहण है ॥ ब्रह्मयामलमें तो यह लिखाहै कि, यदि बालकके पहले ऊपरके दांत निकलें तो मामाको क्लेश होताहै, वहां महर्षियोंने शांति लिखीहै कि, सोना, चांदी, कांसा वा तांबेके पात्रको घीसे पूर्ण करके मन्त्रसहित बालकके हाथमें दे, फिर मामा वस्त्र आभूषणोंके सहित बालकको आदरसे शरीरसे लगाकर देखै, वहां यह मंत्र है कि, हे भगिनीके पुत्र ! मेरी तथा मेरे सम्पूर्ण कुलकी तू रक्षा करना, और इस अन्नसहित भोजनपात्रको लेकर सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहना, और मुझे तथा अपनी माताको निर्विघ्न और कल्याणकी प्राप्ति कर, और मुझमें अपना अधिष्ठान(स्थिति)करके मेरे साथ चिरकालतक जीवो, इस प्रकार विधान करनेसे किसी प्रकारका भी विघ्न नहीं होता है ॥ अब तीन पुत्रोंके ऊपर कन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र होय तो उसकी शांति शान्तिसर्वस्वमें लिखतेहैं कि,यदि तीन पुत्रोंके पीछे कन्या वा तीन कन्याओंके ऊपर पुत्र होय तो माता,पिताके वंशको बहाअनिष्ट तथा जेठे पुत्रका नाश, धनकी हानि, महान् दुःख करताहै इसमें अपनी शक्तिके अनुसार शान्ति करनी कि, जन्मसे ग्यारहवें बारहवें शुभदिनोंमें आचार्य, और ऋत्विजोंका वरण करके ग्रहोंका पूजन करै, फिर धान्यकी राशियोंपर कलशके ऊपर स्थापित कीहुई ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्रकी सुवर्णकी प्रतिमाओंका पूजन करै, कि, पांचवें कलशपर स्थित हुए महादेवका ग्यारह रुद्रसूक्तोंसे तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका चार शान्तिके सूक्तोंसे पूजन करै

द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः । आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्य-तिलांश्चरुम् ॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा त्रिशतं तु वा । देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रा-दिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ॥ ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्र भयामहे । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाचार्यं प्रपूजयेत् । हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् । प्रतिमां गुरवे दत्त्वा टपस्कारसमन्वितः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् । एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं प्रलीयते ॥ ११ ॥ " इति ॥ अन्येषु मूलाद्यृक्षेषु शान्त्यादि प्रयोगपारिजाते मत्कृते शान्तिरत्ने च ज्ञेयम् ॥ मिताक्षरायां मार्कण्डेयः–" रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः । रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः ॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः । रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके ॥ २ ॥ " व्यासः–" सूति-कावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥ २ ॥ " अपरार्के ब्राह्मे–" कन्याश्चतस्रो राकाद्या वातघ्नी चैव पञ्चमी । क्रीडनार्था च बालानां षष्ठी च शिशुरक्षिणी ॥ खड्गे तु पूजनीया वै

फिर आचार्य ग्रहोंके होमपूर्वक ब्रह्मा विष्णु महेशका ब्रह्माआदिके मन्त्रोंसे और इन्द्रका " यतंइन्द्रभयामहे " इस मन्त्रसे समिध घी तिलके चरुकी एक सहस्र आठ वा सौ वा तीन सौ आहुतियोंसे हवन करे, फिर स्विष्टकृत् होम करके बलि और पूर्णाहुति दे, फिर कुटु-म्बका अभिषेक करके आचार्यका पूजन करै, और सोना तथा गोदान करे, फिर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे, और घीका दर्शन कर शान्तिपाठ करै, फिर शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दीन अनाथ (निर्धन) की तृप्ति करै, इस प्रकार विधिसे शान्ति करके मनुष्य सब अरिष्टोंसे मुक्त होजाताहै (इति त्रिकशान्तिः) और मूलआदि नक्षत्रोंकी शान्ति आदि प्रयोगपारिजात और हमारे बनाये शान्तिरत्नमें लिखी है वहां देखलेनी, मिताक्षरामें मार्कण्डेयने लिखाहै कि, छठकी रात्रिमें रक्षा करै, तथा रात्रिमें जागरण करै और जन्मदाता देवताओंको बलि देनी, मनुष्य शस्त्रोंको हाथमें लेकर तथा स्त्री नृत्यगीतोंसे दशवीं रात्रिके सूतकमें रात्रिको जागरण करै । व्यासने कहाहै कि सूतिकागृहमें रह-नेवाले जन्मदा नामक देवता होतेहैं, उनकी पूजाके निमित्त (जन्मसमयमें शुद्धि कही है) पुत्रके जन्ममें सदा पहिले छठे दशवें दिन सूतकको न करना चाहिये, अपरार्कमें ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, द्विजाति अन्त्यज और शूद्रोंको राका अनुमति सिनीवाली कुहू ये चार कन्या तथा वातघ्नी पञ्चमी बालकोंकी क्रीडा करनेके निमित्त शिशुरक्षिणी षष्ठी है, खड्गमें इनका पूजन

१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन् छग्धितवतन्न ऊतिभिर्विद्विषो विमृधो जहि॰ ऋ॰ ६ । ४ । २० ॥

वैश्यैर्व्रात्यैर्द्विजातिभिः ॥ " राकानुमतिः सिनीवालीकुहूरिति चतस्रः कन्या इत्यर्थः ॥ दत्तकग्रहणविधिः । अथ दत्तकपरिग्रहविधिः ॥ पारिजाते शौनकः– " अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च । वाससी कुण्डले दत्त्वा उष्णीषं चांगुलीयकम् ॥ बन्धूनन्नेन संभोज्य ब्राह्मणांश्च विशेषतः । अन्वाधानादि यत्तत्र कृत्वाज्योत्पवनान्तकम् ॥ दातुः समक्षं गत्वा तु पुत्रं देहीति याचयेत् । दाने समर्थो दातास्मै ये यज्ञेनेति पञ्चभिः ॥ देवस्यत्वेति मन्त्रेण हस्ताभ्यां परिगृह्य चः । अङ्गादङ्गेत्यृचं जप्त्वा आघ्राय शिशुमूर्धनि ॥ गृहमध्ये तमाधाय चरुं हुत्वा विधानतः । यस्त्वाहृदेत्यृचा चैव तुभ्यमग्न ऋचैकया ॥ सोमोददादित्येताभिः प्रत्यृचं पञ्चभिस्तथा । स्विष्टकृदादिहोमं च कृत्वा शेषं समापयेत्॥" स च–"ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तदभावे सपिंडो वा अन्यत्र तु न कारयेत् ॥" मिताक्षरादौ तु व्याहृतिभिराज्येन होम उक्तः । स च होमोत्तरं जलपूर्वकं देयः । न वाङ्मात्रेण ॥ 'व्याहृतिभिर्हुत्वा प्रतिगृह्णीयात्' इति वसिष्ठोक्तेः । " माता पिता वा

करना चाहिये ॥ अब दत्तकपुत्रके परिग्रह (ग्रहण) करनेकी विधि कहते हैं पारिजातमें शौनकने लिखा कि, मैं शौनक उत्तम पुत्रके संग्रहकी विधि कहताहूं, जिसके पुत्र न होय वा जिसके पुत्र मृतक होगये हों वह पुत्रके निमित्त व्रत करके और बालकके निमित्त वस्त्र कुण्डल पगडी अंगूठी देकर बन्धुओंको और विशेषकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और अन्वाधानसे आज्योत्पवनपर्यन्त हवनको भली प्रकार सम्पादन करके दाताके निकट जाकर तुम मुझे पुत्र दो, इस प्रकार कहै, देनेमें समर्थ दाता 'य यज्ञेन' इन पांचमन्त्रास देवं स्यत्वा' इस मन्त्रको पढकर हाथोंसे पुत्रको ग्रहण करके और 'अंगादंगात्' इस ऋचाको पढकर बालकके शिरको सूंघे, घरके मध्यमें लाकर और विधिसे चरुका होम करके, "यस्त्वा हृदा' इस ऋचासे और 'तुभ्यमग्ने' इस एक ऋचासे 'सोमोददत्' इन पांच ऋचाओंसे स्विष्टकृत आदि हवन करके शेष कर्मको पूर्ण करै, ब्राह्मणोंको सपिंडोंमेंसे पुत्र लेना चाहिये वह न मिले तो असपिंडको लेना अन्यको पुत्र न करै, मिताक्षरामें तो व्याहृतियोंसे घृतका हवन करना चाहिये और वह पुत्रहोमकेउपरान्त संकल्पपूर्वक देना चाहिये केवल वाणीसे नहीं, कारण कि, वसिष्ठने यह लिखाहै कि, व्याहृतियोंसे हवन करके पुत्रको ग्रहण करै.और मनुने कहाहै कि,माता वा पिता जिस

---

१ अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे आत्मासि पुत्र मा मृथाः सजीव शरदः शतम् ॥ २ ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश, तेभ्यो भद्रमंगिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ऋ० ८। २ । १॥ ३ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् आददेऽरक्षतन्देवेभ्यः इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ९ । २४ ॥